फिल्म विशेषांक
१९९४
फिल्म
और फिल्म

फिल्म विशेषांक
१९९४

फिल्म और फिल्म

मूल्य ३५/-

Panjon Tablet is the combination of world's most renowned pain killers, and hence it is powerful, fast acting and yet completely safe.

Everyday lacs of people use Panjon Tablet to get rid of Headache, Toothache, Bodyache Flue's fever etc.

And this confidence is the reliability of Panjon Tablet

PANJON®
TABLET

A RELIABLE PAIN KILLER

Anil Pub.

नईदुनिया प्रकाशन इंदौर की छठी प्रस्तुति

भारतीय फिल्मों पर केन्द्रित फिल्म विशेषांक १९९४
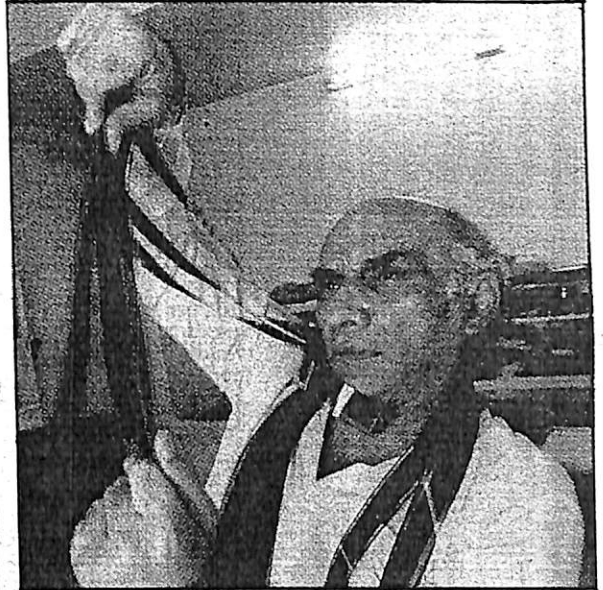
□ प्रधान सम्पादक
अभय छजलानी

□ सहयोगी सम्पादक
महेन्द्र सेठिया

□ सौजन्य सम्पादक
श्रीराम ताम्रकर

□ अभिकल्प
दिलीप चिचालकर

● मूल्य : पैंतीस रुपए ● डीलक्स संस्करण : सौ रुप

INTRODUCING INDIA'S FIRST PORTABLE COLOUR TV WITH IN-BUILT VIDEO GAME.

CROWN®

CRAZY BOY

Introducing a small colour TV that will play games with the big boys. The big boys better watchout. A small colour TV is out to play games with them. With laser guns, tanks and racing cars. And an armoury of features that even the big colour TVs would like to steal. So get ready for the knock out. Rush to the nearest CROWN dealer and arm yourself for action. It's a TV, it's a toy, it's the new Crown Crazy Boy.

A Product of Television and Components Ltd.

ATLAS RADIO TRADERS, 372-373, Saket Nagar, Indore-452001 ★ Phone : 491420, 491458, 490708

■ सम्पादकीय

इस कलाबाजी से समाज को बचाएँ

इस वर्ष के अंत तक सिनेमा की शताब्दी के समारोह शुरू हो जाएँगे। लेकिन, यह सोचना कितना भयावह है कि सौ साल की उम्र पाकर यह माध्यम अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन की बजाए व्यवसाय की विकट कलाबाजियों से घिर गया है। समाज को अपने सरोकारों की प्रतिबद्धता समझने में कोई भूमिका निभाने की बजाए मूल्यों के पतन का फायदा उठाने में यह दुनिया व्यस्त है। समझ और संजीदगी के वस्त्रों से परहेज की सीमा यह है कि अधिकांश फिल्में समाज में वस्त्र उतारने का माहौल बनाने की प्रतिस्पर्धा में जुट गई हैं। विडंबना है कि फिल्मकार और कलाकार, दोनों ही न सिर्फ इस बात के लिए दर्शक के सिर जिम्मेदारी डालकर मुक्त होना चाहते हैं, बल्कि नग्नता तथा संस्कृतिविहीनता के पक्ष में बेहद तार्किक होकर प्रस्तुत होने में उन्हें गर्व भी महसूस होता है। फिल्मों का नायक, खलनायक हो गया है तथा नायिका सेक्सी गीतों की शर्मनाक उपकरण। हिंसा की पराकाष्ठा को देशभक्ति या भ्रष्ट राजनीति के विरोध में संघर्ष का जामा पहनाकर 'टैक्स फ्री' हो जाने तक की चतुराई एक अतिरिक्त व्यावसायिक सफलता मान ली गई है।

ऐसा जनमाध्यम जो पलक झपकते एक स्वप्निल संसार में ले जाने की कूबत रखता हो, यदि दर्शकों की जेब से रुपए निकालने की प्रतिस्पर्धा में उसकी सुप्त कुंठाओं को भुनाने में जुट जाए तो इससे बड़ा खतरा और क्या हो सकता है? सरकार ने इसे आय का साधन बनाया और निर्माताओं ने शुद्ध व्यवसाय का। यह सही है कि फिल्में ऐसा कला माध्यम हैं, जिसमें काफी धन लगता है और इस लिहाज से 'धन की सुरक्षा' का तर्क वजनी हो जाता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इस वजन के तले सामाजिक दायित्वबोध तथा कलागत उद्देश्यों का दम ही घुट जाए।

पिछले दिनों, फिल्म माध्यम से जुड़े रहे कुछ सांसदों ने फिल्मों में बढ़ती हिंसा तथा अश्लीलता पर चिंता व्यक्त की। सब समझ सकते हैं कि इस चिंता की शाब्दिक बाजीगरी कितनी अर्थहीन हो जाती है, जब चिंतक किसी न किसी सिरे पर स्वयं उस व्यवसाय के दोहन से जुड़े रहे हों। खेद है कि तमाम ऊपरी तर्कों के बावजूद सिने-व्यवसाय का तर्क शुद्ध व्यावसायिक है और समाज के वित्त-रक्त पर पल रहे इस व्यवसाय में समाज के प्रति दायित्वबोध लगातार घटता गया है। मणिरत्नम् की 'रोजा' की सफलता और स्पीलबर्ग की 'जुरासिक पार्क' की कामयाबी, उसी दर्शक वर्ग के बीच हुई है, जिसका नाम ले- लेकर रोज एक 'राजा बाबू' बनाई जा रही है। दिलचस्प यह है कि दोनों ही हिंदी दर्शकों के लिए 'डब' होकर आईं। हिंदी के इतने बड़े दर्शक समुदाय के लिए फिर भी कोई स्वस्थ, उद्देश्यपरक फिल्म बनाने का खतरा क्यों नहीं उठाना चाहता?

उपग्रह चैनलों से आ रहे सांस्कृतिक प्रदूषण से लड़ने के लिए गोविंदाओं और करिश्माओं की 'अ-आ-इ-ई' में बढ़ौत्री तो आसान है, लेकिन उसके विरुद्ध एक सतर्क तथा ईमानदार कोशिश मुश्किल। पर शताब्दी का अनुभव क्या एक चुनौती से लड़ने का साहस भी नहीं दे सकता?

आज इस या अन्य संचार माध्यमों के लिए सबसे महत्वपूर्ण जरूरत आंतरिक नियमन या आत्म-नियमन की है। जो करने और जैसे रहने की इजाजत बेटी, बहू, बहन या भाई और पुत्र को नहीं दे सकते हैं, उसे ऐसे ही पात्रों के द्वारा परदे पर अत्यधिक प्रभावशाली आकर्षक रूप में प्रस्तुत कर क्या निर्माता, निर्देशक और कलाकार सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं? इस मुद्दे पर समय रहते अगर इस उद्योग ने गंभीरता से नहीं सोचा तो आश्चर्य नहीं कि उसे एक ऐसे आंदोलन का सामना करना पड़े जहाँ सारे तर्क और उदाहरण शक्तिहीन साबित हो जाएँगे। आत्म-नियमन के द्वारा संस्कार व सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा का दायित्व निभाने का बोध जितनी जल्दी फिल्म उद्योग को हो सके, विकसित हो रहे समाज पर वह उसका उतनी जल्दी किया गया अहसान होगा। और बातों की तरह, छपे हुए शब्दों में भी जनसंचार के इस शक्तिशाली माध्यम के प्रति गंभीर सोच समाप्त हो गया है। फिल्मों पर प्रकाशित कुछ गंभीर कही जाने वाली फिल्म पत्रिकाओं के प्रकाशन बंद हुए हैं। फिल्मों की समीक्षा के स्तंभ अब नहीं लिखे जाते, क्योंकि दर्शक नई फिल्म देखने के बारे में सोचे या न सोचे तब तक नई फिल्म केबल के माध्यम से परोस दी जाती है। सिनेमा की शताब्दी के अवसर पर एक बार फिर से इस माध्यम के संजीदा उपयोग पर चिंतन/ मनन/ मंथन आवश्यक है।

इस विशेषांक में हमने फिल्म स्टुडियो, फिल्म निर्देशक और श्रेष्ठ फिल्मों पर अधिक बल दिया है। साथ ही फिल्मों के विषयों की विविधता का आकलन है। प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए फिल्म सामग्री न मिलने की कमी को 'फिल्म कल्चर' के पन्नों के जरिए पूरी करने की एक पहल की है। सिनेमा के दस्तावेजीकरण की दिशा में 'नईदुनिया' की यह छठी प्रस्तुति, विश्वास है, आपको रुचिकर लगेगी।

अनुक्रम

■ खण्ड : पाँच

□ फिल्म आस्वाद

■ विशेष आकर्षण : फिल्म कल्चर

■ सितारों के रंगीन चित्र : *(कुल २४ पृष्ठ)*

**पृष्ठ ३२ से आगे आठ पृष्ठ*

□ दिलीप कुमार □ देव आनंद □ राजेश खन्ना □ अशोक कुमार □ शत्रुघ्न सिन्हा □ अनुपम खेर □ हेमा मालिनी □ अमिताभ बच्चन □ शिल्पा शेट्टी □ शबाना आजमी □ डिम्पल □ तब्बू □ ऋषि कपूर □ जैकी श्रॉफ □ सनी देओल □ धर्मेन्द्र

**पृष्ठ ८० से आगे आठ पृष्ठ*

□ श्रीदेवी □ संजय दत्त □ काजोल □ अजय देवगन □ करिश्मा कपूर □ गोविंदा □ माधुरी दीक्षित □ मधु

**पृष्ठ १६० से आगे आठ पृष्ठ*

□ पूजा भट्ट □ अनिल कपूर □ आदित्य पंचोली □ आमिर-सलमान खान □ रविना टण्डन □ अश्विनी भावे □ शाहरुख खान □ आयशा जुल्का □ शिल्पा शिरोड़कर □ ममता कुलकर्णी

● मुख पृष्ठ: जूही चावला
● फिल्म: साजन का घर
● सौजन्य: श्याम राजपाल, रचना फिल्म्स, इंदौर

● इस विशेषांक में प्रकाशित लेखकों/समीक्षकों के विचार/ विश्लेषण तथा टिप्पणियाँ उनकी निजी अभिव्यक्ति है। उनसे संपादक-प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

○ **इस विशेषांक के छायाकार:**
● उमेश व्यास (बंबई)
● दुर्गाप्रसाद (बंबई)
● आर.टी. चावला (बंबई)
● प्रतापराव शिंदे (इंदौर)

● **चित्र एवं सामग्री सौजन्य:**
○ फिल्म फेडरेशन ऑव इंडिया (बंबई)
○ भारतीय फिल्म निदेशालय (नई दिल्ली)
○ राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार (पुणे)
○ फिल्म फेअर ○ माधुरी ○ धर्मयुग
○ मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम: फिल्म वार्षिकी १९९२/९३/९४
○ सिनेमा इन इंडिया
○ अँगरेजी स्क्रीन ○ नईदुनिया संदर्भ
○ इलस्ट्रेटेड वीकली ऑव इंडिया
○ सेवंटी फाइव इयर्स ऑव इंडियन सिनेमा (टी.एम.रामचन्द्रन)
○ फिल्म कल्चर (इंदौर)

RITZ
दुनी में दम है
Baba Sehgal

ida इन्दौर विकास प्राधिकारी

7, रेसकोर्स रोड, इन्दौर
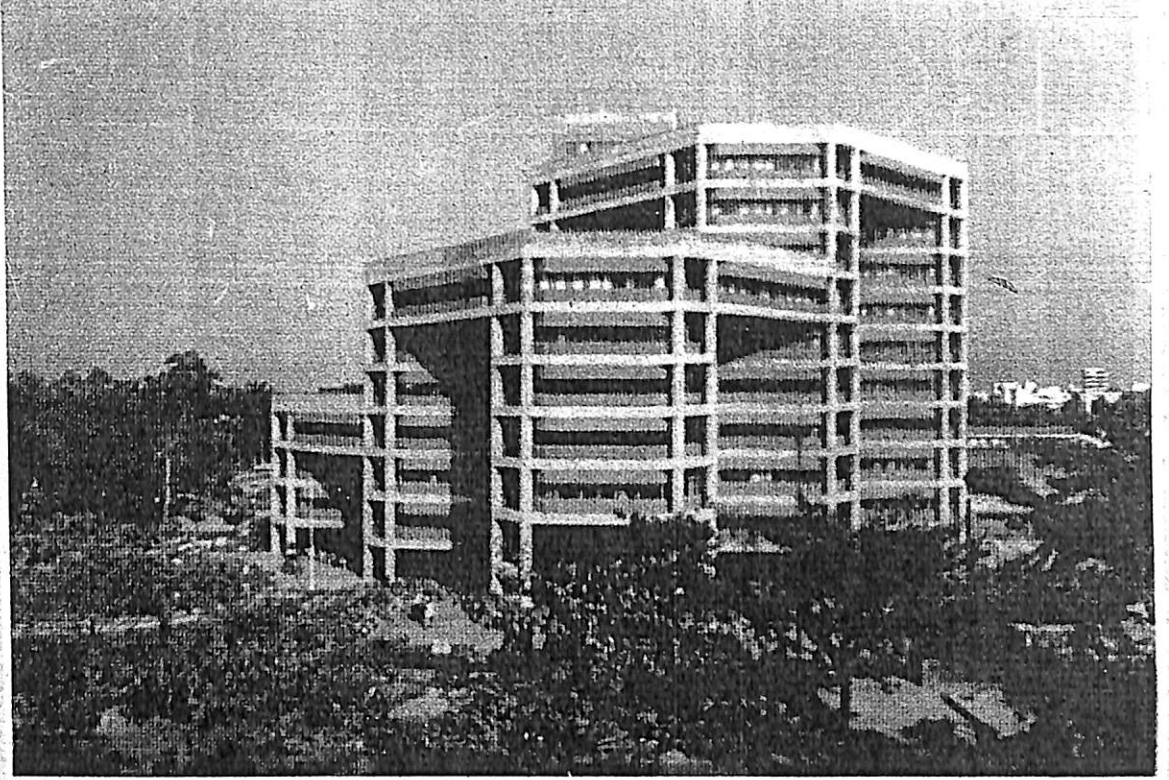
1. शहर की जीवनदायिनी रिंग रोड का निर्माण कार्य द्रुत गति से किया जा रहा है। अभी तक 10 कि.मी. लंबाई में पिपल्याकुमार एम.आर.-11 से नेमावर रोड तक सर्विस रोड का कार्य लगभग पूर्ण। सर्विस रोड पर विद्युतीकरण का कार्य प्रारम्भ। नेमावर रोड से बड़वाह रोड तक रिंगरोड का कार्य प्रारम्भ। खण्डवा रोड से पिपल्यापाला तक के कार्य की निविदाएँ स्वीकृत।
2. इन्दौर शहर के लिए अनूठी सौगात - कृष्णापुरा स्थित ऐतिहासिक छत्रियों के समीप निर्माणाधीन कृत्रिम झील का निर्माण कार्य पूर्णता की ओर।
3. शहर की निर्माणाधीन प्रमुख भूमिगत गटर का कार्य द्रुत गति से।
4. ओ.डी.ए. परियोजना के अन्तर्गत 33 करोड़ रुपए के भौतिक कार्य सम्पन्न। 90 सामुदायिक भवन निर्मित तथा 30 पर कार्य प्रारम्भ।
5. बंगाली क्लब हाट मैदान में 'बाल भवन' की योजना।
6. बाणगंगा में ओ.डी.ए. योजना के अन्तर्गत अस्पताल भवन का कार्य पूर्ण।
7. योजना क्रमांक 97, 103, 114 पार्ट-2 रहवासी योजनाओं का विकास कार्य प्रगति पर।
8. प्रस्तावित लोहा मण्डी की योजना स्वीकृत एवं शीघ्र ही निर्माण कार्य प्रारम्भ।
9. इन्दौर शहर में ए.बी.रोड में विद्युतीकरण कार्य में प्राधिकरण का सहयोग।

जी.पी.तिवारी — मुख्य कार्यपालिक अधिकारी

ए.के.सिंह — अध्यक्ष

शुध्द आहार, शाकाहार!

BEEJ-203-94-102-H

मुकुल आनंद

फिल्म कल्चर

ताना-बाना

फिल्म-निर्माण एक टीम वर्क है। एक फिल्म के निर्माण में जो महत्वपूर्ण व्यक्ति और विभाग होते हैं, वे इस प्रकार हैं-

- **फायनेंसर :** फिल्मों में धन लगाने वाला व्यक्ति।
- **निर्माता :** वह व्यक्ति जो फिल्म निर्माण की बलवती इच्छा पाले रहता है।
- **बैनर :** वह कंपनी या स्टुडियो या ट्रेडमार्क जिसके झंडे तले फिल्म प्रस्तुत की जाती है।
- **निर्देशक :** फिल्म निर्माण की टीम का कप्तान। सब कुछ इसी के इशारे पर चलता है।
- **कथाकार :** फिल्म की कथा या कथा-सूत्र लेखक। देव आनंद और बी.आर. चोपड़ा के यहाँ बाकायदा स्टोरी डिपार्टमेंट हैं।
- **पटकथाकार :** यह व्यक्ति कथा को फिल्माने के लिए दृश्यों की संयोजना करता है। शॉट तथा सीन के लिए कैमरा एंगल्स तय करता है।
- **संवाद लेखक :** कहानी को पात्रों के संवादों में बदलता है।
- **गीतकार :** फिल्म में सिच्युएशन तलाश कर उसके अनुसार गीत-लेखन।
- **संगीतकार :** फिल्म के गीतों के लिए धुनें बनाना। पृष्ठभूमि संगीत तैयार करना।
- **सिनेमाटोग्राफर :** फिल्म का छायांकन/ फिल्मांकन करना। निर्देशक के बाद यह सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है।
- **एडिटर :** फिल्म का संपादन कर उसे दर्शक के लिए देखने योग्य बनाना।
- **ऑडियोग्राफर :** शूटिंग के समय संवाद/ ध्वनि का संकलन करना।
- **कोरियोग्राफर :** यह नृत्य संयोजन का कार्य करता है। कलाकारों और सह-कलाकारों को डांस के स्टेप्स समझाना।
- **फाइट डायरेक्टर :** फिल्मों में मारधाड़ के दृश्यों की कल्पना कर उन्हें नए-नए तरीके से प्रस्तुत करना।
- **आर्ट डायरेक्टर :** फिल्मों के लिए सेट तैयार कराना। प्रत्येक सीन के लिए 'प्रापर्टी' की व्यवस्था करना।
- **मेकअप आर्टिस्ट :** फिल्म के कलाकारों का किरदार अनुसार मेकअप करना।
- **हेयर ड्रेसर :** नायक-नायिका के बालों की सजावट/ बनावट करना।
- **प्लेबेक सिंगर :** पार्श्व गायन करने वाले कलाकार।
- **साउण्ड रेकॉर्डिस्ट :** फिल्मों में संवाद/ गीत/ संगीत/ पार्श्व संगीत का संकलन करने वाला तकनीशियन।
- **प्रोडक्शन कंट्रोलर :** फिल्म के निर्माण की पूरी जवाबदारी निभाने वाला महत्वपूर्ण व्यक्ति।
- **बिजनेस एक्जीक्यूटीव :** फिल्म को सरकिटों में बेचने के लिए वितरकों से बातचीत कर सौदे तय करना।
- **कास्ट्यूम कंसलटंट :** फिल्म के प्रमुख कलाकारों की पोशाक के बारे में सलाह देना।
- **कास्ट्यूम डिजायनर/सप्लायर :** कलाकारों की पोशाक की संरचना करने वाला। सप्लायर रेडिमेड पोशाक की पूर्ति करता है।
- **कलर कंसलटंट :** फिल्म की रंग संयोजना करने वाला व्यक्ति।
- **पी.आर.ओ. :** फिल्म के प्रचार की शैली ईजाद कर रेडियो/ टीवी और पत्र-पत्रिकाओं में प्रचार-प्रसार करना।
- **डिस्ट्रिब्यूटर :** फिल्म का वितरक, जो फिल्म को अपने क्षेत्र के लिए खरीद कर प्रदर्शित करता है।
- **एक्जीबीटर :-** सिनेमाघर का मालिक। वितरक से फिल्म लेकर दर्शक तक पहुँचाना।
- **दर्शक :** फिल्म की चौखट का वह अंतिम महत्वपूर्ण व्यक्ति जिसकी पसंद-नापसंद पर फिल्म सफल/असफल होती है।

एक खूबसूरत धोखा उम्र सौ साल !

खंड एक

● श्रीराम ताम्रकर

जी हाँ, सिनेमा एक खूबसूरत धोखा ही तो है। जो दिखाई दे रहा है, वह नहीं है, और जो नहीं दिखाई दे रहा है, वह है। एक अजीब-से भ्रम (इल्युजन) की स्थिति है। **इस साल** के अट्ठाईस दिसंबर को सिनेमा की उम्र सौ साल की हो जाएगी। पिछले सौ सालों से सारी कलाओं में और बीसवीं सदी में सिनेमा ने अपनी श्रेष्ठता एक बार नहीं, वरन् अनेक बार प्रमाणित की है। सम्पूर्ण विश्व के दर्शकों को अंधेरे में बैठाकर फिल्म का प्रदर्शन होता है। परदे पर प्रकाश की परछाइयों ने बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को अपने विविध प्रभावों से प्रभावित किया है। आज जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं है, जिस पर सिनेमा का असर न हो। भारत जैसे देश की स्थिति तो और भी विस्मयकारी है। एक गीत बजता है- चोली के पीछे क्या है? और काश्मीर से कन्या कुमारी तक अजीब-सी हलचल होने लग जाती है। जब एक गीत की सात-आठ पंक्तियाँ पूरे देश को आंदोलित कर देती हैं, तो पूरी फिल्म की दो लाख से ज्यादा फ्रेम जब दर्शक की आँखों के सामने से गुजरती है, तो उसके प्रभाव का अंदाजा आप लगा सकते हैं।

सिनेमा के आविष्कार के बाद सत्तासीनों ने इस प्रभावशाली माध्यम का उपयोग अपने लिए करना शुरू कर दिया था। आज भी सिनेमा का इस्तेमाल हर देश अपने ढंग से कर रहा है।

पूँजीवादी विकसित देशों के लिए सिनेमा एक उपभोक्ता संस्कृति है। बड़े बजट की भव्य फिल्में बनाना और भोगवादी मनोरंजन को विकसित कर विकासशील तथा तीसरी दुनिया के देशों के दर्शकों की लार टपकाना इन देशों की सरकार तथा फिल्म निर्माताओं का उद्देश्य रहता है। 'जूरासिक पार्क' जैसी चमत्कारिक फिल्में और डायनासौर अमेरिका/ हॉलीवुड में ही जिंदा हो सकते हैं। भारत जैसे देश के दर्शकों के लिए तो वे महज सपने हैं, जो धरती पर उतार दिए गए हैं।

विकासशील देशों के लिए सिनेमा महज मनोरंजन का माध्यम है। इसीलिए भारत में सिनेमा को आज भी मनोरंजन का सबसे सस्ता तथा सुलभ साधन बताकर प्रचारित किया जाता है। भारतीय फिल्म निर्माता हर बार दर्शकों की पसंदगी की दुहाई देकर अपनी 'ड्रीम-फेक्टरी' में स्थाई फार्मूलों के साथ फिल्म निर्माण करते रहते हैं। दुनिया में सर्वाधिक फिल्में भारत में बनती हैं, यह सोचकर हम गर्व से अपना सीना भले ही चौड़ा कर लें, लेकिन ठहरकर सोचने की बात है कि भारत में इतनी फिल्में आखिर बनती क्यों हैं? क्या जरूरत है, एक नंगे-भूखे देश में एक हजार फिल्में हर साल बनाने की और करोडों-अरबों रुपया पाँच सितारा होटलों में पार्टियों/मुहूर्तो/ प्रीमियरों पर खर्च करने की? देश जब पीने के पानी की प्राथमिक जरूरतों से जूझ रहा है, एक सितारा पचास लाख से एक करोड़ रुपया

दादा साहेब फालके

फिल्म कल्चर

बच्चों के लिए श्रेष्ठ फिल्में

- लावण्य प्रीति /१९९३/ ए.के. बीर
- सण्डे /१९९३/ पंकज आडवाणी
- करामाती कोट /१९९३/ अजय कार्तिक
- आसमान से गिरा /१९९१/ पंकज पाराशर
- अभयम्/ मैं फिर आऊँगा /१९९१/ सिवन
- अनोखा अस्पताल/मुकेश शर्मा
- आज का रॉबिनहुड/ १९८७/ तपन सिन्हा
- अनमोल तस्वीर/ १९७८/ सत्येन बोस
- अंकुर, मैना और कबूतर /१९८९/मदन बावरिया
- बाल शिवाजी /१९८२/ प्रभाकर पेंढारकर
- बच्चे तीन और डाकू छह /१९८३/गोविंद सरैया
- डाकघर /१९६५/ जूल वेलानी
- दोस्त मगरमच्छ /१९८८/ रोमुलस वाइटकर
- द्वीप का रहस्य /१९७९/ तपन सिन्हा
- हम भी कुछ कम नहीं /१९८२/ टी. प्रकाशराव
- जवाब आएगा /१९६८/ इस्मत चुगताई
- काला पर्वत /१९७०/ एम.एस. सथ्यू
- कूकडू कू /१९८५/ पार्वती मेनन
- कायापलट /१९८३/ सत्येन बोस
- मुझसे दोस्ती करोगे/१९९२/ गोपी देसाई
- नानी माँ/१९८०/ पार्वती मेनन
- त्रियात्री /१९९०/ पार्वती मेनन
- उड़न छू /१९७६/ शिवेन्द्र सिन्हा
- जेंगबो एंड जिंग जिग बार/१९७७/कांतिलाल राठौड़
- चरणदास चोर /१९७४/ श्याम बेनेगल
- चोर-चोर छुप जा/१९७७/ब.व. कारंथ
- हंगामा बॉम्बे स्टाइल/१९७८/सिराज आयशा सहानी
- इच्छा पूरन /१९६९/ मृणाल सेन
- जलदीप /१९५६/ केदार शर्मा
- जादू का शंख /१९७४/ सई परांजपे
- राजू और गंगाराम /१९६२/ इजरा मीर
- रामशास्त्री का न्याय/१९५६/ विश्राम बेडेकर
- सिकंदर/१९७६/ सई परांजपे

● शशि शर्मा

भारत की पहली कथा फिल्म: राजा हरिश्चन्द्र (१९१३)

पारिश्रमिक लेता है। सिनेमा जब हमारे समाज की रचना नहीं कर सकता, समाज में बदलाव नहीं ला सकता, अलबत्ता सांस्कृतिक प्रदूषण अवश्य फैला रहा है, ऐसे दौर में ऐसे मनोरंजन से क्या लाभ? जन-संचार के इस शक्तिशाली माध्यम का कुल मिलाकर दुरुपयोग करने का हम इतिहास रच रहे हैं बस।

साम्यवादी देशों की ओर नजरें घुमाएँ, तो पता चलता है कि वहाँ की सरकारों तथा फिल्म निर्माताओं ने सिनेमा माध्यम का उपयोग 'प्रोपेगण्डा' के लिए किया और जन-शक्ति की दिशा को सिनेमा की दिशा से जोड़ दिया। आधे से अधिक योरप के देशों के सिनेमा ने वहाँ की समाज रचना और रोजमर्रा के जीवन की गतिविधियों को प्रभावित किया है। द्वितीय विश्व युद्ध में लगभग बरबाद हो चुका योरप और वहाँ का जनजीवन फिल्म स्टुडियो के माध्यम से फिर उठ खड़ा हुआ और खुशहाली की लहर पूरे देश में दौड़ पड़ी।

तीसरी दुनिया अथवा पिछड़े हुए देशों में आज भी सिनेमा उनका हथियार बना हुआ है। अपनी जनता को जगाने, राजनीतिक चेतना विकसित करने और बाहरी ताकतों से मुकाबला करने के लिए वहाँ के फिल्मकार जेल में बंद रहते हुए फिल्मों का निर्देशन करते है और अपनी आवाज़ बुलंद करते हैं। तीसरी दुनिया के देशों की फिल्मों के लिए पूँजीवादी देशों के दरवाजे सिर्फ इसलिए बंद हैं कि गोरे चेहरों के काले कारनामे कहीं उजागर न हो जाएँ।

सिनेमा सचमुच में इतना शक्तिशाली है। इतना ही नहीं पहले से कहीं ज्यादा आज उसकी शक्ति बढ़ी है। टेलीविजन / सैटेलाइट टी.वी./ केबल टीवी के तमाम कार्यक्रम सिनेमा का ही तो प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। इनके अधिकांश कार्यक्रम सिनेमा पर आधारित होते हैं। दिक्कत सिर्फ इतनी हो गई है कि जन-संचार के इस माध्यम में 'उपभोक्तावाद' की मिलावट कर दी गई है। अब मनोरंजन शुद्ध नहीं रहा। वह मिलावटी-बनावटी- दिखावटी स्वरूप में भोगवादी बनकर हमारे सामने आ रहा है। समाजशास्त्री इस खतरे से अनजान हैं, ऐसा भी नहीं है। लेकिन चतुर एवं धूर्त व्यापारियों के सामने वे विवश हैं। नई पीढ़ी को सिनेमा-टीवी. के खतरों से आगाह किया जाए, उसके पहले ही ये लोग उन्हें अपनी गिरफ्त में ले लेते हैं।

आज पूरे विश्व में संचार- साधनों के माध्यम से ज्ञान तथा सूचनाओं का विस्फोट हुआ है। यह इतना जबरदस्त है कि पूरा विश्व हतप्रभ है। सिनेमा की शताब्दी सामने है। आदमी ने ही अपनी जैसी परछाइयों का आविष्कार सौ साल पहले किया था। वह चाहता था कि परछाइयाँ उसकी तरह चलें/ बोलें/ बात करें/ हँसें/ रोएँ/ उदास हों। उसकी इच्छा पूरी हो गई। आविष्कार के समय वह यह भूल गया कि भविष्य में यह भस्मासुर बनकर उसे लीलने पीछे दौड़ेगा। सिनेमा की शताब्दी को लेकर दिसंबर १९९४ से पूरी दुनिया में जश्न मनाए जाएँगे। सिनेमा हर देश में अलग-अलग बरसों में गया है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि शताब्दी समारोह अगले पाँच-सात साल तक चलते रहेंगे। इस दौरान पुरानी कालजयी /क्लासिक और मील का पत्थर साबित हुई फिल्मों के प्रदर्शन होंगे। समारोह/ सेमिनार/ बहस/ प्रकाशन जैसे कार्यक्रम धूमधाम से मनाए जाएँगे।

यह एक अच्छा अवसर होगा जब पुरानी पीढ़ी को अपनी यादें ताजी करने का एक मौका और मिलेगा। नई पीढ़ी को एक लाभ यह होगा कि उसके जन्म के पहले जो कुछ

भारत की पहली बोलती फिल्म: आलमआरा (१९३१)

अच्छी फिल्में बन चुकी हैं, उन्हें देखने/ समझने का दुर्लभ अवसर मिलेगा। ये बातें उत्साहवर्धक हैं। होना भी चाहिए। लेकिन भारत के संदर्भ में हमें कुछ अतिरिक्त चिंता करने की जरूरत है। संख्या की दृष्टि से हम फिल्म निर्माण में संसार में भले ही सिरमौर हों, गुणवत्ता में हम आज भी मात खा रहे हैं। मैं तकनीक के स्थान पर कथानक की बात कर रहा हूँ। हमारे देश में शुद्ध फार्मूलों पर फिल्में बनती रही हैं। कभी स्टण्ट/ कभी धार्मिक/ कभी रोमांस तो कभी मारधाड़। सब कुछ सतही होता है। उसमें मनोरंजन का दावा, तो एकदम खोखला है। आग उगलती बंदूकें और जिस्म से बहते लाल खून को देखकर भला, किसका मनोरंजन होता होगा? पिछले दो दशक से भारतीय सिनेमा लाल और नीले रंग का ही

किस? कट!

एडिसन ने सन् १८९६ में एक फिल्म बनाई थी-**किस**। मे इर्विन और जॉन सी. राइस ने परदे पर एक मिनट तक 'किस' किया था। नैतिकतावादियों ने बावेला मचाया। बस यहीं से फिल्म सेंसर के दरवाजे खुल गए...।

भारतीय फिल्मों में मीठे चुम्बन का हमेशा कड़ुआ-शोर मचता रहा है। जब फिल्में सेंसर नहीं होती थीं, परदे पर नायक-नायिका के चटखारेदार चुम्बन चला करते थे। फिल्म **कर्मा** में देविका रानी-हिमांशु राय (देखिए पृष्ठ ३१) का चुम्बन-दृश्य आज तक फिल्म इतिहास की तरह छपता है।

बाद के वर्षों में चुम्बन को लेकर बहसें होती रहीं। परदे पर यदाकदा चुम्बन चलते रहे- जाल मर्चेण्ट-जुबेदा/ मोतीलाल-माधुरी/ नरगिस-राजकपूर/ रेखा-विश्वजीत सुर्खियों में आते रहे। और पद्मिनी कोल्हापुरे ने तो ब्रिटेन के प्रिंस चार्ल्स की भारत-यात्रा के दौरान स्टुडियो में दौड़कर उनका चुम्बन ले लिया था। फिल्म सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् के पहले तक नायिकाएँ चुम्बन हेतु कतराती थीं। निम्मी तो बीसों फिल्मों के बाद भी 'अन-किस्ड गर्ल' बनी रहीं। सत्यम् शिवम् में जीनत अमान ने तमाम लक्ष्मण-रेखाएँ एक साथ पार कर लीं। सेंसर ने 'ए' प्रमाण-पत्र दिया, राजकपूर ने ले लिया। आजकल तो चूमाचाटी की फिल्मों को 'यू' प्रमाण-पत्र मिल रहे हैं।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त जस्टिस खोसला कमेटी ने अपनी रपट १९६९ में देकर चुम्बन-दृश्य देने की सिफारिश की थी। पेड़ों के इर्द-गिर्द चक्कर काटना, पक्षियों को चोंच लड़ाते दिखाना ज्यादा उत्तेजक है, बजाए एक स्वाभाविक चुम्बन के। लेकिन नौ साल तक सरकार और सेंसर कोई फैसला नहीं कर पाए। सत्यम् शिवम् सुंदरम् से सेंसर ने चुम्बन दृश्यों को अनुमति दी है।

बंबई के एक अखबार ने फिल्म कलाकारों से चुम्बन के बारे में पूछा था, तो **मनोज कुमार** और **नंदा** ने घोर विरोध किया था। पिछले दिनों **धर्मेन्द्र** ने नए हीरो को परदे पर चूमते हुए देख कर कहा-ये छोकरे चुम्बन ऐसा करते हैं, जैसे तरबूज खा रहे हों। **वहीदा रहमान** ने नई छोकरियों के बारे में कहा है-च्यूइंगगम की तरह चुम्बन दृश्य करती हैं ये नायिकाएँ। दरअसल चुम्बन अब अपनी गरमाहट खो चुका है, क्योंकि पूरी देह का भूगोल उजागर हो रहा है।

फिल्म कल्चर

चुंबन

जुम्मा-चुम्मा दे दे...

गया है। परदे पर किसी न किसी बहाने गोलियाँ दागी जाती हैं चाहे वह डाकुओं का फार्मूला हो या ठाकुरों-राजपूतों का बदला-बलिदान। चाहे वह आतंकवाद की समस्या हो या फिर 'अण्डरवर्ल्ड के डॉन' का साम्राज्य। हिंसा को इतना हावी बना लिया है कि परदे की हिंसा अब सड़कों पर आ गई है। कानून हाथ में लेने से कोई जरा भी नहीं हिचकता। तमिलनाडु के आटोशंकर ने तीन फिल्में देखकर तीन निर्मम हत्याएँ कबूल की हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में फिल्म निर्माताओं और सेंसर बोर्ड को जोरदार शब्दों में लताड़ लगाई है। माननीय न्यायाधीशों ने अपने फैसले में लिखा है कि फिल्मों की नायिका को इतना उत्तेजित दिखाने की आखिर क्या जरूरत है? हर गाना लड़की को सामने रखकर लिखा जा रहा है। सेक्सी शब्दावली सुनकर उत्तरप्रदेश के एक तेरह वर्षीय लड़के ने अपनी संनसनी और उत्तेजना शांत करने के लिए तीन लड़कियों से बलात्कार किया, जिनमें से एक उसकी सगी बहन थी। उस हवसी ने उन तीनों को मार डाला। यह सब नीली फिल्में देखकर उसने किया। जन-रंजन करने वाली फिल्में आखिर इतनी खतरनाक कैसे हो गई?

इन तमाम बातों पर गंभीरता से विचार करने वाले अब कोई नहीं रहे। जब देश भर में हल्ला मचता है, तो सरकार के कान पर जूँ रेंगने लगती है और वह सिर्फ घोषणा करती है कि भविष्य में फिल्मों का सेंसर सख्ती से होगा। राजनेता सिर्फ कुर्सी बचाने के चक्कर में घनचक्कर बने रहते हैं। पिछले आम चुनावों में तो न सिर्फ प्रचार के लिए फिल्मी सितारों की मदद ली गई, बल्कि हर राजनीतिक दल में यह होड़ मची है कि अपनी पार्टी के टिकट पर अधिक से अधिक ग्लेमर को संसद में ले जाया जाए। बिहार के मुख्यमंत्री लालूप्रसाद यादव को जब शत्रुघ्न सिन्हा की सभाओं से खतरा महसूस होने लगा, तो उन्होंने आननफानन में एक फिल्म का मुहूर्त करा कर अपने को फिल्म का हीरो घोषित कर दिया। फिल्मी सितारों की रोशनी में नहाकर मुस्कुराने वाले राजनेता, किस बूते पर हिंसक या अश्लील फिल्मों पर पाबंदी लगा सकते हैं। नतीजा यह हो रहा है कि 'अण्डरवर्ल्ड' के लोग अपना पैसा फिल्मों में लगा रहे हैं। उनके इशारों पर फिल्मों की कहानियाँ कुछ इस प्रकार रखी जा रही हैं, जिनमें पुलिस को जोकर जैसा चित्रित किया जाता है। कानून, आम लोगों की रक्षा करने में असमर्थ है। गुण्डे-बदमाशों की शरण में जाओ। उनकी आज्ञा मानो। वे जब तक चाहेंगे, तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे। अण्डरवर्ल्ड के डॉन और उनके चेले-चपाटियों की जिंदगी को शानदार ढंग से चित्रित किया जा रहा है। राजनेताओं को भ्रष्ट तथा गुण्डों की कठपुतली बताया जा रहा है। कुल मिलाकर सिनेमा के माध्यम से भ्रष्टाचार की जय-जयकार की जा रही है। गलत हाथों

चित्रकार एम.एफ. हुसैन का सिनेमा के प्रति नजरिया

९ जुलाई १८९६ को प्रकाशित सिनेमा का पहला विज्ञापन

THE MARVEL OF THE CENTURY.
THE WONDER OF THE WORLD.
LIVING PHOTOGRAPHIC PICTURES
IN
LIFE-SIZED REPRODUCTIONS
BY
MESSRS. LUMIERE BROTHERS.
CINEMATOGRAPHE.
A FEW EXHIBITIONS WILL BE GIVEN
AT
WATSON'S HOTEL
TO-NIGHT (7TH instant).
PROGRAMME will be as under:

1. Entry of Cinematographe.
2. Arrival of a Train.
3. The Sea Bath.
4. A Demolition
5. Leaving the Factory.
6. Ladies and Soldiers on Wheels.

The Entertainment will take place at 6, 7, 9, and 10 p.m.
ADMISSION ONE RUPEE.

आपका फिल्मी बुक शेल्फ

जैसे हर घर में 'फर्स्ट एड बॉक्स' होता है, ठीक उसी तर्ज पर प्रत्येक घर में एक 'फिल्म बुक शेल्फ' की सिफारिश हम करते हैं। इन दिनों तमाम टीवी चैनलों पर फिल्म पहेलियाँ/ क्विज कार्यक्रम/ फिल्म/ चित्रहार के कार्यक्रमों की भीड़ लगी हुई है। जरा-सी जानकारी के लिए भटकना होता है। यहाँ हम कुछ ऐसी पुस्तकों/ संदर्भ ग्रंथों-पत्रिकाओं की जानकारी दे रहे हैं, जिन्हें रखने पर आपको किसी का मुँह नहीं ताकना होगा। अलबत्ता आप दोस्तों में अव्वल रहते हुए कई बार कई शर्तें जीत सकेंगे। आपके परिवार में प्रतियोगी-परीक्षा. में शामिल होने पर सफलता की गारंटी!!

● **फिल्म इतिहास**

□ हिंदी सिनेमा का इतिहास (हिंदी) : मनमोहन चड्ढा

□ पिक्टोरियल हिस्ट्री ऑव इंडियन सिनेमा (अँगरेजी) : फिरोज रंगूनवाला

● **फिल्मोग्राफी**

□ सेवंटी फाइव ग्लोरियस इयर्स ऑफ इंडियन सिनेमा (अँगरेजी) : राजेन्द्र ओझा

□ हिंदी सिनेमा का सुनहरा इतिहास (हिंदी) : बद्रीप्रसाद जोशी

● **गीत-कोष**

□ हिंदी फिल्म गीत कोष भाग १ से ५। वर्ष १९३१ से १९८० तक (हिंदी) : हरमन्दिरसिंह हमराज

● **फिल्म संदर्भ विशेषांक**

□ भारतीय सिनेमा : प्लेटिनम जुबली विशेषांक

□ सरगम का सफर (संगीतकार/ गीतकार/ पार्श्व गायक-गायिका)

□ परदे की परियाँ (नायिका/ खलनायिका/ चरित्र नायिकाएँ)

□ नायक-महानायक (नायक/ महानायक/ खलनायक/ चरित्र नायक/ कामेडियन)

□ दूरदर्शन-सिनेमा (दूरदर्शन का इतिहास/ विकास/ कलाकार)

□ फिल्म और फिल्म (स्टुडियो/ निर्देशक/ प्रमुख फिल्मों का परिचय)

□ ये समस्त विशेषांक नईदुनिया प्रकाशन के हैं।

● **फिल्म वार्षिकी**

□ भारतीय फिल्म वार्षिकी १९९२/१९९३/१९९४ :

□ मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम के प्रकाशन

● हमारा विश्वास है कि आपके बुक-शेल्फ में इन पुस्तकों/ पत्रिकाओं के रहने से आपके फिल्म ज्ञान की सत्तर प्रतिशत आवश्यकता पूरी हो सकती है।

शिवाजी गणेशन-
कमल हासन

सिनेमा के आरम्भिक
कई नाम

BIOGRAPH
BIOSCOPE
VITAPHONE
KINEMASCOPE
CinartistiscopE
TALKIES
PhonofilM
KINECINEMA
PHOTO-PLAY
CINEMA
AUXETOPHONOSCOPE
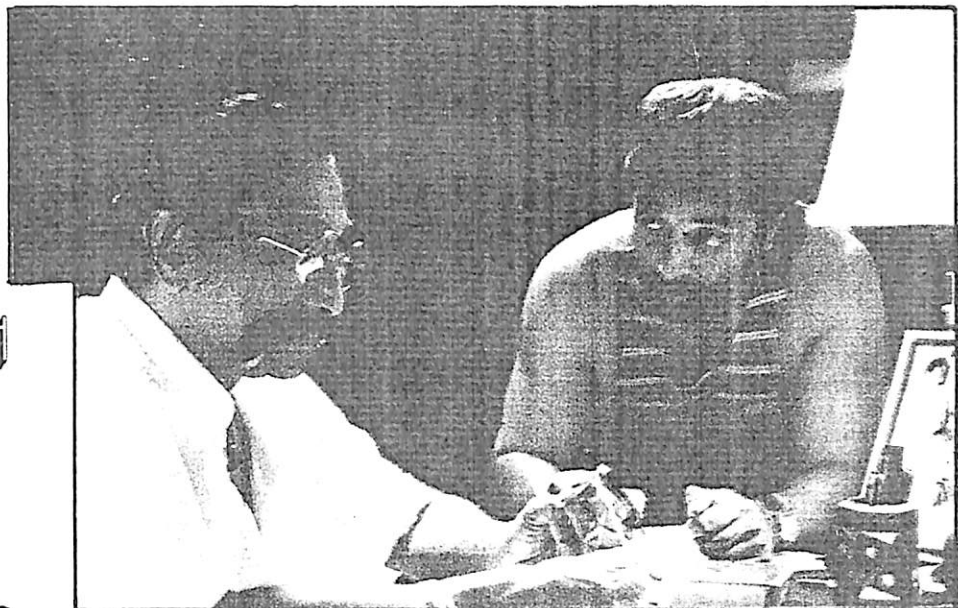
मे चले जाने से जन-रंजन का माध्यम कितनी विस्फोटक दशा में आज मौजूद है, यह विचारणीय है।

देश में महिलाओं के जो संगठन हैं, वे भी उन मामलों में मौन हैं, जहाँ महिलाओं के साथ अन्याय/ अत्याचार/ बलात्कार और शोषण के दृश्य ग्लेमराइज कर दिखाए जाते हैं। अब फिल्मों में नारी सिर्फ भोग्या की तरह पेश की जा रही है। वैसे ही नाच गाने आ रहे हैं और वैसी ही पोशाक पहनाई जा रही है। यदि महिला संगठन नारी का अपमान करने वाली फिल्मों का प्रदर्शन रोकें और देशव्यापी आंदोलन चलाए, तो सिनेमावाले पटरी पर आ सकते है। क्योंकि उनके घरों में भी माँ-बहनें मौजूद हैं, और वे आज इतनी बेहया नहीं हुई हैं।

चलिए, सिनेमा की शताब्दी के अवसर पर उम्मीद के खिलाफ यह उम्मीद की जाए कि जिन अनाड़ी और खतरनाक लोगों के हाथों में यह माध्यम चला गया है, समय रहते वे सचेत होंगे और उन्हें समाज हित/ देशहित में सद्बुद्धि आएगी। ■

विदेशी फिल्मों से प्रभावित हिंदी फिल्में

- **गुमनाम :** *टेन लिटिल निगर्स (अगाथा क्रिस्टी)*
- **खून-खून :** *डर्टी हेरी*
- **मनोरंजन :** *इर्मा ला डूस*
- **परिचय :** *द साउण्ड ऑव म्युजिक*
- **कोशिश :** *हेप्पीनेस टू अस अलवेज (जापानी कथा)*
- **धर्मात्मा :** *द गॉड फादर*
- **जादू-टोना :** *द एक्जारसिस्ट*
- **खट्टा-मीठा :** *युवर्स, माइन एण्ड अवर्स*
- **अँखियों के झरोखों से :** *लव स्टोरी (एरिक सेगल)*
- **मनपसंद :** *मॉय फेअर लेडी*
- **कर्ज :** *द रिइन्कारनेशन ऑव पीटर प्राउड*
- **इंसाफ का तराजू :** *लिपस्टिक*
- **सत्ते पे सत्ता :** *सेवन ब्राइड्स फार सेवन ब्रदर्स*
- **मासूम :** *मेन, वुमन एण्ड चाइल्ड*
- **एतबार :** *डायल एम फार मर्डर*
- **आज की आवाज :** *डेथ विश*
- **अंदर-बाहर :** *फोर्टी एट्थ अवर्स*
- **प्यार के दो पल :** *द पेरेंट ट्रेप*
- **मैं आजाद हूँ :** *बीईंग देअर/ मीट जान डो*
- **द बर्निंग ट्रेन :** *द बुलेट ट्रेन/ टावरिंग इन्फर्नो*
- **कयामत :** *केप फिअर्स*

फिल्मों के तीर्थ-स्थल

भारत में सिनेमा व्यक्तियों के कंधे पर सवार होकर आया। व्यक्ति और व्यक्ति ने बाद में फिल्म कम्पनियाँ बनाईं। बीस और तीस के दशक में बैनर बिकते थे और बैनर देखकर दर्शक फिल्में देखा करते थे। प्रभात/ बॉम्बे टॉकीज/ न्यू थिएटर्स/ इम्पीरियल/ रणजीत/ मेहबूब/ मिनर्वा/ बसंत/ राजकमल जैसे स्टुडियो और कम्पनियों ने भारतीय सिनेमा की नींव को मजबूत किया है। इन स्टुडियो में कालजयी फिल्मों का निर्माण हुआ और भारतीय सिनेमा की दशा और दिशा निश्चित हुई है। आज अधिकांश स्टुडियो बंद हो गए हैं। फिर भी फिल्मों के तीर्थ-स्थल रहे, इन प्रमुख स्टुडियो और व्यक्तियों के बारे में जानना अतीत से साक्षात्कार का एक दिलचस्प सफर होगा।

खण्ड दो
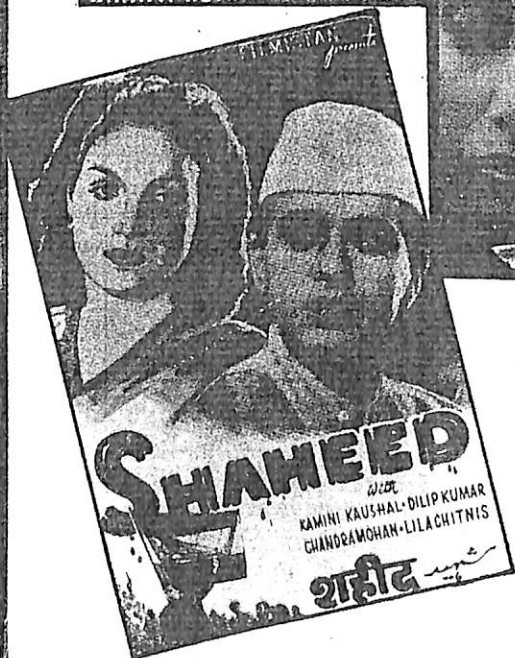
अजन्ता-एलोरा की गुफाओं, कोणार्क-मीनाक्षी के मंदिरों पर जैसा हमें गर्व है, उसी तरह हम **प्रभात** के नाम पर अपना माथा ऊँचा कर सकते हैं। प्रभात ने भारतीय संस्कृति को सैल्यूलाइड पर सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। कार्य के प्रति अपनी आस्था और समर्पण के कारण प्रभात आज अस्तित्व में न होते हुए भी पूजनीय है। जब दूसरी फिल्म कंपनियाँ सस्ते मनोरंजन और प्रेम कथाओं पर आधारित फिल्में बनाकर अपना बैंक बैलेंस बढ़ा रही थीं, तब प्रभात समाज सुधार को उद्देश्य बनाकर फिल्में बना रहा था। प्रभात ने एक तरह से सैल्यूलाइड पर पत्रकारिता की। जो जागृति समाचार पत्र फैला रहे थे, वही काम प्रभात भी कर रहा था।

गोपालकृष्ण (१९३८)
शांता आप्टे

प्रभात फिल्म कम्पनी ने अपने जन्म से यथार्थवादी तथा सामाजिक प्रतिबद्धता की फिल्में बनाईं। सदैव समय से आगे के सोच ने प्रभात की फिल्मों-दुनिया न माने/ आदमी/ पड़ोसी- को कालजयी बनाया है। प्रभात का नाम आज भी आदर सहित लिया जाता है, क्योंकि वहाँ का वातावरण/ अनुशासन और आपसी तालमेल फिल्म निर्माण के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। प्रभात का एक जीवन भले ही समाप्त हो गया हो, उसने नया जन्म लिया है, फिल्म एंड टेलीविजन संस्थान (पुणे) के रूप में। फिल्मों की जो भाषा और व्याकरण प्रभात ने निर्मित की थी, उसी का अध्ययन-अध्यापन प्रभात की सुनहरी भूमि पर हो रहा है।

भारतीय सिनेमा का वट-वृक्ष : प्रभात

● दिलीप गुप्ते

आज से पैंसठ साल हुए, १ जून १९२९ को नाटकों के नगर कोल्हापुर में पाँच नवयुवकों ने मिलकर एक फिल्म कंपनी बनाई और नाम रखा प्रभात। चार नवयुवक सक्रिय भागीदार थे-**फत्तेलाल, दामले, धायबर** और **शान्ताराम।** पाँचवें भागीदार **सीताराम कुलकर्णी** पूँजी लगाने वाले सेठ थे। पहले चार भागीदार इसके पहले बाबूराव पेंटर की महाराष्ट्र फिल्म कंपनी में फिल्म निर्माण का अनुभव ले चुके थे। वहाँ के वातावरण से त्रस्त होकर ये लोग बाहर निकल आए थे। प्रभात ने भारतीय संस्कृति के गौरवमय अतीत को जन-जन के सामने लाने का बीड़ा उठाया।

प्रभात की पहली फिल्म थी **गोपाल कृष्ण** (१९२९)। नाम से यह फिल्म मात्र धार्मिक मालूम होती थी, मगर असल में यह अँगरेज सरकार के विरोध में थी। इसमें ब्रिटिश शासन को कंस का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया गया था। प्रतीकात्मकता प्रभात की विशेषता थी। अपनी पहली ही फिल्म में प्रभात ने अपनी प्रतिबद्धता बताई। यह प्रतिबद्धता उसकी तीसरी फिल्म **स्वराज्य तोरण** में मुसीबत बनी। पराधीनता के युग में स्वराज्य शब्द ही बड़ा आपत्तिजनक माना जाता था। फिर उस शब्द वाली फिल्म आँखों में कैसे न खटकती? 'स्वराज्य तोरण' में काफी काटछाँट की गई और उसे **उदयकाल** के नाम से प्रदर्शित किया गया। दर्शकों ने फिर भी इसे सराहा। आम फिल्मों से हटकर बहस-योग्य फिल्में बनाकर प्रभात ने बुद्धिजीवी वर्ग की सहानुभूति बटोरी। यह प्रभात की ही साख थी कि कट्टरपंथी परिवारों में प्रभात की फिल्में देखना आपत्तिजनक नहीं माना जाता था।

टॉकी के आगमन से प्रभात पर भी नई जिम्मेदारी आ पड़ी। मूक फिल्मों के कारण अभी तक भाषा समस्या नहीं थी। टॉकी के लिए संवादों और गीतों की जरूरत होती है। भारत की पहली फीचर फिल्म **राजा हरिश्चन्द्र** को आधार बनाकर प्रभात ने अपनी पहली फिल्म 'अयोध्या का राजा' (१९३२) बनाई। उपलब्ध रूप में आज यही भारत की पहली सवाक् फिल्म है। प्रभात में एक और विशेषता थी। वहाँ 'सीखो और करो' पर जोर दिया जाता था। इसी प्रवृत्ति ने उसे आत्मनिर्भर बनाया। फलस्वरूप 'अयोध्या का राजा' में ध्वनि अंकन का काम दामले ने किया। इस फिल्म के सेट भव्य थे। इस कथानक पर दो (मूक) फिल्में बन चुकी थीं। उनमें सेट की जगह पर्दे लगाए गए थे, जो हिलते थे। प्रभात ने फिल्मकारों को बताया कि सेट क्या होते हैं। अगली फिल्म **माया मछिन्द्र** में सेट और भी भव्य बने। रानी किलोतल (दुर्गा खोटे) अपने सिंहासन पर बैठने के लिए जैसे ही पहली सीढ़ी पर कदम रखती, सिंहासन का मुँह अपने आप खुल जाता। इस तकनीक को देख दर्शकों के मुँह भी आश्चर्य से खुल जाते।

ऑटोमेशन में प्रभात आगे रहा। हर आदमी हर काम करता था। एक दृश्य में अगर कोई कलाकार राजा बना नजर आता, तो दूसरे दृश्य में भिखारी भी बनता था। हम्माली, सुतारी वहाँ हर किसी को आती थी। आखिर पाँचों भागीदारों ने प्रभात के निर्माण के समय ये सब काम किए थे। दामले कोई ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, मगर कमाल के साउंड रेकॉर्डिस्ट थे। फत्तेलाल ने इंटीरियर डेकोरेशन का कोर्स नहीं किया था, मगर वे उच्च कोटि के कला निर्देशक थे। शान्ताराम कुशल संपादक थे। प्रभात में सभी को समय पर आना होता था। सेट पर कोई धूम्रपान नहीं कर सकता था। फिल्मों को ठंडा रखने के

फिल्म दुनिया न माने
केशवराव दाते
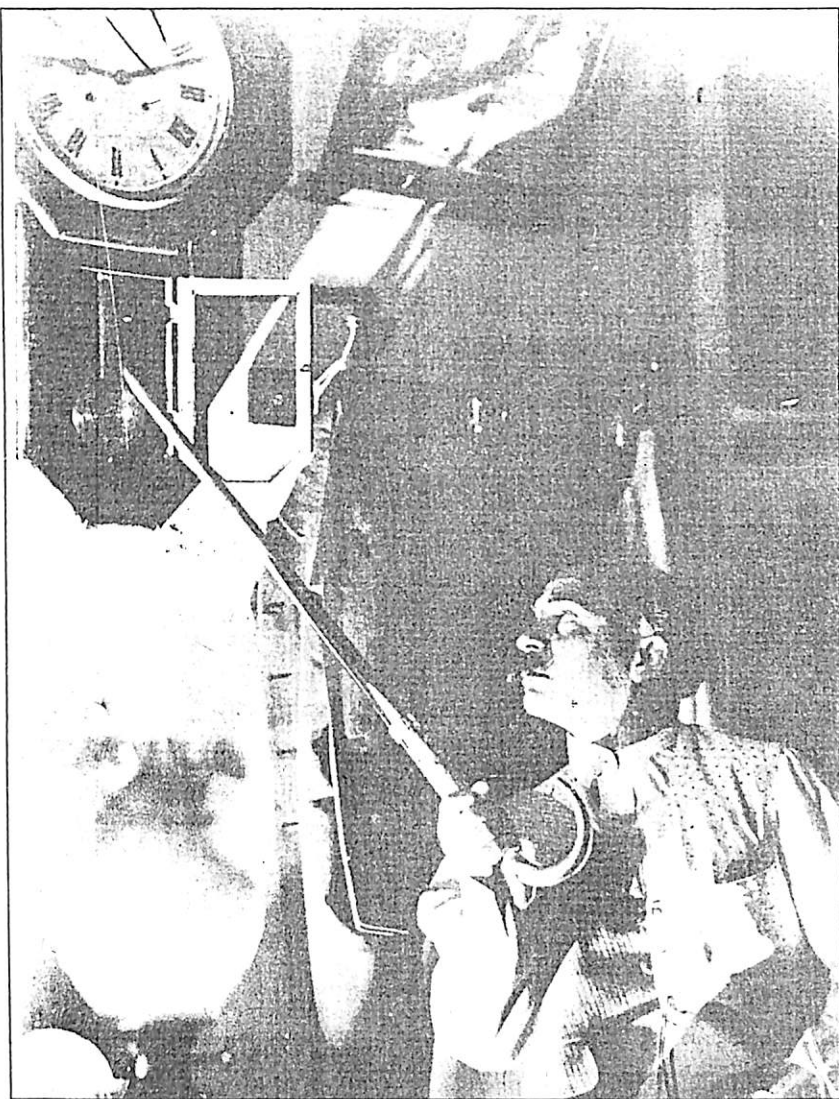
लिए बर्फ बहुत लगती थी। इसके लिए प्रभात ने खुद की ही एक बर्फ फैक्ट्री शुरू की। बाद में कोल्हापुर से पुणे जाने पर ये सुविधाएँ तो रखी हीं, साथ ही कई सुविधाएँ भी जोड़ीं। प्रभात का अपना टेलीफोन एक्सचेंज था। कर्मचारियों के लिए रिहायशी मकान थे। भारत में सबसे पहली रंगीन फिल्म **सैरंध्री** प्रभात की ही देन थी। इसके प्रिंट जर्मनी से धुल कर आए थे, मगर लाल रंग की प्रमुखता के कारण दर्शकों की आँखें त्रस्त हो गईं और फिल्म असफल हुई। एक मामले में प्रभात को भले ही असफलता मिली हो, मगर दूसरे मामले में उसने जो काम किया, वह अभी कल परसों तक जारी रहा। 'सैरंध्री' पहली फिल्म है, जिसके ग्रामोफोन रेकॉर्ड बने। जर्मनी की टेलीफंकन कंपनी ने इसके ग्रामोफोन रेकॉर्ड बनाए थे।

पुणे आने पर प्रभात ने सबसे पहले **अमृत मंथन** (१९३४) बनाई। इसमें नरबलि के विरुद्ध जनता की आवाज थी। राजगुरु की भूमिका में चन्द्रमोहन ने संशक्त अभिनय किया था। शांताराम ने उनकी आँखों का क्लोजअप लेकर अपने समय में खलबली मचा दी थी। 'राउंड शॉट' देखकर दर्शक चकित रह गए। एक ही शॉट में पूरे सेट की झाँकी दिखाना, उस वक्त नई बात थी। संवादों के साथ पार्श्व संगीत देने की परिपाटी 'अमृत मथन' ने ही शुरू की। इस फिल्म को देश-विदेश में सम्मानित किया गया।

भारत में शुरूआती फिल्मों पर नाटकों का गहरा प्रभाव था। बाल गंधर्व का रंगमंच पर बड़ा नाम था। वे हमेशा स्त्री भूमिकाएँ किया करते थे। जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती गई, वैसे-वैसे उन्होंने अपनी (स्त्री) भूमिकाएँ भी बदलीं। लेकिन प्रभात के उदय के साथ-साथ उनका अस्ताचल शुरू हुआ। प्रभात के मन में उनके प्रति श्रद्धा थी। उनकी ओर सहायता का हाथ बढ़ाने के लिए प्रभात ने उन्हें अपनी फिल्म 'धर्मात्मा' में शीर्ष भूमिका निभाने के लिए आमंत्रित किया। **धर्मात्मा** का नाम पहले **महात्मा** था। उन दिनों महात्मा का अर्थ महात्मा गांधी हुआ करता था। महात्मा गांधी का नाम अँगरेज सरकार को फूटी आँख नही भाता था। उसने फिल्म के नामकरण पर आपत्ति की। आखिर 'महात्मा' ने 'धर्मात्मा' नाम धारण किया और पर्दे पर आया। बाल गंधर्व भले ही बहुत अच्छे कलाकार रहे हों, मगर नाटकों में अभिनय करना अलग बात होती है और फिल्मों में काम करना अलग। बाल गंधर्व को पुरुष वेशभूषा में और पुरुष की भूमिका मे देखना उनके प्रशसकों को नही भाया। खुद बाल गंधर्व शॉट दर शॉट के अभिनय से प्रसन्न नही थे। फिल्म असफल हुई। प्रभात के लिए यह एक अप्रत्याशित घटना थी। धर्मात्मा का सकट अभी दूर हुआ नही था कि 'राजपूत रमणी' ने आफत ढा दी। 'राजपूत रमणी' के निर्देशक केशव धायबर इस फिल्म की नायिका नलिनी तर्खुड के नजदीक आ गए। दोनों ने विवाह कर लिया। प्रभात के नियमों का पालन करते हुए धायबर ने प्रभात छोड़ दिया। 'राजपूत रमणी' दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने मे असफल रही।

यथार्थ की कड़वाहट को भुलाने के लिए प्रभात ने फैंटेसी का सहारा लिया। समुद्री डाकुओं पर भारत में कोई फिल्म नही बनी थी। प्रभात ने इसी विषय पर **अमर ज्योति** बनाई जो अपनी तकनीकी गुणवत्ता के कारण काफी सराही गई। यहाँ तक कि वेनिस के फिल्म समारोह में भी यह सम्मानित हुई। अगली फिल्म **संत तुकाराम** ने कई जगह कमाई का रिकॉर्ड बनाया। ग्रामीण अपनी-अपनी बैलगाडियों में बैठकर यह फिल्म देखने जाते। जहाँ यह फिल्म दिखाई जाती, वहाँ मेला लग जाता। चकरी, झूले के साथ-साथ खाने-पीने की दुकानें भी खुल जातीं। जिन्हें टिकट नही मिलते, वे वहीं खुले में चादर तानकर सो जाते और दूसरे दिन फिल्म देखकर जाते। विदेशी पर्यटक यह फिल्म

वी. शांताराम : प्रयोगधर्मी

सिर्फ इसीलिए देखते कि कम बजट में इतनी अच्छी फिल्म कैसे बन सकी। इस फिल्म ने कई छविगृहों में स्वर्ण जयंती मनाई। उन छविगृहों में भी जहाँ इसके पहले सिर्फ अँगरेजी फिल्में ही दिखाई जाती थीं।

सिर्फ देवी-देवताओं और साधु-संतों के बलबूते पर ही नाम कमाना प्रभात का उद्देश्य नहीं रहा। जब उन्हें लगा कि साधु महाराज काफी हो गए हैं और अब वर्तमान की तरफ भी देखना चाहिए, तो उन्होंने मराठी के अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास 'स पटणारी गोष्ट' के आधार पर एक क्रांतिकारी फिल्म बनाई, जिसने समाज के मुँह पर जोरदार तमाचा मारा। उन दिनों अधेड़ व्यक्तियों का किशोरियों से विवाह होना आम बात थी। **दुनिया न माने** में जनवरी-जून जैसे बेमेल विवाह पर करारी चोट की गई थी। उस वक्त मध्यम वर्ग में संस्कार काफी गहरे थे, इसलिए इस फिल्म में नई पीढ़ी की इज्जत रखते हुए पुरानी पीढ़ी को सलाह दी गई थी कि वह सड़ी-गली मान्यताओं को त्यागे। षोडसी मीरा का विवाह उसका लालची मामा एक अधेड़ विधुर से कर देता है। लड़की पढ़ी- लिखी है (उसका चरित्र स्थापित करने के लिए उसे पुस्तकों के साथ बताया गया है) इसलिए वह अपने पिता की आयु के पति को स्वीकार नहीं कर पाती। द्वंद्व होता है और आखिर में अधेड़ पति आत्महत्या कर पत्नी के विवाह का रास्ता प्रशस्त कर देता है। न सिर्फ अपनी कथा-वस्तु, बल्कि फिल्मांकन की दृष्टि से भी यह फिल्म क्रांतिकारी थी। इसके सेट असली मालूम होते थे। सेट की प्रॉपर्टी-बर्तन, फर्नीचर, कपड़े, पेंटिंग देखकर लगता है हम किसी मध्यम वर्ग के व्यक्ति के घर आ गए हों। इस फिल्म में पार्श्व संगीत नहीं था, बल्कि लोकेशन पर होने वाली ध्वनियों का ही प्रयोग किया गया था। जिसे फिल्म निर्माण में दिलचस्पी हो तो उसे 'दुनिया न माने' जरूर देखनी चाहिए। यह फिल्म निर्माण के व्याकरण की पुस्तक है। प्रभात की पहली सामाजिक फिल्म ने समाज के सभी वर्गों में चेतना जाग्रत की।

गजानन जागीरदार रामशास्त्री के रूप में

न्यू थिएटर्स की 'देवदास' (१९३५) देखकर एक मराठी पत्रिका ने प्रभात को बहुत लताड़ा। उसका कहना था कि 'दूसरे' लोग समकालीन समस्याओं पर फिल्में बना रहे हैं और प्रभात वाले साधुओं को छोड़ ही नहीं पा रहे हैं। (दुनिया न माने के बाद प्रभात ने फिर एक बार धार्मिक फिल्म बनाई थी)। इसका जवाब देने के लिए प्रभात ने आदमी फिल्म बनाई जो आज भी मौजूँ है। यह फिल्म एक वेश्या और पुलिस जवान के बीच मूक प्रेम की कहानी है। असफल प्रेम में आत्महत्या कर लेना या दुःखों का पहाड़ जिंदगी भर लादे फिरना फिल्मकारों का प्यारा शगल रहा है। साठ के दशक तक ऐसी फिल्में बनती रहीं। असफल प्रेम यानी जीवन का अंत नहीं होता। 'आदमी' के सेट बहुत चर्चित हुए थे। उन्हें देखने महबूब तक आए थे। वेश्यावृत्ति पर आधारित होने पर भी आदमी में अश्लीलता नहीं थी, बाजारूपन नहीं था। इस फिल्म ने वेश्याओं और पुलिस के प्रति समाज का नजरिया बदल दिया। समीक्षकों की प्रशंसा के बावजूद 'आदमी' की कमाई उत्साहजनक नहीं रही।

संत ज्ञानेश्वर एक सफल फिल्म थी। इसके निर्देशक थे दामले और फत्तेलाल। शान्ताराम को इसमें कुछ कमी नजर आई। उन्होंने संत ज्ञानेश्वर और उनकी बाल सखी के मूक प्रेम को दर्शाने के लिए जो दृश्य जोड़ा वह काफी चर्चित रहा। लेकिन इस बात ने एक गलतफहमी पैदा कर दी कि प्रभात में शान्ताराम ही असली कलाकार है। इस बात ने शान्ताराम को दामले और फत्तेलाल से अलग कर दिया। पड़ोसी के बाद शान्ताराम ने प्रभात छोड़ दिया। इस फिल्म के निर्माण के समय ही भागीदारों के आपसी मतभेद सतह पर आ गए। शान्ताराम जयश्री के प्रेम में पड़ गए। 'पड़ोसी' में एकता का जो संदेश दिया गया था, उसकी जरूरत दरअसल प्रभात को थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर 'पड़ोसी' से बेहतर शायद ही कोई फिल्म बनी हो।

शान्ताराम के जाने के बाद प्रभात सिर्फ एक ही चर्चित फिल्म बना पाए, 'रामशास्त्री'। 'रामशास्त्री' के निर्माण काल से ही दामले गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो गए। निर्देशन का भार राजा नेने पर आ पड़ा। नेने और फत्तेलाल की पटरी जमी नहीं। गजानन जागीरदार को बुलाया गया। उन्होंने शर्त रखी कि रामशास्त्री की भूमिका वे खुद करेंगे। शर्त मान ली गई। निर्देशन में विश्राम बेडेकर ने भी मदद की। बाद में झगड़ा न हो, इसलिए नामावली में निर्देशक का नाम नहीं दिया गया।

दूसरे महायुद्ध के कारण आई हुई तेजी ने प्रभात की जड़ें हिलाकर रख दीं। चांद बनाकर उन्होंने पैसे के आगे घुटने टेक दिए। अपने कलाकारों को दरकिनार करते हुए बाहरी लोगों को अवसर दिए गए। कई लोग

प्रभात का प्रतीक चिन्ह

[illegible] छोड़ गया। आज की फिल्में भी नहीं [illegible]। [illegible] की मृत्यु से और भी मुसीबतें [illegible] कर्जदार [illegible] के नोटिस पर नोटिस [illegible] मौसाराम कृष्णवर्णी अपना हिस्सा [illegible] [illegible] हो गए। हारकर फत्तेलाल ने [illegible] [illegible] का टुकड़ा बेच दिया। 'चांद', [illegible] और 'हम एक हैं' के अधिकार [illegible] ही बेचे जा चुके थे। बची हुई फिल्मों के अधिकार [illegible] ने मात्र पचहत्तर हजार [illegible] में खरीद लिया। केलकर ने प्रभात खरीद [illegible] [illegible] मगर उन्हें फिल्म निर्माण की [illegible] नहीं थी। प्रभात की अंतिम फिल्म [illegible] [illegible] इन' जो नहीं चली। प्रभात [illegible] [illegible] के लिए किराए पर दिया जाने [illegible], मगर उसकी शाम तो कब की हो चुकी [illegible]। अब तो अंधेरा ही अंधेरा था। प्रभात का नाम इतिहास में जमा हो चुका था। सन् १९६१ में भारत सरकार ने पुणे में फिल्म प्रशिक्षण संस्थान खोलने का निर्णय लिया। प्रभात की जगह खाली थी और उससे बढ़कर कोई अच्छी जगह हो ही नहीं सकती थी। लिहाजा वहीं फिल्म प्रशिक्षण संस्थान खोला गया। प्रभात ने नया जन्म लिया।

अतीत से [illegible] किसी को प्यार होता है। और अगर अतीत सुनहरा रहा हो तो बात ही क्या। प्रभात प्रेमियों की अपील पर प्रभात की फिल्मों की तलाश शुरू हुई। चन्दा इकट्ठा किया गया। सौभाग्य से लगभग सभी सवाक् फिल्मों के निगेटिव मिल गए। सन् १९७० में दूरदर्शन पर 'दुनिया न माने' दिखाई गई। नई

सावकारी पाश फिल्म में शांताराम

पीढ़ी को पहली बार पता चला कि प्रभात के भक्त नासमझ नहीं थे। प्रभात की फिल्मों की मांग बढ़ती गई। दर्शकों को पता चला कि जिन समस्याओं से आज वे लड़ रहे हैं, प्रभात उनके खिलाफ चालीस साल पहले अपनी आवाज उठा चुका है। जब तक वे समस्याएँ हैं, प्रभात की याद आती रहेगी। अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता, नैतिकता और कलात्मकता के कारण प्रभात का नाम हमेशा आदर से लिया जाता रहेगा।

भारतीय फिल्मोद्योग की आधारशिला रखने वाले महान व्यक्तियों में आर्देशिर मारवान ईरानी का नाम प्रमुख है। १० दिसंबर १८८५ को पूना में जन्मे इस प्रतिभा पुत्र ने शिक्षक के रूप में अपना कैरियर शुरू किया। कुछ दिनों बाद राशन इंस्पेक्टर बने। फिर पुलिस इंस्पेक्टर हो गए। अंततः ग्रामोफोन रेकॉर्ड बेचने का व्यवसाय करने लगे। दुकान चल निकली और फिर शुरू हुआ ईरानी का फिल्म व्यवसाय से जुड़ने का सिलसिला।

सन् १९०१ में गिरगांव क्षेत्र में ईरानी ने मैजेस्टिक सिनेमा स्थापित किया। इसके एक वर्ष बाद १९०२ में [illegible] मार्केट में [illegible] सिनेमा शुरू किया। प्रदर्शन के व्यवसाय में स्थापित होने के बाद इस युवक ने फिल्म निर्माण की बारीकियों को समझने की कोशिश शुरू की। बंबई के [illegible] रोड ब्रिज के पास आर्देशिर ईरानी ने स्टार स्टुडियो प्रारंभ

सुलोचना (रूबी मायर्स)

कर उसमें मूक फिल्में बनाना शुरू किया। छोटे पैमाने से शुरू हुआ यह कार्य १९२६ में और बढ़ाया गया। अपने युग की सर्वाधिक लोकप्रिय फिल्म कम्पनी इम्पीरियल फिल्म कम्पनी की स्थापना इसी वर्ष हुई। इम्पीरियल में लगभग ३५-४० मूक फिल्मों का निर्माण हुआ। इनमें माधुरी/ अनारकली/ पंजाब मेल प्रमुख हैं। इम्पीरियल फिल्म कम्पनी का अपना स्टुडियो एवं लैब थी। ईरानी अपना अधिकांश समय यहीं व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारतवर्ष में इस स्टुडियो की प्रसिद्धि फैल गई।

इसी स्टुडियो में भारत की पहली बोलती फिल्म आलमआरा (१९३१) का निर्माण हुआ है। इस सिलसिले में भी आर्देशिर ईरानी की पहल उल्लेखनीय रही। उन्होंने जब सुना कि योरपीय देशों में फिल्मों को आवाज मिल गई है, तब वे स्वयं योरप गए। विभिन्न देशों में रहकर उन्होंने 'ध्वनि' की तकनीक को समझा। सारे जरूरी उपकरण क्रय कर भारत लौटे। 'आलमआरा' का निर्माण शुरू हुआ तथा १४ मार्च १९३१ को यह फिल्म बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में प्रदर्शित की गई।

इम्पीरियल फिल्म कम्पनी के तीन और भागीदार भी थे: अब्दुल अली, यूसुफ अली, मोहम्मद अली रंगवाला तथा अबू हुसैन। सन् १९३८ में तीनों भागीदार अलग हो गए तथा इम्पीरियल फिल्म कम्पनी बंद हो गई। आर्देशिर ईरानी ने अपने बेटे शापुरजी के साथ मिलकर ज्योति स्टुडियो की नींव डाली। अपने समय में यह स्टुडियो भारी-भरकम खर्चे वाला माना जाता था। लगभग २५० कर्मचारी यहां काम करते थे। सर्वाधिक वेतन पांच हजार रुपए मासिक नायिका रूबी मायर्स को मिलते थे।

फिल्म उद्योग के लिए की गई विशिष्ट सेवाओं के कारण सन् १९३३ में आर्देशिर ईरानी को खान बहादुर की उपाधि से

दादा फालके के बाद दूसरा महत्वपूर्ण नाम है आर्देशिर मारवान ईरानी का, जिन्होंने भारत की पहली बोलती फिल्म आलमआरा का निर्माण किया। आर्देशिर ईरानी ने हिन्दी के अलावा तमिल/ तेलुगु/ बर्मी/ फारसी में भी फिल्मों के संस्करण तैयार कर प्रदर्शित किए। भारत की पहली रंगीन फिल्म 'किसान कन्या' बनाने का श्रेय आर्देशिर को है। रूबी मायर्स/ जिल्लो/ डी बिलिमोरिया/ पृथ्वीराज कपूर जैसे कलाकार और मोती गिडवानी/ होमी मास्टर/ अस्पी ईरानी और आचार्य अत्रे जैसे फिल्मकार इम्पीरियल स्कूल के छात्र रहे हैं।

Consistent, Stronger, Optimal-Setting
VIKRAM
Premium
CEMENT
Vikram Cement. A unit of Grasim Industries Limited.
INDORE OFFICE
Chetak Centre, RNT Marg
Phone: 22928/4?2356
BHOPAL OFFICE
76, Opp: Tajul Maszid
Phone: 75498
FACTORY:
Vikramnagar Tahsil Jawad P O Khor District Mandsaur MP 458 470
Ph 240, 241 224, 225 236 232 (Khor) and 1432 (Neemuch)
Tlx 0730 3204 VKRM IN Gram VIKRAM (Jawad)

नईदुनिया ◆ देव आनंद

नईदुनिया ◆ अशोक कुमार

नईदुनिया ◆ अनुपम खेर
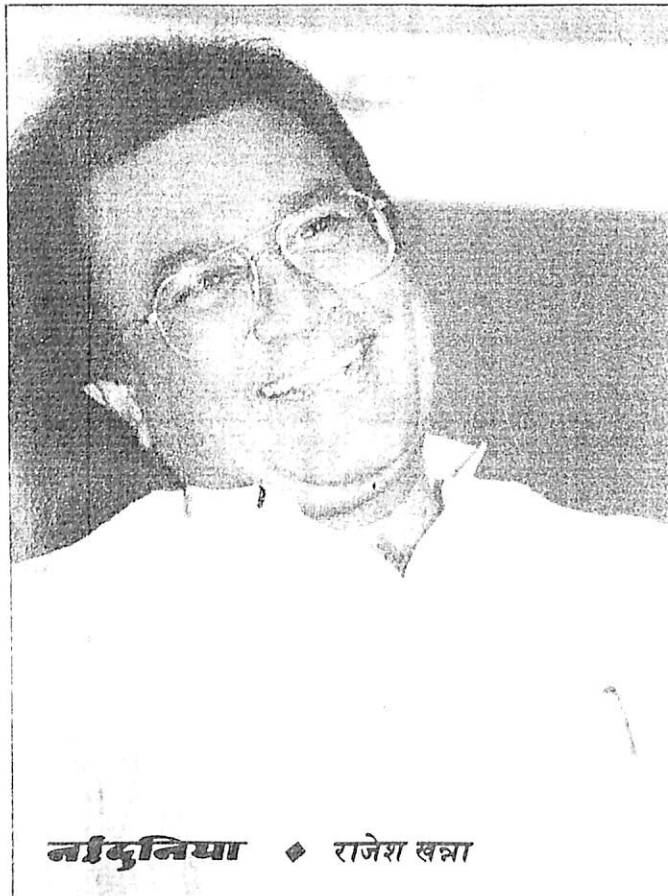
नईदुनिया ◆ राजेश खन्ना
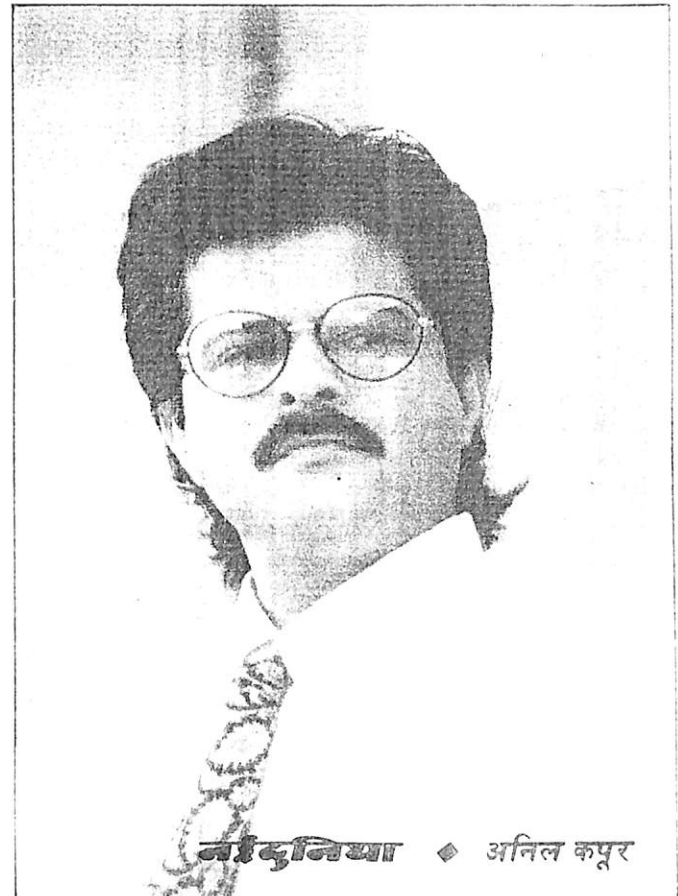
नईदुनिया ◆ अनिल कपूर

नईदुनिया • अमिताभ बच्चन
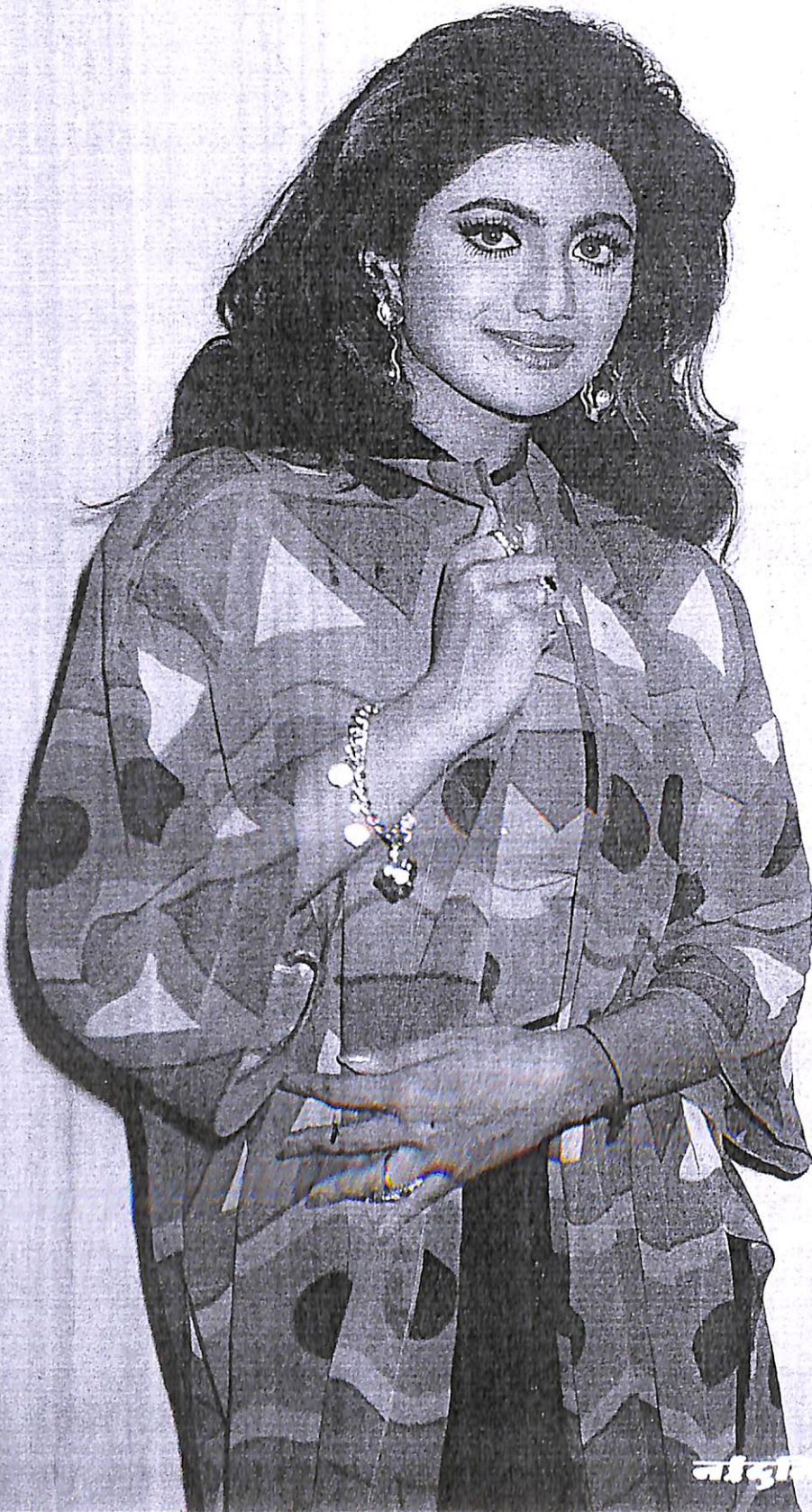
नईदुनिया ◆ शबाना आजमी

नईदुनिया ◆ डिंपल

नईदुनिया ◆ ऋषि कपूर

नईदुनिया ◆ जॅकी श्राफ

नईदुनिया ◆ सनी देओल

नईदुनिया ◆ धर्मेंद्र

सरदार चन्दूलाल शाह और गौहर मामाजीवाला

क्रिकेट में 'रंजी-ट्रॉफी' मशहूर है। उसी महाराजा रणजीतसिंह के नाम पर बनाया गया- रणजीत स्टुडियो। गौहर और चंदूलाल शाह के पवित्र-प्रेम की यादगार है यह स्टुडियो। राजकपूर यहाँ क्लेपर-बॉय थे। पैसे को पानी की तरह बहाने वाले चंदूलाल शाह का अंतिम समय मुफलिसी में बीता। जेब में छः पैसे नहीं होने के कारण बस कंडक्टर ने उन्हें सिटी-बस से नीचे धकेल दिया था। इस स्टुडियो की देन हैं- राजा सेण्डो/ मास्टर विट्ठल/ खुर्शीद/ माधुरी/ के.एल. सहगल/ सुलोचना/ ईश्वरलाल/ मोतीलाल/ खेमचंद प्रकाश/ जिया सरहदी।

जामनगर के जामसाहब रणजीतसिंह के नाम पर क्रिकेट की राष्ट्रीय स्पर्धा रंजी ट्रॉफी का आयोजन प्रतिवर्ष होता है, यह सर्वविदित तथ्य है। इस महान खिलाडी के नाम पर कोई फिल्म स्टुडियो भी हो सकता है, यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा। दादर स्थित रणजीत स्टुडियो उन्हीं के नाम की याद ताजा रखने के लिए बनवाया गया था।

भारतीय फिल्म उद्योग के इतिहास में महत्त्वपूर्ण अध्याय लिखने वाले इस स्टुडियो का निर्माण करवाया था सेठ **चन्दूलाल शाह** ने। चन्दूलाल शाह का जन्म जामनगर में ४ अप्रैल १८९८ को हुआ था। उनके पिता जामसाहब रणजीत सिंह के कर्मचारी थे। जामनगर में इंटर तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद काम की तलाश में बंबई आए। यहां उनके बड़े भाई दयाराम रहते थे। दयाराम के भाई कपड़े एवं टोपियों का व्यवसाय करते थे साथ ही नाटक एवं फिल्मों

चन्दूलाल शाह : फिल्म सरदार

के लिए कहानियां लिखते थे। चन्दूलाल ने थोड़े दिनों तक तो स्टोर कीपर के रूप में नौकरी की, फिर वे भी बड़े भाई के साथ मिलकर कहानियाँ लिखने लगे। सागर मूवीटोन तथा कोहिनूर फिल्म कम्पनी के लिए काम करते हुए उन्होंने पहली कहानी 'पंचदंड' लिखी।

सागर मूवीटोन में 'पंचदंड' के फिल्मांकन के दौरान चन्दूलाल शाह की मुलाकात **मिस गौहरबानू मामाजीवाला** से हुई। यह मुलाकात धीरे-धीरे असामान्य और अपरिभाषित प्यार के रिश्ते में बदल गई।

सागर और कोहिनूर में कुछ दिनों तक काम करने के बाद चन्दूलाल शाह जगदीश फिल्म कम्पनी में चले आए। उनके साथ गौहर और फोटोग्राफर पांडुरंग नायक भी आ गए।

जगदीश फिल्म कम्पनी के मालिक जगदीश पासता रसिक स्वभाव के थे। वे गौहर को अपनी फिल्मों की नायिका के साथ-साथ अपनी निजी मिल्कियत बनाना चाहते थे।

गौहर मामाजीवाला

उनके ऐसे इरादे गौहर और चन्दूलाल को पसन्द नहीं आए। दो वर्ष तक जगदीश स्टुडियो में रहकर फोटोग्राफर पांडुरंग के साथ अलग हो गए। इसके बाद रखी गई रणजीत स्टुडियो की नींव। इस स्टुडियो को चन्दूलाल शाह ने अपनी कमाई के धन से बनवाया था। जामनगर राज परिवार के प्रति अगाध श्रद्धा होने के कारण वहाँ के महाराजा **रणजीतसिंह** के नाम पर स्टुडियो का नाम रखा गया तथा जामनगर रियासत का निशान घुड़सवार स्टुडियो की इमारत की शोभा बढ़ाने लगा। जामनगर के तत्कालीन नरेश दिग्विजयसिंह ने इस स्टुडियो का मुहूर्त किया था।

इस स्टुडियो में पहली फिल्म पति-पत्नी (१९२९) बनी। नायक राजा सेंडो तथा नायिका गौहर थी। सारी शूटिंग दिन के प्रकाश में की गई थी। उस युग में नायिका, नायक तथा अन्य अभिनेता मासिक वेतन पर काम करते थे। गौहर को प्रतिमाह तीन सौ रुपए वेतन मिलता था। चन्दूलाल शाह तथा गौहर ने मिलकर रणजीत मूवीटोन के बैनर तले १७० फिल्मों का निर्माण किया। फिल्मों की शूटिंग ज्यादातर स्टुडियो के बाहर की जाती थी। आउटडोर शूटिंग करने की वजह थी बिजली के अत्यधिक बिल में बचत। चेम्बूर, कुर्ला तथा चीता कैंप इलाका में आउटडोर शूटिंग की जाती थी।

रणजीत स्टुडियो में प्रतिवर्ष औसतन ५-६ फिल्में बन जाती थी। लगभग ७५० वेतनभोगी कर्मचारी स्टुडियो के विभिन्न विभागों में कार्यरत थे। तत्कालीन विख्यात फिल्मी पत्रिका **फिल्म इंडिया** के सम्पादक बाबूराव पटेल ने इस स्टुडियो को एक फैक्टरी की संज्ञा दी थी। निर्माण के बाद दो दशकों में (१९२९ से १९४९) स्टुडियो ने चालीस करोड रुपयों का टर्न ओवर किया। सन् ४८-४९ में जब राशनिंग का जमाना आया

तब शाह ने वर्कर्स के लिए स्टुडियो में ही राशन की दुकान खुलवा दी थी।

रणजीत मूवीटोन की पहली बोलती फिल्म **देवी-देवयानी** सन् १९३२ में बनी। इस फिल्म के नायक विख्यात कलाकार भगवानदास तथा नायिका गौहर थी। इसके बाद कई चर्चित फिल्में यहाँ बनीं, जिनमें राधारानी/ मिस १९३३/ विश्वमोहिनी/ बैरिस्टर वाइफ प्रमुख थीं। धीरे-धीरे स्टुडियो का विस्तार होता गया, एक बड़ा स्टेज बनाया गया। फिल्म निर्माण के लिए जरूरी आधुनिकतम उपकरण लाए गए। प्रीव्यू थिएटर एवं लैब भी बनाई गई। स्थान की कमी पड़ने पर स्टुडियो के बाहर दो फ्लोर बनाए गए। इसी अतिरिक्त भूमि पर बाद में **रूपतारा स्टुडियो** बना। गौहर ने १९३९ तक नायिका के रूप में कार्य किया। **अछूत** उनकी अंतिम फिल्म थी। इसके बाद वे स्टुडियो की देखभाल करने लगीं। सन् १९४६ में चन्दूलाल शाह का दिवाला निकल गया। स्टुडियो का कारोबार फिर भी चलता रहा। इस स्टुडियो में रणजीत मूवीटोन के बैनर तले १९६४ तक फिल्में बनती रहीं। स्टुडियो गिरवी रखा रहा तथा ब्याज की किस्तें भरी जाती रहीं। १९५४ में ऐसी स्थिति आ गई कि भारी ब्याज चुकाना मुश्किल हो गया। स्टुडियो का एक हिस्सा यानी बाद में बने दो फ्लोर ताराचंद को बेच दिए गए। उन्होंने इसे नया रूप दिया तथा रूपतारा स्टुडियो अस्तित्व में आया।

रणजीत स्टुडियो में अपने जमाने के सभी विख्यात कलाकारों ने किसी न किसी रूप में काम किया था। राजकपूर ने तो क्लेपर बॉय के रूप में अपना कैरियर इसी स्टुडियो में शुरू किया। राजा सेंडो/ मास्टर विट्ठल/ के.एल. सहगल/ खुर्शीद/ माधुरी/ सुलोचना/ ई. बिलिमोरिया/ईश्वर लाल/ मोतीलाल/ चार्ली/ दीक्षित/ केसरी/ जगदीश सेठी/ कुमार/ जिया सरहदी/ बुलो सी. रानी/ खेमचन्द्र प्रकाश/ चतुर्भुज दोषी/ मनीबाई व्यास/ ज्ञानदत्त इसी स्टुडियो से जुड़े रहे।

यह स्टुडियो तत्कालीन एशियन इंश्योरेंस कम्पनी के पास गिरवी रखा हुआ था। यह कम्पनी बाद में भारतीय जीवन बीमा निगम में विलीन हो गई। स्टुडियो का एक हिस्सा रूपतारा स्टुडियो में बदला जा चुका था। ब्याज और मूल की रकम लगातार बढ़ रही थी। १९५४ में रणजीत की नीलामी हुई। स्टुडियो के सात टेक्नीशियनों ने मिलकर इसे ले लिया। इस स्टुडियो ने एक वर्ष में ९ फिल्में बनाकर कीर्तिमान भी स्थापित किया था। स्टुडियो के कर्ता-धर्ता और निर्माता चन्दूलाल शाह का अंतिम समय दरिद्रावस्था में बीता। अपने कर्मचारियों को हजारों- लाखों की मदद आनन-फानन में करने वाले इस विशाल हृदय मानव का साथ किसी फिल्मी हस्ती ने नहीं दिया। सिर्फ गौहर ने अपने प्यार को निभाया तथा बिना किसी स्वार्थ अपना सर्वस्व चन्दूलाल पर न्यौछावर कर दिया। ■

बंबई के अंधेरी पूर्व में विशाल परिसर को कच्ची दीवारों से घेरकर कामचलाऊ स्टुडियो का स्वरूप प्रदान किया गया था। इस सदी के प्रारंभिक वर्षों में **विष्णु कुमार व्यास** ने यह काम किया था, इसलिए यह स्टुडियो **व्यास स्टुडियो** के नाम से जाना जाने लगा। थोड़े दिनों बाद इसका नाम बदलकर **कुमार स्टुडियो** कर दिया। जब बोलती फिल्में बनने लगी तब निर्माताओं को सुविधाओं से विहीन यह स्थान अरुचिकर लगने लगा तथा यहाँ वीरानी छाने लगी। फिल्मों के वितरण व्यवसाय से जुड़े श्री मोहनलाल शाह को लगा कि इस भूमि पर आधुनिकतम सुविधाओं से युक्त स्टुडियो बनाया जाए।

उन्होंने अपने भतीजे रमणीकलाल शाह के साथ मिलकर १९३५ में यह जगह खरीदी। कुछ वर्षों बाद स्टुडियो की तीस हजार वर्ग मीटर जगह में पाँच फ्लोर हो गए तथा यहाँ विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध करा दी गईं।

स्टुडियो क्रय करने के बाद मोहनलाल फिल्मों के वितरण एवं प्रदर्शन के साथ-साथ निर्माण से भी जुड़ गए। इस स्टुडियो में सबसे पहले एक तमिल फिल्म 'डेंजर सिग्नल' बनी। इसके नायक राजेन्द्रन और नायिका लक्ष्मी थी। दूसरी फिल्म भी तमिल भाषा की 'ताँजा रड्डी' थी।

जब हिंदी फिल्मों के निर्माण की ओर चाचा-भतीजे की जोड़ी का झुकाव हुआ तब उन्होंने एक दो नहीं पूरी एक सैकड़ा हिंदी फिल्में बना डाली। इनमें 'जादुई कंगन/ जादुई बंधन/ जादुई झूला/ चाबुक वाली/ साइकल वाली/ रूप बसंत/ रत्न मंजरी प्रमुख हैं। इस स्टुडियो का उपयोग करने वाले अन्य निर्माताओं में बिमल रॉय तथा ऋषिकेश मुखर्जी प्रमुख हैं। बिमलराय की देवदास/ सुजाता/ बिराज बहू/ बंदिनी/ तथा अपराधी कौन फिल्में यहाँ बनी हैं। ऋषिकेश मुखर्जी की 'आनंद'/गुड्डी/ चुपके-चुपके/ मिली/ मेम दीदी/ बावर्ची, फिल्म का निर्माण यहीं हुआ है। ऋषिदा का विश्वविख्यात एडिटिंग रूम भी इसी स्टुडियो के परिसर में स्थित है।

इस स्टुडियो का संचालन १८ वर्षों तक कामगारों ने मिलजुल कर किया। १९५२ से १९७० तक कर्मचारियों की सोसायटी ने स्टुडियो चलाया तथा मालिक को मुनाफे का वाजिब हिस्सा दिया। जब यह स्टुडियो कर्मचारियों की सोसायटी द्वारा संचालित किया जा रहा था तब यहाँ स्टेज नंबर एक पर 'मेरे अपने' की शूटिंग चल रही थी। अचानक आग लग जाने से पूरा फ्लोर जल गया। मालिकों ने नुकसान की पूर्ति की तथा बाद में संचालन अपने हाथों में ले लिया। सन् १९५४ से ही मोहन सेठ तथा रमणीक सेठ की भागीदारी टूट गई थी। स्टुडियो का संचालन इसके बाद रमणीकलाल शाह के पुत्र किशोरचंद के पास आया। मोहन भाई का निधन १९६८ में हुआ तथा रमणीक भाई १९७३ में स्वर्गवासी हुए।

इस स्टुडियो के फ्लोर नंबर चार तथा पाँच सेठ शापूरजी पालनजी के पास किराए पर हैं। उन्होंने इसे के. आसिफ की फिल्म निर्माण संस्था स्टर्लिंग इनवेस्टमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड को लीज पर दिया था। इसी कारण 'मुगले आजम' की शूटिंग भी इसी स्टुडियो के मैदान में हुई थी। ■

बिमल रॉय की फिल्म बंदिनी
अशोक कुमार-नूतन

आशा स्टुडियो

अधूरे सपनों का खण्डहर

नारायणदास मदनानी ने बंबई आकर एक सपना देखा था! वे एक फिल्म सिटी बनाना चाहते थे- हॉलीवुड की तर्ज पर। स्टुडियो खरीदते रहे और अपनी निराशा में उन्होंने बनाया आशा स्टुडियो!
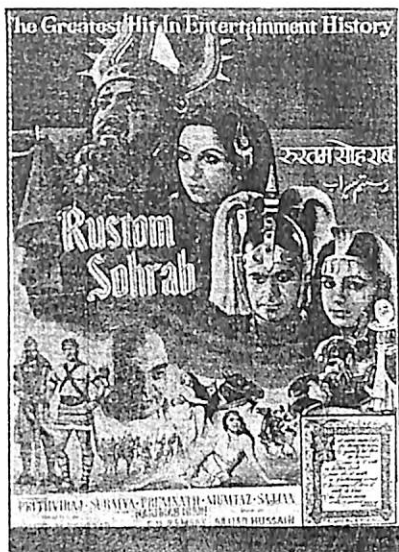
कोलम्बिया पिक्चर्स की एजेन्सी लेकर १९२५ में नारायणदास टी. मदनानी बम्बई पहुँचे। वे हॉलीवुड की तर्ज पर बम्बई में एक फिल्मी नगर बसाना चाहते थे। 'भारत मूवीटोन सिटी' का सपना देखते-देखते उन्होंने छोटे-मोटे स्टुडियो खरीदे और फिल्म वितरण का व्यवसाय करते रहे। सन् १९४० में मदनानी ने तत्कालीन सुपर स्टार **बृजरानी** से ब्याह रचाया और चेम्बूर में एक बंगला लेकर वहीं रहने लगे। उन्हें अपनी कल्पना की फिल्म नगरी के निर्माण हेतु चेम्बूर सर्वाधिक उपयुक्त स्थान लगा। सन् १९४५ में उन्होंने चेम्बूर में बीस एकड़ भूमि खरीदी। भारत स्टुडियो की नींव रखी। यही स्टुडियो बाद में **आशा स्टुडियो** के नाम से विख्यात हुआ। इस स्टुडियो में चार फ्लोर बनाए गए। 'भारत प्रॉडक्शन' के बेनर तले कुछ सामाजिक फिल्में भी बनी मगर अधिक संख्या साहसिक (स्टण्ट) फिल्मों की रही। ये फिल्में थीं एडवेंचर्स ऑफ हातिमताई/ सिन्दबाद द सेलर/ मर्कम किंग/ टीयर्स ऑफ लव। अधिकांश फिल्मों का नामकरण अंग्रेजी में किए जाने का कारण खुद को ज्यादा शिक्षित प्रमाणित करने का प्रयास था।

सन् १९४७ में इस स्टुडियो की चार एकड़ जमीन पण्डित युधिष्ठिर और लालाजी को श्रीकान्त स्टुडियो बनाने के लिए दी गई। बाद में श्रीकान्त स्टुडियो ने भी अपनी जमीन आर.के. स्टुडियो के निर्माण हेतु बेच दी। भारत स्टुडियो की आर्थिक दशा जब ज्यादा बिगड़ी तब १९५४ में मदनानी सेठ ने इसे भगवान दादा को किराए पर दे दिया। भगवान दादा ने इसे **जागृति स्टुडियो** के नाम से चलाया तथा इसमें अलबेला/ रुस्तम-सोहराब/ आवारा/ आरज़ू/ बुजदिल/ भागम भाग जैसी फिल्में बनीं। सन् १९५६ में यह स्टुडियो मदनानी सेठ ने वापस प्राप्त कर लिया तथा **आशा स्टुडियो** नाम रखा।

जब यह स्टुडियो भगवान दादा को किराए पर दिया गया था तब दो स्टेज 'कॉसमास इण्डिया रबर वर्क्स' को दे दिए गए थे जो १९५९ में स्थाई रूप से इस कम्पनी को बेच दिए गए। इस प्रकार आशा स्टुडियो के पास दो स्टेज रह गए। यह स्थिति १९६४ तक रही। इसके बाद एक स्टेज इण्डियन इलेक्ट्रॉनिक्स को किराए पर दे दिया गया। आशा स्टुडियो के पास केवल एक ही स्टेज रहा।

इस स्टुडियो पर बाद में के.आर. जयसिंह का कब्जा हो गया। जयसिंह का कहना था कि वे बृजरानी की बहन के पुत्र हैं तथा मौसी बृजरानी ने उन्हें दत्तक पुत्र स्वीकार किया था। उनकी माँ की जायदाद होने के कारण यह स्टुडियो उनका है। वे १९७५ में यह स्टुडियो संभालने के लिए पढ़ाई छोड़कर आए थे।

जब यह स्टुडियो बहार पर था तब यहाँ लगभग २५० कर्मचारी कार्यरत थे। धीरे-धीरे दशा बिगड़ने लगी। कोठियों और बंगलों में शूटिंग होने के कारण स्टुडियो की माँग कम होने लगी। दरअसल यह स्टुडियो उस अधूरे सपने का खंडहर लगता है, जो १९२५ में नारायणदास टी. मदनानी ने देखा था।

धार्मिक और स्टण्ट फिल्मों की रणभूमि

बसंत स्टुडियो

जमशेदजी बमनजी हारमसजी वाडिया तथा उनके छोटे भाई होमी बमनजी वाडिया बम्बई के रईस पारसी परिवार में जन्मे थे। पुरखों का जहाज बनाने तथा मेगनीज की खदानों का व्यवसाय था। दोनों भाइयों को यह व्यवसाय पसन्द नहीं आया। दादा साहब फालके की चलती-फिरती फिल्मों के जादू से मोहित होकर दोनों फिल्म निर्माण के व्यवसाय में उतर पड़े। छायाकार जी.एस. देवारे की भागीदारी में दोनों ने १९२८ में **बसंत लीला** नामक फिल्म बनाई। इस तरह फिल्म निर्माण का काम शुरू हुआ। बसंत नाम वाडिया बन्धुओं का प्रिय बन गया।

सन् १९३३ में जब बोलती फिल्मों का जमाना आया तब वाडिया बन्धुओं ने 'लाल-ए-यमन' नामक सवाक् फिल्म का निर्माण किया। इसके बाद एम.बी. बिलमोरिया की भागीदारी में उन्होंने परेल में एक स्टुडियो बना लिया। परेल वाली जगह वी. शान्ताराम को बेच दी गई तथा होमी सेठ ने चेम्बूर में १२ एकड़ जमीन खरीद ली। यहाँ सूरज की रोशनी में रिफलेक्टर लगाकर फिल्मों की शूटिंग की जाने लगी।

इसी जमीन पर २१ अक्टूबर १९४६ को 'बसंत स्टुडियो' की आधारशिला रखी गई।

दादा फालके की चलती-फिरती फिल्मों से मोहित होकर वाडिया ब्रदर्स खदानों का लाभकारी धंधा छोड़कर फिल्मों में आ गए। नाडिया-जानकावस की जाँबाज जोड़ी को चमकने का मौका बसंत स्टुडियो में मिला था।

फिल्म कल्चर

(१८९६ से १९३०)

□ **७ जुलाई १८९६ :** मंगलवार। बंबई की वॉटसन होटल। टिकट दर एक रुपया। भारत में पहली बार ल्यूमिएर ब्रदर्स की फिल्मों का विशिष्टजन के लिए प्रदर्शन। फिल्म: अराइवल ऑव द ट्रेन/ सी बाथर्स/ फीडिंग द बेबी/ डिमालिशन ऑव ए वॉल/ वार्टरिंग द गार्डन/ लंडन गर्ल डांसर्स।

□ **१८९७ :** कलकत्ता में जनवरी में पहली बार फिल्म प्रदर्शन/ भातवड़ेकर ने पहली बार कुश्ती-प्रतियोगिता पर फिल्म तैयार की। माणेक सेठना ने 'लाइफ ऑव क्राइस्ट' के नियमित प्रदर्शन आयोजित किए।

□ **१८९८ :** पुणे रेसेस ९८/ ट्रेन अराइविंग एट बॉम्बे स्टेशन के प्रदर्शन/ हीरालाल सेन ने सिने-उपकरण खरीदे।

□ **१९०१ :** भारत की पहली न्यूजरील भातवड़ेकर ने बनाई- इंग्लैंड (कैम्ब्रिज) से आर.पी. परांजपे गणित में विशेष योग्यता लेकर लौटे।

□ **१९०२ :** जे.एफ. मदान ने कलकत्ता के मैदान में तम्बू सिनेमा का आरम्भ किया।

□ **१९०४ :** अब्दुल अली- इसुफअली ने फिल्म प्रदर्शन को व्यवसाय के रूप में स्थापित किया।

□ **१९०७ :** जे.एफ. मदान ने कलकत्ता में एलफिंस्टन पिक्चर पेलेस का निर्माण किया।

□ **१९१० :** दादा साहेब फालके ने अपनी पत्नी सरस्वती बाई के साथ लगातार 'लाइफ ऑव क्राइस्ट' फिल्म देखी।

□ **१९१२ :** भारत की पहली कथा फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' (४ रील ३७०० फुट) का ३ मई को सार्वजनिक प्रदर्शन।

□ **१९१७ :** जे.एफ. मदान ने कलकत्ता में 'राजा हरिश्चन्द्र' नाम से फिल्म बनाकर प्रदर्शित की।

□ **१९१८ :** इसुफअली ने बंबई में मैजेस्टिक सिनेमा बनाया।

□ **१९१९ :** बंगाल की पहली कथा फिल्म- बिल्वमंगल (निर्देशक: ज्योतिश बनर्जी) का निर्माण प्रदर्शन/ आर. नटराज मुदालियार ने दक्षिण भारत में पहली फिल्म- कीचक वधम् का निर्माण किया। इसे सेंसर ने काटछाँट दिया था क्योंकि कीचक की गर्दन धड़ से अलग होते देख दर्शक भयभीत हो जाते थे।

□ **१९२० :** जे.एफ. मदान ने 'नल दमयंती' का निर्माण किया/ बाबूराव पेण्टर ने महाराष्ट्र फिल्म कम्पनी के बैनर में 'सैरन्ध्री फिल्म बनाई।

□ **१९२१ :** धीरेन गांगुली (डीजी) ने 'इंग्लैंड रिटर्ण्ड' नाम से पहली ऐसी फिल्म बनाई, जिसमें सामाजिक व्यंग्य था।

□ **१९२४ :** लोटस फिल्म कंपनी ने 'रजिया बेगम' का हैदराबाद में प्रदर्शन किया। इसे देख निजाम इतने नाराज हुए कि उन्होंने डीजी को अपने साथियों सहित २४ घंटों में रियासत के बाहर चले जाने का आदेश दिया।

□ **१९२५ :** 'सावकारी पाश' के माध्यम से बाबूराव पेण्टर ने पहली यथार्थवादी फिल्म बनाई।

□ **१९२६ :** फ्रेंज आस्टीन तथा हिमांशु राय ने 'द लाइट ऑव एशिया' का निर्माण किया। ई. अर्नाल्ड की कविता पर आधारित यह फिल्म बुद्ध के जीवन को दर्शाती है।

□ **१९२७ :** आर्देशिर ईरानी द्वारा इम्पीरियल फिल्म कं. गठित/ वी. शांताराम ने 'नेताजी पालकर' निर्देशित की।

□ **१९२८ :** दीवान बहादुर टी. रंगाचारी की अध्यक्षता में इण्डियन सिनेमाटोग्राफ कमेटी गठित।

□ **१९२९ :** ए थ्रो ऑव डाइस का निर्देशन फ्रेंज आस्टीन द्वारा/ भारत में पहली बोलती फिल्म द मेलडी ऑव लव (यूनिवर्सल पिक्चर्स) का प्रदर्शन।

□ **१९३० :** बी.एन. सरकार ने कलकत्ता में न्यू थिएटर्स की स्थापना की।

बाद में स्टुडियो के पास ही बसन्त टॉकीज बनाया गया। वाडिया बंधु अपने स्टुडियो के जरूरी उपकरण विदेशों से आयात तो करते ही थे साथ ही उन्होंने भी कई उपकरण स्वयं बनाए हैं। स्टुडियो में काम आने वाली लोकल क्रेन सर्वप्रथम उन्होंने ही बनाई। बेक प्रोजेक्शन मशीन तथा प्लेबेक मशीन का भी निर्माण किया।

बसन्त स्टुडियो में तीन फ्लोर हैं, ब्लेक एण्ड व्हाइट तथा कलर लेब भी हैं। प्रीव्यू थियेटर रेकार्डिंग एवं डबिंग की सुविधा भी स्टुडियो में है। यहाँ हर प्रकार की फिल्में बनी हैं। धार्मिक फिल्मों में वामन अवतार/ श्रीराम भक्त हनुमान/ सम्पूर्ण रामायण/ हनुमान पाताल विजय प्रमुख हैं। जंगल फिल्म तूफानी टार्जन, पहली सिन्धी फिल्म 'एकता' भी वाडिया ब्रदर्स ने बनाई थी। जानकावस-नाडिया की फियरलेस जोड़ी को वाडिया की फिल्मों से ही प्रसिद्धि मिली थी। ■

फिल्म उद्योग में किसी समय बेताज बादशाह माने जाने वाले **चन्दूलाल शाह** ने बुरा वक्त काफी दिनों तक झेला। इसी बुरे वक्त के दौरान उन्होंने अपने स्टुडियो के दो फ्लोर फिल्मकार अख्तर हुसैन तथा कैमरामेन एस.यू. सनी को दे दिए। इन दोनों ने कुछ दिनों तक इसे **रंग-महल** के नाम से अपने पास रखा।

यह स्टुडियो दरअसल जीवन बीमा निगम के पास शाह के जमाने से ही गिरवी पड़ा हुआ था। 'रंग-महल' के बाद यह ए.वी.एम. के एम.वी. रमन के कब्जे में आया। रमन ने इसे **रामन स्टुडियो** नाम दिया। ए.वी.एम. की कई सफल फिल्में- बहार/ लड़की/ आशा/ भाई-भाई/ यहाँ बनी हैं। ए.वी.एम. के रामन को 'ज्वाला' फिल्म के निर्माण में भारी घाटा उठाना पड़ा।

इसके बाद फिल्म वितरण का व्यवसाय करने वाले पिता-पुत्र टी. ताराचन्द एवं रूप ताराचन्द ने यह स्टुडियो जीवन बीमा निगम से किराए पर ले लिया तथा इसका नाम 'रूपतारा' रखा गया। पिता-पुत्र ने मिलकर इस स्टुडियो को नया स्वरूप दिया। आधुनिकतम उपकरण मँगाए गए। इन लोगों ने स्टुडियो के साथ उपकरण भी किराए पर देकर १९६० से १९७२ तक खूब कमाई की।

स्टुडियो में दो फ्लोर हैं। थिएटर भी है। डबिंग की आधुनिक सुविधा भी। ■

चन्दूलाल शाह और गौहर सेठ गोकुलदास पास्ता के पास घुड़साल की जमीन पर शूटिंग करने की इजाजत लेने गए। गौहर की तीखी चितवन और बाँकी अदा देख सेठ गोकुलदास मोहित हो गए। उन्होंने इज़ाजत दे दी और घुड़साल की जमीन पर फिल्मों के घोड़े दौड़ने लगे। बार-बार नाम बदलने वाला यह स्टुडियो अपशकुनी रहा। लेकिन यहाँ एक से बढ़कर एक फिल्में बनी हैं- औरत/बादल/ सुहागरात/बावरे नैन/ बंदिश/ एक गाँव की कहानी/ बरसात की रात और बसंत बहार।

श्री साउण्ड स्टुडियो की कहानी सेठ गोकुलदास पास्ता के इकतरफा प्यार से शुरू हुई। अपने समय की विख्यात नायिका **गौहर** से वे मन ही मन प्यार करने लगे थे। सेठ चाहते थे कि गौहर अपने प्यार को **चन्दूलाल शाह** और उनके बीच आधा-आधा बाँट दे।

पास्ता सेठ ने गौहर को उस वक्त देखा था जब वह चन्दूलाल शाह के साथ आई थी। शाह ने विनती की थी कि दादर स्टेशन के

पास वाली घुड़साल में उस फिल्म की शूटिंग करने की अनुमति दी जाए। पास्ता सेठ पर चन्दूलाल शाह की विनती का कम तथा गौहर की तीखी चितवन और बाँकी अदा का ज्यादा असर हुआ। उन्होंने फौरन हाँ कर दी। धीरे-धीरे इस स्थान पर फिल्मों की नियमित शूटिंग प्रारंभ हो गई। कोहिनूर फिल्म कम्पनी की मशहूर मूक फिल्म **'टाइपिस्ट गर्ल'** की अधिकांश शूटिंग उसी स्थान पर हुई थी।

कोहिनूर से अलग होकर दो वर्ष तक चन्दूलाल शाह ने पास्ता सेठ के साथ काम किया। जगदीश फिल्म कम्पनी और जगदीश स्टुडियो घुड़साल की इसी जमीन पर बने। चन्दूलाल शाह ने अलग होकर पास वाली जमीन पर **रणजीत स्टुडियो** बना लिया। पास्ता सेठ से जगदीश स्टुडियो १९३५-१९३६ में नारायण दास टी. मदनानी ने लीज पर ले लिया। जरूरी मरम्मत करवाकर इस स्टुडियो में दुबारा शूटिंग शुरू की गई। बोलती फिल्मों का जमाना आ चुका था। मदनानी ने इस स्टुडियो को **भारतीय स्टुडियो** नाम दिया। इसके बाद यहाँ बोलती फिल्में बनने लगीं। मदनानी काफी धनवान थे। इस स्टुडियो में खुद अपनी फिल्में बनाने के अलावा अन्य निर्माताओं को स्टुडियो किराए पर दिया करते थे। कराची से आए मदनानी फिल्म वितरण का कार्य करते हुए निर्माण के व्यवसाय में उतरे थे। बम्बई में उन्होंने आशा स्टुडियो नामक एक अन्य स्टुडियो भी खरीदा था।

भारतीय स्टुडियो १९४० तक चलता रहा। इस दौरान यहाँ संदेसा/ पैसा/ मि. आजाद फिल्में बनीं। उस जमाने में २५ से ४० हजार रुपए की लागत में फिल्म बन जाया करती थी। एक साल में ५-६ फिल्में आसानी से बन जाती थीं। मदनानी ने यह स्टुडियो नागपुर के डागा सेठ को बेचा। डागा सेठ को फिल्मी दुनिया रास नहीं आई। वे दो वर्ष बाद ही नागपुर वापस लौट गए। डागा सेठ ने यह स्टुडियो साउण्ड रेकार्डिस्ट रजनीकांत पण्ड्या तथा कैमरामेन चन्द्रकान्त पण्ड्या को बेच दिया। इस तरह सन् १९४२ में पण्ड्या बन्धुओं ने इस पुरानी घुड़साल को श्री साउण्ड स्टुडियो नाम दिया। कुशल तकनीशियन होने के कारण पण्ड्या बन्धुओं का यह स्टुडियो कीर्तिवान बनता गया। इसी दौरान दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता के सामने ब्रिटिश फौजों को अपराजेय सिद्ध करना चाहती थी। इसलिए सरकार ने ऐसी युद्ध फिल्में बनाने का फैसला किया। जिनमें ब्रिटिश सेना की बहादुरी को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया जाए। पण्ड्या बन्धुओं को ऐसी

फिल्में बनाने का ठेका मिला। पण्ड्या बन्धुओं ने दो वर्ष तक ऐसी फिल्में बनाईं तथा लाखों रुपए कमाए।

सन् १९४७ में भारत आजाद हुआ। युद्ध फिल्मों की कीमत कौड़ी की भी न रही। पण्ड्या बन्धुओं की आर्थिक दशा बिगड़ती गई। ४९-५० में उनका दिवाला निकल गया। उन्होंने यह स्टुडियो १९५० में गुजराती सेठ नगीनभाई पटेल को बेच दिया। पटेल ने पहले इसका नाम बदल कर **टेकर्स-इंडिया-लिमिटेड** रखा। बाद में 'सिने स्टुडियो' के नाम से चलाया। लोगों को नए नाम रास नहीं आए तथा श्री साउण्ड स्टुडियो के नाम से ही लोग इसे पुकारते रहे। सन् १९५५ में नगीनभाई ने स्टुडियो का सारा कारोबार अपने मित्र बी.पी. सिन्हा को सौंप दिया।

इस स्टुडियो के साथ भुतहा होने की कहानी भी काफी अर्से तक जुड़ी रही। बाद में सिन्हा साहब ने स्टुडियो में सार्वजनिक सिनेमाघर बनाने की कोशिश की। वे सफल नहीं हो पाए। स्टुडियो के भीतर आवासीय उपयोग के लिए बहुमंजिली इमारत बनाने का प्रयास भी असफल रहा। इन असफलताओं का दोष सिन्हा साहब उन फिल्मी किराएदारों पर मढ़ते रहे जो बिना किराया चुकाए इमारत पर कब्जा जमाए बैठे थे।

इन किराएदारों में पं. केदार शर्मा भी रहे तथा अन्य में वर्मा फिल्म्स (औरत, बादल)/ नौबहार फिल्म/तेजनाथ जार/ सादिक/ जे. के. नन्दा/ मरकरी प्रोडक्शन/ नवजीवन फिल्म्स/ रंगा चित्र/ सत्येन बोस प्रमुख हैं। केदार शर्मा की सुहागरात/ बावरे नैन/ और चित्रलेखा यहीं बनी। इसके अतिरिक्त बंदिश/ सवेरा/ एक गाँव की कहानी/ बरसात की रात/ बसंत बहार/ चाचा भतीजा एवं मीनाकुमारी की आखरी फिल्म गोमती किनारे भी यहीं बनी। सफल फिल्मों के निर्माण के बावजूद किसी भी मालिक को यह स्टुडियो शुभ सिद्ध नहीं हुआ।

मेहबूब स्टुडियो

मदर इंडिया का जन्म

आल टाइम ग्रेट फिल्मों की श्रेणी में है मदर इंडिया। एक निरक्षर फिल्मकार की साक्षरता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है। भारतीय नारी के गौरव तथा यशोगान की फिल्म 'मदर इंडिया' का जन्म मेहबूब स्टुडियो में हुआ था।

भारतीय फिल्म उद्योग को यश के शिखर तक पहुँचाने वाली विभूतियों में **मेहबूब खान** का नाम प्रथम पंक्ति में है। सन् १९२७ में एक किशोर के रूप में वे बंबई आए तथा वर्षों तक संघर्ष करने के बाद मंजिल तक पहुँचने में कामयाब हुए। इम्पीरियल स्टुडियो की फिल्मों में छोटी-छोटी भूमिकाएँ करते हुए उन्होंने एक कहानी लिखने के लिए वक्त निकाला। इस कहानी पर सागर मूवीटोन ने फिल्म बनाना स्वीकारा। इस प्रकार मेहबूब की पहली फिल्म **'जजमेंट ऑफ अल्लाह'** (अल हिलाल) १९३४ में प्रदर्शित हुई। सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वे **नेशनल स्टुडियो** पहुँचे तथा यहाँ 'औरत' तथा 'रोटी' बनाई।

सन् १९४२ में मेहबूब ने 'मेहबूब प्रॉडक्शन' के नाम से फिल्में बनाना शुरू किया। नजमा/तकदीर/ अनमोल घड़ी/ अंदाज/ अनोखी अदा/ फिल्में बनाने के बाद उन्हें लगा कि खुद का स्टुडियो भी होना चाहिए। १९४८ में पॉली हिल्स बान्द्रा के पास उन्होंने २० हजार वर्ग मीटर का जंगल खरीदा।

स्टुडियो का निर्माण शुरू होने से पूर्व ही इस जमीन पर उन्होंने भारत की पहली टेक्नीकलर फिल्म **'आन'** के कुछ हिस्सों की शूटिंग की। सन् १९५० में वास्तुविद् पाटकी और दादरकर की देखरेख में स्टुडियो का निर्माण शुरू हुआ। १९५४ तक निर्माण चला तथा दो फ्लोर बनाए गए। यहाँ सबसे पहले 'अमर' फिल्म की शूटिंग की गई। इसके बाद मेहबूब की उन्नीसवीं एवं सर्वाधिक प्रतिष्ठित फिल्म **मदर इंडिया** का निर्माण यहाँ हुआ है। सन् ६२ में मेहबूब ने सन ऑफ इंडिया का निर्माण शुरू किया। फिल्म असफल रही। मेहबूब साहब २८ मई १९६४ को इस संसार से विदा हो गए।

उनकी मृत्यु के बाद अयूब, इकबाल और शौकत नामक उनके तीन पुत्रों ने इस स्टुडियो की देखभाल की।

फिल्म अनोखी अदा : प्रेम अदीब-नसीम बानो

मेहबूब की फिल्म औरत, जो १९५७ में मदर इंडिया बनी

वी. शान्ताराम ने २९ वर्ष की अल्पायु में शेख फत्तेलाल, दामले, केशवराव धायबर और सीताराम बापु कुलकर्णी के साथ मिलकर १ जून १९२९ को कोल्हापुर में प्रभात फिल्म कंपनी की नींव डाली थी। प्रभात के बैनर तले कई सफल फिल्में बनी।

शांताराम प्रतिबद्ध फिल्मकार थे। उन्होंने भारतीय सिनेमा को जो फिल्में दी हैं, वे कालजयी हैं। प्रभात से अलग होते ही उन्होंने राजकमल कला मन्दिर की स्थापना की। और फिर शुरू हुआ शास्त्रीय फिल्मों की शृंखला- झनक झनक पायल बाजे/ नवरंग/ गीत गाया पत्थरों ने/ डॉ. कोटनीस की अमर कहानी/ दो आँखें बारह हाथ/...

फिल्मी तालाब के [illegible] : राजकमल

भागीदारों में आपसी विवाद हो गया। विवाद के कारण शान्ताराम प्रभात से अलग हो गए और उन्होंने बंबई के परेल नामक स्थान पर **'राजकमल कलामंदिर'** की स्थापना की। वाडिया मूवीटोन के परिसर में स्थित यह स्टुडियो भारतीय फिल्म उद्योग के इतिहास में मील का पत्थर है।

सन् १९४२ में जब शान्ताराम ने प्रभात छोड़कर राजकमल कला मन्दिर की आधारशिला रखी तब कई तकनीशियन भी उनके साथ आ गए। इनमें ए.के. परमार/ मगेश देसाई/ मालपेकर प्रमुख थे। अपने इन साथियों की मदद से शान्ताराम ने राजकमल में पहली फिल्म **'शकुन्तला'** (१९४३) बनाई।

यह फिल्म हर दृष्टि से हिट रही। सफलता से प्रोत्साहित होकर राजकमल में निर्मित **'डॉ. कोटनीस की अमर कहानी'** (१९४६), **दहेज** (१९५०), **झनक झनक पायल बाजे** (१९५५), **'दो आँखें बारह हाथ'** (१९५७), **'फूल और कलियाँ'** (१९६०), **'गीत गाया पत्थरों ने'** (१९६४), **पिंजरा** (१९७५) तथा **चानी** (१९७७) प्रमुख फिल्में है। इन सभी फिल्मों ने 'राजकमल कला मन्दिर' तथा शान्ताराम को कई सम्मान दिलवाए। इन फिल्मों के अतिरिक्त 'तूफान और दिया'/ 'सुरंग'/ 'मेहरा'/ 'स्त्री'/ 'जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली'/ 'नवरंग'/ 'बूँद जो बन गई मोती'/ 'परछाई'/ 'अपना देश'/ 'मतवाला शायर'/ 'पर्वत पर अपना डेरा' तथा अन्य कई मराठी फिल्में यहाँ की हैं।

सन् १९६० तक इस स्टुडियो में केवल शांताराम की फिल्में ही बनती थी। बाद में इसे अन्य निर्माताओं को किराए पर देना शुरू कर दिया गया। इस स्टुडियो में किराएदारो के लिए दो बड़े फ्लोर, डबिंग सेंटर, रेकार्डिंग थिएटर, प्रोसेसिंग लेबोरेटरी, स्टिल विभाग, कलरिंग विभाग, प्रीव्यू थिएटर, ड्रेपरी तथा मेकअप की पर्याप्त व्यवस्था है। फ्लोर्स पर आधुनिकतम सिने उपकरणों का प्रावधान किया गया है। स्टीरियोफोनिक साउण्ड के लिए जरूरी उपकरण सर्वप्रथम इसी स्टुडियो में आए। फिल्म **'शोले'** का साउण्ड ट्रेक इन्ही उपकरणों की मदद से बना था। इसी प्रकार 'जल बिन मछली, नृत्य बिन बिजली' का स्टीरियोफोनिक लाँगप्ले रेकार्ड भी यहीं तैयार किया गया। भारत में निर्मित यह पहला स्टीरियोफोनिक एल.पी. रेकार्ड था।

वी. शान्ताराम तथा जयश्री के पुत्र किरण ने प्रबन्धक के रूप में इस स्टुडियो को यशस्वी बनाने में काफी योगदान दिया। उनके निर्देशन में 'झुंज' नामक मराठी चित्र भी यहीं बनाया गया था। किरण के कार्यकाल में यहाँ एक ही दिन में चार-चार फिल्मो की शूटिंग कर कीर्तिमान कायम किया गया।

वी. शान्ताराम ने अपने इस स्टुडियो को पृथक पहचान दी तथा फिल्मोद्योग में व्याप्त छिछले वातावरण से राजकमल को सदा-सदा दूर रखा। वे अपनी शर्तों पर ही निश्चित उद्देश्यों को लेकर फिल्मो का निर्माण करते रहे। अनुशासन तथा आदर्शवादिता की छाप स्टुडियो पर लगी रही। बंबई के श्रेष्ठ स्टुडियो में इसकी गिनती होती है।

अमावस नहीं बनी अशुभ

शान्ताराम किसी भी फिल्म का मुहूर्त या प्रीमियर करना पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए राजकमल की सारी फिल्में बिना मुहूर्त के बनी तथा बिना प्रीमियर प्रदर्शित की गई।

जिस दिन 'दो आँखें बारह हाथ' का निर्माण शुरू होना था, संयोग से उसी दिन अमावस आ गई। कई कर्मचारियों ने इस दिन को अशुभ बताते हुए फिल्म निर्माण का काम स्थगित करने की विनती की। शान्तारामजी अन्धविश्वास के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने सारे निवेदन ठुकरा दिए तथा फिल्म अमावस के दिन ही शुरू की गई। उस फिल्म ने राष्ट्रपति का पदक जीता तथा बॉक्स ऑफिस पर भी हिट साबित हुई। इस प्रकार अमावस फिल्म के लिए अशुभ की बजाए शुभ सिद्ध हुई।

मैमन जाति के जाने-माने फिल्मकार शिराज अली हकीम ने सन् १९४२ में स्वप्न देखा कि 'हॉलीवुड' का एक टुकड़ा बंबई में आ गया है। इस सपने को साकार करने के लिए उन्होंने फेमस सिने लैब एंड स्टुडियो की नींव रखी। वे चाहते थे कि फिल्म निर्माण से संबंधित सारे उपकरण एवं सुविधाएँ एक ही स्थान पर मुहैया की जाएँ।

शिराज अली ने लोगों से उधार लेकर ७० लाख रुपए जमा किए। इमारत बनाने का काम भव्य स्तर पर शुरू कर दिया। बंबई के इस हॉलीवुड का निर्माण चल ही रहा था कि विभाजन की विभीषिका ने अपने डैने फैला दिए। शिराज अली भारत छोड़कर पाकिस्तान चल दिए। जाते-जाते वे अपना बंबईया हॉलीवुड जयपुर के सेठ रूँगटा को बेच गए। रूँगटा सेठ को बाद में पता चला कि शिराज ने बंबईया हॉलीवुड को एक नहीं कई लोगों के पास गिरवी रखा है। जैसे-तैसे मदनलाल बाजोरिया के साथ मिलकर उन्होंने स्टुडियो पर कब्जा किया। बाद में कर्जदारों को साठ लाख रुपए चुकाए।

इसके बाद शुरू हुआ भवन के पुनर्निर्माण का दौर विख्यात इंजीनियर ई. बिलिमोरिया के निर्देशन में संपन्न हुआ। बिलिमोरिया अपने समय के प्रसिद्ध हीरो होने के साथ-साथ विख्यात इंजीनियर भी थे।

पूरी सजधज के साथ सन् १९४७ में स्टुडियो का उद्घाटन **सरदार वल्लभ भाई पटेल** ने किया। भारत के एकमात्र वातानुकूलित थिएटर के रूप में विख्यात फेमस सिने लेब तथा स्टुडियोज लिमिटेड में कई विशिष्टताएँ हैं। इसमें दो फ्लोर बने तथा दो प्रीव्यू थिएटर्स हैं। तिमंजिली इमारत में ३१४ कमरे हैं, जिनमें विभिन्न फिल्म निर्माताओं के १७० कार्यालय रहे हैं। जब स्टुडियो का स्वर्णकाल था तब यहाँ ३५० कर्मचारी कार्यरत थे। सन् १९७१ तक स्थिति यह थी कि यहाँ तीन-तीन शिफ्टों में काम चलता था।

यहाँ सबसे पहले होमी वाडिया की फिल्म **मेला** की शूटिंग की गई थी। १९४८ में बनी यह फिल्म हिट रही। चक्रधारी/ रजनीगंधा तथा जय संतोषी माँ का निर्माण भी इसी स्टुडियो में हुआ था। विख्यात कैमरामेन जाल मिस्त्री/ फली मिस्त्री/ साउंड रेकॉर्डिस्ट रॉबिन चटर्जी तथा मुकुल बोस इसी स्टुडियो की देन हैं। मोहन सहगल/ जे. ओमप्रकाश/ मोहन कुमार/ एन.के.सूरी/ स्व. चंद्रा/ गुरुदत्त/ चेतन आनंद/ शक्ति सामंत/ एफ. सी. मेहरा/

ए. नडियादवाला/ एच एस रवैल/ शंकर-जयकिशन/ शेख मुख्तार/ देवेंद्र गोयल आदि विभूतियों के कार्यालय इसी भवन में रहे। जगमोहन रूँगटा स्टुडियो के मालिक होने के साथ-साथ फिल्म निर्माता भी रहे हैं। उन्होंने इसी स्टुडियो में 'जान - पहचान' (१९५०) तथा 'सनम' (१९५१) नामक फिल्में बनाईं। दोनों फिल्मों में भारी घाटा हुआ। इसके बाद १९५७ से उनका विवाद अपने साझीदार मदनलाल बाजोरिया से हुआ।

वातानुकूलित स्टुडियो होने के पश्चात भी धीरे-धीरे इस स्टुडियो में वीरानी छाने लगी। निर्माताओं को स्टुडियो की बजाए फ्लेट्स में शूटिंग करना रास आने लगा। स्टुडियो की अपेक्षा लेब का काम सुचारु रूप से चलता रहा।

फिल्मिस्तान

बॉम्बे टॉकीज का टुकड़ा

संस्थाएँ कभी नहीं टूटतीं, व्यक्ति टूटते हैं और नई संस्था गढ़ लेते हैं। बॉम्बे टॉकीज के जब बुरे दिन आए, तो कुछ भागीदार अलग हो गए। उन्होंने नई संस्था बनाई- फिल्मिस्तान।

फिल्म निर्माता शशधर मुखर्जी का दावा रहा कि बॉम्बे टॉकीज की कीर्तिमानी हिट फिल्म '**किस्मत**' (१९४३) की कहानी उन्होंने लिखी थी, मगर उनका नाम नहीं दिया गया था। ऐसी ही कई शिकायतें दूसरे कर्मचारियों को भी थीं। सन् १९४३ में ही रायबहादुर चुन्नीलाल, एस. मुखर्जी, अशोक कुमार, कवि प्रदीप तथा ज्ञान मुखर्जी बॉम्बे टॉकीज छोड़कर बाहर आ गए। इन लोगों ने मिलकर एक लिमिटेड कंपनी बनाई। सत्तर प्रतिशत शेयर एस. मुखर्जी, दस प्रतिशत राय-बहादुर चुन्नीलाल तथा शेष अन्य लोगों ने क्रय किए।

गोरेगाँव के पास विशाल भूखंड को पसंद कर वहाँ स्टुडियो बनाया गया। इस भूमि पर पहले भी स्टुडियो था, जहाँ सिर्फ एक फ्लोर थी। चार फ्लोर बने तथा धीरे-धीरे अन्य सुविधाएँ भी जुटाई गईं। यहाँ सबसे पहले 'चल-चल रे नौजवान फिल्म बनी। इसके बाद सफर/ शहनाई/ सिंदूर/ दो भाई/ शहीद/ नदिया के पार/ समाधि/ शबनम/ नागिन/ अनारकली/ मुनीमजी/ पेइंग गेस्ट/ नास्तिक/ जागृति/ अभिमान/ शबिस्तान/ आनंदमठ/ दुर्गेशनंदिनी/ शर्त/ हम सब चोर हैं/ चम्पाकली/ तुम सा नहीं देखा तथा 'सरगम' जैसी फिल्में यहाँ बन चुकी हैं।

फिल्मिस्तान का नाम वही रहा मगर मिल्कियत बदल गई। सन् १९५० में जब 'सरगम' फिल्म का प्रदर्शन हो रहा था तब रायबहादुर चुन्नीलाल इसी फिल्म का प्रीमियर देखते हुए परलोकवासी हो गए।

एस. मुखर्जी ने इसी वर्ष यह स्टुडियो सेठ तोलाराम जालान को बेच दिया। जालान सेठ को प्रारंभिक दो वर्षों में इस स्टुडियो के कारण २० लाख रुपए का घाटा हुआ। इसके बाद उन्होंने अपनी व्यावसायिक बुद्धि का उपयोग कर जरूरी फेरबदल किए। यह फैसला किया गया कि वर्ष में कम से कम चार फिल्में स्टुडियो में बनेंगी तो खर्च निकल सकता है।

सन् १९५३ से यहाँ प्रतिवर्ष चार फिल्में बनने लगीं। उन्हें सफलता और लक्ष्मी की कृपा प्राप्त हुई। १९५५ में जालान सेठ ने मलाड का बंबई टॉकीज भी खरीद लिया।

सेठ जालान के प्रयासों से फिल्मिस्तान स्टुडियो देश के सर्वाधिक सुविधा संपन्न स्टुडियो में गिना जाने लगा। चार विशाल फ्लोर के अतिरिक्त डबिंग एवं प्रोजेक्शन थिएटर, प्रीव्यू थिएटर तथा कैमरा एवं अन्य उपकरण यहाँ किराए पर उपलब्ध हैं। इस स्टुडियो में कई बने बनाए (रेडीमेड) सेट्स भी हैं। इनमें अस्पताल/ पुलिस स्टेशन तथा अदालत के सेट प्रमुख हैं।

फिल्म आवारा : राजकपूर

राजकपूर का सपना आर.के. स्टुडियो

भारतीय फिल्म उद्योग के शो- मेन के रूप में विख्यात **राजकपूर** ने बचपन से ही एक भव्य स्टुडियो के निर्माण का सपना देखा था। सन् १९४७ में जब वे फिल्म निर्माण के क्षेत्र में उतरे उनके मन में अपना स्टुडियो बनाने की बेचैनी थी। 'आग' और 'बरसात' की शूटिंग तो वर्ली के इस्टर्न स्टुडियो में हो गई थी। जब 'आवारा' की शूटिंग आशा (जागृति) स्टुडियो में चल रही थी तब राज साहब को अपना स्टुडियो बनाने का मौका मिला। आशा स्टुडियो के निकट ही श्रीकांत स्टुडियो की जमीन उन्होंने खरीदी तथा १९५० की विजयादशमी के दिन स्टुडियो की फ्लोर नंबर एक का निर्माण शुरू किया। आर्किटेक्ट ठक्कर थे तथा पंडित युधिष्ठिर ने निर्माण का ठेका लिया था। स्टेज नंबर एक बनकर तैयार हुआ तथा उसी पर 'आवारा' के स्वप्न दृश्य की शूटिंग की गई। 'आवारा' की सफलता के बाद बंबई की रिकार्डो कंपनी से १९५० में इस स्टेज की फ्लोरिंग करवाई गई।

इसके बाद १९५४ में राज साहब ने श्रीकांत स्टुडियो लीज पर लिया। सन् १९६६ में उन्होंने इस स्टुडियो के दोनों फ्लोर खरीद लिए। एक अन्य फ्लोर वे १९६३ में बना चुके थे। इस प्रकार इस स्टुडियो में कुल चार फ्लोर हो गए। बंबई के अन्य सारे स्टेजों की अपेक्षा यहाँ का स्टेज क्रमांक एक बहुत ऊँचा है।

स्टुडियो में १५ मेकअप रूम्स हैं। स्टोर्स एवं लाइटिंग विभाग भी है। यहाँ का वातानुकूलित मोबाइल साउंड ट्रेक संपूर्ण एशिया में अपने ढंग का अनोखा है। कॉस्ट्यूम विभाग, प्रीव्यू थिएटर, एडिटिंग रूम, डबिंग थिएटर आदि सारी सुविधाएँ यहाँ मौजूद हैं। यहाँ का एडिटिंग रूम राजकपूर को काफी पसंद था। वे जब एडिटिंग रूम में घुसते थे तब बिना पूरा काम किए बाहर नहीं निकलते थे। सन १९६७ से स्टुडियो को किराए पर दिया जाने लगा है। यहाँ मालिक और कर्मचारियों के बीच बड़े ही सौम्य संबंध हैं। इसीलिए यहाँ मनाया जाने वाला होली का त्योहार कभी पूरे भारत में विख्यात था। आर. के. स्टुडियो का प्रतीक चिन्ह फिल्म 'बरसात' के प्रणय दृश्य का है। राजकपूर के एक हाथ में वायलिन और दूसरी बाँह पर झूलती नरगिस की लचकदार देह। आगे चलकर इसे प्रतीकात्मक बना दिया गया।

आनंद ही आनंद

नवकेतन

आजादी के बाद भारत में फिल्म निर्माण को इज्जत मिली। पढ़े - लिखे लोग बेहिचक फिल्मों में आने लगे। कई फिल्म कंपनियाँ बंद हो गई। पहली टॉकी 'आलम आरा' के बाद बोलती फिल्मों की किशोरावस्था में दो फिल्म निर्माण कंपनियाँ ऐसी बनी, जिन्होंने हिन्दी फिल्मों को ताजगी दी। **आर.के.** फिल्म्स और **नवकेतन**। आर.के. और नवकेतन में कई समानताएँ हैं। दोनों ही कंपनियों के निर्माता अपने समय के मशहूर अभिनेता थे- राजकपूर और देव आनंद। दोनों ही कंपनियाँ लगभग एक ही समय अस्तित्व में आई। दोनों ने ही रोमांटिक फिल्में दीं। इनका एक और महान योगदान यह रहा कि इन्होंने फिल्म संगीत में नया ट्रेंड स्थापित किया।

नवकेतन ने बॉम्बे टॉकीज की फिल्म **'किस्मत'** के नायक की परिपाटी जारी रखी। नवकेतन का नायक छोटा अपराधी रहा। उसकी नायिका अपराधियों की कठपुतली रही। इसी अपराध-रोमांस के ताने-बाने में नवकेतन ने कई सफल फिल्में दीं। यह कंपनी शुद्ध मनोरंजन का उद्देश्य लेकर चली। आनंद बंधुओं के अलावा नवकेतन के प्रमुख शिल्पियों में सचिन देव बर्मन/ साहिर लुधियानवी/ पंडित नरेन्द्र शर्मा/ फली मिस्त्री/ राहुल देव बर्मन/ जयदेव थे। नवकेतन की फिल्में पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित कलाकारों की फिल्में थीं। टॉकी का अठारह बरस का अनुभव नवकेतन के काम आया और वहाँ कई संगीतमय फिल्में बनीं।

शुरू करें सुरैया के आलीशान मकान से जहाँ **चेतन आनंद** ने २९ अक्टूबर १९४९ को अपनी नई फिल्म के लिए सुरैया को बतौर नायिका के साइन किया। चेतन के खाते में **'नीचा नगर'** जैसी ऑफ बीट फिल्म थी। इप्टा में वे कई नाटक कर चुके थे। देव को 'जिद्दी' के बाद लोग पसंद करने लगे थे। दोनों भाइयों ने मिल कर फिल्म कंपनी बनाई। चेतन तब तक एक बालक केतन के पिता बन चुके थे। अगली पीढ़ी को मनोरंजन देने के उद्देश्य से बनाई गई फिल्म कंपनी का नाम रखा गया नवकेतन। संगीत के लिए सचिन देव बर्मन को लिया गया था। देव और सचिन देव पहले 'विद्या' में एक साथ काम कर चुके थे। दोनों ही एक दूसरे को भा गए। नवकेतन में इस जोड़ी ने जो जादू किया वह आज भी बरकरार है। नवकेतन का दफ्तर खोला गया फेमस सिने लेबोरेटरी के एक कमरे में।

नवकेतन की पहली फिल्म थी **'अफसर'** (१९५०)। गोगोल के प्रख्यात व्यंग्य नाटक 'इंस्पेक्टर जनरल' को आधार बना कर इस फिल्म का निर्माण हुआ। संयोग की बात है कि चेतन ने इसी नाम से इप्टा में नाटक भी

सचिन किया था। इसी कथानक पर हॉलीवुड में एक फिल्म भी बन चुकी थी। और एक दिन खामोशी से अँधेरी के एस.एड टी. स्टूडियो में 'अफसर' की शूटिंग शुरू हुई। अफसर का स्वागत ठंडा हुआ। सचिन देव बर्मन के मधुर संगीत और सुरैया के मदमस्त अभिनय के बावजूद 'अफसर' नहीं चली। सुरैया के गाए 'नैन दीवाने' और 'मन मोर हुआ मतवाला' गीत आज भी मंत्रमुग्ध कर देते हैं। देव-सुरैया के प्रेम प्रसंग ने विपरीत प्रचार किया। सुरैया के ही रिश्तेदारों ने इसे साम्प्रदायिक रंग दिया। अपनी कंपनी की पहली ही फिल्म का यह हश्र देखकर चेतन निराश हो गए। उन्होंने अगली फिल्म 'बाजी' से अपने हाथ खींच लिए। देव के प्रभात के दिनों के साथी **गुरुदत्त** ने 'बाजी' के निर्देशन का भार सँभाला। पटकथा-संवाद बलराज साहनी ने लिखे। तब तक रोजगार की तलाश में नौजवानों का गाँवों से शहरों में बहाव शुरू हो चुका था। ऐसे दर्शकों को कुछ देने के उद्देश्य से ही 'बाजी' का निर्माण किया गया। 'बाजी' में सब कुछ था- रोमांस, अपराध, कॉमेडी। सचिन देव बर्मन और साहिर की जोडी ने एक दूसरे के पूरक का काम किया। गीता राय के गाए गीत बहुत लोकप्रिय हुए। किशोर ने पहली बार नवकेतन की फिल्म के लिए गाया। 'बाजी' की सफलता ने नवकेतन में दिवाली कर दी।

'बाजी' ने नवकेतन की नींव तो पक्की की ही, कई कलाकारों का भविष्य भी सँवारा। देव आनंद और कल्पना कार्तिक की जोडी इसी फिल्म से शुरू हुई। गुरुदत्त को गीता राय इसी फिल्म से मिली। जॉनी वॉकर नवकेतन से जुड़े। राज खोसला गुरुदत्त के सहायक बने। वी.के. मूर्ति ने पहली बार स्वतंत्र रूप से कैमरा सँभाला। 'बाजी' से ही दो नायिकाओं का चलन शुरू हुआ।

'आँधियाँ' में एक बार फिर चेतन आनंद ने निर्देशन सँभाला। इसका संगीत विख्यात सरोद वादक उस्ताद अली अकबर खान ने दिया था। 'आँधियाँ' उस जमाने की लीक से हटकर फिल्म थी। समीक्षकों ने इसे सराहा मगर दर्शकों ने नकार दिया। यह फिल्म वेनिस में दिखाई गई। बाद में मॉस्को और चीन के फिल्मोत्सव में भी दिखाई गई। अगली फिल्म 'हमसफर' का हश्र भी यही हुआ। इस बार चेतन आनंद भी पर्दे पर आए। निर्देशक थे ए.एन. बैनर्जी, जिन्होंने देव आनंद की एक बाहरी फिल्म 'मोहन' का निर्देशन किया था।

'हमसफर' की असफलता ने नवकेतन में मायूसी फैला दी। अली अकबर सरोद की दुनिया में लौट गए। सुरैया नवकेतन और देव आनंद से दूर चली गई। जब बडे सदस्य हार गए तो छोटा सदस्य आगे आया। विजय आनंद। स्कूल के दिनों में वे नाटक खेला करते थे। उन्होंने एक पटकथा लिखी। चेतन को यह बहुत पसंद आई उन्होंने इस पर फिल्म बनाने की ठानी। सचिन देव बर्मन-साहिर फिर बुलवाए गए। वे अपने साथ लता मंगेशकर को भी लाए। यों लता ने नवकेतन के लिए 'आँधियाँ' में एक गीत गाया था मगर नवकेतन में उनकी ताजपोशी इसी फिल्म से हुई। यह फिल्म थी 'टैक्सी ड्राइवर।' यह चालीस शिफ्टों में पूरी हुई। तमाम शूटिंग बंबई की सडकों पर और दूसरे स्थानों पर हुई। सिर्फ शीला रमानी के कैबरे के लिए सेट तैयार किया गया। चुस्त पटकथा और संपादन ने फिल्म को दिलचस्प बना दिया। "जाएँ तो जाएँ कहाँ" गीत तलत ने गाया था। फिल्म में यह गाना बड़ी खूबसूरती से फिल्माया गया है।

शीला रमानी-देव आनंद : टैक्सी ड्राइवर

हिन्दी फिल्मों के इतिहास में आनंद-बंधुओं का एक अलग अध्याय है। नवकेतन का सफर फिल्म 'अफसर' से आरंभ होता है और 'प्यार का तराना' तक जारी है। सबसे अलग हटकर नवकेतन ने अपराध के ताने-बाने के साथ रोमांस/ गीत-संगीत और मनोरंजन का जायकेदार मसाला परोसा है। नवकेतन की नाव में शानदार हमसफर रहे। इसकी फिल्मों की ख्याति देस-परदेस दोनों में हुई।

'मकान नंबर ४४' के गीत 'तेरी दुनिया में जीने से' गाकर हेमंत कुमार ने देव आनंद के व्यक्तित्व में और निखार ला दिया। 'फंटूश' भी एक हास्य फिल्म थी मगर चली नहीं। किशोर ने 'दुखी मन मेरे' गाकर देव आनंद के एक और पहलू को उजागर किया। दर्शकों को दुखी देव आनंद देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। ये दोनों फिल्में व्यावसायिक दृष्टि से सामान्य रहीं।

विजय आनंद उर्फ गोल्डी ने अपनी कॉलेज की शिक्षा पूरी कर ली। इप्टा में वे नाटकों की प्रॉम्प्टिंग किया करते थे। 'आँधियाँ' में वे अंशकालिक सहायक निर्देशक थे। वेतन था पचास रुपए प्रतिमाह। जब एम.ए. की पढ़ाई पूरी होने में कुछ ही माह बचे थे, उन्होंने शिक्षा अधूरी छोड दी और पूर्णकालिक सहायक निर्देशक बन गए। उन्होंने स्वतंत्र निर्देशन में कदम रखा 'नौ दो ग्यारह' से। नवकेतन की आम फिल्मों की तरह यह भी अपराध-रोमांस प्रधान फिल्म थी। इसकी कहानी देव ने बंबई से खंडाला के दरम्यान कार में सुनी। उन्हें यह कहानी इतनी पसंद आई कि उन्होंने 'कालापानी' पर काम रोक दिया और 'नौ दो ग्यारह' का निर्माण शुरू किया। बाईस वर्ष की उम्र में गोल्डी स्वतंत्र निर्देशक बने। इस फिल्म को भारी सफलता मिली। तब तक एस.डी. बर्मन और साहिर में मनमुटाव हो चुका था। एस.डी. और लता भी साथ-साथ नहीं आते थे। मगर मजरूह सुल्तानपुरी ने साहिर की कमी महसूस नहीं होने दी। नवकेतन स्पिरिट के जवाँ दिल गाने लिखे। 'हम हैं राही प्यार के', 'कली के रूप में', 'आँखों में क्या जी' आजा पंछी अकेला है गानों ने सभी को गुदगुदा दिया। 'नौ दो ग्यारह' कल्पना कार्तिक की आखिरी फिल्म रही। इसके बाद उन्होंने देव आनंद से शादी कर ली।

नवकेतन ने अपने कलाकारों को आगे बढ़ाने का काम भी किया। गुरुदत्त के सहायक राज खोसला को 'कालापानी' के स्वतंत्र निर्देशन की जिम्मेदारी सौंपी। यह एक अच्छी फिल्म साबित हुई। देव आनंद को अभिनय के लिए पहला फिल्म फेयर पुरस्कार मिला। बाद की फिल्म 'काला बाजार' का निर्देशन विजय आनंद ने किया। यह फिल्म भी सफल हुई। नवकेतन की हर फिल्म की ही तरह 'काला

बाजार' में भी दो नायिकाएँ थीं। वहीदा रहमान और नंदा। वहीदा तब गुरुदत्त के अनुबंध में थीं। गुरु ने पहले तो वहीदा को 'काला बाजार' में काम करने की अनुमति नहीं दी परंतु नवकेतन से अपने संबंधों को देखते हुए वहीदा को इस फिल्म के लिए मुक्त कर दिया। शैलेन्द्र ने पहली बार नवकेतन के लिए गीत लिखे। 'खोया-खोया चाँद' ने फिल्म के संगीत में चार चाँद लगा दिए।

'हम दोनों' में देव की दुहरी भूमिका थी। अमरजीत जो नवकेतन के प्रचार विभाग का काम देखते थे, पहली बार स्वतंत्र निर्देशक बने। जयदेव ने बाहर की कुछ फिल्मों में संगीत निर्देशक की हैसियत से काम किया था। नवकेतन में वे पहली बार अपने पैरों पर खड़े हुए। साहिर को फिर से लाया गया। इन दोनों ने भारत भर को अपनी-अपनी खुशबुओं से भर दिया। 'अल्ला तेरो नाम' प्रार्थना को लता मंगेशकर अपने श्रेष्ठ गीतों में से एक मानती हैं। 'अभी न जाओ छोड़कर' प्रेमी युगलों का अमर गीत है।

साठ के दशक में रंगीन फिल्मों का निर्माण जोर पकड़ चुका था। 'जंगली', 'गंगा-जमना', 'संगम,' 'आई मिलन की वेला' फिल्मों की सफलता देख नवकेतन ने अपनी लाइट कॉमेडी फिल्म 'तेरे घर के सामने' के बाद की फिल्म रंगीन बनाने का तय किया।

'हम दोनों' के विदेशों में प्रवास के दौरान देव कई अंतरराष्ट्रीय कलाकारों के संपर्क में आए। नोबल पुरस्कार प्राप्त, प्रख्यात लेखिका पर्ल बक ने भारत में फिल्म बनाने में दिलचस्पी दिखाई। देव को आर.के. नारायण का उपन्यास **'द गाइड'** बहुत पसंद आया। इस पर रंगीन फिल्म बनाने का निश्चय किया। इसे अँगरेजी में भी बनाया गया जिससे नवकेतन को अंतरराष्ट्रीय मान्यता मिले। 'तेरे घर के सामने' की ही तरह इसमें दो नायिकाएँ नहीं थीं। अँगरेजी संस्करण तो नहीं चला मगर हिन्दी संस्करण ने उसका घाटा पूरा कर दिया। हिन्दी संस्करण की खूब खिंचाई हुई।

'गाइड' के निर्माण के दौरान सचिन देव बर्मन गंभीर रूप से बीमार पड़े। एक बार तो यह भी तय किया गया कि जयदेव को मौका दिया जाए मगर देव आनंद ने बर्मन दा में विश्वास रखा और उनके स्वस्थ होने का इंतजार किया। इंतजार का फल मीठा निकला। 'गाइड' का संगीत बहुत लोकप्रिय हुआ।

किशोर कुमार ''नौ दो ग्यारह'' के बाद नवकेतन में लौटे। उन्होंने 'गाइड' में एक ही गीत गाया मगर वह बहुत लोकप्रिय हुआ। नागिन नृत्य में बर्मन दा ने कड़ी मेहनत की। उनकी मेहनत रंग लाई। बर्मन दा की ही गाई हुई चंद पंक्तियाँ 'अल्ला मेघ दे' प्रासंगिक हो गई क्योंकि उन दिनों भारत में जबर्दस्त सूखा पड़ा था।

इस फिल्म ने देव आनंद को अभिनय के

चेतन आनंद-देव आनंद और विजय आनंद

लिए दूसरा फिल्म फेयर पुरस्कार दिलवाया। वहीदा रहमान भी पुरस्कृत हुई। फली-मिस्त्री के छायांकन ने आँखों को ठंडक पहुँचाई।

जब सभी लोग एक सुर में 'गाइड' की तारीफ कर रहे थे तब देव को एक बात बुरी लगी। ज्यादातर लोग वहीदा रहमान की तारीफ कर रहे थे। आर.के. नारायण ने भी वहीदा को बधाई दी। पोस्टरों में भी वहीदा को बड़ा बताया गया। देव ने यह बात गाँठ में बाँध ली।

'ज्वेल थीफ' एक चुस्त फिल्म थी। इसमें देव फिर एक दिलफेंक 'नौजवान' बने। इन्हीं दिनों फिल्मी दुनिया में दिलीप कुमार और बैजयंतीमाला का झगड़ा गूँज रहा था। अभिनेताओं की संस्था के अध्यक्ष पद से देव आनंद ने दिलीप कुमार के पक्ष में फैसला दे कर अपने गले में ढोल बाँध लिया। 'ज्वेल थीफ' की शूटिंग के वक्त बैजयंतीमाला ने नवकेतन को खूब रुलाया। इस फिल्म में देव के अलावा सभी को पसंद किया गया।

'ज्वेल थीफ' के निर्माण के दौरान देव का रुझान निर्देशन की ओर हुआ। पहाड़ों पर उन्होंने हमारे सैनिकों का कठिन जीवन देखा। भारत तब तक दो हमलों को देख चुका था। देव को इन परिस्थितियों ने युद्ध विरोधी बनाया। उन्होंने अपनी अगली फिल्म का विषय रखा 'अहिंसा'। बाद में सोचा गया कि इस नाम से दर्शकों को धोखा हो सकता है। वे इस फिल्म को उपदेशात्मक समझेंगे। इसे नवकेतन के पैटर्न पर बनाना था जिसमें रोमांस भी हो। हँसी मजाक तथा थ्रिल भी हो। इसलिए 'अहिंसा' का नाम **'प्रेम पुजारी'** रखा गया।

'प्रेम पुजारी' एक असफल फिल्म साबित

देव आनंद-आरती शर्मा

हुई। निर्देशक देव आनंद न्याय नहीं कर पाए। वहीदा रहमान की भूमिका छोटी कर दी गई और प्रतिभाहीन नायिका जाहिदा की भूमिका फैला दी गई। पश्चिम बंगाल में इस फिल्म का काफी विरोध हुआ। देव के अभिनय की तीखी आलोचना हुई। वे भी समझ गए कि बर्मन दा ने पर्दे के पीछे रह कर भी अपने संगीत के बल पर उन्हें मात दे दी। नीरज और बर्मन का साथ यानी फूलों का और बसंत का साथ था।

नवकेतन इंटरप्राइजेस की स्थापना विजय आनंद के लिए की गई। इस झंडे तले विजय आनंद ने अपनी पहली ही प्रस्तुति 'तेरे मेरे सपने' में समीक्षकों की वाह-वाही लूटी। नीरज और बर्मन ने यहाँ भी सुरभि बिखेरी। देव-हेमा की जोडी की एक गैर-नवकेतन

फिल्म 'जॉनी मेरा नाम' धूम मचा रही थी। 'तेरे मेरे सपने' की असफलता ने विजय आनंद को निराश कर दिया। नवकेतन की यह अंतिम म्युजिकल रोमांटिक फिल्म थी।

बाद की फिल्मों में नवकेतन की खोई प्रतिष्ठा नहीं लौटी। 'गाइड' के बाद नवकेतन में हँसी लौटी तो 'हरे राम हरे कृष्ण' में ही।

इस फिल्म का विषय नया था। दुनिया भर के हिप्पियों के लिए नेपाल स्वर्ग था। देव आनंद ने इसी विषय को चुना। साथ ही नशीली दवाओं की समस्या भी उठाई। यह फिल्म अपने मदमस्त संगीत के लिए हमेशा याद की जाएगी। राहुल देव बर्मन की यह नवकेतन में शानदार एंट्री थी।

इधर विजय आनंद की कंपनी नवकेतन प्रॉडक्शन्स ने कई असफल फिल्में बनाईं 'चोर-चोर'/ 'जान हाजिर है'/ 'घुंघरू की आवाज'। देव आनंद भी पीछे नहीं रहे। 'शरीफ बदमाश'/ 'हीरा पन्ना'/ 'इश्क इश्क इश्क' बनाई। 'इश्क इश्क इश्क' ने तो असफलता का रिकॉर्ड बनाया। प्रीमियर जितना जानदार था, फिल्म उतनी ही बेजान थी। अपनी रजत जयंती की सालगिरह पर यह महा असफलता नवकेतन को भीतर से तोड़ गई। देव भले ही बाहर से बेफिक्री दिखा रहे हों मगर अंदर से वे भी घायल हो गए थे।

मुसीबत में अपने ही काम आते हैं। बड़े भाई चेतन आनंद ने मदद का हाथ बढ़ाया। हेमा मालिनी का सहयोग माँगा गया। परिवर्तन के लिए आर.डी. बर्मन की जगह उनके सहायक लक्ष्मीकांत- प्यारेलाल को लिया गया। नवकेतन की ही पुरानी हिट फिल्म 'टैक्सी ड्राइवर' की कहानी में फेर बदल कर 'जानेमन' बनाई गई। बड़े-बड़े नामों के बावजूद 'जानेमन' नवकेतन में उत्साह का संचार नहीं कर पाई। नवकेतन की प्रतिष्ठा गिरती गई। 'देस परदेस' ने थोड़ी बहुत राहत जरूर पहुँचाई। इस फिल्म का विषय नया था मगर उसका निर्वाह ढंग से नहीं हो पाया। नई तारिका टीना मुनीम सुंदर भी नहीं थी और उसे अभिनय भी नहीं जमा। राजेश रोशन ने कुछ धुनें अच्छी दीं। 'देस परदेस' के बाद नवकेतन के दर्शक खिसक गए। सफलता नवकेतन के लिए मृगतृष्णा बन गई।

'बॉबी' में राजकपूर ने अपने बेटे को पहली बार बतौर नायक के पेश किया। 'बॉबी' सुपर हिट साबित हुई। उससे प्रेरणा पाकर दस साल बाद देव आनंद ने अपने बेटे सुनील आनंद को पर्दे पर उतारा। जब नवकेतन के नौ के नौ ग्रह खराब चल रहे हों तो हर तरफ असफलता ही हाथ लग सकती थी। हुआ भी यही। **'आनंद और आनंद'** कहीं भी दूसरा सप्ताह पूरा नहीं कर पाई। स्टार पुत्रों की पहली ही फिल्म में लोकप्रिय संगीत देने वाले आर.डी. बर्मन इस फिल्म में बुझे-बुझे रहे।

नवकेतन संस्था तब की है जब फिल्में नायिका प्रधान हुआ करती थीं। जब से नवकेतन की नायिकाओं ने साड़ी पहनना छोड़ स्कर्ट-जीन्स पहनी तभी से नवकेतन में रोमांस खत्म हो गया। 'तेरे मेरे सपने' के बाद नवकेतन की फिल्मों के संगीत का माधुर्य जाता रहा।

दरअसल नवकेतन का जो जादू था उसका असर उतरने लगा। एक ही कहानी, एक ही अदा, एक ही अंत कोई कब तक बर्दाश्त करे। नवकेतन के दर्शक बूढ़े हो गए मगर देव ने पुरानी ही अदाएँ जारी रखीं। नवकेतन ने अपनी फिल्मों में परिवार नामक संस्था को महत्व नहीं दिया। अपराध पृष्ठभूमि पर ही फिल्में बनाईं। बदलते मूल्यों को उन्होंने कभी नहीं समझा।

● **दिलीप गुप्ते**

एस.एल. स्टुडियो

गोदाम से बना फिल्मी गोदाम

लेखराज साहनी का परिवार विभाजन के दौरान हैदराबाद (सिंध) से भारत आया। सन् १९४७ में बंबई आकर साहनी ने विज्ञान शिक्षक के रूप में अपना कैरियर शुरू किया। नाटक लिखने और उन्हें मंचित करने की तकनीक के प्रति उनका रुझान बचपन से था। अध्ययन के सिलसिले में जब वे अमेरिका गए तब उन्होंने हॉलीवुड के कई स्टुडियो देखे। यहाँ विभिन्न दृश्यों को फिल्माने के लिए स्थाई रूप से निर्मित सेट वाले स्टुडियो देखकर उनकी इच्छा भारत में वैसी ही व्यवस्था करने की हुई। भारत लौटकर उन्होंने इस कल्पना को साकार करने के लिए उचित स्थान की तलाश बंबई के आसपास शुरू की।

वर्तमान में भाभा अणुशक्ति अनुसंधान केन्द्र जहाँ स्थित है वहाँ से कुछ दूर उन्हें अपनी पसंद की जगह नजर आई। 'आइडियल टाइल्स फैक्ट्री' का यह परिसर काफी विशाल था। पहले यहाँ ईरानी सेठ हाजी कासम की 'नवशिवा आइलैण्ड' कम्पनी का गोदाम था। अदालती विवाद में फँसा यह परिसर काफी उठा-पटक करने के बाद साहनी सेठ ने खरीद लिया। इस तरह १२ जनवरी १९७२ को यह परिसर आउटडोर शूटिंग के लिए आदर्श स्थान बन गया।

कोठी/ हवेली/ जेल/ पुलिस स्टेशन/ गाँव/ गरीबों के घर/ बस्ती/ अस्पताल/ रिक्शा/ नहर/ पुल यानी सभी कुछ यहाँ उपलब्ध है। शूटिंग के समय विविधता एवं भिन्नता लाने के लिए सेट्स में जरूरी फेरबदल किए जाते हैं।

इस स्टुडियो में सबसे पहले रामसे ब्रदर्स की फिल्म **'चीख'** की शूटिंग की गई थी। इसके बाद रामदयाल की फिल्म 'दो नम्बर के अमीर' का निर्माण भी यहाँ हुआ। 'हेराफेरी'/ 'लैला मजनूं'/ 'सलाखें'/ 'फकीरा'/ 'कालीचरण'/ 'पापी'/ 'संग्राम'/ 'उमर कैद'/ 'खून पसीना'/ 'अमर अकबर एंथोनी' फिल्मों की शूटिंग यहाँ हो चुकी है।

यहाँ शूटिंग करने वाले निर्माताओं को कैमरा एवं रेकार्डिंग उपकरणों के अतिरिक्त अन्य सारी सामग्री बिना अतिरिक्त किराया दिए मिल जाया करती थी। इसलिए निर्माताओं ने यहाँ शूटिंग करना लाभप्रद समझा। इस स्टुडियो को पहले 'स्टुडियो आनर्स एसोसिएशन'की सदस्यता नहीं मिली थी, मगर निर्माताओं के बीच लोकप्रियता बढ़ने के बाद इसका महत्व समझा गया।

सायन स्टेशन से बस द्वारा यहाँ पहुँचा जाता है। आउटडोर लोकेशन के पेचवर्क के लिए यह स्टुडियो काफी उपयुक्त है। साहनी बन्धु इसमें जरूरी परिवर्तन करवा कर इसे बड़े बजट वाली फिल्मों के उपयुक्त बनाने का प्रयास करते रहे हैं। आउटडोर शूटिंग के लिए यहाँ ऐसी व्यवस्था की गई है कि एक साथ ६ शिफ्टों में काम हो सकता है। शांत वातावरण होने के कारण यहाँ शूटिंग का कार्य निर्विघ्न रूप से संपन्न होता है। ■

न्यू थिएटर्स

कलकत्ता की बंबई को चुनौती

● रमेश वैद्य

यह वह जमाना था, जब भारत में सिनेमा के प्रति लोगों का दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं था। कुलीन समाज में फिल्में देखना और फिल्मों के विषय में चर्चा करना, अच्छा नहीं समझा जाता था। ऐसे प्रतिकूल वातावरण में तीन बैनर ऐसे थे, जिनकी धाक श्रेष्ठ और सोद्देश्य फिल्म निर्माण के क्षेत्र में जम चुकी थी। बंबई का बॉम्बे टॉकीज, पूना का प्रभात और कलकत्ता का न्यू थिएटर्स।

इंग्लैंड से इंजीनियरी की डिग्री प्राप्त कर बंगाल के एडवोकेट जनरल के पुत्र बी.एन. सरकार (बीरेंद्रनाथ सरकार) ने सैल्युलाइड के माध्यम से अपनी बात कहने का बीड़ा उठाया और सन् १९३१ की दस फरवरी को कलकत्ता में न्यू थिएटर्स की स्थापना की। रजिस्ट्रेशन भी उसी वर्ष हो गया और स्टुडियो का निर्माण भी प्रारंभ कर दिया गया। शरतचंद्र की कृति **देना पावना** पर इसी नाम से फिल्म बनाई गई जिसका दिग्दर्शन प्रेमांकुर आतर्थी ने किया था, इस संस्था की

यह प्रथम फिल्म थी। इसके बाद न्यू थिएटर्स के अंतर्गत देश-विदेश के कई फिल्मकारों और कलाकारों ने अपना योगदान देकर इसे हिंदुस्तानी सिनेमा का कीर्तिस्तंभ बनाया।

कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन की सहायतार्थ 'नटीपूजा' नामक फिल्म का निर्माण इसी संस्था ने किया, जिसमें स्वयं गुरुदेव शूटिंग के दौरान उपस्थित थे। प्रसिद्ध फिल्म 'पूरण भगत' और 'चंडीदास', फिल्म निर्देशक देवकी बोस की ऐसी फिल्में कही जा सकती हैं जिन्होंने उस समय पूरे देश में धूम मचाई थी। लाहौर में तो 'पूरण भगत' देखने वालों की लंबी कतारें महीनों तक लगी रहीं। प्रमथेश बरुआ ऐसा हस्ताक्षर है जिसके कारण न केवल न्यू थिएटर्स बल्कि भारतीय फिल्म व्यवसाय का नाम सारे संसार में आदरपूर्वक लिया जाता है। बरुआ की फिल्म **'देवदास'** तो संभवतः भारतीय फिल्म इतिहास का मील का पत्थर है। महान साहित्यकार शरतचंद्र के उपन्यास पर आधारित इस फिल्म ने उस काल के सभी तरुणों को 'देवदास' बना दिया था। इस फिल्म में कुछ ऐसी महान हस्तियों का संगम हो गया था, जो अपने आप में अनूठा है। शरतचंद्र का कथानक (अनेक बार स्वयं शरतचंद्र की उपस्थिति में), प्रमथेश बरुआ का योग्य

मार्गदर्शन, देश के जानेमाने गायक, अभिनेता कुंदनलाल सहगल द्वारा नायक की भूमिका का निर्वाह, मेहरबाबा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के शिष्य तिमिर बरन का संगीत, के साथ आज के प्रसिद्ध निर्देशक केदार शर्मा (गीतकार) और बिमल राय (छायाकार) जुड़े हुए थे।

न्यू थिएटर्स ने फिल्म निर्माण के हर क्षेत्र में कुछ ऐसे व्यक्तियों को बनाया- सँवारा जो अपने कार्य क्षेत्र में बेजोड़ माने गए। संगीतकारों में पंकज मलिक, रायचंद्र बोराल, तिमिर बरन एवं कुंदनलाल सहगल, के.सी.डे. और पहाड़ी सान्याल जैसे अमर गायकों के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

तत्कालीन भारतीय वायसराय लार्ड विलिंग्डन भी न्यू थिएटर्स देखने गए थे और उन्होंने वहाँ की कार्य प्रणाली की प्रशंसा की थी। न्यू थिएटर्स की हीरोइनों में सबसे ऊपर नाम आता है कानन देवी का। फिल्म स्ट्रीट सिंगर में सहगल के साथ इनके काम को खूब सराहना मिली थी।

देश के दूसरे स्टुडियो की तरह न्यू थिएटर्स में भी सब कलाकार माहवारी पगार पर काम करते थे। कलाकारों की मनमानी नहीं चलती थी। सबको अनुशासित तरीके से काम करना होता था। इस कारण 'देवदास' की नायिका का रोल कानन देवी के बजाए जमुना को दिया गया।

सिनेमा को मान-मर्यादा और गरिमामय स्वरूप प्रदान करने वाली संस्था न्यू थिएटर्स सन् १९५४ में 'बकुल' नामक फिल्म के साथ इतिहास के पन्नों में समा गई। अपने पीछे छोड़ गई उन यादों को, जो आने वाले दशकों तक दर्शकों को याद रहेंगी।

'बालम आन बसो मोरे मन में, बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए, और प्रेम नगर में बनाऊँगी घर मैं', जैसे गीतों के मुखड़ों के जरिए न्यू थिएटर्स हमारे जेहन में बसा रहेगा।

न्यू थिएटर्स की फिल्म विद्यापति

हॉलीवुड को भारत में हूबहू पेश करने के सपने कई लोगों ने सँजोए थे। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बसंतराव नाईक ने सबके सपनों को साकार किया और गोरेगाँव के पास फिल्म-सिटी तैयार हो गई। यह भारत का सबसे बड़ा स्टुडियो है, जहाँ इनडोर तथा आउटडोर शूटिंग की तमाम सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अब हमारे पास अपना हॉलीवुड है!

भारत में हॉलीवुड फिल्म सिटी (बंबई)

महाराष्ट्र की राजधानी बंबई को भारत की फिल्म राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। प्रारंभ से ही भारत के प्रमुख फिल्म स्टुडियो बंबई में ही स्थापित हुए। बॉम्बे टॉकीज/ फिल्मिस्तान/ मिनर्वा/ रणजीत/ कारदार/ श्रीसाउंड/ प्रकाश/ मोहन/ आर.के./ राजकमल/ फेमस/ सेंट्रल/ जैसे अनेक छोटे-बड़े स्टुडियो सारी बंबई में फैले हुए थे। महाराष्ट्र के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बसंतराव नाईक एक विकास पसंद व्यक्ति थे। बंबई महानगर के व्यवस्थित विकास तथा उसके आधुनिकीकरण में उनकी काफी रुचि थी। जिस तरह अमेरिका का फिल्म उद्योग केलिफोर्निया के हॉलीवुड में स्थित है, उसी नमूने पर बंबई में भी सारा फिल्म उद्योग एक ही स्थान पर केंद्रित हो, इस दृष्टि से **फिल्म-सिटी** की योजना को आकार मिला। बसंतराव नाईक सचमुच ही फिल्म-सिटी को बंबई का हॉलीवुड बनाना चाहते थे। इसीलिए गोरेगाँव स्थित आर्य कॉलोनी के निकट का विस्तृत परिसर इसके लिए चुना गया। प्रारंभिक रूप से सरकार द्वारा एक बड़े स्टुडियो तथा रिकॉर्डिंग थिएटर की स्थापना की गई। उसके बाद आकर्षक शर्तों पर कम मूल्य में फिल्म निर्माताओं को अपना उद्योग वहाँ लगाने के लिए स्थान तथा सुविधाएँ उपलब्ध कराई गईं।

सन् १९७५ में फिल्म स्टुडियो एवं रिकॉर्डिंग थिएटर बनकर तैयार हो गए। महाराष्ट्र चित्रपट, रंगमंच व सांस्कृतिक विकास महामंडल मर्यादित की स्थापना १९७७ में हुई और फिल्म सिटी को उसे हस्तांतरित कर दिया गया। महाराष्ट्र राज्य की सभी सांस्कृतिक गतिविधियों के स्वतंत्र रूप से विकास हेतु एक केंद्रीकृत संस्था की आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभव की जा रही थी। इस महामंडल की स्थापना से वह कमी दूर हो गई।

महामंडल की स्थापना के तीन प्रमुख उद्देश्य थे-

- प्रदेश की विभिन्न सांस्कृतिक विधाओं को गतिमान बनाना।
- फिल्म, विशेषकर प्रादेशिक सिनेमा के प्रोत्साहन तथा विकास में योगदान करना।
- रंगमंच व अन्य सभी लोककलाओं के विकास हेतु प्रयत्न एवं सभी प्रकार से प्रोत्साहन।

फिल्म सिटी का विकास १९७७ से फिल्म सिटी महामंडल की व्यवस्था के अंतर्गत है। तब से अब तक उसका उल्लेखनीय विकास हुआ है।

दो विशाल स्टुडियो के अतिरिक्त रिकॉर्डिंग थिएटर तथा एडिटिंग रूम की सुविधाओं से संपन्न फिल्म-सिटी के पास ३४६ एकड़ वन्य भूमि का परिसर है। इस परिसर को एक खुले स्टुडियो का रूप दिया गया है। यही फिल्म-सिटी का सबसे बड़ा आकर्षण है कि एक ही स्थान पर आउटडोर व इनडोर दोनों शूटिंग हो सकती हैं। स्टुडियो में मनचाहे सेट्स का निर्माण तथा वन-उपवन व ग्रामीण वातावरण के निर्माण की सुविधाओं ने फिल्म-सिटी को फिल्म निर्माताओं के मध्य काफी लोकप्रिय बनाया है।

स्टुडियोज में सेटिंग व चित्रीकरण के सभी उपकरण व यांत्रिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। उन्हें उचित दरों पर निर्माताओं को दिया जाता है। सबसे बड़ी सुविधा तो प्रादेशिक भाषा (मराठी) की फिल्मों तथा डॉक्युमेंट्री आदि लघु चित्रपटों को दी गई है। उन्हें सभी सुविधाएँ आधे दामों में उपलब्ध कराई जाती हैं। फिल्म सिटी में आधुनिकतम सुविधाएँ उपलब्ध हैं और वहाँ सिनेमास्कोप, ३५ एम.एम. फिल्म उपकरणों से लेकर १६ एम.एम. व वीडियो फिल्म शूटिंग के लिए आवश्यक यंत्र सामग्री उपलब्ध है। यहाँ निर्माणाधीन फिल्म के पूर्व प्रदर्शन हेतु एक प्रीव्यू थिएटर का निर्माण भी किया गया है। फिल्म सिटी की सेवाओं को अधिक सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से प्रभादेवी स्थित रवींद्र-नाट्य मंदिर में एक आधुनिकतम रिकॉर्डिंग थिएटर की योजना विचाराधीन है। वर्ष १९९१ में लगभग ४०० फिल्म्स तथा टीवी फिल्म्स की शूटिंग हुई है। इनमें प्रमुख है- सौदागर/ विश्वात्मा/ १०० डेज/ जिद और हम। इसके अतिरिक्त टीवी फिल्म्स चंद्रकांता, मृगनयनी और चाणक्य का निर्माण भी यहीं हुआ है।

COVERAGE & CONSULTANTS LIMITED

203, Apollo Tower, 2, M.G. Road, Indore 452 001

Phones: 7175, 432334

नागपुर, बंबई, पूना, ग्वालियर

मुरैना, जलगाँव, उदयपुर

नासिक, जालना (वाया औरंगाबाद)

के लिए सेवाएँ

रॉयल ट्रेवल्स

164, टैगोर मार्ग, श्रीमाया के सामने, इंदौर

फोन : 431050, 433860

रतनदीप बिल्डिंग, इंदिरा काम्प्लेक्स

नवलखा, इंदौर, फोन : 468228

हरि फाटक (महू)

बस

थोड़ा सा इंतजार

आपको मिलेगी - आपके अपने क्षेत्र के बॉटलिंग संयंत्र से नियमित / निश्चित

घरेलू कुकिंग गैस
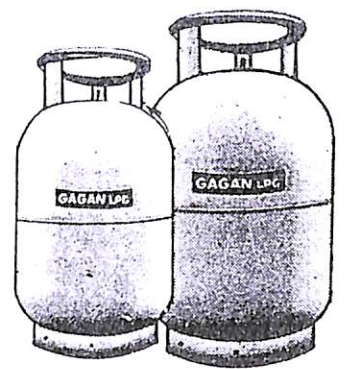
3/1, ओल्ड पलासिया, नवनीत टॉवर के पास, इन्दौर - 452 001 444034, 444506, 431634

फिल्म और फिल्मकार

फिल्म निर्देशक का माध्यम होती है। निर्देशक फिल्म को अपने मन की आँख से देखकर परदे पर *रूपायित* करता है। फिल्म की सफलता अथवा असफलता का दायित्व उसी का रहता है। फिल्म निर्माण के तमाम विभाग और व्यक्ति निर्देशक के इशारे पर 'स्टार्ट' होकर 'कट' होते हैं। किसी भी पुस्तक की तरह जब फिल्म को पढ़ा जाता है, तो समीक्षा का शिकार निर्देशक और सिर्फ निर्देशक होता है। भारतीय सिनेमा के प्रमुख निर्देशकों से इस खण्ड में आपका परिचय कराया गया है ताकि हमेशा परदे के पीछे रहने वाले इन चेहरों को आप जान सकें...।

खंड तीन

सत्यजीत रॉय

डी.जी. : धीरेन गांगुली

भारत की पहली सामाजिक फिल्म **इंग्लैंड रिटर्ण्ड** (१९२१) के निर्माता निर्देशक **धीरेन गांगुली** उर्फ डीजी भारतीय फिल्मोद्योग के जन्म के साक्षी हैं। वे विलक्षण प्रतिभा वाले थे। उनका जन्म २६ मार्च १८९३ को हुआ था। पिता बाद में ब्रह्म समाज में शामिल हो गए। डीजी के बड़े भाई नगेन्द्रनाथ कवीन्द्र रवीन्द्र के दामाद थे। डीजी ने शांति निकेतन में शिक्षा ग्रहण की। शिक्षा प्राप्ति के बाद वे हैदराबाद के निजाम कला महाविद्यालय में ऊँचे वेतन पर अध्यापन करने लगे।

डीजी ने छायांकन पर एक पुस्तक लिखी, जिसने उनके फिल्मों में प्रवेश का रास्ता खोल दिया। घर के सभी सदस्यों के कड़े विरोध के बावजूद उन्होंने फिल्मों में काम करना शुरू किया। कलकत्ता की मदान फिल्म कंपनी ने उन्हें अपने यहाँ आने का न्यौता दिया। डीजी कलकत्ता गए जरूर, मगर दूसरे ही लोगों के साथ एक फिल्म कंपनी बना ली। यहीं उन्होंने पहली व्यंग्यात्मक फिल्म 'इंग्लैंड रिटर्ण्ड' बनाई। इस फिल्म ने खूब धूम मचाई। इस फिल्म में विलायत से लौटे एक बंगाली की हँसी उड़ाई गई, जो बात-बात में भारत की हर चीज को हिकारत से देखता है। दो साल बाद फिर कलकत्ता लौटे और वहाँ फिल्में बनाईं। 'रजिया बेगम' (१९२४) बनाकर निजाम से गुस्सा मोल ले लिया। इस फिल्म में एक बेगम का एक हिंदू लड़के से प्रेम दिखाया गया था। निजाम ने फरमान जारी किया कि चौबीस घंटे में हैदराबाद छोड़ दो। डीजी कलकत्ता गए और न्यू थिएटर्स में कुछ फिल्में बनाईं।

डीजी ने कुल ५३ फिल्में बनाईं। वे अभिनेता भी थे। रूप सज्जा में भी वे माहिर थे। अपनी पत्नी **रमोला** को उन्होंने अपनी फिल्मों की नायिका बनाया। आगे चलकर डीजी की पहचान उनकी घनी दाढ़ी हो गई थी।

डीजी को सन् १९७४ में पद्म भूषण और १९७६ में दादा साहेब फालके पुरस्कार मिला। उनकी मृत्यु १८ नवंबर १९७८ को कलकत्ता में हुई।

■ **प्रमुख फिल्में : मूक** □ *बिलात फेरात/ यशोदा नंदन (१९२१) □ साधु या शैतान (१९२२) □ द मैरेज टॉनिक/ ययाति/ चिन्तामणि (१९२३) □ चरित्रहीन (१९३१) □ एक्सक्यूज मी सर (१९३४) □ विद्रोही (हिंदी/ बंगला १९३५) □ आहूति (१९४१) □ शेष निवेदन (१९४८) □ कार्टून (१९४९)।* ■

सरदार चन्दूलाल शाह

सरदार **चन्दूलाल शाह** अपने जमाने के अकेले करोड़पति फिल्म निर्माता थे। वे अपनी फिल्मों के साथ-साथ अपने शाही खर्चे के लिए भी प्रसिद्ध थे। चन्दूलाल शाह का जन्म १३ अप्रैल १८९८ को गुजरात के जामनगर में हुआ था। बंबई में वाणिज्य स्नातक होने के बाद वे सन् १९२४ में स्टॉक एक्सचेंज में मुलाजिम हो गए। वहीं रहकर उन्होंने मूक फिल्मों के लिए कहानियाँ लिखीं।

आखिर सन् १९२५ में वे फिल्मों की मायावी दुनिया में आ ही गए। उन्होंने सामाजिक विषयों पर कई मूक फिल्में बनाईं। **गुण सुंदरी** उनकी पहली महत्वपूर्ण फिल्म थी। इसमें पत्नी अपने पति को गलत रास्ते से सही रास्ते पर लाती है। बाद में इस मूक फिल्म के आधार पर तीन भाषाओं में फिल्म बनाई। तीनों सफल हुईं। आज भी कई फिल्मों में यह मूल कथा दुहराई जाती है। चन्दूलाल शाह ने एक समय में कई फिल्में बनाईं। उन्होंने एक वर्ष में तेरह मूक फिल्में और सात सवाक् फिल्में बनाकर एक रिकॉर्ड कायम किया। सन् १९,२९ में उन्होंने **मिस गौहर** के साथ रणजीत फिल्म कंपनी बनाई। रणजीत ने कई बड़े कलाकार दिए। वहाँ हर तरह की फिल्में बनती थीं। रणजीत का नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है। इस कंपनी ने कई कलाकारों को बनाया। रणजीत का अनुशासन प्रसिद्ध था। स्टुडियो से रणजीत बुलेटिन प्रकाशित हुआ करता था। चन्दूलाल कॉटन का सट्टा भी खेलते थे। वे रेसकोर्स के महा शौकीन थे।

वे सिर्फ सामाजिक फिल्में ही नहीं बनाया करते थे बल्कि फिल्म जगत की दूसरी गतिविधियों में भी रुचि रखते थे। वे इम्पा (इंडियन मोशन पिक्चर प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन) और फिल्म फेडरेशन ऑफ इंडिया के संस्थापक सदस्य थे। उन्हीं के प्रयत्नों से सन् १९५१ में सेंसर बोर्ड की स्थापना हुई। फिल्मोद्योग के कल्याण के लिए उन्होंने कई काम किए। अकेली मत जइयो के बाद वे फिल्मों से दूर हो गए। उन्हें व्यापार में बहुत नुकसान हुआ। अरसे बाद वे खबरों में तब आए जब एक बस कंडक्टर ने उन्हें धक्का मारकर बस से उतार दिया। सन् १९७५ में उनकी मृत्यु हुई।

■ **प्रमुख फिल्में** : □ फाइव डिवाइन वैंड्स *(१९२५) □ टायपिस्ट गर्ल (१९२६) □ एज्युकेटेड वाइफ/ गुण सुंदरी (१९२७) □ पति-पत्नी (१९२९) □ देवी- देवयानी (१९३१ रणजीत की पहली हिंदी फिल्म) □ विश्व मोहिनी (१९३३) □ कीमती आँसू (१९३५) □ अछूत (१९४०) □ पापी (१९५३)।*

■ ***सिर्फ निर्माता की हैसियत की प्रमुख फिल्में*** *□ भोला शिकार (१९३३) □ तूफान मेल/ वीर बब्रुवाहन (१९३४) □ कॉलेज गर्ल/ रात की रानी (१९३५) □ मतलबी दुनिया/ राज रमणी/ रंगीला राजा (१९३६) □ शमा परवाना (१९३७) □ बन की चिड़िया/ बाजीगर/ रिक्शा वाला (१९३८) □ ठोकर (१९३९) □ दिवाली/ होली/ मुसाफिर (१९४०) □ परदेशी/ ससुराल/ शादी (१९४१) □ भक्त सूरदास (१९४२) □ तानसेन (१९४३) □ भँवरा (१९४४) □ मूर्ति (१९४५) □ राजपुतानी (१९४६) □ छीन ले आजादी (१९४७) □ जोगन (१९५०) □ नीली (१९५०) □ हमलोग (१९५१) □ फुटपाथ (१९५३) □ धोबी डॉक्टर (१९५४) □ जमीन के तारे (१९६२) □ अकेली मत जइयो (१९६३)।*

चारू रॉय

मूक फिल्मों के काल में जिन लोगों ने फिल्में बनाईं और जिन्हें प्रसिद्धि नहीं मिल सकी उनमें **चारू रॉय** (१८९०-१९७१) भी हैं। चारू का जन्म बहरामपुर (पश्चिम बंगाल) में हुआ था। विज्ञान में स्नातक की परीक्षा पास करने के बाद वे ललित कला से जुड़े। उन्होंने 'आनंद बाजार पत्रिका' में पत्रकार और कार्टूनिस्ट की हैसियत से काम किया। कई बंगला नाटकों में उन्होंने मंच सज्जा भी की।

अपने रिश्तेदार हिमांशु राय के आग्रह पर वे फिल्मों में आए। **लाइट ऑफ एशिया** (१९२६) में वे कला निर्देशक थे। उन्होंने 'शिराज' (१९२९) और 'ए थ्रो ऑफ डाइस' (१९३०) में अभिनय भी किया था। उन्होंने चार मूक, तीन हिंदी (डाकू का लड़का, दिल जानी, दोनों १९३५ और राज नटी १९३६) और ६ बंगला फिल्में बनाईं। अपनी पत्नी, अभिनेत्री माया राय के साथ उन्होंने एक फिल्म पत्रिका 'बायस्कोप' (बंगला भाषा में) का संपादन भी किया। न्यू थिएटर्स का प्रसिद्ध प्रतीक चिह्न हाथी उन्हीं ने बनाया था। उनकी बंगला फिल्म 'बंगाली' की तारीफ सत्यजीत राय ने भी की थी। उनकी मृत्यु २८ सितंबर १९७१ को हुई।

फिल्म ए थ्रो ऑव डाइस

सत्येन बोस

बच्चों से गंभीर अभिनय करवाने में सिद्धहस्त **सत्येन बोस** का जन्म २२ जनवरी १९१६ को पूर्णिया, बिहार में हुआ था। कलकत्ता से स्नातक की उपाधि पाने के बाद उन्होंने बैंक और रेलवे में अधिकारी की नौकरी की। विद्यार्थी जीवन में वे नाटकों में रुचि लेते रहे। पिता के पुरातन विचारों के कारण खुलकर सामने नहीं आए।

मित्रों के आग्रह से वे फिल्मों में आए। उनके द्वारा निर्देशित पहली फिल्म थी 'परिवर्तन' (१९४९)। इसमें बाल अपराध पर प्रकाश डाला गया था। कुल तीन बंगला फिल्में बनाने के बाद वे बंबई आए। बंबई में अपनी पहली ही फिल्म 'जागृति' (बंगला फिल्म 'परिवर्तन' का हिंदी संस्करण) में उन्होंने अपना लोहा मनवा लिया। वे हास्य फिल्में निर्देशित करने में भी सिद्धहस्त थे।

चलती का नाम गाड़ी इस बात की गवाही देगी। उनकी फिल्मों में स्टार कास्ट भी नहीं हुआ करते थे। 'दोस्ती' जैसी सफल और साफ-सुथरी फिल्म बनाकर एक नया अध्याय लिखा। करुण फिल्मों पर उनकी पकड़ गहरी थी। उन्होंने बाल चित्र समिति के लिए 'अनमोल तस्वीर' नाम से एक फिल्म बनाई थी जो बहुत पसंद की गई। उनकी मृत्यु ७७ वर्ष की आयु में १९९३ में हुई।

■ **प्रमुख फिल्में :** □ *जागृति/ परिचय (१९५४) □ बंदिश (१९५५) □ बंदी (१९५७) □ चलती का नाम गाड़ी/ सवेरा (१९५८) □ सितारों से आगे (१९५८) □ मासूम/ गर्लफ्रेंड (१९६०) □ दाल में काला/ दोस्ती (१९६४) □ आसरा/ मेरे लाल (१९६६) □ रात और दिन (१९६७) □ आँसू बन गए फूल (१९६९) □ जीवन मृत्यु (१९७०) □ सा रे गा मा/ अनोखी पहचान/ मेरे भैया (१९७२) □ मस्तान दादा (१९७७) □ अनमोल तस्वीर (१९७८) □ बिन माँ के बच्चे/ पायल की झंकार (१९८०) □ तुम्हारे बिना (१९८२)।* ■

देवकी बोस

देवकी कुमार बोस सिर्फ एक रचनात्मक निर्देशक ही नहीं थे, बल्कि एक पत्रकार भी थे। वे बर्दवान के एक साप्ताहिक पत्र **शक्ति** में काम करते थे। उनका जन्म २५ नवंबर १८९८ को बर्दवान में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा कलकत्ता में हुई। असहयोग आंदोलन (१९२१) के दौरान उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी और संघर्ष में शामिल हो गए। उन्होंने रुमाल भी बेचे। इसी व्यापार में उनकी भेंट डीजी से हुई। डीजी उन्हें अपनी फिल्म कंपनी में ले आए। सन् १९२७ से वे मूक फिल्मों के लिए पटकथाएँ लिखने लगे। कुछ फिल्मों में अभिनय भी किया।

वे न्यू थिएटर्स में सन् १९३२ में आए और उनकी पहली फिल्म थी **चंडीदास** (१९३२)। इस फिल्म में उन्होंने पहली बार पार्श्व संगीत का प्रयोग किया। **सीता** फिल्म ने उन्हें प्रसिद्धि दिलाई। समीक्षकों ने इसे सैल्यूलाइड पर कविता कहा। यह भारत की ओर से वेनिस अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में भाग लेने वाली पहली फिल्म थी। इस फिल्म को योग्यता का प्रमाण-पत्र मिला।

देवकी बोस की फिल्में साहित्यिक गंध लिए रहती थीं। उन्हें सन् १९५६ में साहित्य नाटक अकादमी का पुरस्कार मिला था। सन् १९५८ में उन्हें पद्मश्री प्रदान की गई। इसी वर्ष उनके द्वारा निर्देशित फिल्म 'सागर संगमे' को राष्ट्रपति का सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। उन्होंने सन् १९६१ में फिल्मों से संन्यास ले लिया। ११ नवंबर १९७१ को कलकत्ता में उनकी मृत्यु हुई।

■ **प्रमुख फिल्में** *: मूक : □ फ्लेम्स ऑफ फ्लेश (१९२८) □ ब्लाइंड गॉड (१९२९) □ निशीर डाक (१९३२)। अंतिम फिल्म सन् १९४० में टॉकी के रूप में फिर बनाई गई। इसका नया नाम था 'अभिनव'।* ■ ***बंगला-हिंदी :*** *□ चंडीदास (१९३२) □ राजरानी मीरा (१९३३) □ सीता (१९३४) □ इंकलाब (१९३५) □ सुनहरा संसार (१९३६) □ विद्यापति (१९३८) □ सपेरा (१९३९) □ नर्तकी (१९४१) □ मेघदूत (१९४५) □ रत्नदीप (१९५२) □ कवि (१९५४) □ सागर संगमे (१९५९)।* ■

प्रथम और प्रथम

□ **हरिश्चंद्र सखाराम भातवड़ेकर** : प्रथम भारतीय, जिन्होंने ल्युमिएर कैमरा प्राप्त कर एक कुश्ती पर लघु फिल्म का निर्माण किया १८९६/९७

□ **धुण्डीराज गोविन्द फालके** : भारतीय सिनेमा के प्रथम पितामह। भारत की पहली कथा फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' (१९१३) का निर्माण एवं प्रदर्शन किया।

□ **आर्देशिर ईरानी** : प्रथम फिल्म निर्देशक, जिन्होंने भारत की पहली सवाक फिल्म 'आलम आरा' (१९३१) का निर्माण किया।

□ **हिमांशु रॉय** : प्रथम फिल्मकार- एक साथ हिन्दी-अँगरेजी में फिल्म 'कर्मा' का निर्माण। कर्मा पहली भारतीय फिल्म है, जिसका प्रदर्शन विदेश (लंदन) में हुआ।

□ **देबकी बोस** : प्रथम निर्देशक, जिन्होंने दृश्य-श्रव्य का अद्‌भुत मिश्रण पहली बार पर्दे पर प्रस्तुत किया।

□ **प्रमथेश बरुआ** : प्रथम निर्देशक। आपने फिल्मों में पार्श्व-गायन की प्रथा आरम्भ की।

□ **प्रतिमा दासगुप्ता** : भारत की पहली महिला फिल्म निर्देशिका। फिल्म 'पागल' (हिन्दी)।

□ **उदय शंकर** : भारतीय शास्त्रीय नृत्यों पर आधारित प्रथम फिल्म 'कल्पना' के रचयिता निर्देशक।

□ **ख्वाजा अहमद अब्बास** : गीत-रहित तथा नृत्य-रहित फिल्म 'मुन्ना' के प्रथम निर्देशक।

□ **भानुमति** : भारत की पहली महिला, जिन्होंने फिल्म 'चाँदी की रानी' की पटकथा लिखी/अभिनय किया और निर्देशन भी।

□ **गुरुदत्त** : प्रथम निर्देशक, जिन्होंने भारत की पहली सिनेमास्कोप फिल्म 'कागज के फूल' को प्रस्तुत किया।

□ **सरस्वती देवी** : भारत की प्रथम महिला संगीतकार, जिन्होंने बॉम्बे टॉकीज की अनेक फिल्मों के लिए संगीत-सृजन किया।

□ **सुनील दत्त** : भारत की प्रथम प्रयोगवादी एकपात्रीय फिल्म 'यादें' की रचना एवं निर्देशन।

□ **सत्यजीत रॉय** : भारत के प्रथम निर्देशक, जिन्हें अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में 'जूरी' होने का अवसर मिला।

नितिन बोस

भारतीय फिल्मों में पार्श्व गायन की पद्धति शुरू करने का श्रेय **नितिन बोस** को जाता है। उनका जन्म कलकत्ता में २७ अप्रैल १८९७ को हुआ था। उनके पिता ने उन्हें एक मुवी कैमरा भेंट किया, जो उनके लिए सौभाग्यशाली साबित हुआ। वे न्यूज रील निर्माता बन गए। उनकी **रथयात्रा** (१९२१) पर बनी फिल्म एक सौ तीन पौंड में खरीदी गई।

उन्होंने स्वतंत्र छायाकार की हैसियत से फिल्म 'इन्कार्नेशन' (१९२५) में काम किया। मूक फिल्म 'देवदास' (१९२७) के वे छायाकार थे। इस फिल्म में उन्होंने क्रॉस कटिंग का पहली बार प्रयोग किया। सन् १९३० में वे न्यू थिएटर्स में आए और देखते ही देखते एक उच्चकोटि के छायाकार और निर्देशक बन गए। 'धूपछाँव' उर्फ 'भाग्यचक्र' में उन्होंने पहली बार पार्श्वगायन का प्रयोग किया। 'डाकू मंसूर' पर सांप्रदायिकता का आरोप लगाकर उसे प्रतिबंधित कर दिया गया। अंग्रेज सरकार के आग्रह पर उन्होंने क्षयरोग के विरुद्ध फीचर फिल्म 'दुश्मन' बनाई। 'पूरण भगत' के निर्माण के दौरान उनके और बी.एन. सरकार के मतभेद सामने आए। 'काशीनाथ' के निर्देशन के बाद वे न्यू थिएटर्स छोडकर बंबई आए।

बंबई में विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने अच्छी फिल्में दीं। वे पुणे के फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान के अतिथि प्रोफेसर रहे। हिंदुस्तान फोटो लि. के सलाहकार बोर्ड में वे सदस्य थे। उन्होंने कई फिल्म समारोहों में शिरकत की। उन्हें सन् १९७८ में दादा साहेब फालके पुरस्कार मिला था।

प्रमुख फिल्में : *चंडीदास (१९३३) डाकू मंसूर (१९३४) भाग्यचक्र (१९३५) दीदी/ प्रेजिडेंट (१९३७) धरतीमाता (१९३८) दुश्मन (१९३९) लगन (१९४१) काशीनाथ (१९४३) मिलन (१९४७) मशाल (१९५०) दीदार (१९५१) वारिस (१९५४) कठपुतली (१९५७) गंगा-जमना (१९६१) नर्तकी (१९६३) दूज का चाँद (१९६४)।*

सोहराब मोदी

गूँजती आवाज और साफ उच्चारणों के मालिक **सोहराब मोदी** को उनकी ऐतिहासिक फिल्मों के लिए याद किया जाता है। उनका जन्म सन् १८९७ में उत्तरप्रदेश की रियासत रामपुर में हुआ था। उनके भाई रुस्तम टूरिंग टॉकीज चलाते थे। बंबई में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद सोहराब अपने भाई से जा मिले और उत्तरी भारत में सिनेमा दिखाते रहे। पहले विश्वयुद्ध के समय वे नासिक के पास देवलाली में स्थायी तौर पर रहने लगे।

सन् १९२५ से १९३३ तक देवलाली में ही उन्होंने शेक्सपीयर के कई नाटकों को हिंदी में मंचित किया। सन् १९३५ में उन्होंने खुद की फिल्म कंपनी शुरू की और शेक्सपीयर के विश्व विख्यात नाटक **हेमलेट** पर आधारित फिल्म 'खून का खून' (१९३५) बनाई। अगले वर्ष उन्होंने अपनी फिल्म कंपनी का नाम रखा **मिनर्वा मूवीटोन**। इसका प्रतीक चिह्न था दहाड़ता हुआ शेर। और सचमुच, राजसी पोषाक में सोहराब किसी शेर जैसे रौबीले नजर आते थे। इस बैनर के झंडे तले सोहराब मोदी ने भारत के गौरवमय अतीत की झाँकी दिखाने वाली कई ऐतिहासिक फिल्में बनाई। उन्होंने भारत की पहली टेक्नीकलर फिल्म **झाँसी की रानी** बनाई। उन्होंने विदेशी साहित्य पर कई फिल्में बनाई। उनकी संवाद अदायगी अपने आप में एक मिसाल थी।

उन्हें सन् १९७९ में दादा साहेब फालके पुरस्कार दिया गया था। २८ जनवरी १९८६ को उनका निधन हुआ।

प्रमुख फिल्में : *खून का खून (१९३५) सईद- ए- हवस (१९३६) खान बहादुर (१९३७) डायवोर्स/ जेलर/ मीठा जहर (१९३८) पुकार (१९३९) भरोसा (१९४०) सिकंदर (१९४१) फिर मिलेंगे (१९४२) पृथ्वी वल्लभ (१९४३) एक दिन का सुल्तान (१९४५) मँझधार (१९४७) शीशमहल (१९५०) झाँसी की रानी (१९५३) मिर्जा गालिब (१९५४) कुंदन (१९५५) राजहठ (१९५६) नौशेरवान- ए- आदिल (१९५७) जेलर (१९५८) मेरा घर मेरे बच्चे (१९६०) समय बड़ा बलवान (१९६९) मीना कुमारी की अमर कहानी (१९७९)।*

पृथ्वीराज कपूर-वनमाला : फिल्म सिकंदर

हीरालाल सेन

भारत में फिल्म निर्माण के अतीत में **हीरालाल सेन** एक ऐसा नाम है जिससे बहुत कम लोग परिचित हैं। हीरालाल सेन का जन्म अगस्त १८६६ को बाकजुरी, ढाका (बंगलादेश) में हुआ था। १६ वर्ष की उम्र में वे कलकत्ता आए। फोटोग्राफी में उनकी विशेष रुचि थी। उनके छायाचित्र **हुगली नदी पर सूर्यास्त** को स्वर्ण पदक मिला था। अपने भाई मोतीलाल के साथ उन्होंने रॉयल बायस्कोप कंपनी की स्थापना की। उन दिनों कलकत्ता में नाटक खूब खेले जाते थे। सेन बंधु उन्हीं नाटकों का फिल्मांकन किया करते थे। ये फिल्में नाटकों के मध्यांतर में दिखाई जाती थीं। इन प्रयासों ने दर्शकों में सिनेमा के प्रति आकर्षण के बीज रोपे। ये फिल्में बड़े-बड़े लोगों के घर दिखाई जाती थीं। **कवीन्द्र रवीन्द्र** ने भी सेन बंधुओं की फिल्मों का आनंद लिया।

सेन बंधुओं ने कई सूचना पट्ट और वृत्तचित्र बनाए। 'दिल्ली दरबार' (१९१२) वृत्तचित्र को राजनीतिक कारणों से प्रदर्शन की अनुमति नहीं दी गई। बाद में भाई और मित्रों की धोखाधड़ी ने हीरालाल सेन को तोड़ दिया। जिस गोदाम में उनकी फिल्में रखी थीं, वहाँ अग्निकांड हो गया। हीरालाल ने बिस्तर पकड लिया। उन्हें गले का कैंसर हो गया। अंतिम दिनों वे बिस्तर से उठ भी नहीं पाते थे। २७ अक्टूबर १९१७ को उनकी मृत्यु हो गई। सन् १९०१ से लगाकर १९१३ तक उन्होंने १३ मूक फिल्मों का निर्देशन किया। 'अलीबाबा और चालीस चोर' (१९०३) उनकी एकमात्र पूरी लंबाई की फिल्म है।

बिमल रॉय

फिल्म कला और शिल्प का प्रशंसनीय संगम विरले ही फिल्मकारों में देखने को मिलता है। **बिमल रॉय** ऐसे ही फिल्मकार थे जिन्होंने तकनीक को भी कला की खुशबू दी। संवेदनशील फिल्मों के लिए बिमल दा को हमेशा ही याद किया जाएगा।

बिमल रॉय का जन्म ढाका के एक जमींदार परिवार में सन् १९०८ में हुआ था। आजादी के बाद भारत के विभाजन के कारण उनकी जमींदारी जाती रही। बिमल दा ने अपना फिल्मी जीवन न्यू थिएटर्स में कैमरामैन की हैसियत से शुरू किया। देवदास/ मंजिल/ माया/ मुक्ति उनकी प्रमुख फिल्में रहीं। न्यू थिएटर्स में ही उन्होंने हिंदी-बंगला में 'उदयेर पाथे' (हिंदी में हमराही)/ अंजनगढ़/ मंत्रमुग्ध (बंगला) और पहला आदमी (हिंदी) फिल्में बनाईं। न्यू थिएटर्स की हालत खराब होने के बाद वे अपने नौजवान साथियों के साथ बंबई आए। बंबई में उनकी पहली फिल्म थी बॉम्बे टॉकीज की 'माँ'।

अपनी कल्पनाओं को साकार करने के लिए उन्होंने अपनी खुद की फिल्म निर्माण संस्था बिमल रॉय प्रोडक्शन्स शुरू की। इसका प्रतीक चिह्न था बंबई विश्वविद्यालय का राजाबाई टॉवर। बिमल रॉय प्रोडक्शन्स की पहली फिल्म थी **दो बीघा जमीन** जो आज भी मील का पत्थर मानी जाती है। यह फिल्म इटली के नव यथार्थवादी फिल्मकार विटोरियो द सीका से प्रेरित थी। इसे देश-विदेश में कई पुरस्कार मिले। शरतचंद्र की कृतियों ने बिमल दा को काफी प्रभावित किया था। शरत के कई उपन्यासों पर उन्होंने फिल्में बनाई जो सफल हुईं। **देवदास** का नाम आते ही सहगल के देवदास की याद आती है। बिमल रॉय की फिल्म शरत के उपन्यास के ज्यादा निकट थी। इसके अलावा उनकी कई फिल्में बंगाल के अन्य प्रसिद्ध उपन्यासों पर आधारित थीं। बंबई में रहकर उन्होंने हिंदी फिल्मों में बंगाल के दर्शन कराए।

बिमल दा की फिल्में सीधी-सादी, आडम्बर से दूर और यथार्थवादी होती थीं। बंबई में रहकर भी वे बिके नहीं। उन्होंने काले धन का विरोध किया और अपनी फिल्मों में उसे स्थान नहीं दिया। हल्की फिल्मों से उन्होंने सदैव परहेज रखा। उन्होंने फिल्मों को जो गंभीरता दी, वह हर किसी के बस की बात नहीं है। उन्होंने धन कमाने के लिए फिल्में नहीं बनाईं। उनकी सारी फिल्में देखने के बाद इस बात पर आश्चर्य होता है कि उन्होंने 'मधुमति' जैसी फिल्म कैसे और क्यों बनाई। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि 'मधुमति' अच्छी फिल्म नहीं थी।

पटकथा को बिमल-दा महत्वपूर्ण मानते थे। वे अच्छी कहानियों की तलाश में रहते थे। वे यूनाइटेड प्रोड्यूसर्स के संस्थापक सदस्य भी थे। इस फिल्मकार को वह मान्यता नहीं मिली जिसके कि वे हकदार थे। उनकी मृत्यु ७ जनवरी १९६६ को कैंसर से हुई।

■ ***प्रमुख फिल्में : (निर्देशक की हैसियत से)*** *□ हमराही (१९४५) □ अंजनगढ़ (१९४८) □ पहला आदमी (१९५०) □ माँ (१९५२) □ दो बीघा जमीन/ परिणिता (१९५३) □ नौकरी/ बिराज बहू/ बाप-बेटी (१९५४) □ देवदास (१९५५) □ मधुमति/ यहूदी (१९५८) □ सुजाता (१९५९) □ परख (१९६०) □ प्रेम पत्र (१९६२) □ बंदिनी (१९६३)।*

■ ***निर्माता की हैसियत से :*** *□ अमानत (१९५५) □ परिवार (१९५६) □ अपराधी कौन (१९५७) □ उसने कहा था (१९६०) □ काबुलीवाला (१९६१) □ बेनजीर (१९६४) □ दो दूनी चार (१९६८) □ चैताली (१९७५ जिसे ऋषिकेश मुखर्जी ने पूरा किया)।* ■

उदयशंकर : फिल्म कल्पना

उदय शंकर

प्रख्यात नर्तक उदय शंकर ने सिर्फ एक ही फिल्म बनाई 'कल्पना' और फिल्मों के लिए एक नया दालान बना गए। हालाँकि 'कल्पना' एक बड़ी असफल फिल्म रही मगर उसने फिल्मों को एक नया विचार दिया। नृत्य भी फिल्मों का अंग हो सकते हैं यह उन्होंने सिद्ध कर दिया।

उदय शंकर के पूर्वज वर्तमान के बंगलादेश के थे। पिता श्याम सुंदर झालावाड़ (राजस्थान) के दीवान थे। उदयशंकर का जन्म ८ दिसंबर १९०० को उदयपुर में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा उत्तरप्रदेश में हुई और बाद में वे जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट में चले गए। वहाँ से उन्हें प्लास्टिक कला के प्रशिक्षण के लिए लंदन भेजा गया। चित्रकला और नृत्य कला में उन्होंने बहुत परिश्रम किया। आखिर वे नृत्यकला में ही रम गए।

भारत लौटने पर उन्होंने अल्मोड़ा में 'उदय शंकर कल्चर सेंटर' खोला। यहाँ वे नृत्य प्रशिक्षण देते रहे। उनकी पत्नी अमला शंकर (नंदी) भी एक विख्यात नृत्यांगना हैं। पुत्री **ममता शंकर** बंगला फिल्मों की जानी-मानी अभिनेत्री हैं। पुत्र आनंद शंकर संगीतकार हैं। भाई रविशंकर सितार की दुनिया के बादशाह हैं। 'कल्पना' फिल्म ने ही एस.एस. वासन को 'चंद्रलेखा' फिल्म बनाने की प्रेरणा दी।

उदय शंकर को १९७१ में पद्मभूषण की उपाधि मिली। उनकी मृत्यु २६ सितंबर १९७७ को कलकत्ता में हुई। ■

किशोर साहू कृत
हरे काँच की चूड़ियाँ
Hare Kanch Ki Chooriyan

किशोर साहू

किशोर साहू रायगढ़ (म.प्र.) में २२ अक्टूबर १९१५ को पैदा हुए थे। उनके पिता रायगढ़ के राजा के दीवान थे। किशोर साहू ने नागपुर से स्नातक की परीक्षा पास की। विद्यार्थी जीवन में ही वे हिंदी में कहानियाँ लिखने लगे। वे विद्यार्थी आंदोलन में भी सक्रिय रहे।

किशोर साहू की पहली फिल्म थी 'जीवन प्रभात' (१९३७) जिसमें वे देविकारानी के नायक थे। उन्होंने अभिनेत्री स्नेहप्रभा प्रधान से विवाह किया था, जो सफल नहीं हुआ। स्वतंत्र निर्देशक की हैसियत से उनकी पहली फिल्म थी 'कुँवारा बाप' (१९४२) जो अपने समय की प्रसिद्ध हास्य फिल्म थी। उन्होंने कुल अठारह फिल्मों का निर्देशन किया और पचास फिल्मों में अभिनय किया। उनका एक बेटा मॉडलिंग का सितारा था जो एक विमान दुर्घटना में मारा गया। उनकी बेटी नैना ने 'हरे काँच की चूड़ियाँ' और 'पुष्पांजलि' में काम किया था।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ कुँवारा बाप (१९४२) □ साजन/ सिंदूर (१९४७) □ नदिया के पार (१९४८) □ सावन आया रे (१९४९) □ कालीघटा (१९५१) □ हेमलेट (१९५४) □ मयूर पंख (१९५४) □ किस्मत का खेल (१९५६) □ दिल अपना और प्रीत पराई (१९६०) □ घर बसा के देखो (१९६३) □ गृहस्थी (१९६३) □ पूनम की रात (१९६५) □ हरे काँच की चूड़ियाँ (१९६७) □ पुष्पांजलि (१९७०) □ धुएँ की लकीर (१९७४)।* ■

टी.एस. नागभरणा

टी.एस. नागभरणा का जन्म सन् १९५३ में हुआ था। शिक्षा पूरी करने के बाद वे गिरीश कर्नाड और बी.वी. कारंत के सहायक हो गए। बी.वी. कारंत की पुरस्कृत फिल्म 'चोमना डुडी' (१९७५) में नागभरणा सहायक निर्देशक थे।

टी.एस. नागभरणा ने पहली बार 'ग्रहण' (१९७८) का निर्देशन किया। इस फिल्म को कई पुरस्कार मिले। इस फिल्म में राष्ट्रीय एकता का संदेश है। यह जातिवाद के विरुद्ध एक आवाज है। अन्वेषण (१९८०) में बेरोजगारी की त्रासदी बताई गई है। इसे कर्नाटक सरकार का सर्वश्रेष्ठ निर्देशन का पुरस्कार मिला। 'अफोस्ट' में नागभरणा ने उन लोगों के चेहरे का नकाब उतारा है, जो जातिवाद का फायदा उठाकर एक गाँव की फिजा बिगाड़ देते हैं। इसे राज्य सरकार ने पुरस्कृत किया। 'शांत शुशुनला शरीफा' को राष्ट्रीय एकता पर बनी फिल्म का पुरस्कार दिया गया। 'मैसोर मल्लिगे' को भी दो पुरस्कार मिले। टी.एस. नागभरणा का टीवी धारावाहिक 'तेनालीरामा' बहुत लोकप्रिय हुआ था। ■

जी. अरविन्दन

कार्टूनिस्ट से फिल्मकार बने **जी. अरविंदन** का जन्म सन् १९३५ में हुआ था। उन्होंने तेरह वर्ष तक मलयालम साप्ताहिक 'मातृभूमि' में कार्टून बनाए। वे विज्ञान स्नातक थे और उन्हें लोकसंगीत की खासी जानकारी थी। वे स्वयं संगीतकार थे।

जी. अरविंदन की पहली फीचर फिल्म थी 'उत्तरायण' (१९७४)। उनकी फिल्में क्लिष्ट होने के बावजूद सराही जाती थी। उनकी मृत्यु १९९१ में हुई। उन्हें दक्षिण भारत का सत्यजीत राय कहा जाता था।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ उत्तरायण (१९७४) □ कांचन सीता (१९७७) □ थंपू (१९७८) □ कुमट्टी/ एस्थेप्पन (१९७९) □ ओरिडथ (१९८५) □ चिदम्बरम/ वस्तुहारा (१९९०)।* ■

जाह्नु बरुआ

असमिया फिल्मों को नया चेहरा देने वाले **जाह्नु बरुआ** गुवाहाटी विश्वविद्यालय के विज्ञान स्नातक हैं। उन्होंने फिल्म एवं टीवी संस्थान से १९७१ में डिप्लोमा लिया और बच्चों के लिए विज्ञान विषय पर फिल्में बनाने लगे। उन्होंने भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) में जाने के पहले सैटेलाइट के लिए कई कार्यक्रम बनाए।

जाह्नु ने अपनी फिल्मों में राजनीतिक विचारधारा प्रदर्शित की। 'पापोरी' में असम के तत्कालीन आंदोलन का वर्णन है। उन्होंने अपनी फिल्मों में निर्धनों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। लगभग हर साल उनकी फिल्म अपनी विशेषता के साथ आती रही है।

■ **प्रमुख फिल्में** *□ अपरूपा (१९८२) □ अपेक्षा (अपरूपा का हिंदी संस्करण- १९८४) □ पापोरी (१९८६) □ हलोधिया चौराए बाओधान खाई (१९८७) □ बनानी (१९९०)। उन्हें 'हलोधिया...' के लिए राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल मिला। इसी फिल्म के लिए लोकार्नो में चाँदी का तेंदुआ मिला। तोक्यो के अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में इस फिल्म को एशिया की सर्वोत्कृष्ट फिल्म माना गया।* ■

प्रमथेशचन्द्र बरुआ

असम के जमींदार पुत्र **प्रमथेशचन्द्र बरुआ** अपनी एक ही हिंदी कृति 'देवदास' के कारण अमर हो गए। उनकी बाद की हिंदी फिल्में भी लोकप्रिय हुई पर 'देवदास' की बराबरी नहीं कर सकी।

बरुआ का जन्म २४ अक्टूबर १९०३ को हुआ था। उन्हें शुरू से ही शिकार, खेलकूद और संगीत का शौक था। उन्होंने कलकत्ता के प्रजिडेंसी कॉलेज से बी.एस-सी. किया। वे सन् १९२८ में असम विधानसभा के सदस्य मनोनीत हुए और स्वराज्य पार्टी में शामिल हो गए। वे ब्रिटिश डोमिनियन फिल्म्स के निदेशक मंडल में लिए गए। उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय की फैलोशिप भी मिली थी। वे पेरिस में सिनेमेटोग्राफी सीखने के लिए चुने गए। वापस आने पर बरुआ फिल्म्स की स्थापना की। बाद में वे न्यू थिएटर्स में चले गए। वहाँ सन् १९३९ तक १४ बंगला और ७ हिंदी फिल्मों का निर्देशन किया। 'देवदास' के बंगला संस्करण में उन्होंने नायक की भूमिका की। हिंदी संस्करण में एक छोटी सी भूमिका की। उनका निधन २९ नवंबर १९५१ को हुआ।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ बंगाल (१९३३) □ देवदास (१९३५) □ गृहदाह/ मंजिल (१९३६) □ मुक्ति (१९३७) □ अधिकार (१९३८) □ जवाब (१९४२) □ अमीरी (१९४५)।* ■
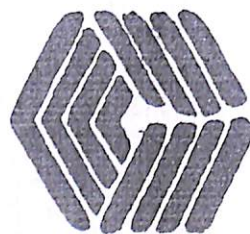
दादा कोंडके

मराठी फिल्मों को नई जिंदगी देने वाले **दादा कोंडके** ने लगातार नौ हिट फिल्में देकर अपना नाम गिनीज बुक में दर्ज करवाया है। दादा कोंडके ने जब फिल्मों में कदम रखा, तब मराठी फिल्में दम तोड़ रही थीं। मध्यम वर्ग नाटकों में व्यस्त था। दादा ने 'घाटी' (गवांर) चरित्र गढ़कर अपने-आप को आम आदमी के प्रतिनिधि का ओहदा दिया। सोंगाड्या (१९७१) उनकी पहली फिल्म थी। इसके पहले उनका नाटक 'विच्छा माझी पुरी करा' धमाल मचा रहा था। इसमें राजनीति पर करारा व्यंग्य होता था। सामाजिक परिस्थिति के अनुसार इसके संवाद हर प्रयोग में बदलते रहते थे। आशा भोसले ने यह नाटक साठ बार देखा और दादा का नाम भालजी पेंढारकर को सुझाया। भालजी की ही सलाह पर वे फिल्मों में नायक बने। 'सोंगाड्या' बेचने में उन्हें पसीना आ गया। एक बार प्रदर्शित हुई तो बाद में दादा ने कभी मुड़कर नहीं देखा। दादा कोंडके ग्रामीण जीवन की संस्कृति दिखाते हैं। उनकी पौनी॰ पतलून पर जो लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे वे ही अब उसका शहरी स्वरूप बरमूडा पहनकर क्लबों में जाते हैं। द्वि-अर्थी संवादों पर शोर मचाने वाले अब 'सरकाई ल्यो खटिया' पर खामोश हैं क्योंकि यह अश्लीलता शहरी लोग लाए हैं। दादा हमेशा कम बजट में फिल्म बनाते हैं। इसके लिए वे छोटे सितारे लेते हैं। कम साजिंदों का ऑर्केस्ट्रा लेते हैं। शॉट बदलने के दौरान समय खराब नहीं करते। उन्हें सेंसर का कई बार कोपभाजन बनना पड़ा। 'पांडू हवलदार' पर इसलिए आपत्ति ली गई थी कि इसमें हवलदार एक लाख रुपए की रिश्वत लेने से इंकार कर देता है। इस ईमानदारी पर सेंसर और पुलिस मुख्यालय दोनों ने ही आश्चर्य व्यक्त किया। दादा ने 'अंधेरी रात में दीया तेरे हाथ में' से हिंदी फिल्मों में कदम रखा। तीन चार फिल्में बनाने के बाद वे खामोश हो गए हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी फिल्मों में चरित्रों के सिर्फ बटन खोले थे, आज तो यार लोग कपड़े उतारकर फेंक रहे हैं।

● **प्रमुख फिल्में:-** *सोंगाड्या/ पांडू हवलदार/ आली अंगावर/ बोट लावीन तिथ गुदगुल्या/ ह्योच नवरा पाहिजे/ राम-राम गंगाराम/ मुका घ्या मुका/ आगे की सोच/ अंधेरी रात में दीया तेरे हाथ में।*

जी.वी अय्यर

नंगे पैरों वाले फिल्म निर्देशक जी.वी. अय्यर प्रायोगिक फिल्में बनाते हैं। उन्होंने भारत की **पहली संस्कृत फिल्म 'आदिशंकराचार्य'** निर्देशित की थी जिसे राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला था।

जी.वी. अय्यर ने 'हमसीने' से आलोचकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इसके बाद उन्होंने कन्नड़ में चार कलात्मक फिल्में बनाई। चारों की निर्माण लागत बहुत कम है। जी.वी. की फिल्मों में दर्शन शास्त्र का गहरा असर देखा जा सकता है। 'भगवद् गीता' उनके कठोर परिश्रम की परिणति है। यह फिल्म संस्कृत में है। इसे फिल्माने के लिए वे चौदह हजार फुट की ऊँचाई पर गए। इस फिल्म की पटकथा उन्होंने ग्यारह बार लिखी। 'भगवद् गीता' को राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम की आर्थिक सहायता से बनाया गया है। इसका कर्ज माफ कर दिया गया है।

पहली संस्कृत फिल्म 'आदि शंकराचार्य'

शाजी एन. करुण

फिल्म एवं टीवी संस्थान पुणे से सिनेमेटोग्राफी में स्वर्ण पदक पाने के बाद वे जी. अरविंदन की फिल्मों में छायांकन करने लगे। इसके अलावा अडूर गोपालकृष्णन/ केजी जॉर्ज/ एम.टी. वासुदेवन नायर और पद्मराजन के साथ काम किया।

शाजी ने कई वृत्तचित्र बनाए। छायांकन के लिए कई पुरस्कार जीते। वर्तमान में वे केरल राज्य फिल्म विकास निगम के चित्रांजलि फिल्म स्टुडियो के व्यवस्थापक हैं।

'पिरावी' उनकी पहली फीचर फिल्म है। यह फिल्म एक सत्य घटना पर आधारित है। इसके वयोवृद्ध नायक प्रेमजी को १९८८ के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला है। पिरावी ने ६० से अधिक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार जीते हैं और अपनी लागत वसूली है। शाजी की नई फिल्म 'स्वयम्' आधी श्वेत-श्याम तथा आधी रंगीन है। इसमें एक परिवार की गाथा है। उसकी गरीबी श्वेत-श्याम में तथा संपन्नता रंगीनियों में चित्रित की गई है।

गिरीश कर्नाड

गिरीश कर्नाड का जन्म सन् १९३८ में महाराष्ट्र में हुआ था। वे कर्नाटक विश्व विद्यालय के स्नातक हैं। उनके विषय थे गणित और सांख्यिकी। वे छात्रवृत्ति पर ऑक्सफोर्ड गए थे। बाद में वे भारत में ऑक्सफोर्ड प्रेस में काम करने लगे। उन्हें होमी भाभा की फैलोशिप भी मिली। कुछ वर्षों तक वे फिल्म एवं टीवी संस्थान, पुणे के निदेशक भी रहे।

गिरीश कर्नाड ने कई कन्नड़ नाटक लिखे हैं। इनका दूसरी भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। उन्हें सन् १९७१ में संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार भी मिला, जो नाट्य लेखन के लिए था।

गिरीश कर्नाड की पहली फिल्म 'संस्कार' को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला। इस फिल्म में उन्होंने अभिनय भी किया। इसके बाद उन्होंने रंगमंच और फिल्मों में बहुत काम किया। उन्होंने कई हिंदी फिल्मों में अभिनय भी किया। भारत सरकार ने उन्हें १९७४ में पद्मश्री और १९९२ में पद्म भूषण की उपाधि से अलंकृत किया है। गोधूलि/ स्वामी/ निशांत/ कोण्डुरा उनकी महत्वपूर्ण फिल्में हैं।

मिसीसिपी मसाला : मीरा नायर की फिल्म
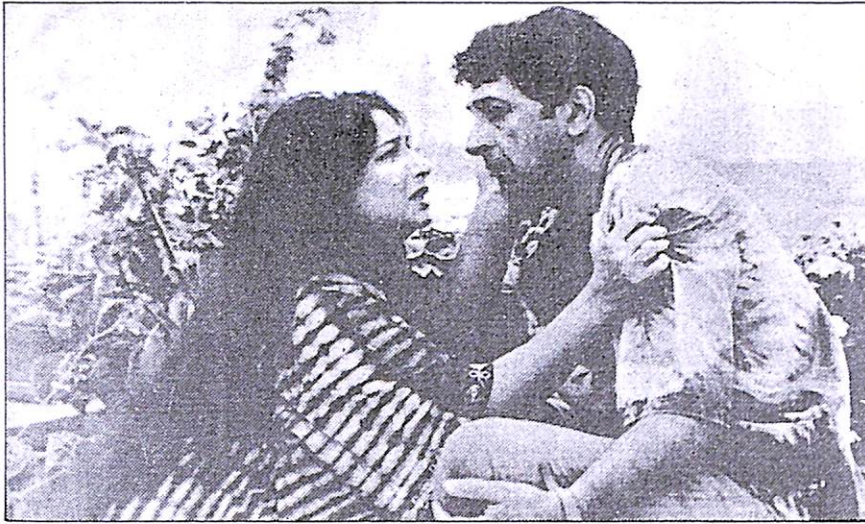
मीरा नायर

तीस बरस की उम्र में अंतरराष्ट्रीय ख्याति पाने वाली **मीरा नायर** का जन्म पंजाब में हुआ था। उन्होंने शिमला, दिल्ली और हॉर्वर्ड कॉलेज में शिक्षा पाई।

मीरा का शोध कार्य 'जामा मस्जिद स्ट्रीट जर्नल' (१९७९) जो कि पुरानी दिल्ली की जामा मस्जिद के मुस्लिम समुदाय के बारे में है, कई पुरस्कार जीत चुका है।

उन्होंने भारत की कैबरे नर्तकियों पर एक वृत्तचित्र **इंडियन कैबरे** बनाया जो देश-विदेशों में चर्चित हुआ। 'सो फार फ्रॉम इंडिया' नामक वृत्तचित्र कई अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सवों में दिखाया जा चुका है। इसे कई पुरस्कार मिले हैं। 'बॉय और गर्ल' ने दर्शकों को झकझोरा। 'सलाम बॉम्बे' ने उन्हें आम भारतीय दर्शक से परिचित करवाया। उनकी अन्य फिल्म है 'मिसिसिपी मसाला'। ■

गुलजार

बिमल रॉय के सहायक **गुलजार** एक कवि, पटकथाकार, निर्माता और निर्देशक हैं। फिल्मोद्योग के वर्तमान के वे सबसे कल्पनाशील गीतकार हैं। 'काबुलीवाला' (१९६१) में 'गंगा आए कहाँ रे' से उन्होंने फिल्मों में गीत लिखने की शुरूआत की। उनके गीतों की खुशबू अलग ही है। उनके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'मेरे अपने' से उन्होंने निर्देशन के क्षेत्र में कदम रखा। उनके निर्देशन में बिमल रॉय की भावुकता नजर आती है। 'मीरा' में उन्होंने चमत्कार दिखाने की बजाए बौद्धिकता का सहारा लिया। लंबी-लंबी फिल्मों के दौरान उन्होंने 'अचानक' जैसी कम अवधि की फिल्म बनाई। बच्चों के लिए उन्होंने 'किताब' निर्देशित की। उन्हें 'कोशिश' के लिए सर्वश्रेष्ठ पटकथा का, 'मौसम' में सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का और 'इजाजत' में सर्वश्रेष्ठ गीतकार का पुरस्कार मिला है।

दूरदर्शन पर उनके 'पोटली बाबा की', 'जंगल बुक' आदि के गीत लोकप्रिय हुए हैं।

■ *प्रमुख फिल्में : □ मेरे अपने (१९७१) □*

कोशिश (१९७२) □ अचानक/ परिचय (१९७३) □ आँधी/ खुशबू (१९७५) □ मौसम (१९७६) □ किताब/ किनारा (१९७७) □ अंगूर/ नमकीन (१९८२) □ इजाजत (१९८८) □ लेकिन (१९९०) □ लिबास (१९९२)। ■

सईद अख्तर मिर्जा

समांतर फिल्मों के पक्षधर **सईद अख्तर मिर्जा** का जन्म १९४३ में हुआ। विज्ञापन फिल्मों में सर खपाने के बाद उन्होंने फिल्म एवं टीवी संस्थान, पुणे से निर्देशन में डिग्री पाने के बाद बनाई अपनी पहली फिल्म **अरविन्द देसाई की अजीब दास्तान** (१९७८)। यह एक उच्च मध्यम वर्ग के युवक की कहानी है जो हिंसा का मूकदर्शक है। 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है' (१९८०) में अल्पसंख्यक वर्ग की समस्याएँ उठाई गई हैं। 'मोहन जोशी हाजिर हो' (१९८४) में कानून की पेंचीदगियों में त्रस्त वृद्ध दंपति की कहानी है। 'सलीम लंगड़े पे मत रो' (१९८९) में स्पष्ट शब्दों में साम्प्रदायिकता का विरोध किया गया था। 'अरविंद' के समय मध्यम वर्ग की हिंसा के प्रति निर्लिप्तता से ही 'सलीम' को शह मिली। उन्हें लंबे तथा अटपटे नामधारी फिल्में बनाना पसंद है।

सईद ने दूरदर्शन पर कई धारावाहिक बनाए। सभी चर्चित हुए। 'नुक्कड़' अपनी आक्रामकता के साथ-साथ संवेदनशील भी था। मध्यम और निम्न वर्ग में यह धारावाहिक बहुत आत्मीय बन गया था। 'इंतजार', 'मनोरंजन' और 'सर्कस' ने खासी लोकप्रियता प्राप्त की। सईद आज के समाज के गिरते मूल्यों पर चिंतित हैं और यही चिंता उनकी फिल्मों में नजर आती है। ■

सुधीर मिश्र

सुधीर मिश्र ने मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर की उपाधि ली है। नाटकों के सहारे वे दिल्ली से बंबई आए। यह बात सन् १९८० की है। उनकी पहली फिल्म 'ये वो मंजिल तो नहीं' (१९८७) ने उन्हें दो पुरस्कार दिलवाए- सर्वश्रेष्ठ फिल्म का और सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का। 'मैं जिंदा हूँ' (१९८८) को सामाजिक विषय पर सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। 'धारावी' (१९९२) को सर्वश्रेष्ठ हिंदी फिल्म, सर्वश्रेष्ठ संपादन (रेणु सलूजा) और सर्वश्रेष्ठ संगीत (रजत ढोलकिया) के पुरस्कार मिले।

उन्होंने दूरदर्शन के लिए स्व. रांघेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' पर इसी नाम से धारावाहिक बनाया। आप मूलतः मध्यप्रदेश वासी हैं और आपके भाई सुधांशु भी फिलमकार हैं। ■

डॉ. भवेन्द्रनाथ सैकिया

वर्तमान फिल्मकारों में **डॉ. भवेन्द्रनाथ सैकिया** सबसे अधिक पढ़े-लिखे हैं। उनका जन्म १९३२ में असम के नौगाँव में हुआ था। उन्होंने गुवाहाटी विश्वविद्यालय से भौतिक शास्त्र में बी.एस-सी. ऑनर्स किया। एम.एस-सी. कलकत्ता विश्वविद्यालय से और पी-एच.डी. लंदन से। उन्होंने इंपीरियल कॉलेज लंदन से डिप्लोमा भी हासिल किया। वह वर्षों तक गुवाहाटी में भौतिक शास्त्र के रीडर रहे हैं।

डॉ. सैकिया ने कई पुस्तकें लिखीं। नाटक खेले। आकाशवाणी पर प्रसारित किए। असम मोबाइल थिएटर ने उनके चौदह नाटक खेले। उन्हें साहित्य अकादमी, बंगीय साहित्य परिषद् ने पुरस्कृत किया। वे कई साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थाओं से संबंधित हैं। वे 'प्रतीक' पत्र के मुख्य संपादक और 'सफुरा' पत्र के संपादक हैं। उन्होंने असम में फिल्म स्टुडियो कायम कराया है। ऐसे बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी डॉ. सैकिया ने जब फिल्में बनाई, तो उस क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रशंसा पाई। उनकी लगभग हर फिल्म देश-विदेश में पुरस्कृत हुई। कार्लोवीवारी/ स्पेन/ फ्रांस/ उत्तरी कोरिया/ अल्जियर्स में उनकी फिल्मों को पुरस्कार मिले हैं। भारत में उनकी छह फिल्मों को रजत कमल मिला। □ कोलाहल □ संध्याराग □ अनिर्वाण □ अग्नि स्नान □ सरोथी और □ आवर्तन। ■

भारती राजा

भारती राजा का दिल पढ़ाई- लिखाई में नहीं लगता था। जिंदा रहने के लिए उन्होंने बहुत पापड़ बेले। आखिर उन्होंने फिल्मों में जाने का फैसला किया। कुछ निर्देशकों के सहायक रहे।

उनकी पहली फीचर फिल्म थी 'पतिनारू वैयतिनेले' (१९७७) जिसे तमिलनाडु सरकार का और केंद्र सरकार का पुरस्कार मिला। उनकी अन्य फिल्में हैं सिगप्पू/ रोजाक्कल (रेड रोज), निजालगल/ अलाइगल ऊइवतिलाई/ कैदियिन डायरी। उनकी फिल्मों में काव्यात्मकता और यथार्थता का संतुलित मिश्रण है।

भारती राजा की फिल्म 'मुदाल मरियादाई' (१९८५) ने उन्हें दो पुरस्कार दिलवाए। सर्वश्रेष्ठ फिल्म का और सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का। 'वेदम् पुतितु' को सन थॉम पुरस्कार मिला। ■

अरुण कौल

अरुण कौल ने मृणाल सेन, ख्वाजा अहमद अब्बास और सुखदेव के सान्निध्य में निर्देशन का सबक सीखा है। भुवन शोम/ इंटरव्यू/ एक अधूरी कहानी में वे सहायक निर्देशक थे। बुद्धदेव दासगुप्ता के साथ 'अंधी गली' में वे सहनिर्देशक थे। 'इजाजत' और 'लेकिन' में गुलजार को पटकथा लिखने में मदद की। वे फिल्म सोसायटी आंदोलन से जुड़े रहे हैं। उन्होंने 'क्लोज अप' नाम से गंभीर सिनेमा पर सामग्री प्रकाशित करने वाली पत्रिका का संपादन भी किया है। 'दीक्षा' उनकी पहली फिल्म है जिसे राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं। मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम ने भी इस फिल्म को पुरस्कृत किया है। 'दीक्षा' एक पुरस्कृत कन्नड़ फिल्म 'घटश्राद्ध' पर आधारित है।

ऋषिकेश मुखर्जी

बदलते परिवेश में भी साफ-सुथरी और मनोरंजक फिल्में बनाने वाले ऋषिकेश मुखर्जी न्यू थिएटर्स की देन हैं। ऋषि-दा का जन्म ३० सितंबर १९२२ को हुआ। स्नातक होने के बाद वे आकाशवाणी से जुड़े। न्यू थिएटर्स में आठ वर्ष तक रहे। वहाँ उन्होंने संपादन में निपुणता हासिल कर ली।

जब बिमल रॉय न्यू थिएटर्स छोड़कर आए

तो उनके साथ ऋषि-दा भी हो लिए। उन्होंने कई फिल्मों की पटकथाएँ लिखीं। संवाद लिखे। निर्देशन किया। माँ/ बाप-बेटी/ दो बीघा जमीन/ गंगा/ चेम्मीन जैसी फिल्मों का संपादन किया। वे फिल्म सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष भी थे। टीवी के लिए भी उन्होंने कुछ सीरियल बनाए।

ऋषि-दा के पात्र आपस में जल्दी ही आत्मीय संबंध बना लेते हैं। उनकी फिल्मों में खलनायक भी सहृदय होते हैं (मेम दीदी)। उनकी पहली फिल्म 'मुसाफिर' एक प्रयोगवादी फिल्म थी। बाद की फिल्मों में उन्होंने अपने आपको दोहराया है।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ मुसाफिर (१९५७) □ अनाड़ी (१९५७) □ अनुराधा (१९६०) □ छाया/ मेम दीदी (१९६१) □ आशिक/ असली-नकली (१९६२) □ साँझ और सवेरा (१९६४) □ अनुपमा (१९६६) □ मँझली दीदी (१९६७) □ आशीर्वाद (१९६८) □ सत्यकाम/ आनंद (१९७०) □ बुड्ढा मिल गया/ गुड्डी (१९७१) □ बावर्ची (१९७२) □ अभिमान/ नमक हराम (१९७३) □ मिली/ चुपके- चुपके (१९७५) □ अर्जुन पंडित (१९७६) □ आलाप (१९७७) □ नौकरी (१९७८) □ गोलमाल/ जुर्माना (१९७९) □ खूबसूरत (१९८०)।* ■

बालू महेन्द्र

फिफ्टी प्लस की ओर बढ़ते हुए फिल्मकार **बालू महेन्द्र** ने तमिल/ मलयालम/ कन्नड और हिंदी में फिल्में बनाई हैं। वे फिल्म एवं टीवी संस्थान, पुणे से सिनेमेटोग्राफी में स्वर्ण पदक विजेता हैं। बाद में उन्होंने रामू करिआत/ बापू/ विश्वनाथ के सहायक का काम किया और उनकी फिल्मों का छायांकन किया।

बालू महेन्द्र की स्वतंत्र निर्देशक के रूप में पहली फिल्म थी 'कोकिला' (कन्नड) जिसे राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। उनकी बाद की कई फिल्मों को राष्ट्रीय पुरस्कार मिले।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ कोकिला (कन्नड) □ मुन्द्रय पिराई/ अजियत कोलांगाल/ वीडु (तमिल) □ आलांगल (मलयालम) □ निरीक्षण (तेलुगु) □ सदमा (हिंदी)* ■

फ्रेंज ऑस्टिन

हिंदी फिल्मों का निर्देशन गैर हिंदी निर्देशक करें यह तो आम बात है, मगर एक जर्मन व्यक्ति जब हिंदी फिल्मों का निर्देशन करे, तो अजीब लगता है। **फ्रेंज ऑस्टिन** ने हिमांशु राय के साथ मूक फिल्म 'लाइट ऑफ एशिया' (१९२५) बनाने के पहले फोटोग्राफी में महारत हासिल कर ली थी और जर्मनी में ही कुछ मूक फिल्में बनाई। पहले महायुद्ध के दौरान वे न्यूजरील कैमरामेन थे।

भारत आने के बाद उन्होंने कुल सोलह सामाजिक फिल्में बॉम्बे टॉकीज के लिए बनाई। दूसरे महायुद्ध के दौरान फ्रेंज ऑस्टिन को ब्रिटिश सरकार ने भारत में गिरफ्तार कर लिया था। उनकी अंतिम फिल्म 'कंगन' उनके भारतीय सहायकों ने पूरी की। रिहाई के बाद उन्हें जर्मनी भेज दिया गया। वहाँ वे दूसरे काम देखने लगे। बॉम्बे टॉकीज के लिए उनके द्वारा निर्देशित फिल्में पूरी तरह भारतीय परिवेश की थी।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ लाइट ऑफ एशिया (मूक १९२५) □ शिराज (मूक १९२८) □ थ्रो ऑफ डाइस (मूक १९३०) □ जवानी की हवा (हिंदी १९३५) □ अछूत कन्या/ जन्मभूमि/ जीवन नैया/ ममता/ मियाँ-बीवी/ इज्जत (हिंदी १९३६) □ जीवन प्रभात/ प्रेम कहानी/ सावित्री (हिंदी १९३७) □ भाभी/ निर्मला/ वचन (हिंदी १९३८) □ दुर्गा/ नवजीवन/ कंगन (हिंदी १९३९)।* ■

बुद्धदेव दासगुप्ता

बुद्धदेव दासगुप्ता का जन्म १९४४ में हुआ था। उन्होंने १९६८ से १९७६ तक अर्थशास्त्र पढ़ाया। वे एक कवि भी हैं और उनके पाँच कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। फीचर फिल्मों में वे सन् १९७८ में आए। उनकी पहली फिल्म थी 'दूरत्व'। हिंदी में बनाई गई उनकी फिल्म 'बाघ-बहादुर' ने कई राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किए हैं। उनकी फिल्मों में लोककला- संस्कृति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बंगला फिल्मों के आप बुद्धिजीवी फिल्मकार माने जाते हैं। ● *प्रमुख फिल्में:-* □ *दूरत्व (१९७८)* □ *नीम अन्नपूर्णा (१९७९)* □ *गृहयुद्ध (१९८१)* □ *शीत ग्रीष्मेर स्मृति (१९८२)* □ *अंधी गली (हिंदी १९८४)* □ *फेरा (१९८७)* □ *बाघ बहादुर (हिंदी- १९८९)* □ *तहादेर कथा (१९९०)।* ■

फिरोज खान

खान बंधुओं में सबसे प्रतिभाशाली **फिरोज खान** ने अपना फिल्मी जीवन अभिनेता के रूप में 'रिपोर्टर राजू' से शुरू किया। मारधाड़ की कुछ फिल्मों में काम करने के बाद उन्होंने निर्देशक बनने की सोची और पहली फिल्म दी 'अपराध'। इस फिल्म की सफलता के बावजूद अपनी दूसरी फिल्म बनाने में उन्हें तीन साल लगे। वे तीस साल से फिल्मों में हैं मगर सिर्फ पचहत्तर फिल्मों में काम किया है। फिरोज खान की फिल्मों में थ्रिल रहता है। 'धर्मात्मा' में बुजकशी थी, 'कुर्बानी' में कार रेस थी। उनकी सबसे महँगी फिल्म थी **'दयावान'** जो तमिल की फिल्म 'नायकन' का हिंदी संस्करण थी। यह फिल्म उनकी सबसे असफल फिल्म रही। फिरोज स्टार के आगे झुकते नहीं। 'जाँबाज' में उन्होंने अपने समय की सबसे लोकप्रिय अभिनेत्री श्रीदेवी को लिया मगर मध्यांतर के पहले ही उसे मार दिया। ऐसा दुस्साहस वे ही कर सकते हैं। उन्होंने बिद्दू, नाजिया हसन, सपना मुखर्जी और चन्नी सिंह को भारतीय दर्शकों से परिचित करवाया। ● *प्रमुख फिल्में-* □ *अपराध (१९७२)* □ *धर्मात्मा (१९७५)* □ *कुर्बानी (१९८०)* □ *जाँबाज (१९८६)* □ *दयावान (१९८९)* □ *यल्गार (१९९२)।* ■

अपर्णा सेन

विख्यात बंगला समीक्षक और फिल्मकार चिदानंद दासगुप्त की पुत्री **अपर्णा सेन** ने सत्यजीत राय की फिल्म 'तीन कन्या' (१९६०) के एक भाग 'समाप्ति' में पहली बार कैमरे के सामने अभिनय किया। (इसी कथानक पर हिंदी में 'उपहार' फिल्म बनी है।) वे स्कूली दिनों से ही नाटकों में भाग लेती थीं। बंगला के अलावा कुछ हिंदी फिल्मों (विश्वास, सगीना) में भी उन्होंने अभिनय किया।

फिल्म परमा : अपर्णा सेन-राखी

वे 'छत्तीस चौरंगी लेन' में पहली बार निर्देशिका बनीं। इस फिल्म में उन्होंने पुराने दिनों में जीने वाली अंग्रेज महिला को केंद्र बनाया। इसे मनीला अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव का ग्राँ-प्री पुरस्कार मिला। 'परमा' (१९८५) ने बंगाल की मध्यमवर्गीय महिलाओं में खलबली मचा दी। औरत की सेक्स की आजादी का विचार उन्हें सहन नहीं हुआ। अपर्णा की इन दोनों फिल्मों में औरत का अकेलापन दर्शाया गया है। 'सती' (१९८८) में उन्नीसवीं सदी के रूढ़िवादी बंगाल का चित्रण है जिसमें एक गूँगी लड़की को पेड़ से ब्याह देने का रिवाज है। अपर्णा सेन ने एक टेलीफिल्म 'पिकनिक' भी बनाई है। ■

सई परांजपे

सई परांजपे नाटक, टीवी और फीचर फिल्मों में समान रूप से सफल हैं। उनके पिता रूसी थे और माँ मराठी। उनका बचपन ऑस्ट्रेलिया में गुजरा। उन्होंने अरुण जोगलेकर से विवाह किया मगर वह निभ नहीं पाया। उनकी बेटी विनी परांजपे दूरदर्शन पर व्यस्त रहती हैं।

सई ने बच्चों के नाटकों के लिए बहुत काम किया। बच्चों के लिए उन्होंने 'जादू का शंख' और 'द लिटिल टी शॉप' फिल्में बनाई। हिंदी में 'चश्मे बद्दूर', 'कथा', 'स्पर्श' और 'दिशा' उनकी महत्वपूर्ण फिल्में हैं।

दूरदर्शन के लिए उन्होंने 'अंगूठाछाप', 'अड़ोस-पड़ोस' धारावाहिक बनाए। इन दिनों 'हम पंछी एक चाल के' दूरदर्शकों को हँसा रहा है। सई की विशेषता उनकी हास्य पर पकड़ है। वे घिसे-पिटे प्रसंगों से भी चमत्कार दिखाती हैं। ■

मंसूर हुसैन

निर्माता-निर्देशक नासिर हुसैन के बेटे **मंसूर हुसैन** बंबई के आय.आय.टी. के इंजीनियर हैं। उच्च शिक्षा के लिए वे अमेरिका गए थे। भारत आने पर उन्होंने वीडियो निर्माण शुरू किया। इसी कारण वे फिल्मों में आए। मंसूर हुसैन की पहली फिल्म **'कयामत से कयामत तक'** ने फिल्मोद्योग में छाई निराशा को दूर किया। इस फिल्म ने कुल सात फिल्म फेयर पुरस्कार जीते। राष्ट्रीय पुरस्कारों में इसे दो पुरस्कार मिले-श्रेष्ठ निर्देशन का और लोकप्रिय फिल्म का। यह फिल्म अपनी मासूमियत के कारण दर्शकों के दिल में घर कर गई। मंसूर की दूसरी फिल्म है, **'हम हैं राही प्यार के'**। मारधाड़ और अश्लील फिल्मों की भीड़ में इस फिल्म ने अलग छाप छोड़ी है। सिर्फ दो ही फिल्में देकर मंसूर ने यह सिद्ध कर दिया है कि फिल्म को सफल बनाने का कोई खास नुस्खा नहीं होता। वही फिल्म सफल हो सकती है, जो दर्शकों को अपील करे। अपने पिता की तरह मंसूर भी फिल्मों के माध्यम से जनता का मनोरंजन करने में विश्वास रखते हैं।

विजया मेहता

विजया मेहता का नाम लंबे अरसे से मराठी नाटकों से जुड़ा है। उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि हासिल की है। वे यू.के. से रंगमंच शिल्प पढ़ी है। उन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव का प्रदर्शन जर्मनी में किया।

श्याम बेनेगल उन्हें हिंदी फिल्मों में ले आए और वे पहली बार 'कलयुग' (१९८०) में पर्दे पर आईं। गोविंद निहलानी ने उन्हें 'पार्टी' (१९८४) में एक छोटी भूमिका दी मगर वे इसी भूमिका में नोक्यो अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव (१९८४) का सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार ले गईं।

रंगमंच और फिल्मों के बाद वे दूरदर्शन पर आईं। दूरदर्शन के लिए उन्होंने 'स्मृति चित्रे' (१९८३) फिल्म बनाई जिसे मराठी की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। 'राव साहेब' (१९८५) उनके निर्देशन की चरम सीमा थी। इसमें परंपरावादी मराठी समाज का चित्रण था। इसमें उन्होंने मौसी का चरित्र निभाया जिसके लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री का पुरस्कार भी मिला। 'पेस्टनजी' (१९८७) में उन्होंने पारसी समाज पर नजर डाली। वे स्वयं पारसी व्यक्ति से विवाहित हैं। 'पेस्टनजी' की कहानी फिल्म फेयर के पूर्व संपादक बी.के. करंजिया की है।

विजया मेहता की दो टेलीफिल्में 'शाकुंतलम्' और 'वाडा चिरेबन्दी' (इसी नाम के नाटक पर आधारित) दूरदर्शन पर दिखाई जा चुकी हैं।

मेहबूब खान

कर्म और भाग्य में समान रूप से विश्वास करने वाले **मेहबूब खान** अपनी फिल्मों में भारतीयता पर जोर देते थे। उनका जन्म बिलिमोरा, गुजरात में सन् १९०९ में हुआ था। पिता पुलिस विभाग में थे। सोलह वर्ष की

उम्र में मेहबूब भागकर बंबई आ गए और फिल्मों में काम पाने के लिए स्टुडियो-दर-स्टुडियो भटकने लगे। इम्पीरियल स्टुडियो में उन्हें तीस रुपए प्रतिमाह पर एक्स्ट्रा की नौकरी मिल गई। 'अली बाबा चालीस चोर' के चालीस चोरों में वे एक चोर बने थे। नादानी की वजह से वे पीपे में दिन भर छुपे रहे। उन्हें फिल्म तकनीक का ज्ञान नहीं था।

सन् १९३५ में उन्होंने सागर फिल्म कंपनी की फिल्म 'जजमेंट ऑफ अल्लाह' से स्वतंत्र फिल्म निर्देशन किया। कुछ फिल्में निर्देशित करने के बाद सन् १९४२ में अपनी मेहबूब प्रोडक्शन शुरू की। पहली फिल्म थी **नजमा।** मेहबूब की फिल्में शुरू होती थी एक शेर से 'मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है, वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है'। और फिर दृश्य सामने आता है हंसिया-हथौड़े का। मेहबूब अनपढ़ थे। वे साम्यवाद नहीं जानते थे। उनकी संस्था का बोध चिह्न तो मेहनतकशों का था। वे खुदा को भी मानते थे और खुद को भी। 'अंदाज' ने भारतीय फिल्मों को मॉडर्न बनाया। 'आन' ने विदेशों में भारतीय फोटोग्राफी का नाम ऊँचा किया। 'मदर इंडिया' को करोड़ों लोगों ने देखा और सराहा। इसे सबसे ज्यादा दर्शकों ने देखा। मेहबूब की मृत्यु २७ मई १९६४ को हुई।

प्रमुख फिल्में : *जजमेंट ऑफ अल्लाह (१९३५) डेक्कन क्वीन/ मनमोहन (१९३६) जागीरदार (१९३७) एक ही रास्ता (१९३९) औरत (१९४०) रोटी (१९४२)।*

मेहबूब प्रोडक्शन्स के लिए : *नजमा (१९४३) हुमायूँ (१९४५) अनमोल घड़ी (१९४६) अनोखी अदा (१९४८) अंदाज (१९४९) आन (१९५२) अमर (१९५४) मदर इंडिया (१९५७) सन ऑफ इंडिया (१९६२)।*

अडूर गोपालकृष्णन

केरल के कथकली नर्तक परिवार में ३ जुलाई १९४१ को **अडूर गोपालकृष्णन** का जन्म हुआ था। स्नातक होने तक उन्होंने बीस नाटक लिख लिए थे। फिल्मों के आकर्षण ने उन्हें सरकारी नौकरी छोड़ने को प्रेरित किया। वे सन् १९६२ में फिल्म एवं टीवी संस्थान पुणे गए और तीन साल बाद स्नातक होकर निकले। वापस लौटने पर तिरुअनंतपुरम् में चित्रलेखा फिल्म सोसायटी शुरू की। कलात्मक फिल्मों को आर्थिक सहायता देने के लिए उन्होंने भारत की पहली सहकारी समिति बनाई।

अडूर गोपालकृष्णन ने नाटकों पर और फिल्मों पर पुस्तकें लिखी हैं। उन्हें १९८४ में पद्मश्री मिली। फिल्म संस्थान से उन्हें मेरिट स्कॉलरशिप मिली। वे राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम के संचालक (१९८०-८३) और फिल्म संस्थान के अध्यक्ष (१९८७-८९) भी रहे। उन्होंने कई अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में जूरी की हैसियत से भाग लिया। उन्हें लंदन के फिल्म अभिलेखागार ने सम्मानित किया है।

प्रमुख फिल्में : *स्वयंवरम् (१९७२) कोडियट्टम (१९७७) एलिप्पट्टयम् (१९८१) मुखामुखम (१९८३) अनन्तरम् (१९८६) विधेयन (१९९३)।*

अलंकरण

दरअसल अलंकरण भारत के राष्ट्रपति प्रदान करते हैं हर साल गणतंत्र-दिवस पर। लेकिन फिल्मों के आम-दर्शक अपने प्रिय कलाकारों को अपने तईं अलंकृत करते हैं। ये अलंकरण कलाकार की पहचान और पर्याय बन जाते हैं। मसलन...

- □ दिलीप कुमार : ट्रेजेडी किंग/अभिनय सम्राट
- □ धर्मेन्द्र : ही-मेन
- □ राजकपूर : शो-मेन
(सुभाष घई को भी शो-मेन कहा जाने लगा है)
- □ राजकुमार : डॉयलाग-किंग
- □ मनोज कुमार : भारत कुमार
- □ राजेन्द्र कुमार : जुबली कुमार
- □ राजेश खन्ना : रोमांटिक सुपर स्टार
- □ देव आनंद : एवरग्रीन सुपर स्टार
- □ शम्मी कपूर : याहू याहू...
- □ किशोर कुमार : योडलेई...योडलेई...
- □ मिठुन चक्रवर्ती : डिस्को-किंग

- □ हेलन : कैबरे क्वीन
- □ सुरैया : ग्लेमर-गर्ल
- □ निम्मी : अनकिस्ड-गर्ल
- □ मीना कुमारी : ट्रेजेडी-क्वीन
- □ मधुबाला : वीनस
- □ अमृतासिंह : मर्द-सिंह
- □ श्रीला मजूमदार : ब्लेक-ब्यूटी
- □ किमी काटकर : टार्जन बाला
- □ पद्मा खन्ना : सेक्स-बम
- □ करिश्मा कपूर : सेक्सी गर्ल
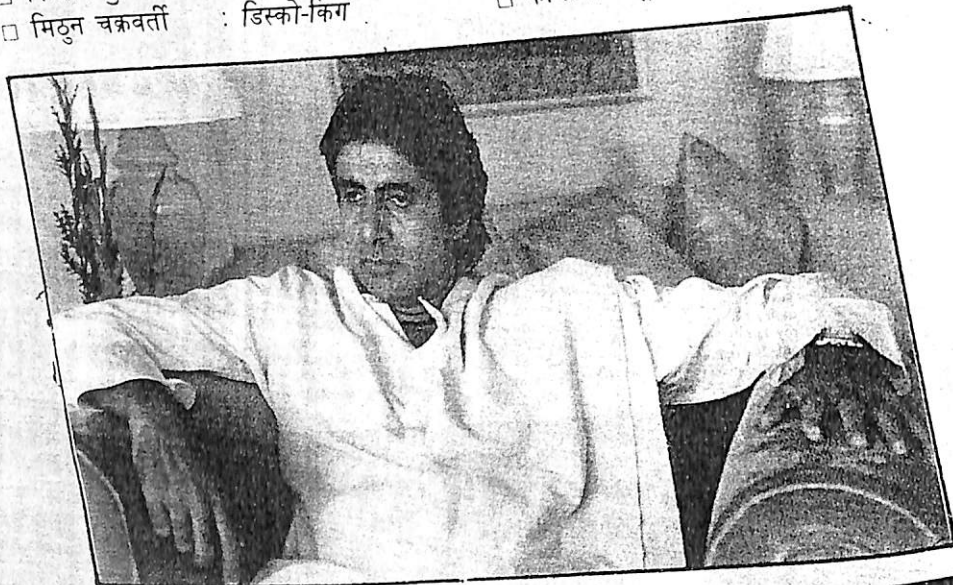
अमिताभ : लम्बी पारी के बाद आराम

- □ अमिताभ बच्चन : एंग्री यंग मेन
- □ अशोक कुमार : सदाबहार
- □ देविका रानी : फर्स्ट लेडी ऑव इण्डियन स्क्रीन
- □ हेमा मालिनी : ड्रीम-गर्ल
- □ नरगिस : लेडी इन वाइट
- □ सायरा बानो : ब्यूटी-क्वीन
- □ नादिया : फीअरलेस क्वीन/स्टंट क्वीन

फिल्म कल्चर

कांतिलाल राठौड़

अपनी पहली गुजराती फिल्म कंकू (१९६९) में प्रशंसा बटोरने वाले कांतिलाल राठौड़ फिल्मों में आने के पहले काफी नाम कमा चुके थे। उनका जन्म १२ दिसंबर १९२४ को रायपुर (म.प्र.) में हुआ था। उन्होंने शिकागो के आर्ट इंस्टीट्यूट से फाइन आर्ट में स्नातक की उपाधि पाई थी। अमेरिका के विश्वविद्यालय में वे इंस्ट्रक्टर थे।

कांतिलाल राठौड़ ने फिल्म्स डिवीजन, बाल चित्र समिति और यू.एस. इन्फर्मेशन सर्विस के लिए कई डॉक्युमेंट्री फिल्में बनाई। उनकी पहली फिल्म 'कंकू' (गुजराती) को कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिले। दुःख की बात यह है कि इसे राज्य सरकार ने ऋण देने से इंकार कर दिया था। दलील यह थी कि यह फिल्म जरूरत से ज्यादा वास्तविक है।

■ *प्रमुख फिल्में : □ कंकू (१९६९) □ परिणय (हिंदी १९७४) □ जंगबो और जिंगजिंग बाट (बाल फिल्म १९७७) □ राम नगरी (१९७९)।* ■

मोहन सहगल

प्रसिद्ध फिल्म निर्माता-निर्देशक मोहन सहगल ने अपनी फिल्मी जीवन की शुरूआत चेतन आनंद के सहायक की हैसियत से 'नीचा नगर' फिल्म से की थी। फिल्मों में आने के पहले वे रंगमंच पर सक्रिय थे। इप्टा के वे सक्रिय सदस्य थे। कुछ कर गुजरने की इच्छा के कारण उन्होंने एम.ए. अँग्रेजी की परीक्षा नहीं दी, क्योंकि उन्हें डर था कि अगर वे उत्तीर्ण हो गए, तो उन्हें अच्छी नौकरी मिल जाएगी और वे सुविधाओं में रहकर रचनात्मकता खो बैठेंगे।

कॉलेज जीवन में मोहन सहगल ने कई नाटक खेले। उदयशंकर की नृत्य मंडली में शामिल हुए। उन्होंने 'नीचा नगर' और 'अफसर' के अलावा 'राज' और 'फूल और काँटे' में नायक की भूमिका की थी। 'औलाद' में वे पहली बार स्वतंत्र निर्देशक बने। 'अधिकार' में उन्होंने थोड़ी कॉमेडी मिलाकर नारी अधिकार की आवाज उठाई। 'नई दिल्ली' तो प्रांतवाद पर एक करारा व्यंग्य था। 'लाजवंती' में व्यस्त पति से त्रस्त पत्नी की कहानी थी। इसी कहानी पर ऋषिकेश मुखर्जी ने 'अनुराधा' बनाई थी। संयोग से दोनों ही फिल्मों के नायक बलराज साहनी थे। साठ का दशक उनके लिए बुरा रहा। फिर अचानक 'सावन भादो' बनाकर वे फिर मैदान में आ गए। इस फिल्म के माध्यम से **नवीन निश्चल** पर्दे पर आए और शोख चुलबुली रेखा भी पहली बार फिल्मों में आई। 'राजा जॉनी' भी सफल फिल्म थी। उन्होंने मराठी नाटककार प्रहलाद केशव अत्रे के विख्यात नाटक 'तो मी नव्हेच' पर 'वो मैं नहीं' फिल्म बनाई। 'कर्तव्य' भी उनकी सफल फिल्म है।

● *प्रमुख फिल्में:- □ औलाद □ अधिकार (१९५४) □ नई दिल्ली (१९५६) □ लाजवंती (१९५८) □ करोड़पति (१९६०) □ डॉ. विद्या (१९६२) □ देवर (१९६६) □ साजन □ कन्यादान (१९६८) □ सावन भादों (१९७०) □ संसार □ राजा जॉनी (१९७१) □ इंतजार (१९७२) □ वो मैं नहीं (१९७४) □ संतान (१९७६) □ एक ही रास्ता (१९७७) □ कर्तव्य (१९८०)।* ■

ख्वाजा अहमद अब्बास

साम्यवादी विचारधारा के प्रखर पत्रकार **ख्वाजा अहमद अब्बास** का जन्म पानीपत में ७ जून १९१४ को हुआ था। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से बी.ए. एल.एल.बी. करने के बाद वे 'बॉम्बे क्रॉनिकल' में पत्रकार की हैसियत से काम करने लगे। उनकी फिल्म समीक्षाएँ फिल्म निर्माताओं को तिलमिला देती थीं। कई निर्माताओं ने तो उन्हें नौकरी से निकालने की माँग भी की। आजादी के बाद अब्बास 'ब्लिट्ज' साप्ताहिक में 'आखरी पन्ना' लिखने लगे जो अपनी मौत तक जारी रखा। उन्होंने हिंदी, अँग्रेजी और उर्दू में कई पुस्तकें लिखीं।

सन् १९५२ में उन्होंने अपनी खुद की फिल्म निर्माण संस्था **नया संसार** की स्थापना की और कई महत्वपूर्ण फिल्में बनाई। इसके अलावा उन्होंने शांताराम, राजकपूर, चेतन आनंद के लिए पटकथाएँ भी लिखीं। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'मैं द्वीप नहीं हूँ' भी लिखी। उनकी मृत्यु १ जून १९८७ को हुई।

■ *प्रमुख फिल्में : □ धरती के लाल (१९४६) □ अनहोनी (१९५२) □ राही (१९५३) □ मुन्ना (१९५४) □ परदेसी (भारत-रूस के सहयोग से निर्मित- १९५७) □ चार दिल चार राहें (१९५९) □ ग्यारह हजार लड़कियाँ (१९६२) □ शहर और सपना (राष्ट्रपति स्वर्ण पदक प्राप्त १९६३) □ आसमान महल (१९६५) □ बंबई रात की बाहों में (१९६७) □ सात हिंदुस्तानी (१९६९) □ दो बूँद पानी (१९७१) □ द नक्सलाइट (१९७९)।* ■

एस. श्रीनिवासन वासन

आज हिंदी फिल्मों में दक्षिण भारतीय कलाकारों का राज्य है। इसके लिए उन्हें एस. श्रीनिवासन वासन का आभारी होना चाहिए। अगर वासन अपनी भव्य फिल्म **चंद्रलेखा** न बनाते तो आज के कई सितारे हिंदी सिनेमा पर अपना आधिपत्य न जमा पाते।

वासन का जन्म १० मार्च १९०३ को तमिलनाडु के तंजौर जिले में हुआ था। वे पत्रकारिता से जुड़े और शीघ्र ही तमिल के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'आनंद विकटन' के संपादक हो गए। सन् १९३८ में वे फिल्मों में आए। शुरूआत की वितरण से। फिर एक स्टुडियो खरीदा, जो आग में नष्ट हो चुका था। अपनी कार्यकुशलता के कारण यह स्टुडियो बहुत जल्दी नई साज-सज्जा के साथ खड़ा हुआ। शुरू में कुछ पौराणिक, धार्मिक, मारधाड़ की फिल्में बनाने के बाद उन्होंने बड़ी छलाँग लगाने की सोची। एक ऐसी फिल्म बनाई जो विशुद्ध मनोरंजन लिए हो। आजाद भारत की खुशियों में शामिल हो। 'चंद्रलेखा' बहुत बड़े पैमाने पर बनाई गई थी। इसका नगाड़ा नृत्य तो विदेशों में भी काफी लोकप्रिय हुआ। उनका जैमिनी स्टुडियो अपनी व्यवस्था और सफाई में हॉलीवुड के स्टुडियो से टक्कर लेता था। अपनी विशाल पैमाने पर बनाई गई फिल्मों के कारण उन्हें भारत का सिसिल डिमिल कहा जाता था।

वासन ने तमिल और हिंदी में कई फिल्में दीं। उन्हें मालूम था कि फिल्मों में कितना मसाला कितनी मात्रा में डाला जाना चाहिए। वे आम जनता के लिए मनोरंजन का सामान जुटाते थे। जैमिनी के बिगुल बजाते दो बच्चे जब भी पर्दे पर आते, दर्शक भरपूर मनोरंजन के स्वागत में तालियाँ बजाते। आखिर २६ अगस्त १९६९ को ये दोनों बच्चे अनाथ हो गए। एस.एस. वासन के निधन से न सिर्फ एक फिल्मकार चला गया बल्कि फिल्मोद्योग का सच्चा हमदर्द भी चला गया।

■ *प्रमुख फिल्में : □ चंद्रलेखा (१९४८) □ निशान (१९४९) □ मंगला (१९५०) □ संसार (१९५१) □ मिस्टर संपत (१९५२) □ बहुत दिन हुए (१९५४) □ इंसानियत (१९५५) □ राजतिलक (१९५८) □ पैगाम (१९५९) □ घराना (१९६१) □ औरत (१९६७) □ तीन बहुरानियाँ (१९६८) □ शतरंज (१९६९)।* ■

मणि कौल की फिल्म
इडियट : अयूब खान दीन
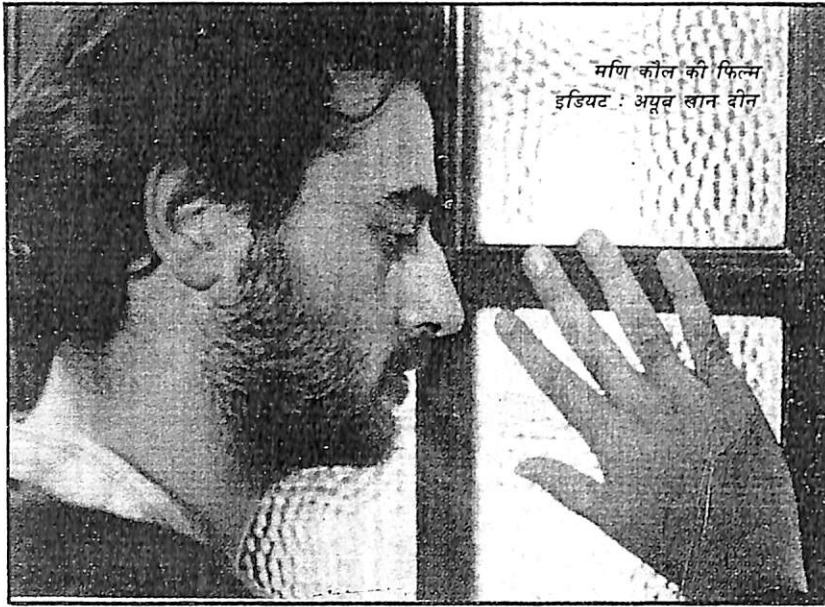
मणि कौल

साहित्य और सिनेमा के अंतरसम्बन्धों को पर्दे पर लाने का काम करने वाले **मणि कौल** अपनी नई शैली के कारण काफी चर्चित हैं। उन्होंने कहानी, एकांकियों और लोक नाट्य पर फिल्में बनाई। उन्होंने मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग के लिए हिन्दी के मूर्धन्य कवि गजानन माधव मुक्ति बोध की कविताओं पर आधारित एक कथा फिल्म का निर्माण (उज्जैन में) किया। उनकी फिल्मों में पात्र की बजाए कैमरा अभिनय करता है। उनका अपने आलोचकों के लिए उत्तर है कि वे समय से पूर्व की फिल्में बना रहे हैं।

● *प्रमुख फिल्में-□ उसकी रोटी (१९७१) □ आषाढ़ का एक दिन (१९७१) □ दुविधा □ सतह से उठता आदमी (१९८१) □ माटी मानस (१९८७) □ नजर (१९९०) □ इडियट (१९९२)।*

गौतम घोष

नए फिल्मकारों में **गौतम घोष** एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म २७ जुलाई १९५० को हुआ था। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। पहले रंगमंच से जुड़े और फोटो-पत्रकारिता की। उनकी बनाई गई कई डाक्यूमेंट्री फिल्मों ने देश-विदेश में प्रशंसा और पुरस्कार प्राप्त किए हैं।

फीचर फिल्मों से वे सन् १९८० से जुड़े। उनकी पहली फीचर फिल्म थी **'माँ भूमि'** (तेलुगु) जो तेलंगाना के नक्सलवादी आंदोलन से संबंधित थी। गौतम ठहरे बंगला भाषी। उन्हें तेलुगु नहीं आती फिर भी 'माँ भूमि' एक दस्तावेज का महत्व रखती है। इसे तेलुगु की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। 'दाखल' (१९८२) को राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल मिला। साथ ही इसे कान फिल्मोत्सव में भेजा गया। 'पार' (१९८४) ने न सिर्फ गौतम को अंतरराष्ट्रीय ख्याति दिलाई बल्कि इस फिल्म के नायक नसीरुद्दीन शाह को वेनिस में सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार भी मिला। 'अंतर्जली यात्रा' (१९८७) को सर्वश्रेष्ठ बंगला फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। ताशकंद में इसे ग्रॉं-प्री पुरस्कार मिला। बंगलादेश के सहयोग से बनी **'पद्मा नदीर माझी'** (१९८८) को भी कई राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं। 'पतंग' (१९९३) उनकी ताजा तरीन फिल्म है। नई पीढ़ी के बंगला फिल्मकारों में गौतम घोष ने नई उम्मीदें जगाई है। ■

गोविन्द निहलानी

नई लहर की फिल्मों के आन्दोलन में **गोविंद निहलानी** एक चमकता नाम है। उन्होंने कैमरा और दिग्दर्शक की कुर्सी पर सफलता से काम किया है। गोविंद ने बंगलोर के पॉलिटेक्निक कॉलेज से सिनेमेटोग्रॉफी में डिप्लोमा प्राप्त किया है। उनकी पहली फिल्म थी 'शान्तता, कोर्ट चालू आहे'। गिरीश कर्नाड की फिल्म 'काडू' के छायाकार वे ही हैं। श्याम बेनेगल की प्रारंभिक फिल्मों का छायांकन गोविन्द निहलानी ने किया है। वे वी.के. मूर्ति के सहायक कैमरामैन रहे हैं। निर्देशन के क्षेत्र में वे **आक्रोश** से आए। इसे आठवें अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म घोषित किया गया। इनकी बाद की सभी फिल्में किसी न किसी मुद्दे को लेकर चलती हैं। पाँच घंटे के टीवी धारावाहिक तथा फिल्म तमस द्वारा देश का देश विभाजन की त्रासदी से साक्षात्कार कराया। गोविंद ने रिचर्ड एटनबरो की फिल्म **गाँधी** के दूसरे यूनिट में छायाकार का काम संभाला था। आपकी फिल्मों में एक विचार चलता है, जो पात्रों के जरिए दर्शक तक पहुँचता है।

● *प्रमुख फिल्में-□ आक्रोश (१९८०) □ अर्द्धसत्य (१९८३) □ विजेता (१९८३) □ पार्टी (१९८४) □ आघात (१९८५) □ जजीरे (१९८८) □ पिता (१९८९) □ रुखमा बाई की हवेली (१९९१) □ दृष्टि (१९९०)* ■

कुमार शहानी

बुद्धिजीवियों में बहस का विषय कुमार शहानी का जन्म दिसम्बर १९४० में हुआ था। वे बंबई विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। उन्होंने फिल्म एवं टीवी संस्थान, पुणे से पटकथा लेखन में डिप्लोमा प्राप्त किया है और प्रथम स्थान प्राप्त किया। यहीं वे ऋत्विक घटक के संपर्क में आए। उन्हें फ्रांस

सरकार ने फिल्म विषय पर शोध कार्य करने के लिए छात्रवृत्ति दी। कुमार शहानी को होमी भाभा फेलोशिप भी मिली है। वे फिल्म एवं टीवी संस्थान के अतिथि व्याख्याता हैं। मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम के लिए उन्होंने खयाल गाथा फिल्म का निर्माण किया है।

■ *प्रमुख फिल्में □ माया दर्पण (लोकार्नो फिल्मोत्सव में पुरस्कृत १९७२) □ तरंग (१९८४) □ खयाल गाथा (१९८९) □ कस्बा (१९९०)।* ■

हरि हरन

हरि हरन केरल की एक पाठशाला में चित्रकला के अध्यापक थे। रंगमंच पर नाटक-करते लिखते वे फिल्मों में आ गए। उन्होंने मलयालम के कई विख्यात निर्देशकों के साथ काम किया है। पहली बार वे स्वतंत्र निर्देशक बने लेडीज हॉस्टल में, जो बहुत सफल फिल्म रही। उन्होंने साठ से भी अधिक फिल्में बनाई हैं। इनमें से कई फिल्मों को पुरस्कार मिले हैं। 'पंचाग्नि' (१९८७) में नायिका को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिला। 'नखशतंगल' के लिए भी इसकी नायिका को उर्वशी पुरस्कार मिला। हरिहरन ने मलयालम और तमिल के अलावा हिन्दी में भी फिल्में बनाई हैं। अण्डरस्टेंडिंग सिनेमा नाम से पन्द्रह अंकीय सीरियल यू.जी.सी. के लिए बनाया, जो फिल्म माध्यम को समझने के लिए पाठ्य पुस्तक जैसा है। ■

उमेश मेहरा

एफ.सी. मेहरा के पुत्र **उमेश मेहरा** की गिनती बड़े निर्देशकों में होती है। वे अपना काम बिना शोर-शराबे के करते हैं।

उमेश ने अपने फिल्मी जीवन की शुरूआत शम्मी कपूर के सहायक के रूप में की। वे प्राण मेहरा से फिल्म संपादन भी सीखने लगे। बाद में उन्होंने पंजाबी में 'चढ़ी जवानी बुड्ढे नूँ' में पटकथा, संगीत और निर्देशन की जिम्मेदारी निभाई। ताशकंद फिल्म समारोह में उन्होंने रूस के सहयोग से **'अलीबाबा और चालीस चोर'** फिल्माने की बातचीत की। जल्दी ही उन्होंने इस पर एक भव्य फिल्म बना डाली। ताशकंद में ही उन्होंने एक तुर्की फिल्म 'अवर फैमिली' देखी और उससे प्रभावित हुए। यश चोपड़ा इस पर हिंदी में फिल्म बनाना चाहते थे मगर बनाई नहीं। उमेश ने इसे 'हमारे-तुम्हारे' नाम से बनाया। इसी कहानी पर बासु चटर्जी ने 'खट्टा-मीठा' बनाई। वे विदेशी फिल्मों से प्रेरणा लेते रहे और उन्हें भारतीय परिवेश में ढालकर फिल्में बनाते गए। 'अशांति' एक विदेशी फिल्म 'चार्लीज एंजिल्स' से प्रभावित थी। "तेरी बाहों में" उन्होंने 'द ब्ल्यू लेगून' से प्रभावित होकर बनाई। ● *प्रमुख फिल्में:- □ हमारे-तुम्हारे (१९७९) □ अलीबाबा और चालीस चोर (१९८०) □ अशांति (१९८०) □ तेरी बाहों में, सोहनी-महिवाल (१९८४) □ जाल (१९८६) □ कसम (१९८८) □ वर्दी □ गुरु (१९८९) □ शिकारी (१९९१) □ आशिक आवारा (१९९३)।* ■

शांताराम वणकुद्रे

शांताराम राजाराम वणकुद्रे फिल्म जगत के ऐसे अनूठे व्यक्ति थे, जिन्होंने फिल्म निर्माण से संबंधित कोई भी पहलू नहीं छोड़ा। वे फिल्मों में कुली/ बढ़ई/ मेक-अप मैन/ नृत्य निर्देशक/ संपादक/ निर्देशक सभी कुछ थे। छविगृह में गेटकीपर थे/ मैनेजर थे, सिनेमाघर मालिक थे।

शांताराम का जन्म कोल्हापुर में १८ नवंबर १९०१ को हुआ था। इनकी माँ हिंदू थीं और पिता जैन। घर की परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं। मात्र बारह वर्ष की उम्र में वे नाटक कंपनी में भर्ती हो गए। फिल्मों में उनका प्रवेश महाराष्ट्र फिल्म कंपनी से हुआ। जल्दी ही अपने साथियों के साथ उन्होंने प्रभात फिल्म कंपनी की स्थापना की। प्रभात ने कई अविस्मरणीय फिल्में दीं। प्रभात ने हिंदी और मराठी में फिल्में बनाईं। न्यू थिएटर्स की फिल्म 'देवदास' की प्रशंसा में एक मराठी पत्रकार ने प्रभात की आलोचना की थी कि प्रभात सिर्फ साधु-संतों पर ही फिल्म बनाती है। शांताराम ने इसे चुनौती के रूप में लिया और 'देवदास' की खिल्ली उड़ाते हुए एक फिल्म बनाई 'आदमी'। 'देवदास' की आत्मघाती प्रवृत्ति के विपरीत 'आदमी' में जीने का संदेश दिया गया था।

शांताराम ने तकनीक में भी नए-नए प्रयोग किए। उनकी आरंभिक फिल्मों में ट्रॉली शॉट ने दर्शकों को अचंभित कर दिया। कई समीक्षकों ने इसे घूमता हुआ मंच (सेट) कहा। 'दो आँखें बारह हाथ' में सिर्फ प्रकाश और छाया के आधार पर स्थिर चित्रण से दिन का गुजरना बताया है। शांताराम ने सिर्फ फिल्मकारों और दर्शकों में ही सिनेमा की समझ पैदा नहीं की, बल्कि समीक्षकों को भी नई दृष्टि दी। यानी सिनेमा के 'अ' से 'ज्ञ' तक सभी को प्रशिक्षित किया। वे फिल्म के गाँधीजी थे जिन्होंने सभी को प्रभावित किया। वे गाँधीवाद से भी प्रभावित थे। 'दो आँखें बारह हाथ' इसका जीता-जागता उदाहरण है। यह शांताराम का ही मानवीय दृष्टिकोण है जिसके कारण 'दुनिया न माने' का एक षोडशी बाला से विवाह करने वाला अधेड़ भी खलनायक नहीं मालूम होता। दर्शक बराबर यह महसूस करता रहता है कि बेचारा अधेड़ परिस्थिति का शिकार है, उसे ग्लानि बराबर कचोट रही है। इस फिल्म ने जहाँ नवयुवतियों को बेमेल विवाह के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा दी, वहीं जनवरी-जून जैसा असामाजिक संबंध बनाने वालों को भी ऐसे विवाह के परिणामों से आगाह किया।

आदमी अपने वक्त की एक विद्रोही फिल्म थी, तो 'पड़ोसी' आज भी मौजूँ है। 'डॉक्टर कोटनीस की अमर कहानी' किसी भी देश की हो सकती है। 'दो आँखें बारह हाथ' को भी

देश की सीमाओं में बाँधकर नहीं रखा जा सकता। इस फिल्म को देश-विदेश में कई पुरस्कार मिले। बाद की फिल्मों में शांताराम यथार्थ की बजाए कल्पना पर जोर देने लगे। फिर भी उनकी हर फिल्म में भारतीयता उभरकर सामने आती है। उन्हें सन् १९८६ में दादा साहेब फालके पुरस्कार मिला था। उनकी मृत्यु १८ नवंबर १९९० को हुई।

■ *प्रमुख फिल्में : मूक : □ गोपाल कृष्ण (१९२९) □ खूनी खंजर/ बजर बट्टू/ उदयकाल □ चन्द्रसेना (१९३०)।* ■ **सवाक:** *□ अयोध्या का राजा/ जलती निशानी/ माया मछिन्द्र (१९३२) □ सिंहगढ़/ सैरंध्री (१९३३) □ अमृत मंथन (१९३४) □ धर्मात्मा (१९३५) □ अमर ज्योति (१९३६) □ दुनिया न माने (१९३७) □ आदमी (१९३९) □ पड़ोसी (१९४१) ■ शकुंतला (१९४३) □ डॉ. कोटनीस की अमर कहानी (१९४६) □ दहेज (१९५०) □ परछाई (१९५२) □ सुरंग (१९५३) □ झनक झनक पायल बाजे (१९५५) □ दो आँखें बारह हाथ (१९५७) □ नवरंग (१९५९) □ गीत गाया पत्थरों ने (१९६५) □ जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली (१९७१) □ पिंजरा (१९७२) □ चानी (१९७७)।* ■

एन. चंद्रा

एन. चंद्रा की फिल्मों में हिंसा होती है मगर उसके पीछे सामाजिक कारण होता है। चंद्रा पटकथा को महत्व देते हैं। उनके अनुसार पटकथा वह कपड़ा है जिस पर निर्देशक बेल-बूटे काढ़ता है। अपने जीवन के संघर्षों को चंद्रा ने अपनी फिल्मों में उतारा है। अपनी पहली ही फिल्म **'अंकुश'** से चंद्रा ने समीक्षकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इस फिल्म को देखते हुए महसूस होता है कि हम 'मेरे अपने' फिल्म देख रहे हों। चंद्रा किसी वक्त गुलजार के सहायक थे। चंद्रा अपनी फिल्मों में तर्क को स्थान देते हैं। शुरू-शुरू में छोटे, अनजान कलाकारों को लेकर फिल्में बनाने के बाद वे अनिल कपूर, माधुरी, सनी, डिंपल तक को निर्देशन देने लगे। इसके बावजूद उनकी शैली कभी भी स्टार के सामने दबी नहीं। ● **प्रमुख फिल्में:-** *□ अंकुश (१९८६) □ प्रतिघात (१९८७) □ तेजाब (१९८९) □ हमला (१९९२) □ युगांधर (१९९२) □ तेजस्विनी (१९९४)।* ■
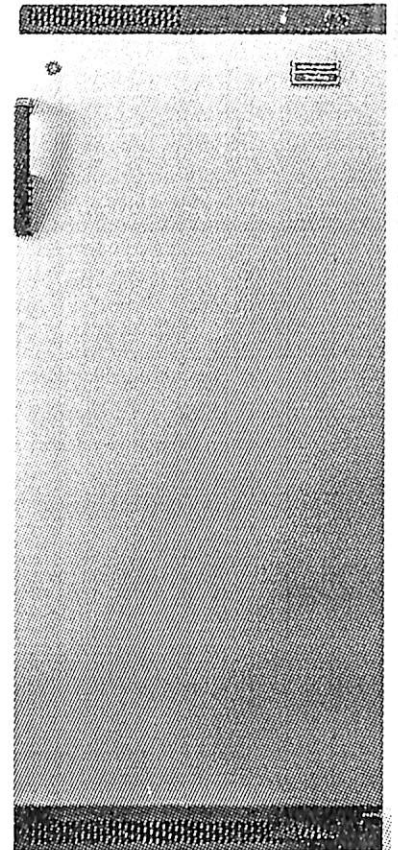
डॉ. जब्बार पटेल

जब्बार पटेल पेशे से डॉक्टर हैं। महाराष्ट्र के सुदूर गाँव में मरीजों का इलाज करते हैं। मरीजों से फुर्सत पाते हैं तो फिल्में बनाते हैं। उनकी लगभग हर मराठी फिल्म को राष्ट्रपति का रजत पदक मिला। उनकी फिल्में सामाजिक चेतना जगाती हैं। फीचर फिल्मों के अलावा उन्होंने कुछ वृत्त चित्र भी बनाए हैं। फिल्म्स डिविजन के भारतीय नाट्यशास्त्र का इतिहास उन्होंने बनाकर एक दस्तावेजी काम किया है।

■ **प्रमुख फिल्में:-** *□ सामना (१९७४) □ जैत रे जैत (१९७८) □ सिंहासन (१९७९) □ उंबरठा (हिन्दी में सुबह १९८१) □ एक होता विदूषक (१९९२)।*

मृणाल सेन

मृणाल सेन का जन्म १४ मई १९२३ को फरीदपुर (बंगलादेश) में हुआ था। कलकत्ता से बी.एस-सी. करने के बाद उन्होंने एक फिल्म स्टुडियो में साउंड रिकॉर्डिस्ट का काम किया। थोड़े ही समय में ऊब जाने के बाद उन्होंने वह काम छोड़कर फिल्म निर्माण संबंधी साहित्य पढ़ना शुरू किया। रुडॉल्फ अर्नहीम की पुस्तक 'फिल्म' ने उन्हें फिल्म निर्माण की प्रेरणा दी।

मृणाल सेन इप्टा से जुड़े रहे। बाद में कई तरह के छुटपुट काम किए जैसे प्रूफ रीडर/ पत्रकार/ अध्यापक। फिल्मों पर भी वे लिखते रहे। उन्होंने चार्ली चैप्लीन पर एक पुस्तक भी लिखी। एक चेक उपन्यास 'द चीट' का बंगला में अनुवाद किया। उन्होंने अपनी पहली फिल्म 'रात भोर' (१९५६) बनाई। वे इस फिल्म से कभी खुश नहीं हुए।

मृणाल सेन की फिल्मों में समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक घटनाएँ प्रमुखता से मिलती हैं। इन कारणों से वे कई बार विवादास्पद भी हो जाती हैं।

मृणाल सेन ने कई अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में भारत का प्रतिनिधित्व किया है। वे कई बार ज्यूरी भी मनोनीत किए गए हैं। अमेरिकन फिल्म इंस्टीट्यूट ने उन्हें सम्मानित किया था। हिंदी में नई लहर की फिल्मों की शुरूआत मृणाल सेन की फिल्म 'भुवन शोम' से मानी जाती है। उनकी फिल्मों का लंदन फिल्म समारोह में पुनरवलोकन हुआ था। उन्होंने 'व्यूज ऑन सिनेमा' में कई समीक्षाएँ लिखी हैं। सन् १९८१ में उन्हें पद्म भूषण अलंकरण मिला।

■ **प्रमुख फिल्में :** *□ रात भोर (१९५६) □ नील आकाशेर नीचे (१९५९) □ पुनश्च (१९६१) □ प्रतिनिधि (१९६४) □ आकाश कुसुम (१९६५) □ माटीर मनीषा (उड़िया १९६६) □ भुवन शोम (हिंदी १९६९) □ इंटरव्यू (१९७०) □ एक अधूरी कहानी (हिंदी १९७१) □ कलकत्ता '७१ (१९७२) □ पदातिक (१९७३) □ कोरस (१९७४) □ मृगया (हिंदी १९७६) □ ओका ऊरी कथा (तेलुगु १९७७) □ परशुराम (१९७८) □ एक दिन प्रतिदिन (१९७९) □ अकालेर संधाने (१९८०) □ चालचित्र (१९८१) □ खारिज (१९८२) □ खंडहर (हिंदी १९८३) □ अंतरीन (१९९३)।* ■

मृणाल सेन : गुस्सैल परंतु प्रतिबद्ध फिल्मकार

सावे दादा

भारत की पहली फिल्म बनाने के लिए दादा साहब फालके को याद किया जाता है। लेकिन बहुत कम लोग जानते होंगे, कि फालके द्वारा १९१३ में 'राजा हरिश्चंद्र' के निर्माण से १५ वर्ष पूर्व लोनावाला (बंबई) के एक छायाकार **हरिश्चंद्र सखाराम भातवड़ेकर** ने चलचित्र निर्माण का पहला सफल प्रयास किया था। उन्होंने १८९७ में एक कुश्ती मैच की फिल्म बनाई थी। भारतीय सिनेमा का यह पहला चलचित्र था।

१५ मार्च १८६८ को जन्मे हरिश्चंद्र भातवड़ेकर को **सावे दादा** के नाम से भी जाना जाता था। वे अपने समय के चुनिंदा छायाकारों में एक थे। फोटोग्राफी तब एक चमत्कार का दर्जा रखती थी। एक ब्रिटिश फिल्म पत्रिका 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' में सिने प्रोजेक्टर की बिक्री का विज्ञापन देखकर भातवड़ेकर ने दो अँगरेजी फिल्मों 'द बेट्ज' और 'केन केन डॉल्स' के साथ यह मशीन इंग्लैंड से आयात की। इसकी मदद से वे बंबई के धनिक व प्रतिष्ठित परिवारों के लिए फिल्मों का प्रदर्शन करने लगे। कुछ समय बाद उन्होंने बेड-फील्ड (ब्रिटेन) के 'रिले बंधुओं' से एक फिल्म कैमरा खरीदा। और बंबई के दो प्रसिद्ध पहलवानों 'पुंडलीक दादा' और 'कृष्णा नहावी' के बीच एक कुश्ती प्रतियोगिता की शूटिंग की। यह १८९७ की बात है। हरिश्चंद्र द्वारा इसके बाद फिल्माए गए कुछ जानवरों के करतब काफी पसंद किए गए थे।

७ दिसंबर १९०१ को कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय गणित स्नातक आर. परांजपे के सम्मान में आयोजित एक कार्यक्रम को भातवड़ेकर ने फिल्माया। इसके बाद उन्होंने लार्ड कर्जन के दिल्ली दरबार पर एक फिल्म बनाई। १९०३ में वे विदेश से प्रसिद्ध लुमिएर कैमरा खरीदकर लाए। ६५० रु. की कीमत पर खरीदे गए इस कैमरे के साथ फिल्म प्रक्रियण एवं प्रदर्शन हेतु मशीनें भी उपलब्ध थीं। इसके द्वारा हरिश्चंद्र

ने अलीबाबा चालीस चोर और 'अलादीन एंड वंडरफुल लैम्प' आदि फिल्मों का निर्माण किया। वे अपनी फिल्मों का प्रदर्शन गेयटी थिएटर में करते थे, जहाँ प्रवेश दर तीन से आठ आने तक हुआ करती थी। उनकी फिल्मों के प्रति दर्शकों का आकर्षण इतना अधिक था, कि उस जमाने में उन्होंने ३०० रुपए प्रतिदिन तक कमाए। बंबई के अलावा उन्होंने शोलापुर, बेलगाम, कोल्हापुर, मंगलौर और गोआ में फिल्मों के प्रदर्शन आयोजित किए। इनमें लाइफ ऑफ क्राइस्ट, रानी विक्टोरिया की शवयात्रा और महाराज एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक पर बनी फिल्में शामिल थीं। ■

रामचन्द्र गोपाल तोरणे

इतिहास को रचने वाला कभी खुद गुमनाम रह जाता है। भारतीय सिनेमा के सफर में एक ऐसा ही नाम **रामचंद्र** उर्फ **दादा साहब तोरणे** का है, जिन्होंने देश की प्रथम फीचर फिल्म बनाई थी। लोग आज केवल एक ही 'दादा साहब' का नाम जानते हैं और वह है, फालके। इसी नामराशि से पहचाने जाने वाले तोरणे को कोई याद नहीं करता। सिने इतिहास की यह ऐतिहासिक भूल है, कि देश के प्रथम फीचर फिल्म निर्माता के रूप में दादा साहब फालके को याद किया जाता है जबकि यह श्रेय तोरणे को प्राप्त होना चाहिए था। उन्होंने फालके की 'राजा हरिश्चंद्र' के निर्माण से एक वर्ष पूर्व फीचर फिल्म **पुंडलिक** १९१२ में बनाई थी। इस तरह वे हिन्दुस्तानी सिनेमा के पितृ-पुरुष कहे जाने के वास्तविक हकदार हैं।

रामचंद्र गोपाल (दादा साहब) तोरणे का जन्म १३ अप्रैल १८८० को महाराष्ट्र के गाँव सुकुलवाड़ में हुआ था। 'मालवन' से स्कूली शिक्षा अर्जित करने के बाद उन्होंने बंबई आकर एक इलेक्ट्रीकल कंपनी में क्लर्क की नौकरी कर ली। इसी दौरान सिनेमा के आविष्कार ने उन्हें आकर्षित किया। उन दिनों बालकृष्ण कीर्तिकर नाम के रंगकर्मी अपने समूह 'श्रीपाद संगीत मंडली' द्वारा एक अत्यंत लोकप्रिय नाटक 'श्री पुंडलिक' का मंचन करते थे। तोरणे ने उनके इस नाटक के फिल्म रूपांतरण की योजना बनाई। इसे मूर्तरूप देने के लिए उन्होंने अपने कुछ मित्रों के साथ अमेरिकी फिल्म कंपनी 'बोर्न एंड शेपर्ड' के कलकत्ता स्थित कार्यालय से संपर्क कर १००० रु. में 'विलियम्सन कैमरा' खरीदा। कंपनी ने इसके साथ ४०० फीट की रील देने के अलावा कैमरा संचालन के प्रशिक्षण हेतु एक तकनीशियन मि. जॉन्सन को भारत भेजा। फिल्म पुंडलिक के लिए कलाकारों के रूप में कीर्तिकर, पी.आर. टिपनीस और नानाभाई चित्रे चुने गए। कोई महिला उन दिनों फिल्म में अभिनय के लिए राजी नहीं हुई। अत्यधिक वित्तीय कठिनाइयों के बीच तोरणे ने फिल्म का निर्माण और निर्देशन किया। अपने आरंभिक कार्य से वे संतुष्ट नहीं थे। फिल्म की पहली प्रिंट जब बन कर तैयार हुई, तो उसके दृश्यों में सम्बद्धता का अभाव था। उन्होंने फिल्म को अधिक प्रभावशाली और सहज बनाने के लिए काफी काट-छाँट के बाद इसे एक नया रूप दिया। इस प्रकार वे देश में फिल्म संपादन (एडिटिंग) का प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे।

१८ मई १९१२ को बंबई के कोरोनेशन थिएटर में तोरणे की फिल्म 'पुंडलिक' प्रदर्शित की गई। दर्शकों की प्रतिक्रिया उत्साहवर्धक थी। लगातार दो हफ्तों तक यह फिल्म चली। उस जमाने में एक नए प्रयास के लिहाज से यह बड़ी उपलब्धि थी। पुंडलिक के

निर्माण के बाद तोरणे को अपनी नौकरी के सिलसिले में कुछ सालों के लिए कराची रहना पड़ा। बंबई लौटने पर उन्होंने अपने मित्र बाबूराव पै के साथ विदेशी फिल्मों के भारत में वितरण का व्यवसाय सँभाला। फालके की लंका दहन (१९१७) और कृष्ण जन्म (१९१८) फिल्में देखने के बाद उनकी दिलचस्पी एक बार फिर फिल्म निर्माण की ओर हुई। १९२४ में तोरणे ने अशोका फिल्म्स के बैनर में फिल्म **'पृथ्वी वल्लभ'** का निर्माण किया। इसमें उन्होंने तीन नई अभिनेत्रियों जुबैदा, फातिमा और सुल्ताना को मौका दिया, जो सगी बहनें थीं। इनमें से जुबैदा आगे चलकर देश की प्रथम सवाक फिल्म 'आलमआरा' की नायिका बनी। आर्देशिर ईरानी ने उन्हें अपनी इम्पीरियल कंपनी के रायल फिल्म स्टूडियो का मुख्य प्रबंधक नियुक्त किया। इस कंपनी के लिए तोरणे ने दो फिल्में सिंदबाद द सेलर (१९३०) और दिलावर (१९३१) निर्देशित की। अपने व्यक्तिगत प्रयासों के बूते पर उन्होंने हालीवुड से 'आडियो केमेक्स रिकॉर्डिंग मशीन' मंगवाई। इसी ध्वनि आलेखन उपकरण द्वारा आर्देशिर ईरानी ने 'आलमआरा' का निर्माण किया था।

३१ दिसंबर १९३१ को दादा साहब तोरणे ने अपनी निजी फिल्म कंपनी 'सरस्वती सिनेटोन' की स्थापना की। इस बैनर की पहली फिल्म थी, **श्याम सुंदर**। शांता आप्टे, शाहू मोडक और बापूराव केतकर इसके प्रमुख कलाकार थे। फिल्म का निर्देशन अभिन्न मित्र **भालजी पेंढारकर** ने किया था। 'श्याम सुंदर' बंबई के सिनेमाघरों में २७ हफ्ते तक चली। देश के इतिहास में सिल्वर जुबली मनाने वाली यह पहली सवाक फिल्म थी। सरस्वती सिनेटोन द्वारा निर्मित अन्य प्रमुख फिल्में थीं, आवारा शहजादा/ भक्त प्रहलाद/ छत्रपति शिवाजी और सावित्री। इनमें आवारा शहजादा का निर्माण हिन्दी के अलावा मराठी भाषा में भी किया गया था। फिल्म में 'शाहू मोडक' ने दोहरी भूमिका निभाई थी। भारतीय फिल्मों में किसी भी कलाकार द्वारा अभिनीत यह पहला डबल रोल था। तोरणे ने एक उर्दू फिल्म 'भेदी राजकुमार' (१९३४) के अलावा सिकंदर सिनेटोन नामक एक कंपनी के लिए 'इशरत की मौत' और 'प्यारा दुश्मन' का निर्माण किया। १९३२ से १९४१ के बीच ९ सालों में सरस्वती सिनेटोन के बैनर तले १५ फिल्मों का निर्माण हुआ। इनमें ८ मराठी, तीन हिन्दी/ उर्दू और ४ हिन्दी/ मराठी फिल्में थीं। तोरणे ने अपनी फिल्मों में शाहू मोडक और जुबैदा जैसे कलाकारों को मौका देने के अलावा भगवा झंडा में अभिनेत्री रत्नमाला और 'माझी लड़की' में जयश्री को परदे पर आने का मौका दिया। मोतीलाल और रोज जैसे प्रसिद्ध कलाकारों को लेकर तोरणे ने एक फिल्म 'सच है' बनाई। गोल्ड/ कानून/ चंद्रकांता/ तो अनीति और आवाज उनके कैरियर की आखिरी फिल्में थीं। जीवन के अंतिम दौर में तोरणे काफी बुरी तरह आर्थिक कठिनाइयों में घिर गए थे। उनकी मदद किसी ने नहीं की। भारतीय सिनेमा के इस महान कृतिकार ने बदहाली और उपेक्षा के बीच दम तोड़ा।

विशेष *: पुंडलिक को भारत की पहली फीचर फिल्म इसलिए नहीं माना जाता कि यह एक नाटक का फिल्मांकन थी। विधिवत कथा-पटकथा लिखकर इसे फिल्माया नहीं गया था।- संपादक*

कुंदन शाह

फिल्म और टीवी पर समान रूप से लोकप्रियता पाने वाले **कुंदन शाह** फिल्म एवं टीवी संस्थान, पुणे के स्नातक है। वे सईद मिर्जा, रॉबिन धर्मराज और विनोद चोपड़ा के साथ काम कर चुके हैं। उनकी बनाई दो फिल्में 'जाने भी दो यारों' और 'कभी हाँ कभी ना' ने दर्शकों का मनोरंजन किया। इन फिल्मों को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले हैं। दूरदर्शन पर उन्होंने 'कथा सागर' के कुछ अंकों का निर्देशन किया। 'वागले की दुनिया' एक अंडर प्ले किया हुआ धारावाहिक था। 'ये जो है जिंदगी' को टीवी दर्शक आज भी सबसे बेहतरीन हास्य धारावाहिक मानते हैं। इसके अलावा 'नुक्कड़', 'सर्कस', 'मनोरंजन' और 'इंतजार' धारावाहिकों का भी उन्होंने निर्देशन किया है। हास्य में ब्लेक-कॉमेडी के आप पक्षधर हैं।

गिरीश कसरावल्ली

गिरीश कसरावल्ली का जन्म १९५० में हुआ था। वे फार्मेसी स्नातक हैं। उन्होंने पुणे फिल्म एवं टीवी संस्थान से स्नातक की उपाधि ली। तीन साल बाद उन्होंने अपनी पहली फीचर **'घट श्राद्ध'** बनाई जिसे १९ पुरस्कार मिले। यह कर्मकांड पर चोट करती है। इसी का हिंदी संस्करण था 'दीक्षा'। गिरीश की 'आक्रमण' (१९७९), 'मूरु दरिगाल' (१९८१), तबरना कथे (१९८६) ने कई जगह पुरस्कार जीते। 'बन्नड वेश' और 'मने' (१९८९) को कन्नड़ की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों का राष्ट्रपति रजत पदक मिला है।

केतन मेहता

फिल्म एवं टीवी संस्थान, पुणे से प्रशिक्षित **केतन मेहता** अपनी नई फिल्म माया मेमसाब के कारण आम दर्शकों में खूब चर्चित हुए। केतन की पहली फिल्म थी भवनी भवाई (गुजराती-१९७९)। फिल्म को मानवाधिकारों पर सर्वश्रेष्ठ फिल्म का यूनेस्को क्लब का पुरस्कार मिला। होली (१९८५) को सर्वश्रेष्ठ छायांकन का पुरस्कार मिला। 'मिर्च मसाला' (१९८६) को तीन राष्ट्रीय पुरस्कार और हवाई

फिल्मोत्सव का सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। 'माया मेमसाब' (१९९२) गुस्ताव फ्लॉवर्ट के उपन्यास पर आधारित है। केतन मेहता ने एक टीवी धारावाहिक 'मिस्टर योगी' भी बनाया है। हीरो हीरालाल उनकी एक ऐसी फिल्म है, जो ग्लेमर की दुनिया की अतिरंजनाओं को चित्रित करती है। केतन मेहता फिल्म माध्यम को विचारों के उस स्तर तक ले जाते हैं, जहाँ पहुँचकर दर्शक प्रेरित एवं उद्वेलित हो सकें। ■

शक्ति सामंत

फिल्मों के प्रति पागलपन ने **शक्ति सामंत** को अपनी जमी-जमाई नौकरी छोड़ने को मजबूर कर दिया। देहरादून में अपने चाचा के साथ भवन निर्माण के व्यवसाय में कई बरस गुजारने के बाद दापोली (पुणे) में एक शाला में वे अध्यापक हो गए। वहाँ काफी इज्जत पाई। जब वह शाला उन्हें दक्षिण अफ्रीका एक हजार रुपए प्रति माह पर भेजने को तैयार थी तब शक्ति दा ने इस्तीफा थमा दिया। वे आजादी और सांप्रदायिकता के महीने- अगस्त १९४७ में बंबई आए, कुछ बनने के लिए। फिल्मोद्योग देश विभाजन से त्रस्त था। कई हस्तियाँ पाकिस्तान जा चुकी थीं। फिल्में अधूरी थीं। शक्ति दा बॉम्बे टॉकीज में कोरस में गाने लगे। **'सुनहरे दिन'** में वे सहायक निर्देशक बने। काम पाने के लिए झूठ ही कह दिया कि वे फिल्म संपादन जानते हैं। उन्होंने लगातार सात दिन तक संपादन सीखा। बाद में वे फणि मजूमदार के सहायक हो गए। स्वतंत्र हैसियत से उन्होंने सबसे पहले **'बहू'** (१९५५) का निर्देशन किया। 'इंस्पेक्टर' ने शक्ति सामंत की पहचान बनाई। **'हावड़ा ब्रिज'** के बाद वे हिट निर्देशक कहलाए जाने लगे। 'इंसान जाग उठा' और 'नॉटी बॉय' की असफलता ने उनकी बाद की फिल्म 'सिंगापुर' पर भी असर डाला। ऐसे वक्त शम्मी कपूर मदद के लिए आगे आए। उन्होंने शक्ति दा के साथ 'चायना टाउन' बनाई। शक्ति दा संकटों से उबर गए। 'काश्मीर की कली' में उन्होंने शर्मिला ठाकुर को पहली बार हिंदी फिल्मों में पेश किया। शक्ति दा ने ही राजेश खन्ना के डूबते कैरियर को **'आराधना'** में सहारा दिया। उसके बाद राजेश सबसे लोकप्रिय अभिनेता बन गए। शक्ति दा ने एक भोजपुरी फिल्म 'आइल बसंत बहार' भी बनाई थी।

'एन इवनिंग इन पेरिस' छोड़ दी जाए तो शक्ति दा की किसी भी फिल्म में नायिका के बदन की नुमाइश नहीं है। उन्होंने भारतीय मर्यादाओं का आदर किया। 'अमर प्रेम' में उनका भावुक मन झाँकता है। उनका बेटा असीम सामंत भी निर्देशक है। आप कई बरसों तक फिल्म सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष रहे।

● **प्रमुख फिल्में:-** *□ बहू (१९५५) □ इंस्पेक्टर (१९५६) □ डिटेक्टिव (१९५७) □ हावड़ा ब्रिज (१९५८) □ इंसान जाग उठा (१९५९) □ जाली नोट/ सिंगापुर (१९६०) □ एक राज (१९६१) □ चायना टाउन/ नॉटी बॉय (१९६२) □ आइल बसंत बहार/ इसी का नाम दुनिया है (सिर्फ निर्माता १९६३) □ काश्मीर की कली □ सावन की घटा (१९६४) □ एन इवनिंग इन पेरिस (१९६७) □ आराधना (१९६९) □ पगला कहीं का (१९७०) □ कटी पतंग*
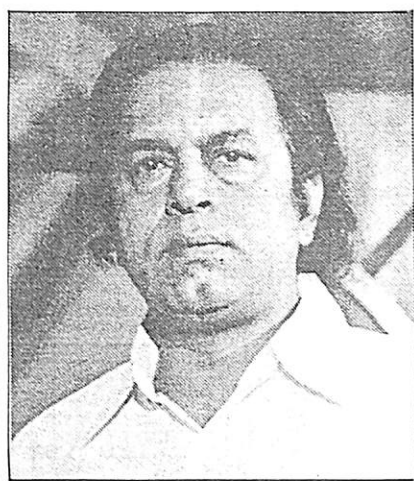
(१९७०) □ अमर प्रेम (१९७२) □ अनुराग (१९७३) □ अजनबी/ अमानुष (१९७५) □ बालिका वधू (१९७६) □ अनुरोध/ महबूबा (१९७७) □ बरसात की एक रात (१९८०) □ मैं आवारा हूँ (१९८३) □ आवाज (१९८४) □ आरपार (१९८६) □ गीतांजलि (१९९३)। ■

बाबूराम इशारा

सत्तर के दशक में चौंका देने वाली फिल्मों के निर्देशक **बाबूराम इशारा** वयस्क फिल्मों के निर्देशक कहे जाते थे। अपनी पहली ही फिल्म **'चेतना'** (१९७०) से उन्होंने समाज को झकझोरा। बी.आर. इशारा का असली नाम रोशनलाल शर्मा है। वे एक स्टुडियो में छोटा-मोटा काम करते थे। संयोग से वहाँ 'छोटी भाभी' की शूटिंग चल रही थी। निर्माता के गुरु का नाम भी रोशन था। इसलिए रोशन शर्मा का नाम बाबूराम हो गया। बाबूराम को लिखने-पढ़ने का शौक था। शायर कैफ इरफानी ने उन्हें 'इशारा' तखल्लुस दिया। कैंटीन बॉय रहकर भी उन्होंने फिल्म निर्माण में दिलचस्पी दिखाई। सड़क छाप रहने के कारण उनकी कुंठा बढ़ती गई जो उनकी फिल्मों में उभरी। वे सेक्सी फिल्मों के निर्देशक कहलाए जाने लगे। उनका मानना है कि मध्यम वर्ग की अस्सी प्रतिशत समस्याएँ सेक्स के कारण हैं। अपनी विवादास्पद फिल्मों के कारण उन्हें हर बार सेंसर से लड़ना पड़ा। इशारा ने हमेशा कम बजट की फिल्में ही बनाई। इसके लिए उन्होंने नए कलाकार लिए। रेहाना सुल्तान और परवीन बॉबी को उन्होंने ही सबसे पहले फिल्मों में प्रस्तुत किया। 'प्रेम शास्त्र' उनकी एकमात्र बड़ी फिल्म है जिसमें उन्होंने देव आनंद और जीनत अमान को निर्देशित किया। वैसे उनके हिसाब से 'राहु-केतु' भी बड़े बजट की फिल्म है। 'मिलाप' उनकी पसंदीदा फिल्म है जो चली नहीं। फिर भी लोग उन्हें चेतना/ जरूरत/ बाजार बंद करो/ बस्ती और बाजार/ सोसायटी/ यह सच है/ लोग क्या कहेंगे/ जैसी फिल्मों के लिए याद करते हैं। ■

मणिरत्नम की फिल्म 'नायकन' में कमल हासन

मणि रत्नम्

नौजवान निर्देशकों में **मणि रत्नम्** बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। वे तमिल/मलयालम/ कन्नड़ और हिंदी में फिल्में बनाते हैं। वे मद्रास विश्वविद्यालय के वाणिज्य स्नातक हैं और बंबई के बजाज इंस्टिट्यूट से एमबीए की डिग्री प्राप्त की है। मणि रत्नम् की बतौर निर्देशक के पहली फिल्म थी 'पल्लवी अनु पल्लवी' (कन्नड़)। इसे पटकथा के लिए राज्य का पुरस्कार मिला। 'मौन रागम्' को तमिल की सर्वश्रेष्ठ फिल्म और सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का पुरस्कार मिला। **'नायकन'** को ऑस्कर पुरस्कार के लिए भेजा गया था। 'गीतांजली' को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। **'अंजलि'** ने भी कई पुरस्कार जीते। उनकी नवीनतम फिल्म **'रोजा'** ने सारे देश में धूम मचाई है। **'थिरुड़ा-थिरुड़ा'** तमिल में धमाका कर रही है। 'रोजा' ने इस देश का आज का सबसे प्रतिभाशाली संगीतकार ए. रहमान दिया। हिंदी में डब की गई **'रोजा'** की सफलता से प्रेरित होकर बंबइया फिल्मकार कई दक्षिण भारतीय फिल्मों को डब करने जा रहे हैं। भाजपा के नेता **लालकृष्ण आडवाणी** हों अथवा मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन. शेषन, सबने **रोजा** की देशभक्ति और आतंकवाद विरोध की सराहना की है। ■

संदीप रॉय

सत्यजीत रॉय के बेटे **संदीप रॉय** का जन्म ८ सितंबर १९५३ को कलकत्ता में हुआ था। जब वे स्कूल में ही पढ़ते थे, तब से अपने पिता की यूनिट में स्थिर छायांकन करने लगे थे। बीस वर्ष की आयु में वे अपने पिता के सहायक हो गए। 'शतरंज के खिलाड़ी' के लिए उन्होंने विशेष ट्रेलर बनाया। संदीप ने चित्र बनाए। लेख लिखे। पुस्तकों के मुखपृष्ठ पर रेखांकन किया। उन्होंने बंगला में कुछ नाटक भी लिखे। संदीप की पहली फीचर फिल्म थी **'फटिकचंद'**। बाद में उन्होंने 'उत्तोरण' का निर्देशन किया। 'गोपी बाधा फिरे एलो' उनकी एक और प्रसिद्ध फिल्म है। दूरदर्शन के लिए उन्होंने 'सत्यजीत रॉय प्रेजेन्ट्स' (दो भागों में) बनाई। किशोर कुमार पर उनकी वीडियो श्रद्धांजलि बहुत पसंद की गई। लगभग अपने पिता के पद-चिन्हों पर संदीप चल रहे हैं। ■

नचिकेत एवं जयू

नचिकेत एवं **जयू** की जोड़ी ने बड़ौदा विश्वविद्यालय से आर्किटेक्चर में डिग्री ली तथा १९७२ से दोनों ने पूना में इमारतों की डिजाइन बनाने का व्यवसाय शुरू किया। १९७७ में बनी 'घासीराम कोतवाल' (मराठी) कन्नड़ ओण्डा नोण्डु कल्ला डल्ली 'मोहन जोशी हाजिर हो' कैनेडियन फिल्म 'बाय बाय ब्लूज' के लिए दोनों ने आर्ट डायरेक्शन तथा कास्ट्यूम डिजाइन किया। कला निर्देशक के रूप में उत्सव में दोनों का कार्य प्रशंसनीय रहा। इस फिल्म में कला निर्देशन के लिए दोनो को १९८५ का सर्वोत्तम कला निर्देशक पुरस्कार मिला। निर्देशक के रूप में उनकी पहली मराठी फिल्म २२ जून १८९७ है। यह फिल्म काफी प्रशंसित हुई। फिल्म को राष्ट्रीय एकता पर सर्वोत्तम फिल्म घोषित किया गया। इस फिल्म को कई अवार्ड मिले। अगली हिन्दी फिल्म *'अनन्त यात्रा' को १९८६ की सर्वश्रेष्ठ हिंदी फिल्म का अवार्ड मिला है। जयू इंदौर की मूल निवासी है।* ■

परवेज मेरवानजी

परवेज मेरवानजी बंबई के सेंट जेवियर कॉलेज में समाज-शास्त्र और मानव-विज्ञान के विद्यार्थी थे। उसी दौरान वे रंगमंच पर सक्रिय हुए। बाद में वे फिल्म एवं टीवी संस्थान से जुड़ गए और सन् १९७१ में संपादन में डिप्लोमा हासिल किया। पुणे से आकर उन्होंने विज्ञान विषय पर कई वृत्त चित्र बनाए। वे पट्टाभि रामा रेड्डी के सहायक भी रहे। सन् १९८० में उन्होंने अपनी खुद की फिल्म कंपनी वज्र फिल्म्स बनाई। वे लघु व्यावसायिक फिल्में बनाते रहे। 'द वे ऑव द मलाबार वॉरियर' नाम से वे केरल के मार्शल आर्ट पर एक वृत्तचित्र भी बना चुके हैं। उन्होंने वन्य जीवन और संरक्षण पर बने टीवी धारावाहिक की कुछ कड़ियाँ निर्देशित कीं। 'पर्सी' (१९८८) उनकी एकमात्र फिल्म है जो पारसी समाज का चित्रण करती है। ■

प्रदीप कृष्ण

प्रदीप कृष्ण ने फीचर फिल्में भले ही मात्र तीन बनाई हों मगर विज्ञान पर अस्सी वृत्तचित्र बना चुके हैं, जिनमें से चौबीस वृत्तचित्रों के वे निर्देशक और पटकथाकार रहे हैं। तत्कालीन फिल्म वित्त निगम द्वारा आयोजित पटकथा प्रतियोगिता में उन्होंने पहला स्थान प्राप्त किया था। प्रदीप की पहली फिल्म थी **'मेसी साहब'** (१९८५) जिसे वेनिस फिल्म समारोह में पुरस्कृत किया गया। इस फिल्म में नायक रघुवीर यादव को सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला। उनकी दूसरी फिल्म इन व्हिच ऐनी गिव्ज इट दोज़ वन्स (अँगरेजी १९८८) को दो राष्ट्रीय पुरस्कार मिले। यह फिल्म आर्किटेक्ट स्कूल का हास्यास्पद और अराजकतावादी वातावरण दर्शाती है। आपकी तीसरी फिल्म **इलेक्ट्रिक मून** ब्रिटिश चैनल फोर के लिए बनी है। इसमें भारत में आने वाले विदेशी पर्यटकों की समस्या को उठाया गया है। इसकी अधिकांश शूटिंग पचमढ़ी (म.प्र.) में की गई है। ■

सुभाष घई

आज सुभाष घई की फिल्में वितरक आँख मूंद कर खरीदते हैं। किसी जमाने में उन्हें फिल्मों में काम करने के लिए संघर्ष करना पड़ता था। फिल्मों में आने के पहले सुभाष अपने कॉलेज के दिनों में रोहतक के नाटकों के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। अभिनेता बनने की ललक उन्हें पुणे के फिल्म एवं टीवी संस्थान में खींच लाई। दो वर्षों में अभिनय का डिप्लोमा हासिल कर वे स्वप्न नगर बंबई आए। वे और राजेश खन्ना दस हजार प्रतियोगियों में चुने गए। राजेश को जहाँ फिल्मों पर फिल्में मिलती गई वहीं सुभाष को

मिले सिर्फ वादे। अर्से बाद एक फिल्म मिली 'उमंग' (१९७०)। इस फिल्म में सितारों की भीड़ थी इसलिए सुभाष की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया। हारकर सुभाष ने फिल्म लेखन की तरफ रुख किया। प्रकाश मेहरा की 'आखिरी डाकू' और दुलाल गुहा की 'खान दोस्त' फिल्में लिखी और अचानक 'कालीचरण' (१९७४) के निर्देशक बन बैठे। इस फिल्म की सफलता ने उन्हें फिल्माकाश पर बिठा दिया। 'विश्वनाथ' भी सफल फिल्म थी। 'गौतम गोविन्दा' और 'क्रोधी' की असफलता के बाद उन्होंने अपनी खुद की फिल्म निर्माण संस्था **मुक्ता आर्ट्स** बनाई। इस बैनर तले उन्होंने जितनी भी फिल्में बनाई, सब के सब हीरे की खान साबित हुई। सुभाष घई की फिल्में भव्य पैमाने पर बनती हैं। जादुई, फोटोग्राफी और कर्णप्रिय संगीत उनकी फिल्मों के विशिष्ट गुण हैं। उनका उद्देश्य जनता का मनोरंजन करना है। सुभाष की फिल्मों में माँ की भूमिका विशेष रूप से लिखी जाती है। 'मेरी जंग' में परिवार नामक संस्था की जिजीविषा है। लड़खड़ाते हुए फिल्मोद्योग को नई शक्ति देने में सुभाष घई का योगदान उल्लेखनीय है।

● *प्रमुख फिल्में* : □ *कालीचरण*, □ *विश्वनाथ*, □ *कर्ज*, □ *विधाता*, □ *मेरी जंग*, □ *हीरो*, □ *कर्मा*, □ *राम लखन*, □ *सौदागर*, □ *खलनायक (१९९३)*। ■

दलसुख पंचोली

पंजाब को फिल्म निर्माण के नक्शे पर उभारने का श्रेय **दलसुख पंचोली** को जाता है। दलसुख थे तो गुजराती मगर उन्होंने पंजाब में अपना साम्राज्य स्थापित किया। पंजाब में फिल्म निर्माण के छुटपुट प्रयास पहले हो चुके थे, मगर वे असफल रहे। दलसुख के घर के लोगों ने उन्हें महात्मा गाँधी के एक आश्रम में भेजा था। उनके भाई कराची के एक सिनेमाघर में व्यवस्थापक हो गए। उन्होंने दलसुख को अपने पास बुला लिया। पहली टॉकी फिल्म **'आलम आरा'** की पेटी वे कंधों पर लादकर लाहौर ले गए थे। उन्होंने फिल्म निर्माण संबंधी ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। पंजाबी फिल्म **'सोहनी महिवाल'** में पैसा लगाकर पूंजी खोई।

उन्होंने अपनी खुद की फिल्म 'गुल-ए-बकावली' बनाई जो सफल थी। दूसरी फिल्म **'यमला जट'** भी सफल रही। ये दोनों फिल्में पंजाबी भाषा में थीं। वे सिर्फ पंजाब तक ही सीमित नहीं रहना चाहते थे, इसलिए उन्होंने हिंदी फिल्म बनाई **'खजांची'** (१९४१)। इस फिल्म ने उन्हें खूब प्रसिद्धि और पैसा दिलवाया। 'सावन के नजारे हैं' गीत जनजन की जबान पर चढ़ गया। दूसरी फिल्म **'खानदान'** ने भी सफलता के तराने गाए। ऐसा लगा, दलसुख के हाथों जादू की छड़ी लग गई हो, जो एक इशारे पर फिल्में सफल बनाती हो। जमीदार/ पूंजी/ शीरी-फरहाद ने भी जबर्दस्त धन बरसाया। पंजाब में दलसुख पंचोली का साम्राज्य स्थापित हो गया। कराची-लाहौर में बैठे-बैठे वे बंबई के निर्माताओं को पैसा देने लगे। 'पतझड़' (४७) उनकी लाहौर में बनाई गई अंतिम फिल्म थी। इसके बाद उनके साम्राज्य पर सचमुच ही पतझड़ छा गया। देश का विभाजन हुआ। पंचोली साम्राज्य तहस-नहस हो गया। उन्होंने अपने आपको पाकिस्तानी नागरिक घोषित किया, मगर वे बाहरी आदमी माने गए। हारकर वे लुटे-लुटे बंबई आए। कुछ दिन मित्रों के घर गुजारे। कुछ दिन बोर्डिंग हाउस में रहे। भारत में उनकी पहली फिल्म थी **'मीनाबाजार'** (१९५०)। इस फिल्म को 'शरणार्थी की आशा' कहकर दर्शकों ने सराहा। 'नगीना' भी अच्छी चली मगर 'आसमान' से वे धरती पर आ गए। 'भाई साहब/ लुटेरा/ फरिश्ता' ने उनकी सफलता का ग्राफ गिराना शुरू किया। बंबई फिल्मोद्योग ने उन्हें सर्वानुमति से इंपा का अध्यक्ष बनाकर उनकी लाज रखी। उनकी मृत्यु १० अक्टूबर १९५९ को एक दुर्घटना में हुई। ■

राहुल रवैल

हरनाम सिंह रवैल के बेटे राहुल को अपनी पहचान बनाने में बहुत पापड़ बेलने पड़े। वे राज कपूर के सहायक भी रहे। उनकी बतौर स्वतंत्र निर्देशक के पहली फिल्म थी 'गुनहगार' मगर यह फिल्म कभी प्रदर्शित नहीं हुई। 'लव स्टोरी' का निर्देशन तो राहुल ने ही किया था मगर निर्माता राजेंद्र कुमार के साथ हुई खटपट के कारण राहुल का नाम नहीं दिया गया। मगर ताजगीभरे निर्देशन के कारण लोग उन्हें पहचान गए। 'लव स्टोरी' एक सफल फिल्म थी। 'बेताब' ने राहुल को

सफलता के शिखर पर बिठा दिया। स्टार सन की पहली फिल्म के लिए राहुल रवैल को भाग्यशाली समझा जाने लगा। ब्रज सदाना और सईदा खान के बेटे कमल सदाना की पहली फिल्म 'बेखुदी' का निर्देशन राहुल ने ही किया था मगर फिल्म चली नहीं। वैसे पहले इस फिल्म में शर्मिला के बेटे सैफ काम करने वाले थे। 'डकैत' में राहुल ने बहुत मेहनत की थी। मगर अपनी बात कहने के ढंग में कुछ कमी रह गई। इसलिए जनता ने उन्हें नकार दिया। 'मस्त कलंदर' के नएपन को लोगों ने नहीं स्वीकारा। 'योद्धा' भी बॉक्स ऑफिस पर पराजित हुई। राहुल की ताजा फिल्म 'अंजाम' का अंजाम भी अच्छा नहीं हुआ। ■

पुरस्कृत निर्देशक

फिल्म फेयर अवार्ड वर्ष १९५३ से १९९३

- □ **विमल रॉय** (१९५३)
- ○ दो बीघा जमीन
- □ **विमल रॉय** (१९५४)
- ○ परिणिता

- □ **विमल रॉय** (१९५५)
- ○ बिराज बहू
- □ **वी.शांताराम** (१९५६)
- ○ झनक-झनक पायल बाजे
- □ **मेहबूब खान** (१९५७)
- ○ मदर इंडिया
- □ **विमल रॉय** (१९५८)
- ○ मधुमति
- □ **विमल रॉय**(१९५९)
- ○ सुजाता
- □ **विमल रॉय** (१९६०)
- ○ परख
- □ **बी.आर. चोपड़ा** (१९६१)
- ○ कानून
- □ **अबरार अलवी** (१९६२)
- ○ साहिब बीवी और गुलाम
- □ **विमल रॉय** (१९६३)
- ○ बन्दिनी
- □ **राजकपूर** (१९६४)
- ○ संगम
- □ **यश चोपड़ा** (१९६५)
- ○ वक्त
- □ **विजय आनंद** (१९६६)
- ○ गाइड
- □ **मनोज कुमार** (१९६७)
- ○ उपकार
- □ **रामानंद सागर** (१९६८)
- ○ आँखें
- □ **यश चोपड़ा** (१९६९)
- ○ इत्तफाक
- □ **असित सेन** (१९७०)
- ○ सफर
- □ **राजकपूर** (१९७१)
- ○ मेरा नाम जोकर
- □ **सोहनलाल कँवर** (१९७२)
- ○ बेईमान
- □ **यश चोपड़ा** (१९७३)
- ○ दाग
- □ **मनोज कुमार** (१९७४)
- ○ रोटी कपड़ा और मकान

फिल्म कल्चर

- □ **यश चोपड़ा** (१९७५)
- ○ दीवार
- □ **गुलजार** (१९७६)
- ○ मौसम
- □ **बासु चटर्जी** (१९७७)
- ○ स्वामी
- □ **सत्यजीत रॉय** (१९७८)
- ○ शतरंज के खिलाड़ी
- □ **श्याम बेनेगल** (१९७९)
- ○ जुनून
- □ **गोविन्द निहलानी** (१९८०)
- ○ आक्रोश
- □ **मुजफ्फर अली** (१९८१)
- ○ उमराव जान
- □ **राजकपूर** (१९८२)
- ○ प्रेमरोग
- □ **गोविन्द निहलानी** (१९८३)
- ○ अर्द्धसत्य
- □ **सई परांजपे** (१९८४)
- ○ स्पर्श
- □ **राजकपूर** (१९८५)
- ○ राम तेरी गंगा मैली
- □ **मन्सूर खान** (१९८८)
- ○ कयामत से कयामत तक
- □ **विधु विनोद चोपड़ा** (१९८९)
- ○ परिन्दा
- □ **राजकुमार संतोषी** (१९९०)
- ○ घायल
- □ **सुभाष घई** (१९९१)
- ○ सौदागर
- □ **मुकुल आनंद** (१९९२)
- ○ खुदा गवाह
- □ **राजकुमार संतोषी** (१९९३)
- ○ दामिनी

तपन सिन्हा

न्यू थिएटर्स की एक और देन **तपन सिन्हा** (जन्म २ अक्टूबर १९२४) विज्ञान में स्नातक हैं। वे लंदन में एक फिल्म समारोह में हिस्सा लेने गए थे और वहीं के पाइनवुड स्टुडियो में साउंड रेकॉर्डिस्ट हो गए। लौटने पर उन्होंने अपनी पहली प्रयोगवादी फिल्म **'अंकुश'** बनाई, जो बुरी तरह असफल हुई। तपन सिन्हा ने बंगला अभिनेत्री अरुन्धती देवी से विवाह किया है। वे अपनी फिल्मों की पटकथा खुद लिखते हैं। उन्होंने अपनी कुछ फिल्मों में खुद संगीत दिया है। उनकी अधिकांश फिल्में मनोरंजक होती हैं। बच्चों के लिए भी उन्होंने फिल्में बनाई हैं।

■ प्रमुख फिल्में- *□ अंकुश (१९५४) □ उपहार (१९५५) □ काबुलीवाला (१९५७) □ लौह कपाट (१९५८) □ क्षुधित पाषाण (१९६०) □ हांसुली बांकेर उपकथा (१९६२) □ निर्जन सैकते (१९६३) □ आरोही/ जतुगृह (१९६४) □ अतिथि (१९६५) □ हाटे बाजारे (१९६८) □ सगीना महतो (१९७०) □ जिंदगी- जिंदगी (हिन्दी १९७२) □ सगीना (हिंदी- १९७४) □ हार्मोनियम (१९७५) □ सफेद हाथी (हिंदी- १९७७) □ अदालत ओ एकटि मेये (१९८१) □ आज का रॉबिनहुड (१९८९) □ एक डॉक्टर की मौत (१९९१) □ टी.वी. फिल्म: आदमी और औरत (१९८३)।* ■

कला-महर्षि बाबूराव पेंटर

भारत का पहला देसी कैमरा बनाने वाले **बाबूराव कृष्णराव मेस्त्री** का जन्म कोल्हापुर में ३ जून १८९० को हुआ था। उनके पिता एक मूर्तिकार थे। उन्हीं की छाया में बाबूराव और उनके चचेरे भाई आनंदराव ने मूर्तिकला के पाठ सीखे। शुरू-शुरू में वे नाटकों के पर्दे रंगा करते थे, जो कभी-कभी तो नाटकों से भी ज्यादा चर्चित होते थे। नाटककार कृष्णराव के बुलावे पर वे बंबई गए और फोटोग्राफी सीखी। विदेशी फिल्में देख-देखकर दोनों भाइयों के दिल में फिल्में बनाने की इच्छा जाग्रत हुई। बाबूराव और आनंदराव को इस बात पर दुख होता था कि भारतीय फिल्मों में औरत की भूमिका मर्द करते थे। उन्होंने एक विदेशी कैमरा खरीदा और उसका एक-एक पुर्जा खोला और जोड़ा। इस कैमरे से उन्होंने जो फोटो खींचे, वे उन्हें संतोष न दे सके। सन् १९१६ में आनंदराव की मृत्यु हो गई। बाबूराव अकेले ही कैमरा बनाने में लगे रहे। आखिर दो साल बाद उन्हें सफलता मिली। उन्होंने अपनी पहली फिल्म **'सैरंध्री'** अपने इसी कैमरे से शूट की। **लोकमान्य तिलक** इस फिल्म से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने बाबूराव को स्वर्ण

पदक और 'सिने केसरी' की उपाधि से नवाजा।

बाबूराव ने अपनी महाराष्ट्र फिल्म कंपनी के लिए फिल्में लिखीं, निर्देशित की और अभिनीत की। उन्होंने सन् १९२५ में **'सावकारी पाश'** का निर्देशन किया। यह भारत की पहली यथार्थवादी फिल्म मानी जाती है। बाबूराव ने 'सिंहगढ़' से शूटिंग के समय रिफ्लेक्टरों का इस्तेमाल करना शुरू किया जो आज भी जारी है। उन्होंने अपनी मूक फिल्म 'प्रेम संगम' को सवाक बनाया। बाद में सन् १९३६ में 'सावकारी पाश' को भी सवाक बनाया। मूक संस्करण की तरह यह फिल्म भी सराही गई। उन्होंने बाल गंधर्व के नाटक 'अमृत सिद्धि' के मंचन का फिल्मांकन किया। सिने दर्शकों ने एक पुरुष को महिला की भूमिका में देखना पसंद नहीं किया। ठीक बाबूराव की ही तरह। 'विश्वामित्र' उनकी आखिरी फिल्म थी। बाबूराव कैमरे पर जोर देते थे, संवादों पर नहीं। वे सवाक फिल्मों के पक्ष में नहीं थे। उनके पहले फिल्में यानी नाटकों का फिल्मांकन हुआ करती थी। बाबूराव ने सचमुच उनमें रंग भरे। उनकी मृत्यु १६ जनवरी १९५४ को हुई। ■

रोशनलाल शौरी

भारतीय सिनेमा के इतिहास में आऊटडोर शूटिंग की शुरूआत करने वाले **रोशनलाल शौरी** पहले निर्देशक थे, जिन्होंने अपनी एक फिल्म के लिए पर्वत की १२,००० फुट ऊँचाई पर हिमपात के वास्तविक दृश्य फिल्माए थे। लाहौर में जन्मे शौरी पंजाबी फिल्म उद्योग के पितृ-पुरुष माने जाते हैं। उन्होंने १९१९ में अमेरिका से सिनेमेटोग्राफी और फोटोग्राफी की पत्रोपाधि हासिल की थी। विश्व की शीर्षस्थ फिल्म निर्माण कंपनी ट्वेंटिएथ सेंचुरी फॉक्स ने उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें भारत में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

भारत लौटकर रोशनलाल शौरी ने गया में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन और हरमंदिर साहब के पवित्र सरोवर की कारसेवा पर वृत्त चित्र बनाए। मूक सिनेमा के दौर में शौरी की पहली फिल्म थी, 'किस्मत के हेरफेर।' १९२६ और १९३० में उन्होंने दो अन्य वृत्तचित्रों 'क्रिमिनल ट्राइब' और 'लाइफ आफ्टर डेथ' का निर्माण किया। इनके लिए उन्हें तत्कालीन अँगरेज वाइसराय द्वारा 'वारंट ऑफ एप्वॉइंटमेंट' की उपाधि दी गई थी। लाहौर में रोशनलाल ने प्रसिद्ध शौरी स्टुडियो की स्थापना की और इसके बैनर से सोहनी-महिवाल/ मँगती/ कोयला/ निशानी (पंजाबी) तथा खूनी जादूगर/ रंग रंगीली हमारी गलियाँ,/ मजनूं/ टार्जन की बेटी (हिन्दी) फिल्मों का निर्माण किया। मँगती अपने समय की सर्वाधिक लोकप्रिय पंजाबी फिल्म साबित हुई थी।

१९३० में बर्लिन के फिल्म मेले में शौरी की लघु फिल्म 'लाइफ ऑफ्टर डेथ' को प्रथम पुरस्कार मिला। देश विभाजन के समय लाहौर में उनका स्टुडियो जला दिए जाने के कारण वे शिमला चले आए। बड़ी मुश्किलों के बीच यहाँ अपने बेटे रूप शौरी के साथ तीन सफल हिन्दी फिल्में ढोलक/ एक थी लड़की और एक दो तीन बनाई। फिल्म इंडस्ट्री को कई महत्वपूर्ण हस्तियाँ देने का श्रेय रोशनलाल शौरी को प्राप्त है। खुर्शीद/ मुमताज शांति/ रागिनी/ करण दीवान/ मनोरमा/ ओमप्रकाश/ प्राण/ मजनूं/ इंद्रसेन जौहर और पृथ्वीराज कपूर जैसे कलाकारों को उन्होंने प्रोत्साहित किया। संगीत निर्देशक गुलाम हैदर, अमरनाथ, पंडित गोविंदराम और लेखक/ निर्माता रामानंद सागर, सागर वली नूरपुरी को कैरियर के आरंभिक दिनों में शौरी के द्वारा हर प्रकार से मदद मिली। २२ सितंबर १९७८ को रोशनलाल का देहांत हो गया। लाहौर में उनकी मृत्यु पर एक दिन का शोक रखा गया था। ■

एम.टी. वासुदेवन नायर

केरल के एम.टी. वासुदेवन नायर फिल्मों में आने के पहले साहित्य के क्षेत्र में नाम अर्जित कर चुके थे। उन्होंने सात उपन्यास और चौदह कहानी संग्रह लिखे हैं। उन्हें तीन साहित्य अकादमी पुरस्कार मिले हैं। उनकी रचनाओं का अँगरेजी सहित कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। एम.टी.वी. नायर की पहली फीचर फिल्म थी 'निर्मल्यम्' जिसे १९७३ में राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला था। दूसरी फिल्म 'बन्धनम्' को केरल सरकार का सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। उन्हें सर्वश्रेष्ठ कथा के लिए तीन, सर्वश्रेष्ठ निर्देशन के लिए एक और सर्वश्रेष्ठ पटकथा के लिए नौ पुरस्कार मिले हैं। वे 'मातृ-भूमि' पत्रिका समूह की तीन पत्रिकाओं का संपादन भी करते हैं। उनकी नई फिल्म 'कडावु' को समीक्षकों ने सराहा है। ■

बलदेवराज चोपड़ा

बलदेव राज चोपड़ा का जन्म लाहौर में २२ अप्रैल १९१४ को हुआ। उन्होंने लाहौर शासकीय महाविद्यालय से अँगरेजी साहित्य में एम.ए. किया। वे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर रहे। वे दिल्ली में आयएएस के पर्चे दे रहे थे कि बीमार पड़ गए। लाहौर वापस आकर उन्होंने अध्यापन किया। कहानियाँ लिखीं और एक मासिक पत्रिका 'सिने हेरॉल्ड' के संपादक हो गए। इस पत्रिका ने बहुत उन्नति की। फिल्म पत्रिका से फिल्म निर्माण ज्यादा दूर नहीं था। बी.आर. ने अपने साथियों के साथ एक फिल्म बनाई **'करवट'**। इस फिल्म ने बी.आर. का सामान बिकवा दिया। भूखे रहने पर मजबूर कर दिया। फिर अचानक उन्होंने 'अफसाना' निर्देशित की। इसके पहले उन्होंने फिल्म के सेट पर कदम भी नहीं रखा था। 'अफसाना' की सफलता ने बी.आर. को एक नई जमीन दी। इसके बाद 'शोले' और 'चाँदनी चौक' ने बी.आर. को स्थायित्व दिया। 'चाँदनी चौक' भारत विभाजन के पहले बनाने का विचार था।

तीन फिल्मों की सफलता के बाद बी.आर. ने अपनी खुद की फिल्म निर्माण संस्था **बी.आर. फिल्म्स** बनाई। यह संस्था सोद्देश्य फिल्मों के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है। इसके झंडे तले कई फिल्में बनीं जिनमें सामाजिक समस्याओं और उनके निराकरण का चित्रण था। पहली ही फिल्म 'एक ही रास्ता' में 'विधवा विवाह' पर जोर था। 'साधना' में एक पतित लड़की के उद्धार की आवाज थी। 'नया दौर' में आदमी और मशीन का द्वंद्व था। 'धूल का फूल' में अवैध संतान की समस्या थी। 'धर्मपुत्र' सांप्रदायिक एकता पर बनी थी। 'नया दौर' की प्रशंसा में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने बी.आर. को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा था।

फिल्म निर्माण संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए 'युनाइटेड प्रोड्यूसर्स' नामक संस्था बनाने में बी.आर. चोपड़ा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत की प्रथम टेली फिल्में 'धरती आकाश' और 'तेरी मेरी कहानी' के निर्माता बी.आर. चोपड़ा ही हैं। फिल्म निर्माण के अलावा बी.आर. चोपड़ा फिल्म निर्माण संबंधित दूसरे क्षेत्रों में भी सक्रिय हैं।

बी.आर. चोपड़ा के कैंप में कई प्रसिद्ध कलाकारों की प्रतिभा बढ़ी। पं. मुखराम शर्मा/ साहिर/ एन. दत्ता/ मजरुह/ रवीन्द्र जैन/ आशा भोंसले/ रवि/ महेन्द्र कपूर/ शब्द कुमार/ कमलेश्वर/ राज बब्बर/ राजकुमार/ विमी/ मुमताज। छोटे भाई धर्म चोपड़ा और यश चोपड़ा बी.आर. की छाँव में ही आगे बढ़े हैं।

फिल्म निर्माण के अलावा बी.आर. चोपड़ा ने टी.वी. के लिए उल्लेखनीय कार्य किए हैं। सर्वकालीन महा सीरियल 'महाभारत' विदेशों में भी उसी दीवानगी के साथ देखा जाता था जिस दीवानगी से भारत में। 'सौदा' और 'चुनरी' उनके अन्य धारावाहिक थे। बी.आर. का बेटा रवि अब इस साम्राज्य की कमान संभाले हुए है।

प्रमुख फिल्में- *□ अफसाना (१९५१) □ शोले (१९५३) □ चाँदनी चौक (१९५४) □ एक ही रास्ता (१९५६)*

सागर और चोपड़ा : परदे बदल गए

□ नया दौर (१९५७) □ साधना (१९५८) □ धूल का फूल (१९५९) □ कानून (१९६०) □ गुमराह (१९६३) □ वक्त (१९६५) □ हमराज (१९६७) □ इत्तिफाक (१९६९) □ धुँध (१९७३) □ छोटी सी बात (१९७५) □ पति, पत्नी और वो (१९७८) □ इन्साफ का तराजू (१९८०) □ आज की आवाज (१९८४)।

बी. नागी रेड्डी

तेलुगु फिल्मों को इज्जत दिलाने में **बोम्मी नरसिंहा रेड्डी** का बहुत बड़ा योगदान है। उनका जन्म १६ नवंबर १९०८ को आंध्रप्रदेश में हुआ था। स्कूली शिक्षा के बाद वे ऑडिटिंग में डिप्लोमाधारी हो गए। मगर जल्दी ही आँकड़ों से ऊबकर वे शांति निकेतन चले गए। वहाँ उन्होंने बंगला नाटकों का अध्ययन किया।

तीस के दशक के आरंभ में वे एच.एम. रेड्डी के साथ जुड़ गए, जो कोल्हापुर और बंबई जाकर फिल्में बनाते थे। बी. नागी रेड्डी ने पहली बार 'गृहलक्ष्मी' (१९३७) के लिए पटकथा लिखी। यहीं से उन्होंने फिल्म निर्माण की बारहखड़ी सीखी। उन्होंने अपनी खुद की फिल्म कंपनी **'वाहिनी'** शुरू की। यह नाम दक्षिण भारत में आज भी सम्मान के साथ लिया जाता है।

'वन्दे मातरम्' उनकी पहली फिल्म थी। इस फिल्म में कई सामाजिक समस्याएँ उठाई गई थीं जैसे दहेज, बेरोजगारी, सास-बहू संबंध। **'सुमंगली'** में विधवा विवाह पर जोर दिया गया था। अपने जमाने में यह एक प्रगतिशील विचार था। दकियानूसी समाज इसे स्वीकार न कर सका इसलिए यह फिल्म ज्यादा नहीं चली। 'देवता' विवाह पूर्व संबंधों पर आधारित थी। इसे बहुत सफलता मिली। इस फिल्म की तारीफ दादा साहेब फालके, देवकी बोस और शान्ताराम ने भी की। रेड्डी ने धार्मिक-पौराणिक फिल्में बनाने की बजाए सामाजिक विषयों पर फिल्म बनाना बेहतर समझा क्योंकि वे प्रासंगिक होती हैं। उन्होंने सन् १९४६ में वाहिनी स्टुडियो स्थापित किया जो आज भारत के बेहतरीन स्टुडियो में से है। उन्हें तिरुपति विश्वविद्यालय की ओर से डी.लिट. की उपाधि से अलंकृत किया गया। उन्हें पद्मभूषण अलंकरण भी मिला था। सन् १९७४ का दादा फालके पुरस्कार दिया गया। उनकी मृत्यु ८ नवंबर १९७७ को हुई।

प्रमुख फिल्में- *□ वन्दे मातरम् (१९३९) □ सुमंगली (१९४०) □ देवता (१९४१) □ स्वर्ग सीमा (१९४५) □ मल्लेश्वरी (१९५१) □ भाग्य रेखा (१९५७) □ रंगूला रत्नम (१९६६)।*

डेविड धवन

आज के सबसे सफल निर्देशक **डेविड धवन** कम बजट में ज्यादा धंधा करने वाली फिल्में बनाते हैं। उनके पास अमिताभ बच्चन नहीं हैं, मगर फिल्म को चलाने के दूसरे सामान हैं। वे नायिका प्रधान फिल्में भी नहीं बनाते। उनकी फिल्मों में एक्शन इतना होता है कि दर्शक को सोचने का समय ही नहीं मिलता। डेविड धवन ने पुणे के फिल्म संस्थान से संपादन में डिप्लोमा लिया है। दूरदर्शन से जुड़ने के बाद वे सावन कुमार के संपर्क में आए। उन्होंने सावन कुमार की 'साजन बिन सुहागन' से लगाकर 'सनम बेवफा' तक की फिल्मों का संपादन किया। स्वतंत्र निर्देशक की हैसियत से उनकी पहली फिल्म थी 'ताकतवर'। कुछ फ्लॉप फिल्में देने के बाद **'शोला और शबनम'** से वे हिट निर्देशक कहलाने लगे। गोविन्दा उनका प्रिय अभिनेता है। कादर खान, शक्ति कपूर, अनुपम खेर, अमरीश पुरी और सदाशिव अमरापुरकर के साथ उनकी अच्छी जमती है। अभिनेत्रियों के बारे में ऐसा नहीं कह सकते। डेविड फिल्मों में अश्लीलता लाने में अव्वल रहे हैं।

प्रमुख फिल्में- *□ ताकतवर (१९८९) □ गोला बारूद (१९८९) □ आग का गोला (१९९०) □ जुर्रत (१९८९) □ स्वर्ग (१९९०) □ आँधियाँ (१९९०) □ शोला और शबनम (१९९२) □ बोल राधा बोल (१९९२) □ आँखें (१९९३) □ राजाबाबू (१९९४) □ अंदाज (१९९४) □ इना-मीना-डिका (१९९४)।*

महेश भट्ट

हमेशा विवादास्पद फिल्में बनाने वाले **महेश भट्ट** ने अपनी आँखें जगमगाती हुई फिल्मी दुनिया में खोलीं। उनके पिता नानूभाई भट्ट स्टंट फिल्में बनाते थे। कहते हैं महेश अपनी जिंदगी की तल्खियों को पर्दे पर उतारते हैं। 'मंजिलें और भी हैं', 'विश्वासघात' और 'लहू के दो रंग' ने महेश भट्ट को नाम नहीं दिया। इज्जत दिलाई '**सारांश**' और 'अर्थ' ने। ये दोनों फिल्में कुछ सोचने पर मजबूर करती हैं। महेश आधुनिक विचारधारा वाले निर्देशक हैं। वे हर साल कम से कम दो फिल्में बनाते हैं। 'डैडी' के बाद वे पूरी रफ्तार से दौड़ रहे हैं। फिल्मों की गिनती वे खुद नहीं जानते। 'सड़क'/'सर'/ 'आशिकी'/ 'दिल है कि मानता नहीं'। विदेशी फिल्मों की नकल करने का इल्जाम इन पर अक्सर लगता रहता है।
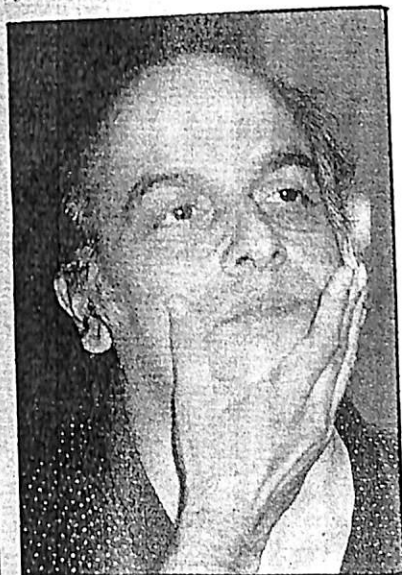
अपनी बिटिया पूजा के साथ उनके वक्तव्य **चौंकाने वाले हैं।** महेश भट्ट ने छोटे पर्दे के लिए 'जनम'/ 'स्वयं' और 'फिर तेरी कहानी याद आई' फिल्में बनाई हैं। ■

भालचंद्र गोपाल पेंढारकर

भारतीय फिल्मों के पितामह **भालचंद्र गोपाल पेंढारकर** का जन्म १ मई १८९९ को कोल्हापुर में हुआ था। इनके पिता डॉक्टर थे। आप मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ पाए। घर से भागकर पुणे के एक सिनेमा घर में गेट कीपर हो गए। यह उनका सिनेमा से पहला परिचय था। वे लोकमान्य तिलक के दैनिक 'केसरी' में भी काम करते थे। सोहराब मोदी के संपर्क में आने के बाद नाटकों से जुड़ गए। दो साल तक सेना में भी रहे, मगर गुलामी की निशानी जानकर बाहर आ गए। कुछ समय एक सिनेमा घर के मैनेजर भी रहे। ज्यादा पढ़े-लिखे तो नहीं थे मगर 'केसरी' में काम करने के कारण उन्हें मराठी का अच्छा ज्ञान था। कई फिल्म निर्माता उनसे अपनी फिल्मों के शीर्षक लिखवाते थे। मूक फिल्मों में संवाद तो होते नहीं थे। कहानी समझाने के लिए बीच-बीच में शीर्षक की तख्तियाँ दिखाई जाती थीं। धीरे-धीरे भालजी फिल्मों में पटकथाएँ लिखने लगे। बाबूराव पेंटर ने उन्हें 'मार्कंडेय' (१९२२) की पटकथा लिखने को आमंत्रित किया। दुर्भाग्य से स्टुडियो में आग लग गई और योजना आगे नहीं बढ़ी। भालजी राष्ट्रवादी नाटक लिखते रहे। वे शिवाजी के चरित्र से बहुत प्रभावित थे। उनकी फिल्मों में देश-भक्ति, देश संस्कृति और स्वाभिमान का

समावेश हुआ करता था। **पृथ्वीवल्लभ** की कथा-पटकथा भालजी की ही थी। इसमें उन्होंने खलनायक की भूमिका की थी। यह फिल्म बहुत चली। बाद में उन्होंने प्रभात की **'सैरंध्री'** की कथा-पटकथा, संवाद लिखे। अपने भाई बाबूराव के साथ उन्होंने 'वन्दे मातरम् आश्रम' (१९२७) बनाई जो राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत थी। ब्रिटिश सरकार ने उत्तेजित होकर भालजी को जेल में डाल दिया और फिल्म में काफी काटछांट की। नाराज होकर भालजी ने इसका प्रदर्शन रोक दिया। जब कुछ साल बाद इसे प्रदर्शित किया तो वह प्रभाव डालने में असफल रही।

भालजी वीर सावरकर की विचारधारा से प्रभावित थे। हिंदू महासभा के पदाधिकारी भी थे जिसका नतीजा उन्हें गाँधी हत्याकांड के बाद भुगतना पड़ा। क्रोधित लोगों ने उनके स्टुडियो में आग लगा दी। करोड़ों की संपत्ति और कई महत्वपूर्ण फिल्में स्वाहा हो गईं। उन्हें जेल हुई मगर अदालत ने बाइज्जत बरी कर दिया।

भालजी ने अपनी खुद की प्रभाकर पिक्चर्स (१९४३) बनाई। कोल्हापुर का जय प्रभा स्टुडियो उन्हीं का बनाया हुआ है जहाँ आज भी फिल्मों की शूटिंग होती है। उम्र ने उन पर असर नहीं किया। जिस उम्र में लोग राम नाम जपने लगते हैं उस उम्र में भी वे फिल्में बनाते रहे। 'शाबास सूनबाई' उन्होंने अट्ठासी वर्ष की उम्र में बनाई। उन्हें 'चित्र तपस्वी' की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् १९९२ में उन्हें दादा साहेब पुरस्कार से सम्मानित किया गया जबकि उनके बाद आए कई लोगों को यह पुरस्कार काफी पहले मिल चुका है। ■

ऋत्विक कुमार घटक

ऋत्विक कुमार घटक का जन्म ४ नवंबर १९२५ को ढाका में हुआ था। वे अपने माता-पिता की आठवीं संतान थे। उनके बड़े भाई मनीष घटक एक विख्यात साहित्यकार थे। अंग्रेजी में ऑनर्स करने के बाद वे इप्टा से जुड़ गए। वहाँ उन्होंने कई नाटक लिखे, खेले और निर्देशित किए। अपनी एम.ए. की पढ़ाई अधूरी छोड़कर वे फिल्मों में आए। **तथापि** में वे सहायक निर्देशक और अभिनेता बनकर आए। उन्होंने निमाई घोष की बहुचर्चित फिल्म 'छिन्नमूल' (१९५१) में अभिनय किया। यह फिल्म भारत की पहली नव यथार्थवादी फिल्म है।

ऋत्विक घटक की निर्देशक के बतौर पहली फिल्म थी **नागरिक** जो प्रदर्शित न हो सकी। जीवनयापन के लिए उन्होंने फिलिस्तान स्टुडियो के लिए पटकथाएँ लिखीं। बंबई उन्हें रास नहीं आया और वे कलकत्ता लौट गए। उनकी प्रथम प्रदर्शित फिल्म थी 'अजांत्रिक'। यह फिल्म बहुत सराही गई। इसे वेनिस फिल्म समारोह में आमंत्रित किया गया था। कई फिल्मकारों ने इसकी अपरंपरागत कहानी और नवयथार्थवाद को बहुत सराहा। ऋत्विक घटक ने बंगाल के सिने तकनीशियनों की ट्रेड यूनियन भी बनाई थी। बिमल रॉय की फिल्म मधुमति की पटकथा ऋत्विक-दा ने लिखी है।

सन् १९६५ में वे पुणे के फिल्म एवं टेलीविजन प्रशिक्षण संस्थान के उप प्राचार्य बने। वहाँ वे नई पीढ़ी के कई होनहार निर्देशकों के संपर्क में आए। मणि कौल, कुमार शहानी, अडूर गोपालकृष्ण और भास्कर चंदावरकर उनके शिष्य रहे।

ऋत्विक-दा ने दो उपन्यास, छः नाटक, चालीस लघुकथाएँ और साठ से भी ज्यादा फिल्म रसास्वाद पर लेख लिखे। फिल्मों के सौंदर्य शास्त्र पर उनकी लिखी एक पुस्तक सन् १९७५ में प्रकाशित हुई। आजादी के बाद हुए बंगाल के विभाजन ने उन पर गहरा प्रभाव डाला। इस घटना ने करोड़ों बंगालियों को उनकी जन्मभूमि से अलग कर दिया। ऋत्विक-दा की कई फिल्मों में यह पीड़ा उभरी है।

उन्हें सन् १९६९ में पद्मश्री मिली थी, जिस पर काफी विवाद हुआ था। उनकी मृत्यु ६ फरवरी १९७६ को हुई।

■ **प्रमुख फिल्में** : □ *नागरिक (१९५२-५३)* □ *अजांत्रिक (१९५८)* □ *मेघे ढाका तारा (१९६०)* □ *कोमल गांधार (१९६१)* □ *सुवर्ण रेखा (१९६२)* □ *जुक्ति/ तक्को अरु गप्पो (१९७४)* ● **अपूर्ण फिल्में** : □ *बेदेनी (१९५१)* □ *कतो अजानारे (१९५९)* □ *बगलार बंगदर्शन (१९६४)* □ *रंगेर गुलाम (१९६८)*। ■

जे. ओमप्रकाश

पारिवारिक मनोरंजन के लिए साफ-सुथरी फिल्मों के निर्माताओं में **जे. ओमप्रकाश** का नाम वजन रखता है। उनकी फिल्में तड़क-भड़क और फॉर्मूले में लिपटी होने के बावजूद अश्लील नहीं होती। आज के समय भी वे **'आदमी खिलौना है'** जैसी भावनात्मक फिल्म बनाने की हिम्मत रखते हैं। आज से पैंतीस वर्ष पहले जे. ओमप्रकाश ने फिल्मयुग की स्थापना की थी, मनोरंजक फिल्में बनाने के लिए। इसके पहले वे मोहन सहगल के दफ्तर में व्यवस्थापक थे। फिल्मयुग की पहली प्रस्तुति थी **'आस का पंछी'।** इसमें वैजयंती माला, राजेंद्र कुमार, शंकर-जयकिशन, शैलेंद्र हसरत जैसे कलाकार थे। इस फिल्म ने अच्छी

उड़ान भरी और ओमजी के पंख मजबूत किए। 'आस का पंछी' में उन्होंने मोहन कुमार को पहली बार निर्देशन का भार सौंपा। जब रंगीन फिल्मों का जमाना आया तो उन्होंने 'आई मिलन की बेला' बनाई जो रजत जयंती पार करगई। इस फिल्म से काश्मीर में शूटिंग करने के सिलसिले को गति मिली। ओमजी और मोहन कुमार को 'आ' से शुरू होने वाली फिल्में फलीं। तभी से वे अपनी हर फिल्म का नाम 'आ' से शुरू करने लगे। उन्होंने हर टॉप स्टार को लेकर फिल्में बनाई- राजेंद्र कुमार/ धर्मेंद्र/ राजेश खन्ना/ संजीव कुमार/ जीतेंद्र/ सायरा बानो/ आशा पारेख/ रीना रॉय/ राखी/ मुमताज/ रेखा/ परवीन बॉबी और सुचित्रा सेन- वैजयंती माला भी। ओमजी की लगभग हर फिल्म ने रजत जयंती मनाई।

ओमजी ने मोहन कुमार के अलावा रघुनाथ झालानी, मुकुल दत्त, सचिन भौमिक, गुलजार को निर्देशन का अवसर दिया। ओमजी ने अपनी फिल्मों में प्रेम, करुणा और ममता को विशेष स्थान दिया। इस कारण उनकी फिल्मों का स्तर कभी भी हल्का नहीं हुआ। ● *प्रमुख फिल्में:- □ आस का पंछी (१९६१) □ आई मिलन की बेला (१९६४) □ आए दिन बहार के (१९६६) □ आया सावन झूम के (१९६९) □ आन मिलो सजना (१९७०) □ आपकी कसम (१९७४) □ आक्रमण (१९७५) □ अपनापन (१९७७) □ आशा (१९८०) □ अर्पण (१९८३) □ आदमी खिलौना है (१९९३)।* ■

प्रकाश मेहरा

निर्देशक के रूप में ख्याति पाने के पहले **प्रकाश मेहरा** गीत लिखा करते थे। छोटी फिल्मों में काम करने के बाद उन्होंने सफलता का स्वाद चखा 'हसीना मान जाएगी' (१९६८) से। इस फिल्म में उन्होंने गीत भी लिखे थे। **'जंजीर'** (१९७३) से प्रकाश मेहरा बड़े निर्माता- निर्देशकों की पंक्ति में जा बैठे। 'जंजीर' ने अमिताभ बच्चन की जिंदगी ही बदल दी। इस फिल्म के बाद प्रकाश मेहरा और अमिताभ बच्चन की जोड़ी मशहूर हो गई। विनोद खन्ना के आ जाने से प्रकाश मेहरा की फिल्में सोना बरसाने लगीं। प्रकाश मेहरा ने मसालेदार फिल्में बनाईं। जब से उन्होंने अमिताभ का साथ छोड़ा, वे पीछे हटते गए। आजकल वे जी टीवी के लिए 'मिस्टर श्रीमती' फिल्म बना रहे हैं।

प्रमुख फिल्में- □ हसीना मान जाएगी (१९६८) □ जंजीर (१९७३) □ हेरा फेरी (१९७६) □ खून पसीना (१९७७) □ मुकद्दर का सिकंदर (१९७८) □ शराबी (१९८४) □ दलाल (१९९४)

निरंजन पाल

भारतीय फिल्मों के अग्रदूतों में **निरंजन पाल** का जीवन सबसे उथल-पुथल भरा रहा है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी विपिनचंद्र पाल अपने बेटे को भारत में क्रांतिकारियों के प्रभाव में आने से बचाने के लिए इंग्लैंड ले गए। वहाँ उन्हें चितरंजन दास को सौंप दिया। लंदन युनिवर्सिटी की प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करके वे मेडिकल कॉलेज में भरती तो हुए लेकिन अभिभावक सी.आर. से मतभेद होने के कारण उन्होंने पढ़ाई अधूरी छोड़ दी। इस बीच वे लंदन के सिनेमाघरों में फिल्में देखते रहे। उनमें भारत को जिस विकृत रूप में पेश किया जाता था, उससे क्षुब्ध हो स्वयं फिल्मों के लिए कहानियाँ लिखने का फैसला किया। बुद्ध के जीवन पर लिखी उनकी कहानी **'लाइट ऑव एशिया'** पर फिल्म उनकी हिमांशु राय से मित्रता के बाद १९२४-२५ में जर्मन फ्रेंज ऑस्टिन के निर्देशन में बनी। यह फिल्म १९२६ में लंदन में रिलीज हुई तथा काफी प्रशंसित हुई। उनकी दो कहानियाँ 'शीराज' और 'ए थ्रो ऑव डाइस' पर ब्रिटिश इन्सट्रक्शनल फिल्म्स तथा जर्मनी की यू.एफ.ए. ने क्रमशः १९२८ और १९२९ में फिल्में बनाईं। इसी वर्ष वे लौटे तथा लाहौर में 'ट्रबल्स नेवर कम अलोन', (१९३०), पूना में 'नीडल आई', 'पुजारी' तथा 'परदेशिया' तथा कलकत्ता में ए फेथफुल हार्ट' निर्देशित की। इसके बाद वे बॉम्बे टॉकीज में शामिल हो गए और उसके लिए 'अछूत कन्या' सहित आठ कहानियाँ लिखीं। उनकी अंतिम फीचर फिल्म 'बुद्धोदय' १९५१ में बनी तथा उनकी कहानी 'फेथ ऑव ए चाइल्ड' पर हिंदी फिल्म 'ज्योति' (१९६९) उनके निधन के बाद प्रदर्शित हुई। ■

उत्पलेन्दु चक्रवर्ती

उत्पलेन्दु चक्रवर्ती ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९६७ में आधुनिक इतिहास में बी.ए. की डिग्री हासिल की। बाद में वे बंगाल- बिहार- उड़ीसा के आदिवासी क्षेत्रों में अनौपचारिक रूप से पढ़ाने लगे। वे चित्रकार हैं, कवि हैं, कहानीकार हैं, उपन्यासकार हैं, गायक और संगीतकार हैं। 'मोयना तदन्त' उनकी पहली फीचर फिल्म है। इसे सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला। बाद की फिल्म **'चोख'** (१९८२) को राष्ट्रीय पुरस्कार तो मिला ही, साथ ही नवें अंतरराष्ट्रीयफिल्मोत्सव में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का
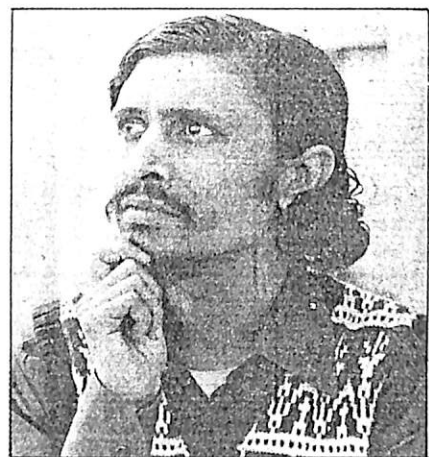
स्वर्ण मयूर भी मिला। उनकी हिन्दी में पहली फीचर फिल्म थी 'देवशिशु'। 'फाँसी' (बंगला) फिल्म कई देशी-विदेशी फिल्मोत्सवों में दिखाई जा चुकी हैं। उन्होंने 'सत्यजीत राय की फिल्मों का संगीत' नाम से एक वृत्त चित्र भी बनाया, जो पुरस्कृत हुआ। ■

अब्दुल रशीद कारदार

अपने जमाने के मशहूर चित्रकार **मियां अब्दुल रशीद** कारदार का जन्म २ अक्टूबर १९०४ को लाहौर में हुआ था। वे कुल छह भाई और छह बहनें थे। बचपन में ही इनकी माँ का देहान्त हो गया था। स्कूली दिनों में अब्दुल फिल्में खूब देखा करते थे। अपनी बहियों में मास्टरों की तस्वीरें बनाते थे। दोनों शौक जुनून की हद तक पहुँचे। पिता की इच्छा थी कि बेटा इंजीनियर बने।

सिनेमा एक उद्योग का आकार लेता जा रहा था। कंपनियाँ स्थापित हो रही थीं। कारदार घर से भाग कर बंबई पहुँचे। अर्देशिर ईरानी को यह गबरू नौजवान भा गया। अब्दुल ने पहले एक्स्ट्रा का काम किया। भीड़ से उठकर स्वतंत्र शॉट देने लगे। मगर उन्हें लगा कि उनकी मनमर्जी का काम नहीं हो रहा है इसलिए लाहौर लौट गए। चित्रकला में रम गए। उनके चित्रों की कीमत हजारों रुपयों में होती थी। पाठ्यपुस्तकों में इन्हीं के बनाए नक्शे होते थे।

बंबई का दूसरा चक्कर आशाजनक निकला। मूक फिल्म 'हीर-राँझा' (१९२७) में हीर के पति की भूमिका की। बाद में एक और फिल्म में खलनायक की भूमिका की मगर उसमें काफी काटछाँट हुई। इस बात ने कारदार का दिल खट्टा कर दिया। वे लाहौर लौटे और अपनी खुद की फिल्म कंपनी बनाई। पहली फिल्म थी 'मिस्टीरियस ईगल' (मूक)। कुल बाईस मूक फिल्में बनाने के बाद कारदार सन् १९३० में कलकत्ता चले गए। वहाँ उनकी पहली फिल्मी थी 'औरत का प्यार' (१९३२)। इसके बाद वे तीसरी बार बंबई आए कभी न लौटने के लिए।

कारदार ने दहेज प्रथा, बाल विवाह प्रथा, वृद्ध विवाह प्रथा के विरुद्ध फिल्में बनाईं। उनकी फिल्मों में संगीत का स्थान बहुत ऊँचा था। नौशाद ने उनकी अधिकांश फिल्मों में संगीत दिया। उनका संगीत खूब चला। कारदार ने साहिर, शम्मी कपूर, चाँद उस्मानी और पीस कंवल को पहली बार अवसर दिया। कारदार ने सरदार अख्तर की बहन सुल्ताना अख्तर से शादी की। वे सुल्ताना को लेकर एक फिल्म भी बना रहे थे। आधी फिल्म बनने के बाद प्रेम की परिणति विवाह में हो गई। अपनी पत्नी को कोई पर्दे पर देखे यह कारदार को गवारा नहीं हुआ इसलिए उन्होंने वह फिल्म ही जला दी। कारदार की फिल्मों में मुस्लिम संस्कृति की झाँकी देखने को मिलती है। उनकी मृत्यु २३ नवंबर १९८९ को हुई। **प्रमुख फिल्में:-** □ *हीर-राँझा (१९३२) □ औरत का प्यार (१९३३) □ चंद्रगुप्त (१९३४) □ बागी सिपाही □ मिलाप (१९३६) □ बागबान (१९३८) □ ठोकर (१९३९) □ होली □ पागल □ पूजा (१९४०) □ नई दुनिया □ शारदा (१९४२) □ कानून □ संजोग □ नमस्ते (१९४३) □ बहार □ गीत □ पहले आप (१९४४) □ संन्यासी (१९४५) □ शाहजहाँ (१९४६) □ दर्द (१९४७) □ दिल्लगी □ दुलारी (१९४९) □ दास्तान (१९५०) □ नौजवान (१९५१) □ बाप रे बाप (१९५५) □ दिले नादान (१९५८) □ दिल दिया दर्द लिया (१९६६)।*

राज खोसला

अपने गुरुओं के हमेशा गुण गाने वाले **राज खोसला** बंबई आए थे गायक बनने पर बन गए एक प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक। राज ने गायन की बाकायदा तालीम ली थी और वे आकाशवाणी पर गाते भी थे। संघर्ष के दिनों

में उनकी भेंट हुई देव आनंद से। आनंद परिवार से खोसला परिवार का परिचय काफी पुराना था। देव ने राज को गायन छोड़ने को कहा और अपनी फिल्म **'बाजी'** में गुरुदत्त का सहायक बना दिया। गुरुदत्त ने राज खोसला को अपनी फिल्म 'सीआयडी' के निर्देशन की जिम्मेदारी सौंपी। राज ने सिद्ध कर दिया कि वे गुरु के सच्चे शिष्य हैं। इस फिल्म में महमूद ने खलनायक की भूमिका की जो बाद में सफल हास्य नायक बने। भोली सूरत वाली वहीदा रहमान ने इसमें खलनायिका की भूमिका की। फड़कते हुए गीतों और मदमस्त संगीत ने 'सीआयडी' को सफल फिल्म बना दिया। राज खोसला ने फिल्म में संगीत का महत्व जाना। बाद की उनकी कई फिल्मों का संगीत घर-घर गूंजा।

राज ने अलग-अलग विषयों पर फिल्में बनाईं। रहस्य-रोमांच/ पारिवारिक/ अपराध प्रधान/ प्रेम प्रधान। उन्होंने कई कलाकारों का कैरियर सँवारा। बिंदु को छोटी फिल्मों के दलदल से निकालकर उच्च कोटि की खलनायिका बनाया। 'दो रास्ते' के बाद बिंदु एक स्टार बनी। 'मेरा गाँव मेरा देश' में विनोद खन्ना को और लक्ष्मी छाया को प्रसिद्धि दी। 'कालापानी' में देव आनंद को अभिनय का पहला फिल्म फेयर पुरस्कार दिलवाया। देव आनंद का ऋण उन्होंने 'मिलाप/ सोलवाँ साल/ सीआयडी/ कालापानी/ बंबई का बाबू और शरीफ बदमाश का निर्देशन करके चुकाया। इन फिल्मों के नायक देव आनंद थे। अपने चालीस वर्ष के फिल्मी जीवन में उन्होंने कई सफल फिल्में दीं। **प्रमुख फिल्में:-** □ *मिलाप (१९५५) □ सीआयडी (१९५६) □ कालापानी □ सोलवाँ साल (१९५८) □ बंबई का बाबू (१९६०) □ एक मुसाफिर एक हसीना (१९६१) □ वह कौन थी (१९६४) □ मेरा साया □ दो बदन (१९६६) □ अनिता (१९६७) □ दो रास्ते (१९६९) □ मेरा गाँव मेरा देश (१९७१) □ दो चोर (१९७२) □ कच्चे धागे □ शरीफ़ बदमाश (१९७३) □ मैं तुलसी तेरे आँगन की (१९७८) □ दोस्ताना (१९८०)।*

रमेश सिप्पी

प्रसिद्ध फिल्म निर्माता जी.पी. सिप्पी के लड़के **रमेश सिप्पी** अपनी कामधेनु फिल्म 'शोले' के लिए याद रखे जाएँगे। 'शोले' ने भारत में फिल्मों की दिशा बदल दी। इसने भारतीय फिल्म इतिहास में सबसे लंबे समय तक चलने का रेकॉर्ड बनाया। रमेश की अगली फिल्म 'शान' पाँच वर्ष बाद प्रदर्शित हुई तब तक 'शोले' लगातार चल रही थी। 'शान' ने मुँह की खाई। फिर रमेश 'सागर' के निर्माण में जुट गए। बीच में टीवी पर भी आए और मेगा सीरियल **'बुनियाद'** बनाई। 'सागर' ने अच्छा धंधा किया। उनकी बाद की फिल्म 'भ्रष्टाचार' असफल रही। रमेश भव्य पैमाने पर फिल्में बनाते हैं। उनमें कैमरावर्क उच्च कोटि का होता है। तकनीकी दृष्टि से रमेश सिप्पी की फिल्में विश्व सिनेमा के स्तर की होती हैं। रमेश सिप्पी इन दिनों टीवी धारावाहिक 'किस्मत' पूरा करने में लगे हैं।

असली नाम नकली नाम

फिल्मों में प्रवेश करते ही नाम बदलने की परम्परा पुरानी है। इसके पीछे कुछ व्यावसायिक कारण रहे हैं और कुछ अंध-विश्वास। कुछ विजातीयता रही है। सत्तर के दशक से यह मानसिकता कुछ-कुछ बदली है, जब स्मिता पाटिल/शबाना आजमी/नाना पाटेकर/सदाशिव अमरापुरकर न सिर्फ लोकप्रिय बने वरन् स्थापित भी हुए। कुछ प्रमुख कलाकारों के असली-नकली नाम...

□ दिलीप कुमार	युसूफ खान
□ प्राण	प्राणकृष्ण सिकंद
□ मनोज कुमार	हरिकृष्ण गोस्वामी
□ जयंत	झकेरिया खान
□ राजकपूर	रणवीर राजकपूर
□ देव आनंद	धर्मदेव आनंद
□ सुनील दत्त	बलराज दत्त
□ राजकुमार	कुलभूषण
□ संजीव कुमार	हरिहर जरीवाला
□ राजेश खन्ना	जतिन खन्ना
□ धर्मेन्द्र	धर्मेन्द्रसिंह देओल
□ जितेन्द्र	रवि कपूर
□ जानी वाकर	बदरुद्दीन काजी
□ अजय साहनी	परीक्षित साहनी
□ शक्ति कपूर	सुनील कपूर
□ कुमार गौरव	मनोज कुमार
□ चंकी पाण्डे	सुयश पाण्डे

□ आदित्य पंचोली	निर्मल पंचोली
□ संजय खान	अन्यास खान
□ अकबर खान	समीर खान
□ मिठुन चक्रवर्ती	गौरांग चक्रवर्ती
□ किशोर कुमार	आभास कुमार
□ मन्ना डे	प्रबोधचन्द्र डे
□ सीता देवी	रेनी स्मिथ
□ सुलोचना	रुबी मायर्स
□ माधुरी	बेरिल क्लासन
□ ललिता देवी	इफी हिपोल
□ मधुबाला	मुमताज जहाँ बेगम
□ नरगिस	कनीज फातिमा
□ सुरैया	सुरैया जमाल शेख
□ श्यामा	खुर्शीद अख्तर
□ टुनटुन	उमा देवी

□ दादा साहेब फालके	धुण्डीराज गोविन्द फालके
□ अशोक कुमार	काशी विश्वेश्वर गांगुली
□ जैकी श्राफ	जयकिशन काकूभाई श्राफ
□ गौहर जान	गौहर अब्दुल कय्युम मामाजीवाला

फिल्म कल्चर

□ निरुपाराय	कोकिला
□ मीना कुमारी	महजबीं अलीबख्श
□ रीना रॉय	सायरा खान
□ श्रीदेवी	अम्मा श्रीदेवी
□ जयाप्रदा	ललिता
□ मौसमी चटर्जी	इन्द्राणी चटर्जी
□ रेखा	भानु रेखा गणेशन्
□ माधुरी दीक्षित	माधुरी शंकर दीक्षित
□ मंदाकिनी	यास्मिनी जोजफ
□ संध्या	विजया देशमुख
□ मीनाक्षी शेषाद्रि	शशिकला शेषाद्रि
□ माधवी	विजय लक्ष्मी
□ एकता	आरती शर्मा
□ टीना मुनीम	निवृत्ति मुनीम
□ ललिता पवार	अम्बू

शेखर कपूर

लंदन में चार्टर्ड अकाउंटेंट का अच्छा खासा काम छोड़कर फिल्मी दुनिया में कदम रखने वाले **शेखर** कपूर एक लोकप्रिय मॉडल हैं। वे चेतन-देव- विजय आनंद के भाँजे हैं। उन्होंने फिल्मी जीवन की शुरूआत अभिनेता की हैसियत से शुरू की। 'जान हाजिर है' और 'टूटे खिलौने' उन्हें पहचान न दे सकीं। 'मासूम' (१९८६) के निर्देशन से ही शेखर कपूर का नाम फैला। 'मिस्टर इंडिया' ने शेखर को बड़े निर्देशकों की पंक्ति में बैठा दिया। दर्शक उनसे बड़ी उम्मीदें रखने लगे। लेकिन 'जोशीले' ने सब का जोश निकाल दिया। बड़े पैमाने और बड़े सितारों के बावजूद यह फिल्म बुरी तरह मात खा गई। शेखर कपूर को टीवी की ओर मुड़ना पड़ा। उन्होंने बीबीसी चैनल फोर के लिए 'फूलन द बैंडिट क्वीन' फिल्म बनाई है। बंबई के फिल्म जगत का व्यवहार उन्हें दुःखी कर गया। 'टाइम मशीन' उनकी महत्वाकांक्षी फिल्म है। शेखर कपूर की मोहक 'पर्सनेलिटी' ने उन्हें नायक भी बनाया। गोविंद निहलानी की फिल्म 'दृष्टि' में उन्होंने सधा हुआ अभिनय किया है। ■

श्याम बेनेगल

समान्तर सिनेमा आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर **श्याम बेनेगल** का जन्म १४ दिसंबर १९३४ को हैदराबाद में हुआ था। उनके पिता एक फोटोग्राफर थे। उन्होंने श्याम को सोलह मिलीमीटर का एक कैमरा भेंट किया। हैदराबाद के पहले फिल्म क्लब की स्थापना श्याम ने की थी। इस क्लब ने पहला प्रदर्शन **'पथेर पांचाली'** का किया। एम.ए. (अर्थशास्त्र) करने के बाद श्याम बंबई आ गए और विज्ञापनों की दुनिया में रम गए। फीचर फिल्में बनाने की शुरूआत उन्होंने 'अंकुर' (१९७४) से की। इस फिल्म ने समीक्षकों को नीद से जगाया। कोई कलाकार अपनी पहली ही फिल्म इतने संयमित ढंग से बना सकता है, इस बात पर लोगों को ताज्जुब हुआ। विज्ञापनों के संसार में चौदह वर्ष बिताने और एक हजार विज्ञापन फिल्में बनाने वाले से ऐसे चमत्कार की उम्मीद नहीं थी। श्याम बेनेगल को पद्मभूषण का अलंकरण मिला। सोवियत लैंड का नेहरू पुरस्कार और होमी भाभा फैलोशिप से पुरस्कृत श्याम बेनेगल ने व्यावसायिक सिनेमा के सामने कभी सिर नहीं झुकाया। वे अपने उद्देश्य के प्रति हमेशा ईमानदार रहे। बंबई में रहकर भी उन्होंने बंबइया हिंदी का इस्तेमाल नहीं किया। उन्होंने दूरदर्शन के लिए **'भारत एक खोज'** बनाई, जो एक दस्तावेज है। लीक से हटकर फिल्में बनाकर श्याम बेनेगल ने विदेशों में हिंदी फिल्मों को अंतरराष्ट्रीय स्तर दिया है। ■ ***प्रमुख फिल्में:-*** *□ अंकुर (१९७३) □ चरणदास चोर □ निशांत, (१९७५) □ मंथन (१९७६) □ भूमिका/ अनुग्रहम(१९७७) □ जुनून (१९७८) □ कलयुग (१९८१) □ आरोहण (१९८२) □ मंदिर (१९८३) □ सत्यजीत राय (१९८४) □ त्रिकाल (१९८५) □ सुस्मन (१९८६) □ सूरज का सातवाँ घोड़ा (१९९३)।* ■
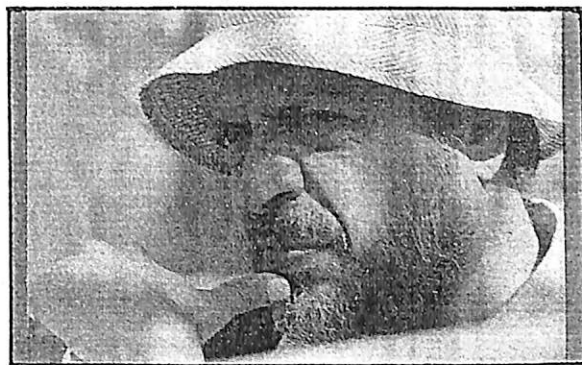
मनमोहन देसाई

अपनी फिल्मों के माध्यम से दर्शकों को अपने दुख भुलाने का यशस्वी काम करने वाले **मनमोहन देसाई** आम आदमी के लिए फिल्में बनाते थे। खोया-पाया के एक ही विषय पर उन्होंने कई फिल्में बनाई और अधिकांश सफल हुई। उन्हें विश्व के दस बड़े व्यावसायिक फिल्म निर्देशकों में गिना जाता था। उनकी जिन फिल्मों को भारत के समीक्षकों ने कोसा उन्हीं फिल्मों ने उन्हें विदेशों में लोकप्रियता दिलवाई। **'अमर अकबर एंथोनी'** जैसी फिल्म पर कोई भी फिल्मकार गर्व कर सकता है।

मनमोहन देसाई के पिता कीकू भाई देसाई फिल्मी दुनिया की जानी-मानी हस्ती थे। वे पैरामाउंट स्टुडियो के मालिक थे। बाद में उनकी हालत गिरती गई। 'मन' जब चार साल के थे तब उनके पिता का साया उनके सिर से उठ गया। भाई सुभाष ने उनकी परवरिश की। पढ़ाई-लिखाई में 'मन' अच्छे नहीं थे। इंटर करने के बाद वे बाबूभाई मिस्त्री के सहायक बने। पहली फिल्म जो उन्होंने निर्देशित की थी उसमें राज कपूर, नूतन और प्राण जैसे बड़े कलाकार थे। यह उनका ऐलान था कि वे बड़े सितारों के साथ फिल्में बनाएँगे और उन्हें अपने वश में रखेंगे। **'छलिया'** की कहानी आम नायक-नायिका की नहीं थी। नायक और नायिका का कोई संबंध नहीं होता। नएपन के बावजूद 'छलिया' ने अच्छा धंधा किया।

सत्तर के दशक में 'मन' की ख्याति विदेशों तक जा पहुँची। धर्मेन्द्र और बाद में अमिताभ बच्चन के साथ उन्होंने कई सफल फिल्में दीं। उनकी फिल्मों में कोई उपदेश नहीं होता था। थिएटर को वे क्लास रूम नहीं मानते थे और फिल्मों को पाठ्य पुस्तक भी नहीं मानते थे।

उनकी फिल्मों में भारतीय संस्कृति झलकती थी। माँ का चरित्र, पतिव्रता पत्नी का समर्पण, माँ के प्यार को तरसते बेटे की तड़प, खोए हुए बेटे को पाने की क्षीण आशा में तिल-तिलकर जीने वाले बाप की मजबूरी 'मन' की फिल्मों की पूँजी हुआ करती थी। उन्होंने मनोरंजन के नाम पर अश्लीलता नहीं परोसी। १ मार्च १९९४ को उनका एक दुर्घटना में निधन हो गया।

प्रमुख फिल्में- *□ छलिया (१९६०) □ ब्लफ मास्टर (१९६३) □ बदतमीज (१९६६) □ किस्मत (१९६८) □ आ गले लग जा (१९७३) □ अमर अकबर एंथोनी (१९७७) □ परवरिश (१९७७) □ कुली (१९८३) □ मर्द (१९८५) रामपुर का लक्ष्मण (१९७२) □ भाई हो तो ऐसा (१९७२) □ चाचा भतीजा (१९७७) □ धर्मवीर (१९७७) □ अनमोल (१९९३)।* ■

गुरुदत्त

गुरुदत्त की गिनती संवेदनशील फिल्मकारों में होती है। छोटी उम्र में उन्होंने जो स्थान प्राप्त किया वह अद्वितीय है। वे निर्माता, निर्देशक और अभिनेता तो थे ही, साथ ही एक अच्छे नृत्य निर्देशक भी थे। बचपन में ही वे उदयशंकर आर्ट अकादमी (अल्मोड़ा) चले गए थे। उदयशंकर के ट्रूप के साथ बहुत घूमे। उनका फिल्मी जीवन शुरू हुआ, प्रभात की **'लाखारानी'** फिल्म से। 'हम एक हैं' में नृत्य निर्देशक थे। सहायक निर्देशक भी थे। इसके नायक थे देव आनंद। देव ने गुरु को वचन दिया था कि अगर वे निर्माता बने तो गुरु को निर्देशन का मौका देंगे। देव ने मौका दिया 'बाजी' (१९५१) में। यह अपराध- रोमांस प्रधान फिल्म थी। इसने हिंदी फिल्मों को एक नया विषय दिया। 'जाल' (१९५२) भी संगीत के बल पर चली। गुरुदत्त ने अपनी खुद की कंपनी गुरुदत्त फिल्म्स की स्थापना की। पहली फिल्म थी 'आरपार' (१९५४)। यह संगीत-रोमांस फिल्म थी। गानों के फिल्मांकन में गुरु ने अपनी सूझबूझ का परिचय दिया। 'आरपार' के बाद 'मिस्टर एंड मिसेज ५५' भी मनोरंजन में सफल रही। 'सीआयडी' में उन्होंने अपने सहयोगी राज खोसला को

निर्देशन का मौका दिया।

चटपटी फिल्मों के बाद गुरुदत्त के जीवन में एक ऐसा मोड़ आया जिसने उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी। वे कुशल अभिनेता थे ही, एक संवेदनशील निर्देशक बनकर भी सामने आए। अपने ही निर्देशन में उन्होंने पहली बार अभिनय किया, **'प्यासा'** में। प्यासा न सिर्फ गुरुदत्त की उत्कृष्ट कृति है बल्कि भारत की महत्वपूर्ण फिल्म है। भारत की पहली सिनेमास्कोप फिल्म **'कागज के फूल'** बनाने का श्रेय गुरुदत्त को जाता है। यह फिल्म फिल्मी दुनिया की नकली चकाचौंध पर दृष्टि डालती है। कहीं-कहीं यह खुद गुरुदत्त की आत्मकथा लगती है। इसे विदेशों में सराहना और पुरस्कार मिले मगर भारत में मिली असफलता। इस नाकामयाबी ने उन्हें तोड़ दिया। वे फिर व्यावसायिक फिल्मों की दुनिया में लौटे। 'चौदहवीं का चाँद' में उन्होंने निर्देशन की जिम्मेदारी एम. सादिक को सौंपी। इस फिल्म ने खूब पैसे बरसाए। मुस्लिम संस्कृति पर इतनी अच्छी फिल्में बहुत कम बनी हैं।

शांति निकेतन में रहने के कारण गुरुदत्त पर बंगला साहित्य और संस्कृति का गहरा असर था। उनकी अंतिम फिल्म 'साहिब बीवी और गुलाम' बंगाल की दम तोड़ती सामन्तशाही पर नजर डालती है। गंभीर और दुखांत होने के बावजूद यह फिल्म अच्छी चली। इसने कई पुरस्कार भी जीते।

वहीदा रहमान से मोह- भंग होने के कारण गुरुदत्त नींद की गोलियाँ खाकर सदैव नींद में सो गए। १० अक्टूबर १९६४ को उनका निधन हुआ।

● **प्रमुख फिल्में:-** *☐ बाजी (१९५१) ☐ जाल (१९५२) ☐ बाज (१९५३) ☐ आरपार (१९५४) ☐ मिस्टर एंड मिसेस ५५ (१९५५) ☐ प्यासा (१९५६) ☐ कागज के फूल (१९५९) ☐ चौदहवीं का चाँद (१९६०) ☐ साहिब बीवी और गुलाम (१९६२) ☐ बहारें फिर भी आएँगी (मरणोपरांत १९६६)* ■

कुछ निर्देशक और...

भारतीय सिनेमा का अर्थ सिर्फ हिन्दी सिनेमा नहीं होता। उसमें पन्द्रह भाषाएँ और अनेक बोलियाँ हैं, जिनके अपने फिल्मकार हैं। सब के बारे में यहाँ जानकारी देना संभव नहीं है। इसके बावजूद कुछ निर्देशकों का अति संक्षिप्त परिचय पाठकों की जिज्ञासा शांत करने के लिए प्रस्तुत है-

☐ **उत्पल दत्त :** मूलतः अभिनेता और रंगकर्मी रहे हैं। उन्होंने माइकेल मधुसूदन दत्त तथा झोर फिल्में भी निर्देशित कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

☐ **कल्पना लाजमी :** निर्देशन के क्षेत्र में एक नया नाम है। पहली फिल्म थी 'एक पल' और दूसरी 'रुदाली'। दोनों के कारण आपकी पहचान बनी है। श्याम बेनेगल की इस सहायिका ने इन दिनों असम के गायक-संगीतकार भूपेन हजारिका की उँगली थामी है। 'लोहित किनारे' टीवी सीरियल भी ताजगी भरा था।

☐ **आय.वी. शशि :** बोल्ड मलयाली निर्देशक के रूप में आय.वी. शशि की फिल्में सेक्स जीवन पर आधारित रहती हैं। १४ बरसों में आपने लगभग सौ फिल्में बनाकर कीर्तिमान कायम किया है। 'हर नाइट्स' आपकी चर्चित फिल्म है।

☐ **ए.के. बीर :** उड़िया मूल के ए.के. बीर ने पुणे संस्थान से छायांकन में डिप्लोमा लिया है। 'सत्ताईस डाऊन' के छायांकन पर सर्वोत्तम छायाकार का पुरस्कार मिला। घरौंदा फिल्म का छायांकन भी आपने किया है। निर्देशक के रूप में आदि मीमांसा (१९९२) को अंतरराष्ट्रीय ख्याति मिली। लावण्य प्रीति (१९९३) आपकी नवीनतम फिल्म है।

☐ **गोपी देसाई :** महिला निर्देशिकाओं में गोपी देसाई ने एक ही फिल्म से इतनी ख्याति अर्जित कर ली है, जो दूसरों को मुश्किल से मिल पाती है। यह बाल- फिल्म है- मुझ से दोस्ती करोगे? इस फिल्म को राष्ट्रीय के अलावा म.प्र. फिल्म विकास निगम ने भी पुरस्कृत किया है। असमिया फिल्म पापोरी/टीवी सीरियल कालाजल एवं हमराही में आपने महत्वपूर्ण भूमिकाएँ की हैं।

☐ **नव्येंदू चटर्जी :** हिन्दी फिल्म नया रास्ता (१९६७) के बाद बंगला फिल्मों की ओर नव्येन्दू मुड़ गए। अभिनेता से निर्देशक बनने पर उन्हें बेहद सफलता मिली। उनकी फिल्म 'परशुरामेर कुठार' को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। आप फिल्मों में कला के प्रति समर्पित रहते हैं।

☐ **के. विश्वनाथ :** आंध्रप्रदेश के विज्ञान स्नातक के. विश्वनाथ ने साउण्ड रेकार्डिस्ट की हैसियत से अपना फिल्मी जीवन आरम्भ किया। उन्होंने १२ तेलुगु और चार हिन्दी फिल्में बनाई हैं। आपकी फिल्मों में भारतीय गीत-संगीत का प्रबल पक्ष उकेरा जाता है। सरगम/ शंकराभरणम् उल्लेखनीय फिल्में हैं।

☐ **शंकर नाग :** कन्नड़ फिल्मों के इस अभिनेता निर्देशक ने गिरीश कर्नाड की फिल्म ओंडा नोंडु कल्ला डल्ली (१९७८) से अपने कैरिअर की शुरूआत की। रंगमंच से फिल्म निर्देशन सम्हाला। एक्सीडेंट आपकी चर्चित फिल्म है। दूरदर्शन पर 'मालगुड़ी डेज' धारावाहिक बेहद सफल रहा था। अभिनेता अनंत नाग आपका छोटा भाई है।

☐ **तनवीर अहमद :** फिल्म संस्थान पुणे से स्नातक रहे तनवीर ने अनेक वृत्तचित्र निर्देशित किए हैं। चिरुथा आपकी पहली फिल्म थी, जिसमें किसानों के शोषण को रेखांकित किया गया था। सु-राज दूसरी फिल्म है, जिसमें आजादी की लड़ाई में संघर्षरत लोगों का आजादी के बाद संघर्ष चित्रित है।

☐ **मनमोहन महापात्र :** पुणे के फिल्म संस्थान से निर्देशक बने मनमोहन ने सीतारति (१९८२), नीरव झड़ (१९८४), क्लांत अपरान्ह (१९८५) और माझी पहाचा (१९८६) फिल्में देकर पुरस्कार प्राप्त किए हैं।

नईदुनिया • श्रीदेवी

नईदुनिया ◆ संजय दत्त
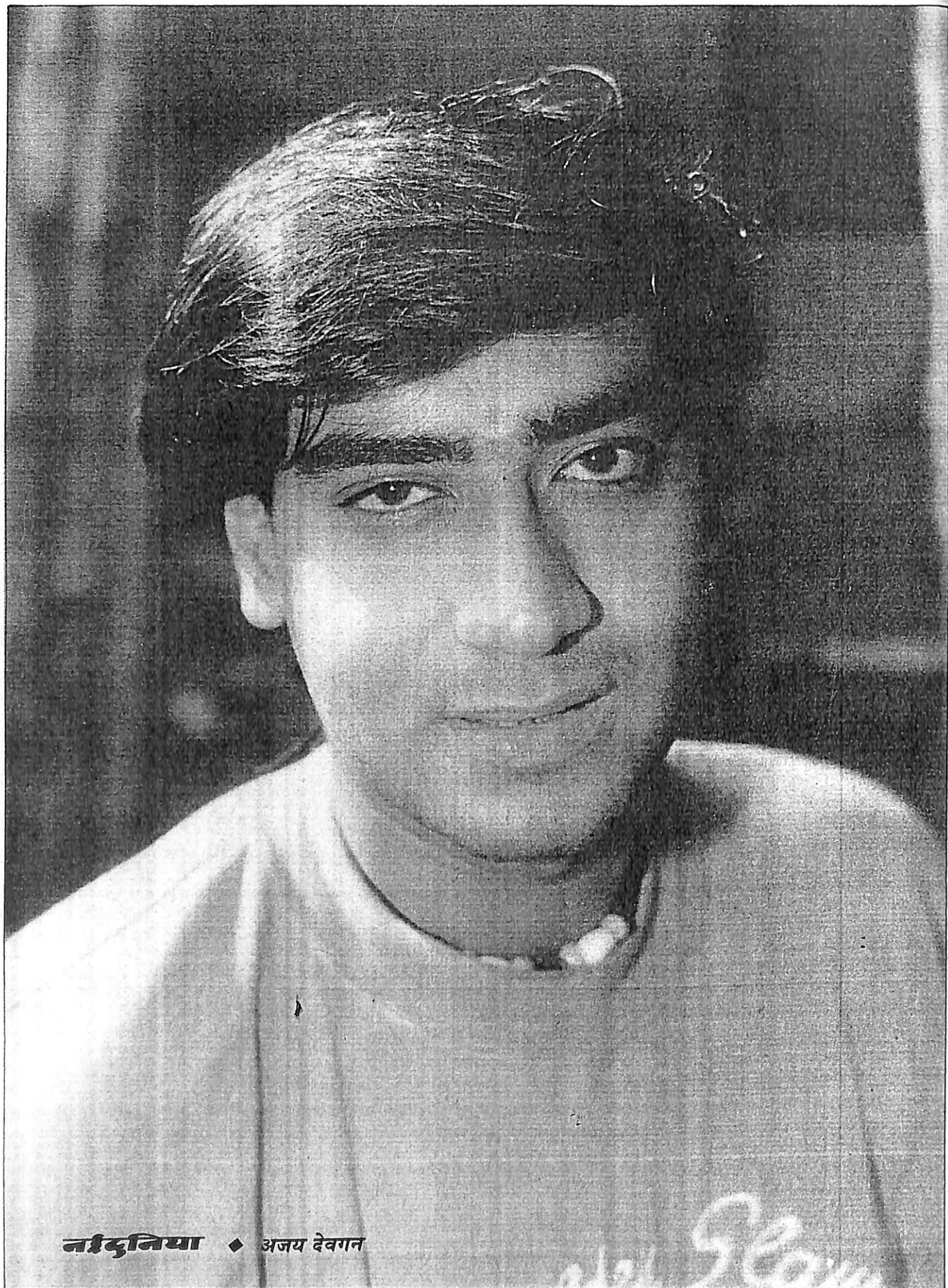
नईदुनिया ◆ काजोल

नईदुनिया ◆ अजय देवगन

नईदुनिया ◆ करिश्मा कपूर
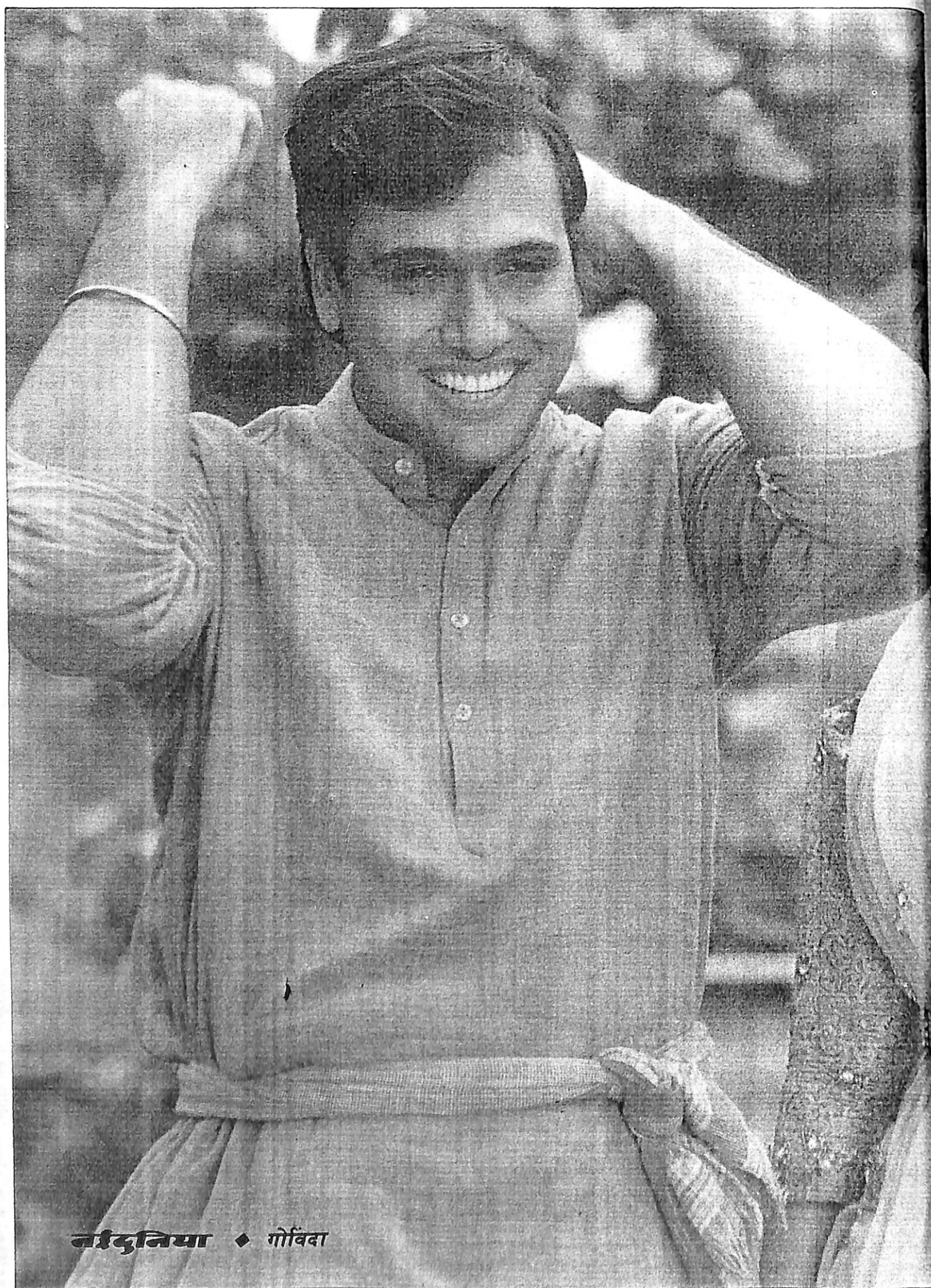
नईदुनिया ◆ गोविंदा

नईदुनिया ◆ माधुरी दीक्षित

नईदुनिया ◆ मधु

फिल्म और फिल्म

भारतीय सिनेमा की जब चर्चा होती है, तो पंद्रह भाषाओं और अनेक बोलियों में निर्मित हजारों फिल्मों का हिंद महासागर हमारे सामने लहराने लगता है। १९३१ से १९९३ तक लगभग २५ हजार फिल्मों को फिल्म प्रमाणन मंडल ने प्रमाण-पत्र जारी किए हैं। १९५३ से 'राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार' और 'फिल्म फेयर' पुरस्कार आरंभ हुए, तो श्रेष्ठ फिल्मों की दो कसौटियाँ हमारे सामने आईं। इसके पहले की श्रेष्ठ फिल्मों का चयन जन-चर्चा अथवा उनके विषय एवं प्रस्तुति की श्रेष्ठता से है। इस खंड में हमने सभी भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ एवं पुरस्कृत फिल्मों का एक प्रकार से 'अमृत-मंथन' कर पाठकों को श्रेष्ठतम परोसने की कोशिश की है। किसी फिल्म का उल्लेख नहीं हो पाना उसके प्रति अनादर अथवा उसकी श्रेष्ठता से इंकार नहीं है।

भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' (१९३१) का दृश्य

विरुद्ध जेहाद चलाते हैं। राज्य के सारे कट्टरपंथी राजा के इस क्रांतिकारी अभियान से त्रस्त होकर उसकी हत्या करवा देते हैं। राजसत्ता अपने हाथों में लेकर तमाम विरोध को सख्ती से दबा देते हैं। लेकिन, राज्य के प्रगतिशील युवाओं की मदद से युवरानी पुनः सत्ता हासिल करती हैं।
□ हिन्दी/ १९३४/ श्वेत-श्याम/ १५५ मिनट, □ प्रभात फिल्म कं., □ निर्माता : वी. दामले एवं फत्तेलाल, □ निर्देशक : वी. शांताराम, □ संगीत : के. भोले □ कलाकार : नलिनी तुर्खड़/ शांता आप्टे/ सुरेश बाबू/ चंद्रमोहन।
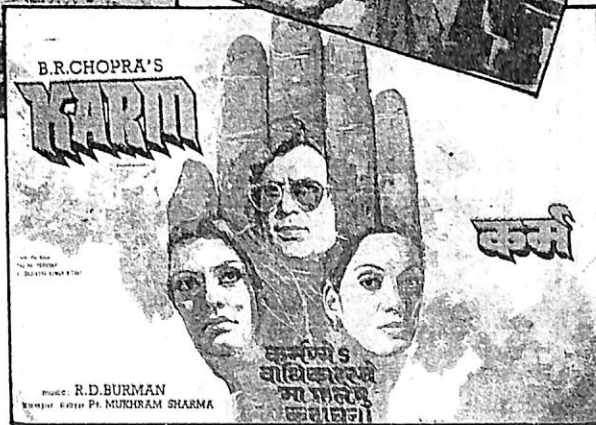
आलम आरा

भारत की पहली बोलती फिल्म। सच्चाई, अच्छाई और मानवीय ईमानदारी पर आधारित कास्ट्यूम ड्रामा। एक राजा की दो रानियाँ थीं- एक अच्छी और दूसरी बुरी। अच्छी रानी के बेटे और सेनापति की बेटी में प्यार हो जाता है। बुरी रानी के बुरे इरादों के बावजूद अंत भला, सो सब भला।
□ हिंदी/ १९३१/ श्वेत-श्याम/ १२४ मिनट □ इम्पीरियल मूवीटोन □ निर्देशक : आर्देशिर ईरानी □ संगीत : फिरोज शाह मिस्त्री □ कलाकार : मा. विट्ठल/ जुबैदा/ जिल्लो/ पृथ्वीराज/ डब्ल्यू.एम. खान।

अयोध्या का राजा

फिल्म की कहानी राजा हरिश्चंद्र की सत्यप्रियता, वचनबद्धता एवं कर्तव्यनिष्ठता को प्रस्तुत करती है। विश्वामित्र उनके सिद्धांतों की कड़ी परीक्षा लेते हैं। राजा न केवल अपनी पत्नी का वध करने को तैयार होता है बल्कि अपने बच्चे की मौत भी सहन करता है। आलम आरा नष्ट हो जाने के बाद अब भारत की सवाक् फिल्मों में इसकी प्रथम गणना होती है।
□ हिंदी/ श्वेत-श्याम/ १९३२/ १५२ मिनट □ प्रभावती फिल्म □ निर्माता : वी. दामले फत्तेलाल □ निर्देशक : वी. शांताराम □ संगीत : गोविंदराव टेम्बे □ कलाकार : दुर्गा खोटे/ गोविंदराव टेम्बे/ मा. दिगम्बर/ निम्बालकर।

कर्मा

एक राज्य की युवा रानी पड़ोसी राज्य के राजकुमार से प्यार करने लगती है। लेकिन युवराज के पिता की इच्छा पड़ोसी राज्य को हड़पने की रहती है। स्वयं पिता युवराज की हत्या की योजना बनाकर राज्य हड़पने का षड्यंत्र रचता है।
□ अँगरेजी/ १९३३/ श्वेत-श्याम □ निर्देशक : जे. एल. एफ. हंट □ निर्माता : हिमांशु राय □ संगीत : अर्नेस्ट ब्राडहर्स्ट □ कलाकार : देविकारानी/ हिमांशु राय/ दीवान शरर/ सुधा रानी।

अमृत मंथन

क्रांति वर्मा नरबलि तथा पशुबलि के

फिल्म चंडीदास : उमा शशि- सहगल

चंडीदास

जमींदार, गोपीनाथ, गाँव की सुंदर लड़की, रानी का अपहरण करता है। रानी

देवदास

फिल्म 'देवदास' शरतचंद्र के क्लासिक उपन्यास पर आधारित है। फिल्म का नायक एक जमींदार का लड़का है। पार्वती गरीब पड़ोसी परिवार की लड़की है। देवदास पार्वती से बेहद प्यार करता है। देवदास के परिवार वाले पार्वती से शादी के विरुद्ध हैं। पार्वती की शादी दूसरे आदमी से कर दी जाती है। पार्वती के बिछोह का देवदास को इतना गहरा सदमा होता है कि वह दिन-रात शराब पीने लगता है। कोठे वाली चंद्रमुखी उसे इस सदमे से उबारने का असफल प्रयास करती है। देवदास अंतिम साँस तक पार्वती से मिलने की हसरत में उसके गाँव तक सफर करता है। लेकिन मिलने से पहले उसके घर के सामने दम तोड़ देता है। इस फिल्म ने अपने समय में इतना प्रभाव फैलाया था कि अधिकांश असफल प्रेमी 'देवदास' बनने लगे थे।
□ हिंदी/ १९३५/ श्वेत श्याम/ १४१ मिनट □ न्यू थिएटर्स □ निर्माता : बी.एन. सरकार □ निर्देशक : प्रमथेशचंद्र बरुआ □ संगीत : तिमिर बरन □ कलाकार : सहगल/ जमुना/ राजकुमारी/ के.सी. डे।

मंदिर के पुजारी चंडीदास से प्यार करती है। गोपीनाथ उन्हें अलग करने के लिए अनेक घिनौने हथकंडे अपनाता है। बावजूद, चंडीदास एवं रानी के मिलन को रोक नहीं पाता।
□ हिंदी/ १९३४/ श्वेत श्याम/ १२३ मिनट □ न्यू थिएटर्स □ निर्माता : बी.एन. सरकार □ निर्देशक : नितिन बोस □ संगीत : आर.सी. बोराल □ कलाकार : सहगल/ उमा शशि/ पहाड़ी सान्याल।

अछूत कन्या

फिल्म 'अछूत कन्या' समाज में व्याप्त जातिभेद तथा छुआछूत की भावना पर आधारित है। कस्तूरी अछूत जाति के रेल कर्मचारी की लड़की है। प्रताप ब्राह्मण पुत्र है। दोनों बचपन के दोस्त हैं। बचपन की यह दोस्ती बड़े होने पर प्यार में बदल जाती है। जाति उनके प्यार में सबसे बड़ी बाधा है। कस्तूरी की शादी उसी की जाति के लड़के से जबर्दस्ती कर दी जाती है। इन तमाम विपरीत परिस्थितियों को समझते हुए कस्तूरी प्रताप से मिलना नहीं चाहती। इत्तफाक से उनकी मुलाकात मेले में हो जाती है। उसका पति मनू गलतफहमी में आकर प्रताप पर वार करता है। दोनों ट्रेन की पटरियों पर झगड़ते हैं। तेजी से आती ट्रेन को रोकने की कोशिश में कस्तूरी की मृत्यु हो जाती है। गाँधीजी के अछूतोद्धार से यह फिल्म प्रेरित थी। नायक अशोक कुमार को सफेद टोपी आजादी के आंदोलन के प्रतीक के रूप में पहनाई गई थी।
□ हिंदी/ १९३६/ श्वेत श्याम/ १४३ मिनट □ बॉम्बे टॉकीज □ निर्माता : हिमांशु रॉय □ निर्देशक : फ्रेंज ऑस्टिन □ संगीत : सरस्वती देवी □ कलाकार : अशोक कुमार/ देविकारानी/ पुष्पा रानी/ कुसुम कुमारी।

संत तुकाराम

महाराष्ट्र के संत तुकाराम की जिंदगी पर यह फिल्म आधारित है। संत तुकाराम की पत्नी के अलावा दो बच्चे हैं। तुकाराम स्वभाव से सरल व सदैव ईश्वर भक्ति में मगन रहते हैं। पूरा गाँव उनके स्वभाव एवं ईश्वर भक्ति का सम्मान करता है। लेकिन

उनकी पत्नी सदैव उनका तिरस्कार करती रहती है। अन्य पंडित ईर्ष्यावश तुकाराम की भक्ति को दिखावा साबित करने के लिए अनेक बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। अंत में स्वर्ग से विमान आता है और तुकाराम सशरीर स्वर्गारोहण करते हैं।
□ मराठी/ १९३६/ श्वेत श्याम/ १४३ मिनट □ प्रभात फिल्म □ निर्देशक : वी. दामले/ फत्तेलाल □ संगीत : केशवराव भोले □ कलाकार : विष्णुपंत/ पागनीस/ गौरी/ पंडित/ दामले।

प्रेसीडेंट

पिता की मृत्यु के बाद प्रभावती मिल का सारा प्रबंध संभालती है। वह अत्यंत सख्त एवं अपने वर्ग के प्रति सचेत महिला है। उसकी छोटी बहन शीला का फैक्टरी में कार्यरत डिजाइनरप्रकाश से प्यार हो जाता है। प्रकाश को उत्कृष्ट कार्य की बदौलत मिल मैनेजर बना दिया जाता है। प्रभावती को जब उनके प्रेम संबंधों का पता चलता है तो वह सहन नहीं कर पाती और खुदकुशी कर लेती है।
□ हिंदी/ १९३७/ श्वेत श्याम/ १५४ मिनट □ न्यू थिएटर्स □ निर्माता : बी.एन. सरकार □ निर्देशक : नितिन बोस □ संगीत : आर.सी. बोराल □ कलाकार : कमलेश कुमारी/ सहगल/ लीला देसाई/ जगदीश सेठी।

दुनिया न माने

नायिका 'नीरा' के सौतेले माता-पिता हैं। वे उसकी शादी एक बूढ़े विधुर, जिसके दो बड़े बच्चे हैं, के साथ तय करते हैं। बदले में अच्छा पैसा लेते हैं। प्रारंभ में नीरा इस शादी का विरोध करती है। लेकिन, धीरे-धीरे वह इस बेजोड़ मेल को सहन करने लगती है। बूढ़े पति को अहसास होता है कि वह युवा पत्नी के लिए उपयुक्त नहीं है। वह पश्चाताप में जलने लगता है। आत्महत्या के द्वारा वह नीरा को स्वतंत्र कर देता है, इच्छा के अनुरूप जिंदगी जीने के लिए। वी. शांताराम की यह फिल्म उस समय बेमेल विवाह के विरुद्ध जबर्दस्त शंखनाद थी। इसे क्लासिक फिल्म का दर्जा प्राप्त है।
□ हिंदी/ १९३७/ श्वेत श्याम/ १६६ मिनट □ प्रभात फिल्म □ निर्माता : एस. फत्तेलाल दामले □ निर्देशक : वी. शांताराम □ संगीत : के. भोले □ कलाकार : शांता आप्टे/ के. दाते/ बसंती/ मास्टर छोटू।

विद्यापति

फिल्म विद्यापति की कहानी प्रेम पर कर्तव्य की विजय दर्शाती है। मिथिला का राजा अपनी पत्नी को बेहद प्यार करता है। उनकी इस प्यार भरी सुखद जिंदगी में राजा के एक कवि मित्र के आगमन से अचानक भूचाल आ जाता है। रानी कवि की तारीफ करती है। रानी के प्रशंसा शब्द राजा को गहरा आघात पहुँचाते हैं। राज्य का प्रधानमंत्री राज्य को बर्बादी से बचाने के लिए रानी से सहायता माँगता है। रानी तुरंत जहर का प्याला पीने को तैयार हो जाती है अपनी परीक्षा देने के लिए।
□ हिंदी/ १९३७/ श्वेत श्याम/ १५३ मिनट □ न्यू थिएटर्स □ निर्माता : बी.एन. सरकार □ निर्देशक : देवकी बोस □ संगीत : आर.सी. बोराल □ कलाकार : पृथ्वीराज कपूर/ छायादेवी/ काननदेवी/ पहाड़ी सान्याल।

ब्रह्मचारी

मास्टर विनायक की यह कॉमेडी फिल्म है। औदुम्बर एक बेवकूफ किस्म का व्यक्ति है। वह
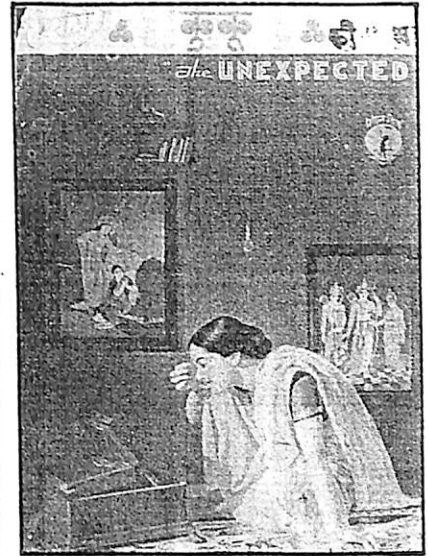
प्रभात की फिल्म 'कुंकू' (मराठी)। हिंदी में यह 'दुनिया न माने' नाम से बनी है

निश्चय करता है कि तमाम जिंदगी अविवाहित रहेगा। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए वह एक आश्रम में प्रवेश लेता है ताकि एक सुंदर और आकर्षक किशोरी के मोहजाल से बच सके। लेकिन अंत में औदुम्बर का मन डगमगा जाता है और वह शादी के लिए तैयार हो जाता है।
□ हिंदी/ १९३८/ श्वेत श्याम □ निर्देशक : मास्टर विनायक □ संगीत : दादा चांदेकर □ कलाकार : मा. विनायक/ मीनाक्षी/ जोग/ सालवी/ दामुअण्णा।

आदमी

फिल्म आदमी की कहानी अत्यंत मार्मिक एवं त्याग भरी है। मोती पुलिस कांस्टेबल है। केसरी गाना गाने वाली लड़की है। दोनों एक-दूसरे को प्यार करने लगते हैं। मोती को
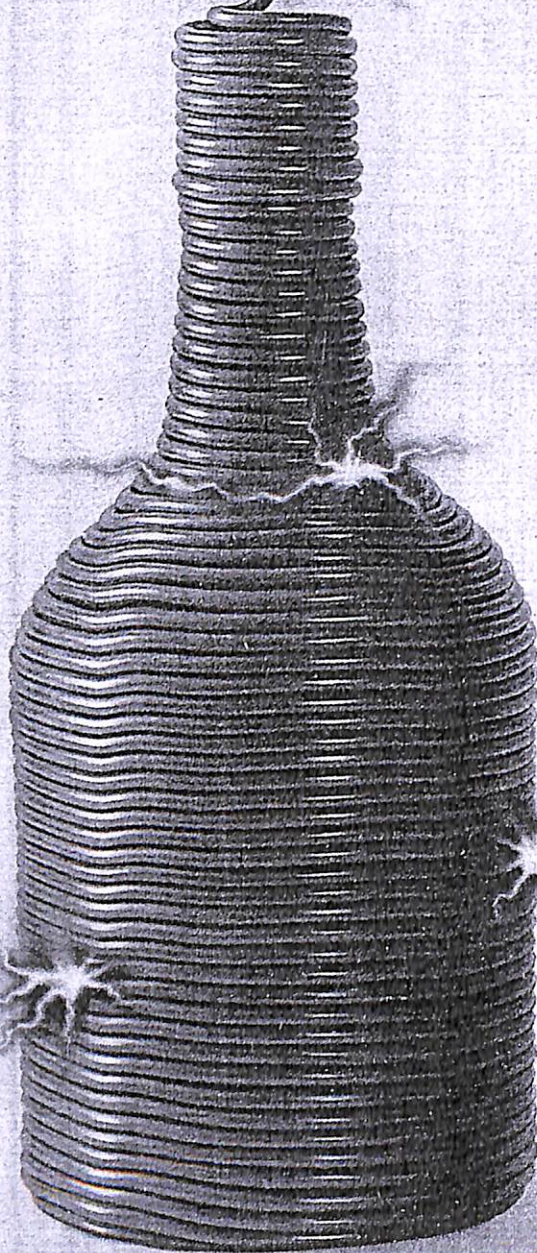
भय है कि उसके इस संबंध से धार्मिक माँ को गहरा आघात होगा। साथ ही लड़की भी महसूस करती है कि वह मोती के परिवार के काबिल नहीं है। इसलिए वह मोती को छोड़कर दूर चली जाती है। जान- बूझकर एक हत्या के केस में शामिल हो जाती है। केसरी को आजन्म कैद की सजा होती है। वह मोती को जिंदगी बर्बाद नहीं करने का संदेश भेजती है कि जिंदगी जीने के लिए होती है। न्यू थिएटर्स की फिल्म देवदास के जवाब में इसे शांताराम ने बनाया था।

□ हिंदी/ १९३९/ श्वेत श्याम/ १६४ मिनट □ प्रभात फिल्म □ निर्माता : वी. दामले □ निर्देशक : वी. शांताराम □ संगीत : मास्टर कृष्णराव □ कलाकार : शांता हुबलीकर/ शाहू मोडक/ मंजू/ सुंदरबाई।

पुकार

पुकार की कहानी पुश्तैनी दुश्मनी को प्रदर्शित करती है। मंगलसिंह राजपूत योद्धा है। वह कँवर नाम की लड़की से प्यार करता है। लेकिन, पारिवारिक दुश्मनी उनकी शादी में बाधक है। आक्रोश में मंगलसिंह अपनी प्रेमिका के भाई एवं पिता को बुरी तरह घायल कर देता है। मंगलसिंह के पिता संग्रामसिंह एक परंपरागत वचनबद्ध राजपूत हैं। सम्राट जहाँगीर उन्हें न्याय करने को कहते हैं। मंगलसिंह को मौत की सजा दी जाती है। इसी दौरान रानी नूरजहाँ एक धोवन के पति पर प्राणघातक वार करती है। गरीब धोबन राजा से न्याय माँगती है। सम्राट जहाँगीर का उसूल है, जीवन के बदले जीवन।वह अपनी ख्याति के अनुरूप उसे न्याय देते हैं।

□ हिंदी/ १९३९/ श्वेत श्याम/ १५२ मिनट □ मिनर्वा मूवीटोन □ निर्माता- निर्देशक : सोहराब मोदी □ संगीत : मीर साहेब □ कलाकार : सोहराब मोदी/ चंद्रमोहन/ नसीम/ शीला।

औरत

फिल्म औरत एक गरीब किसान महिला की सफल संघर्ष गाथा है। अकेली औरत तमाम विपरीत परिस्थितियों के बीच अपने बच्चों की देखभाल करने के साथ-साथ अपनी जमीन को सुरक्षित रखने का निरंतर संघर्ष करती है। फिल्म की पृष्ठभूमि विभाजन पूर्व के जमींदारी शोषण/ पक्षपात और साहूकारों के अत्याचारों को रेखांकित करती है। १९५७ में मेहबूब ने इसे मदर इंडिया नाम से फिर बनाया था।

□ हिंदी/ १९४०/ श्वेत श्याम/ १५४ मिनट □ नेशनल स्टुडियो □ निर्देशक : मेहबूब □ संगीत : अनिल बिस्वास □ कलाकार : सरदार अख्तर/ सुरेन्द्र/ याकूब/ ज्योति/ अरुण।

डायमंड क्वीन

होमी वाडिया की स्टंट फिल्मों में 'डायमंड-क्वीन' एक विशिष्ट फिल्म है। हॉलीवुड की तर्ज पर इसे हिन्दी में तेज गति के साथ बनाया गया है। डायमंड नामक एक गाँव के निवासी कुछ आतंकवादियों से परेशान हैं। लेकिन मधुरिका और दिलेर (नाडिया-जानकावस) उनका मुकाबला करते हैं। इस फिल्म में घोड़ा- पंजाब का बेटा- तथा मोटरकार- रोल्स रायस की बेटी- के हैरतअंगेज कारनामे हैं। पूरी फिल्म थ्रिल तथा एक्शन से भरपूर होकर दर्शकों का मनोरंजन करती है।

□ हिन्दी/ श्वेत-श्याम / १९४०/ १५३ मिनट, □ निर्देशक : होमी वाडिया, □ संगीत : माधूलाल मास्टर, □ कलाकार : नाडिया/ जानकावस/ राधा रानी।

खजांची

यह फिल्म बैंक केशियर के गबन में शामिल होने की है। पुलिस उसका पीछा करती है। लेकिन वह पकड़ा नहीं जाता है। बरसों बाद जब वह घर लौटता है, तो पाता है कि उसका परिवार खुशी से जीवनयापन कर रहा है। उन्हें किसी व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। बैंक केशियर को यह सब देखकर गहरा सदमा लगता है। वह पश्चाताप में जलने लगता है। फिल्म में पहली बार पंजाबी लोक संगीत का उपयोग किया गया था। इस फिल्म में रमोला का गाया गीत- सावन के नजारे हैं, बहुत लोकप्रिय हुआ था। लड़कियों का झुंड साइकल पर सवार हो मस्ती से झूमता गाता है, यह दृश्य पहली बार परदे पर पेश किया गया था।

□ हिन्दी/ १९४१ / श्वेत-श्याम, □ निर्माता : दलसुख पंचोली, □ निर्देशक : मोती गिडवानी, □ संगीत गुलाम हैदर, कलाकार : एम. ईस्माइल/ रमोला/ एस.डी. नारंग/ मनोरमा

कोर्ट डांसर

फिल्म 'कोर्ट डांसर' राज दरबार नर्तकी एवं राजा के बीच प्रेम पर आधारित है। लेकिन सामाजिक चेतना तथा वर्ग भेद के कारण वे शादी नहीं कर पाते। अंत में राजनर्तकी स्वयं को समाप्त कर राजा के लिए राजा बने रहने की स्थिति को पूरा करती है और अपने प्रेम का महत्व बढ़ाती है।

पड़ोसी

फिल्म 'पड़ोसी' ठाकुर एवं मुस्लिम के बीच सच्ची एवं अटूट दोस्ती की मिसाल को प्रस्तुत करती है। साम्प्रदायिक सद्भाव का यह कथ्य आज भी प्रासंगिक है। उनकी दोस्ती की परीक्षा आग एवं बाढ़ दोनों लेती हैं। दरअसल आग व बाढ़ का उपयोग प्रतीकात्मक है। ठाकुर व मिर्जा की आपसी समझ तथा सद्भाव में दरार तब आती है जब ठाकुर का लड़का पंचायत की मीटिंग के दौरान लगी आग के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। लेकिन, जब बाँध के फटने से आई बाढ़ में ठाकुर फँस जाता है तो बूढ़ा मिर्जा तुरंत अपने यार को बचाने के लिए कूद जाता है। बाढ़ में दोनों मर जाते हैं। लेकिन उनकी जिंदादिली दोस्ती की मिसाल बरकरार रहती है। इस फिल्म में शांताराम ने मुस्लिम कलाकारों से हिन्दू चरित्र अभिनीत कराए थे। ऐसा ही हिन्दू कलाकारों के साथ किया गया था।

□ हिन्दी/१९४१/ श्वेत-श्याम/ १३५ मिनट □ निर्देशक : वी. शांताराम, □ संगीत : मास्टर कृष्णराव, □ कलाकार : गजानन जागीरदार/ मजहर खान/ अनिस खातून/ बलवंतसिंह/ कश्यप।

□ अँगरेजी/ १९४१/ श्वेत-श्याम/ ८० मिनट, □ निर्देशक मधु बोस, □ संगीत : तिमिर बरन, □ कलाकार : साधना बोस/ पृथ्वीराज/ नायम पल्ली/ जाल खम्बाटा

भरत मिलाप

फिल्म की कहानी रामायण के भरत मिलाप प्रसंग पर आधारित है। कैकयी की निष्ठुरता तथा राम की वचनबद्धता को मार्मिकता से चित्रित किया गया है। भरत

राजसिंहासन पर आसीन होने से इंकार कर देते हैं। राम, भरत को अपना कर्तव्य पालन करने का उपदेश देते हैं। विजय भट्ट की यह फिल्म 'राम राज्य' से अधिक बेहतर बन पड़ी है।

□ हिन्दी/ १९४२/ श्वेत-श्याम/ १७० मिनट, □ निर्देशक : विजय भट्ट, □ कलाकार : दुर्गा खोटे/ शोभना समर्थ/ शाहू मोडक/ प्रेम अदीब/ उमाकांत

'राम राज्य'

फिल्म 'राम राज्य' राम के चौदह साल के वनवास के बाद अयोध्या आगमन तथा राजसिंहासन ग्रहण करने पर आधारित है। राजा बनने के बाद रौम दिग्भ्रमित लोगों की चर्चा सुनकर सीता का परित्याग कर देते हैं। वन में सीता दो पुत्र-लव-कुश को जन्म देती है। लव-कुश की शिक्षा, लालन-पालन ऋषि वाल्मीकि के सान्निध्य में होता है। लवकुश द्वारा अश्वमेध यज्ञ के घोड़े पकड़ने तथा राम की सेना को परास्त करने की शक्ति से राम सीता का पुनर्मिलन होता है। संतप्त सीता माँ धरती से प्रार्थना करती हैं कि वह अपनी गोद में उसे समा ले। रामराज्य एकमात्र ऐसी फिल्म है, जिसके अंश महात्मा गाँधी ने देखे थे।

□ हिन्दी/ १९४३/ श्वेत-श्याम/ १४५ मिनट, □ निर्देशक : विजय भट्ट, □ संगीत : शंकरराव व्यास, □ कलाकार : शोभना समर्थ/ प्रेम अदीब/ उमाकांत/ बद्रीप्रसाद

फिल्म किस्मत : डेविड और अशोक कुमार

किस्मत

एक पुलिस आफिसर का लड़का बचपन में खो जाता है। उसका लालन-पालन गंदी बस्ती में होता है। वह पाकेटमार बनता है। एक बार वह गले का कीमती हार चुराता है। पुलिस से बचने के लिए एक डांसर के पर्स में हार रख देता है। डांसर से उसकी दोस्ती हो जाती है। धीरे-धीरे वह उसकी पूरी जिंदगी बदल देती है। इस फिल्म में पहली बार नायक ने एक अपराधी का नीगेटिव रोल किया था। आगे चलकर इस फिल्म की प्रेरणा से कई फिल्मों ने जन्म लिया। यह फिल्म कलकत्ता के राक्सी सिनेमा में ३ साल से अधिक चली और कीर्तिमान कायम किया।

□ हिन्दी/ १९४३/ श्वेत-श्याम □ बॉम्बे टॉकीज, □ निर्देशक : ज्ञान मुखर्जी, □ संगीत : अनिल विश्वास, □ कलाकार : अशोक कुमार/ मुमताज शांति।

राम शास्त्री

'राम शास्त्री' का नाम न्याय एवं सम्मान का पर्याय माना जाता है। बचपन में उसने कभी झूठ नहीं बोला और कभी किसी प्रकार का अन्याय सहन नहीं किया। परिवार में एक बार अपमानित होने पर वह घर छोड़कर बनारस चला गया। बनारस से वह प्रकांड विद्वान राम शास्त्री बनकर लौटा। उसकी न्यायशीलता एवं विद्वता से प्रभावित होकर पेशवा दरबार में उसे मुख्य न्यायाधीश बना दिया जाता है। अपने उसूलों के खातिर राम शास्त्री मुख्य न्यायाधीश का पद त्याग कर पेशवा-राजधानी छोड़कर चला जाता है।

□ हिन्दी/ श्वेत-श्याम/ १९४४/१६४ मिनट, □ प्रभात फिल्म कं., □ निर्देशक : गजानन जागीरदार, □ संगीत : जी. दामले, □ कलाकार : अनंत मराठे/ बेबी शकुंतला/ सुधा आप्टे/ भगवत/ गजानन जागीरदार।

रतन

रतन फिल्म की कहानी असफल प्यार की है। बचपन के दोस्त एक-दूसरे को बेहद प्यार करते हैं। लेकिन परिवार के लोग उनकी शादी में बाधक हैं। फलस्वरूप लड़की की शादी एक बूढ़े व्यक्ति से कर दी जाती है। लेकिन सच्चा प्यार उन्हें अंतिम घड़ी में मिला देता है। इस फिल्म के गाने देश की गली-गली में गूँजे थे - * सावन के बादलों, उनसे ये जा
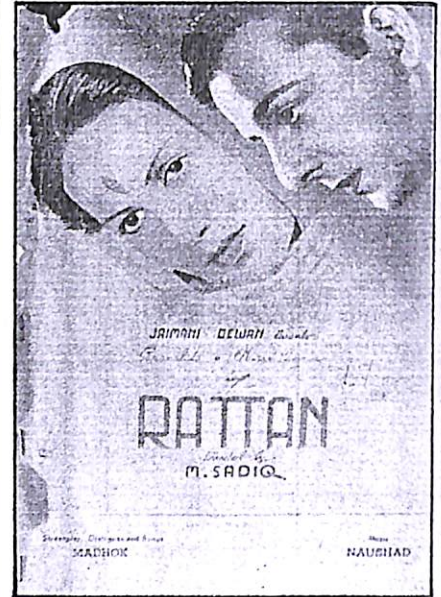
कहो, * अँखियाँ मिला के जिया भरमा के चले नहीं जाना। जब यह फिल्म रीलिज हुई तो देश भर से २०० जवान लड़कियाँ फिल्म एक्ट्रेस बनने बंबई भाग खड़ी हुई थीं।

□ हिन्दी/ १९४४/ श्वेत-श्याम, □ जेमिनी दीवान प्रोड., □ निर्देशक : एम.सादिक, □ संगीत : नौशाद, □ कलाकार : करण दीवान/ स्वर्ण लता/ वास्ती।

उदयेर पाथे

अनूप गरीब लेखक है। लेखन से ही गुजारा होता है। उसकी बहन की मित्र है गोपा। गोपा का परिवार उच्च वर्ग का है। अनूप के प्रति उसके दिल में अनुराग और सम्मान है। गोपा के दिमाग में वैचारिक द्वंद्व है। अपने परिवार की सुख-सुविधा को नकार कर अनूप के आदर्श एवं गरीबी में से उसे क्या स्वीकार है?

□ हिन्दी/ १९४५/ श्वेत-श्याम/ १२२ मिनट, □ न्यू थिएटर्स, □ निर्देशक : विमल रॉय, □ संगीत : आर.सी. बोराल, □ कलाकार : राधा मोहन/ भट्टाचार्यजी/ बिनोता बोस/ रेखा मलिक/ भूपेन्द्र कपूर।

धरती के लाल

फिल्म की कहानी की पृष्ठभूमि बंगाल के गाँव के मध्यमवर्गीय परिवार की विकट परिस्थितियों की है। बंगाल में भयंकर अकाल पड़ता है। पूरा गाँव रोजी-रोटी की खोज में कलकत्ता शहर को पलायन करता है। लेकिन शहर में भी उन्हें नई-नई कठिनाइयाँ मिलती हैं। संघर्ष करते-करते परिवार के मुखिया की मौत हो जाती है। वह मरते समय परिवार के

सदस्यों को गांव लौटने का सुझाव देता है। युवा रामू और उसकी पत्नी राधिका को छोड़कर सभी लोग गांव लौट जाते हैं। वे गांव में कड़ी मेहनत कर सफल जिंदगी जीते हैं। उनकी इस नई जिंदगी को दूर से दो प्रतिछायाएँ निहारती रहती हैं।

□ हिन्दी/ १९४६/ श्वेत-श्याम/ १२२ मिनट, □ इंडियन पीपुल्स थिएटर्स, □ निर्देशक : ख्वाजा अहमद अब्बास, □ संगीत : रवि शंकर , □ कलाकार : बलराज साहनी/ उषा दत्त/ जोहरा सहगल/ शम्भू मित्रा/ दमयंती साहनी।

नीचा नगर

फिल्म की कहानी समाज के गरीब तबके व धनाढ्य वर्ग की जीवन शैली एवं नैतिकता को प्रस्तुत करती है। गरीबों का नेता उनकी बस्ती में गटर के पानी के बहाव को रोकने के लिए मुखिया से लड़ाई लड़ता है। नगर पालिका मुखिया की लड़की पिता के खिलाफ बगावत कर गरीबों के पक्ष में संघर्ष में शामिल हो जाती है।

□ हिन्दी/ १९४६/ श्वेत-श्याम/ ११७ मिनट, □ इंडियन पिक्चर्स, □ निर्देशक : चेतन आनंद, □ संगीत : रवि शंकर, □ कलाकार : रफीक/ अनवर/ उमा आनंद/ रफीक पीर/ कामिनी कौशल।

शाहजहाँ

फिल्म 'शाहजहाँ' ताज महल का निर्माण कैसे हुआ इस पर आधारित एक काल्पनिक कथा पर आधारित है। पर्सिया के मूर्तिकार शिराजी और कवि सुहैल दोनों लोमहर्षक रुही को प्यार करने लगते हैं। साम्राज्ञी मुमताज के अनुरोध पर सुहैल अपने को खुशी से रुही की जिंदगी से हटा लेता है। रानी मुमताज की मौत के बाद सुहैल और रुही की शादी होती है। रानी मुमताज की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए दुखी शिराजी ताज महल का निर्माण करवाता है।

□ हिंदी/ १९४६/ श्वेत-श्याम/ १२२ मिनट, □ कारदार प्रोडक्शन, □ निर्देशक: ए.आर. कारदार, □ संगीत: नौशाद, □ कलाकार: कंवर/ रागिनी/ सहगल/ जयराज/ हिमालय वाला।

मतवाला शाहीर

यह फिल्म **राम जोशी,** महाराष्ट्र के पेशवा राज-दरबार के लोकप्रिय कवि के जीवन पर आधारित है। राम जोशी को जन-जन के कवि की उपाधि दी जाती है। उसके सभी गाने जिंदगी के कटु अनुभव के आख्यान होते थे। उसका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ और उस समय गाना-बजाना निचले तबके के लोगों का व्यवसाय माना जाता था। इसलिए उसे घर से निकाल दिया जाता है। राम जोशी अपनी गायन कला से राज-दरबार के कवि बन जाते हैं।

□ हिंदी/ १९४७/ श्वेत-श्याम/ १३३ मिनट, □ राज कमल कला मंदिर, □ निर्माता-निर्देशक: वी. शांताराम, □ संगीत: वसंत देसाई, □ कलाकार: मन मोहन कृष्ण/ हंसा/ शकुंतला।

अनमोल घड़ी

लता एवं चंद्रा एक-दूसरे को प्यार करते हैं। लेकिन लता की शादी दूसरे आदमी के साथ होने वाली है। लता उसे (चंद्रा) अपनी याद में एक घड़ी देती है। बरसों बाद जब वे मिलते हैं तो उनके दिलों में उतना ही अनुराग मौजूद रहता है, एक-दूसरे के लिए। नूरजहाँ, सुरैया और सुरेन्द्र के गाए गीतों तथा नौशाद के संगीत में डूबी यह फिल्म बेहद लोकप्रिय हुई थी।

□ हिंदी/ १९४७/ श्वेत-श्याम/ १४५ मिनट, □ महबूब प्रोडक्शन □ निर्माता-निर्देशक: मेहबूब □ संगीत: नौशाद, □ कलाकार: नूरजहाँ/ सुरेन्द्र/ जहर रॉय/ लीला मिश्रा/ सुरैया।

डॉ. कोटनीस की अमर कहानी

फिल्म एक युवा डॉक्टर के त्याग एवं बलिदान की सत्य घटना पर आधारित है। डॉक्टर द्वारकानाथ कोटनीस १९३८ में घायल चीनी सैनिकों की सेवा करने के लिए मेडिकल टीम के साथ चीन जाते हैं। उन्हें देश-भक्त नेताओं ने चीन भिजवाया था। चीनी घायल सैनिकों की सेवा करते हुए उनकी मृत्यु हो जाती है। वे अपने पीछे चीनी पत्नी व लड़का छोड़ जाते हैं। चीनी लोग यंग-डॉक्टर के त्याग को सदैव याद

डॉ. कोटनीस की अमर कहानी

करते हैं।

□ हिंदी/ १९४६/ श्वेत-श्याम/, □ राज कमल कला मंदिर, □ निर्माता-निर्देशक: वी. शांताराम, □ संगीत: वसंत देसाई, □ कलाकार: वी. शांताराम/ जयश्री/ दीवान शरर

सिंदूर

फिल्म 'सिंदूर' विधवा पुनर्विवाह की बात को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है। एक डॉक्टर अपने परिवार के सदस्यों को सहमत करने की कोशिश करता है। युवा विधवा जिसका एक बेटा भी है, से शादी के महत्व को बताता है।

□ हिंदी/ १९४७/ श्वेत-श्याम/, □ फिल्मिस्तान, □ निर्माता-निर्देशक: किशोर साहू, □ संगीत: खेमचंद प्रकाश, □ कलाकार: किशोर साहू/ शमीम/ रमेश गुप्ता/ पारो।

कल्पना

फिल्म 'कल्पना' नृत्य-नाटिका है। प्रसिद्ध नर्तक उदय शंकर ने 'उदयन' की भूमिका की है। उदयन का सपना एक कला-केंद्र स्थापित करने का है। सपने को साकार करने में अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। उदयन की जिंदगी में दो स्त्रियाँ कामिनी और उमा प्रवेश करती हैं। कामिनी शांत लेकिन चतुर महिला है जबकि उमा स्वभाव से तीक्ष्ण मगर उत्साही है। अंत में उदयन की शादी उमा से होती है। उमा की भूमिका उदय शंकर की पत्नी अमला ने की है। यह भारत की पहली

अनमोल घड़ी : सुरेन्द्र- नूरजहाँ

बैले फिल्म है।

□ हिंदी/ १९४८/ श्वेत-श्याम/, १६० मिनट, □ स्टेज एंड स्क्रीन प्रेजेंटेशन, □ निर्देशक: उदय शंकर, □ संगीत: विष्णुदास शीराली, □ पात्र: उदय शंकर/ अमला शंकर/ जी.वी. सुब्बाराव।

चंद्रलेखा

दो सगे भाई सिंहासन हथियाने के लिए आपस में तलवारें टकराने लगते हैं। एक भाई सीधा-सादा है और दूसरा चालाक। ये दोनों भाई चंद्रलेखा नामक सुंदरी को भी पाना चाहते हैं। दोनों भाइयों के संघर्ष का अंत एक नगाड़ा डांस के माध्यम से होता है। चंद्रलेखा नगाड़ों पर नृत्य प्रस्तुत करती है और उनमें छिपे सैनिक बाहर निकलकर हमला करते हैं। एस.एस. वासन ने सिसिल बी. डिमिल शैली

चंद्रलेखा का भव्य नगाड़ा- नृत्य

में भव्य एवं शानदार सेट पर इस कास्ट्यूम ड्रामे को फिल्माया था। फिल्म में सर्कस भी है। ३५ लाख की लागत से बनी इस फिल्म और जैमिनी के बैनर ने उत्तर-भारत में सफलता के बिगुल बजाए थे।

□ हिंदी/ १९४८/ श्वेत-श्याम/, २०८ मिनट, □ जेमिनी स्टुडियो (मद्रास), □ निर्माता-निर्देशक: एस.एस. वासन, □ संगीत: राजेश्वर राव, □ पात्र: टी.आर. राजकुमारी/ एम.के. राधा/ रंजन/ सुंदरीबाई।

चिटगाँव आर्मरी रैड

ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ भारत में प्रथम सशस्त्र बगावत को यह फिल्म प्रदर्शित करती है। स्कूल टीचर सेन युवाओं को संगठित कर क्रांतिकारी दल बनाकर खजाना लूटते हैं। उसके बाद शस्त्रागार भी लूट लेते हैं। चिटगाँव पहाड़ी क्षेत्र में ब्रिटिश सेना और क्रांतिकारियों के बीच घमासान लड़ाई होती है। अंत में सभी को फाँसी दी जाती है। फिल्म में सशस्त्र बगावत का सजीव ऐतिहासिक चित्रण है।

□ बंगला/ १९४८/ श्वेत-श्याम/, □ बंगाल नेशनल स्टुडियो, □ निर्माता-निर्देशक: एस.डी. नारंग, □ संगीत: दिजेन चौधरी, □ कलाकार: भावेन मजूमदार/ दीप्ति रॉय/ बनानी चौधरी/ स्मृति विस्वास।

सुहाग रात

फिल्म **'सुहाग रात'** एक हत्यारे के दिल पसीजने तथा एक लड़की का दूसरी लड़की के प्रेम की खातिर त्याग एवं बलिदान की कहानी है। हीरो की हत्या करने के लिए खलनायक ऐसे व्यक्ति से सौदा करता है जो

अभी-अभी जेल से छूटा है। हीरो के चरित्र से अपराधी इतना प्रभावित हो जाता है कि बजाए हत्या करने के वह उसे अपने घर ले आता है। अपराधी की बहन हीरो से प्यार करने लगती है लेकिन, जब उसे मालूम होता है कि वह पहले से किसी लड़की को चाहता है तो उसके सुखमय जीवन के लिए अपने प्रेम का त्याग करती है।
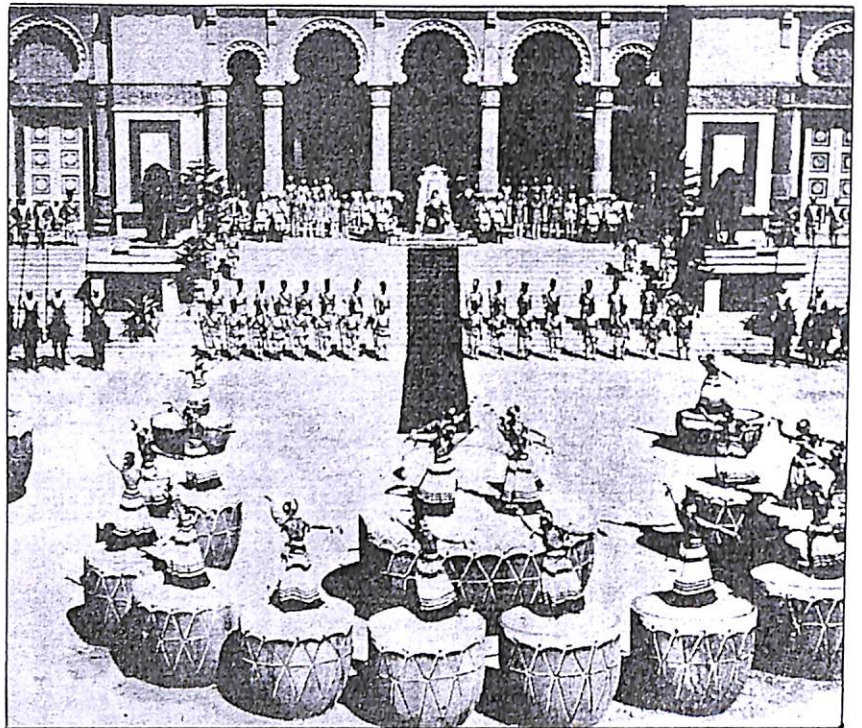
□ हिंदी/ १९४८/ श्वेत-श्याम/, □ ओरियंटल पिक्चर्स, □ निर्देशक: केदार शर्मा, □ संगीत: स्नेहल भाटकर, □ कलाकार: गीता बाली/ भारत भूषण/ बेगम पारा/ पेस्सी पटेल।

गोपीनाथ

फिल्म **'गोपीनाथ'** एक दुखद प्रेम कहानी है। गोपी गाँव की भोलीभाली सुंदर लड़की है। मोहन के घर गोपी मेहमान के रूप में आती है। मन ही मन वह मोहन को प्यार करने लगती है। लेकिन, वह कभी अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाती। जबकि, मोहन एक फिल्म तारिका के ग्लेमर से बेहद आर्कषित है। मोहन को जब अपनी गलती का एहसास होता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

□ हिंदी/ १९४८/ श्वेत-श्याम/, १४८ मिनट, □ □ निर्देशक: महेश कौल, □ संगीत: नीनू मजूमदार, □ कलाकार: राज कपूर/ तृप्ति मित्रा/ नंद किशोर।

फोर्टी टू

१९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बंगाल के मिदनापुर जिले के एक छोटे से गाँव में भड़के जन-विद्रोह को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ब्रिटिश शासन को इस छोटे से गाँव में भड़के आंदोलन की तीव्रता को दबाने के लिए मार्शल-लॉ लगाना पड़ा था। बावजूद जन आंदोलन रुका नहीं।

□ बंगला/ १९४९/ श्वेत-श्याम/, १५७ मिनट, □ फिल्म ट्रस्ट ऑफ इंडिया, □ निर्माता-निर्देशक: हेमेन गुप्ता, □ संगीत: हेमंत मुखर्जी, □ कलाकार: मंजू डे/ सुरुचि सेन गुप्ता/ विकास रॉय/ शम्भू मित्रा।

महल

महल एक अतृप्त प्यार की कथा है, जिसमें एक रुह एक जन्म से दूसरे जन्म में भटकती रहती है। शंकर और उसकी प्रेमिका दूसरा जन्म लेते हैं। कामिनी (शंकर की पत्नी) आत्महत्या करती है, लेकिन अपने पति को जेल की हवा खिला देती है। शंकर जेल से छूटकर अपने महल को जाता है, जहाँ उसकी प्रेमिका रहती थी। लेकिन उसकी और कहीं शादी हो जाती है। वह इस दुःख को सहन नहीं कर पाता। रहस्य/ रोमांच से भरपूर इस फिल्म का संगीत तथा गीत आएगा आएगा आने वाला- बेहद लोकप्रिय हुआ था।

□ हिंदी/ १९४९/ श्वेत-श्याम/, १५८ मिनट, □ बॉम्बे टॉकीज, □ निर्देशक: कमाल अमरोही, □ संगीत: खेमचंद प्रकाश, □ पात्र: अशोक कुमार/ मधु बाला/ विजय लक्ष्मी/ कनू रॉय।

अंदाज

अंदाज फिल्म की कहानी त्रिकोणी प्रेम संबंध है। शादीशुदा महिला, पति की अनुपस्थिति में घर आए युवक से प्रेम करने लगती है। इत्तफाक से इस दौरान युवक की मृत्यु हो जाती है। महिला पर नाटकीय ढंग से हत्या का आरोप लगता है जो कि कहानी का चरम बिंदु है। राज कपूर- दिलीप कुमार और नरगिस की जोड़ी ने इस फिल्म को यादगार बना दिया था। बाद में राज कपूर ने १९६४ में संगम फिल्म में लगभग यही कहानी दोहराई थी।

□ हिंदी/ १९४९/ श्वेत-श्याम/, □ मेहबूब प्रोडक्शन, □ निर्देशक: मेहबूब खान, □ संगीत: नौशाद, □ पात्र: दिलीप कुमार/ राज कपूर/ नरगिस।

जोगन

'जोगन' की भूमिका नरगिस ने की है। वह जोगन इसलिए बन जाती है क्योंकि उसकी शादी एक बूढ़े से तय कर दी जाती है। वह शादी न करने का निर्णय कर संन्यासिनी बन जाती है। लेकिन दिलीप कुमार, नायक उसे प्यार करने लगता है। अपने निर्णय एवं चुने हुए रास्ते से जोगन भटक न जाने की स्थिति से बचने के लिए गाँव छोड़कर दूर चली

जोगन : दिलीप कुमार- नरगिस

जाती है। नदी किनारे अब उसकी सुरीली आवाज नहीं सुनाई देती।

□ हिंदी/ १९५०/ श्वेत-श्याम/, ११६ मिनट, □ रणजीत मूवीटोन, □ निर्देशक: केदार शर्मा, □ संगीत: बुलो सी. रानी, □ कलाकार: नरगिस/ दिलीप कुमार/ पूर्णिमा/ बेबी तबस्सुम।

हिन्दुस्तान हमारा

फिल्म 'हिंदुस्तान हमारा' प्रसिद्ध फिल्म निर्माता पॉल जिल्स की ऐतिहासिक फिल्म है। महाभारतकाल से लेकर आधुनिक भारत का संपूर्ण इतिहास इसमें चित्रित किया गया है।

□ हिंदी/ १९५०/ श्वेत-श्याम/, □ डाक्यूमेंट्री यूनिट ऑफ इंडिया, □ निर्माता-निर्देशक: पॉल जिल्स, □ संगीत: वसंत देसाई, □ कलाकार: पृथ्वीराज / देव आनंद/ जयराज/ दुर्गा खोटे।

आवारा

एक गरीब नौजवान की कथा है आवारा में, जिसे एक नामी चोर दबाव डालकर चोरी के पेशे में शामिल करता है। उस युवक को यह पता नहीं रहता कि वह एक नामी व सभ्य न्यायाधीश का बेटा है। उस युवक के जीवन में एक कुलीन युवती आती है, वह उसे नया जीवन देती है। अदालत में चल रहे मुकदमे की वह स्वयं पैरवी करती है। फिल्म में यह दर्शाया गया है कि बड़े के घर जन्म लेने से कोई बड़ा नहीं बन जाता। आसपास का माहौल व्यक्ति को अपने में ढाल लेता है। राज कपूर की यह महत्वाकांक्षी फिल्म स्वप्न-दृश्य और गीत-संगीत के कारण पूरे विश्व में चर्चित हुई थी। नरगिस-राज कपूर की जोड़ी को लोकप्रियता यहीं से मिली। शंकर-जयकिशन का संगीत/ शैलेन्द्र के गीत- आवारा हूँ- गली-गली में गूँजे थे।

□ हिंदी/ १९५१/ श्वेत-श्याम/, १३७ मिनट □ आर.के. फिल्म्स, □ निर्देशक: राज कपूर, □ संगीत: शंकर जयकिशन, □ पात्र: नरगिस/ राज कपूर/ पृथ्वीराज/ लीला चिटणीस/ के.एन. सिंह।

मल्लेश्वरी

फिल्म की पृष्ठ-भूमि कृष्ण देवराय के विजयनगर के शासनकाल को चित्रित करती है। मल्ली प्रसिद्ध नृत्यांगना है। गरीब मूर्तिकार नाग राजू से प्यार करती है। मल्ली को राज परिवार से निकाल दिया जाता है। नाग राजू कड़ी मेहनत कर पैसा कमाता है लेकिन जब वह लौटता है तो मल्ली के निष्कासन से वह टूट जाता है। अंत में उनका सुखद मिलन होता है।

□ हिंदी/ १९५१/ श्वेत-श्याम/, □ वाहिनी स्टुडियो, □ निर्देशक: बी.एन. रेड्डी, □ संगीत: ए. रामाराव, □ कलाकार: भानुमती/ कुमारी/ रशयेन्द्रमणी/ वेंकुमाम्बा।

मिस्टर सम्पत

जेमिनी के बैनर तले बनी फिल्म मिस्टर सम्पत अपने तानेबाने में अद्भुत है। मि. सम्पत एक शांत-चित्त लेकिन धूर्त व्यक्ति है,

पद्मिनी

जो अपनी तिकड़मों के जरिए दुनिया का शोषण करना चाहता है। वह जानता है कि दुनिया बहुत स्वार्थी तथा लालची है। वह रंगमंच, नृत्यांगना मालिनी और सेठ माखनलाल घी वाला को अपना पहला शिकार बनाता है। पूरी फिल्म मोतीलाल के सधे अभिनय तथा हास्य-व्यंग्य की चाशनी में डूबी चलती है।

□ हिंदी/ १९५२/ श्वेत-श्याम/, □ जेमिनी पिक्चर्स, □ निर्देशक: एस.एस. वासन, □ संगीत: शंकर शास्त्री, □ पात्र: मोतीलाल/ पद्मिनी/ कन्हैयालाल/ बद्रीप्रसाद।

बैजू बावरा

अपने पिता के साथ हुए अन्याय का बदला बैजू बावरा संगीत सम्राट तानसेन को गायन में हराकर लेना चाहता है। वह अपने मकसद में सफल होता है। लेकिन उसे अपने प्यार की बलि देना होती है। यह गीत-संगीत प्रधान सदाबहार फिल्म है।

□ हिंदी/ १९५२ / श्वेत-श्याम/, १६३ मिनट, □ प्रकाश पिक्चर्स, □ निर्देशक: विजय भट्ट, □ संगीत: नौशाद, □ कलाकार: मीना कुमारी/ भारत भूषण/ सुरेन्द्र।

दो बीघा जमीन

इटली के नवयथार्थवाद से प्रभावित होकर भारत में अनेक फिल्में बनीं, उनमें बिमल रॉय निर्देशित फिल्म **दो बीघा जमीन** महत्वपूर्ण है। शम्भू और उसका बेटा खूब परिश्रम करते हैं ताकि अपनी दो बीघा जमीन बचाई जा सके। वे जमींदार का कर्ज नहीं अदा कर पाते। जमींदार उस जमीन के टुकड़े को शहर के

बलराज साहनी- रतनकुमार

ठेकेदार को बेचना चाहता है। वे कलकत्ता जाकर मेहनत करते हैं। शम्भू कलकत्ता की सड़कों पर रिक्शा खींचता है। जब पूरा परिवार पैसे कमाकर गाँव लौटता है, तो देखता है कि उनकी दो बीघा जमीन पर कारखाना खड़ा हो गया है। शैलेन्द्र ने इस फिल्म के लिए एक सदाबहार गीत लिखा था- हरियाला सावन ढोल बजाता आया।

□ हिंदी/ १९५३/ श्वेत-श्याम/, १४३ मिनट, □ बिमल रॉय प्रोडक्शन, □ निर्देशक: बिमल रॉय, □ संगीत: सलिल चौधरी,

श्यामची आई

साने गुरुजी के उपन्यास पर आधारित यह फिल्म श्याम के नैतिक और बौद्धिक विकास की कहानी है। बचपन में शरारती और उतावले श्याम की माँ उसकी इस ऊर्जा को सेवा तथा त्याग की दिशा में कुशलता से मोड़ देती है। घर से स्कूल और स्कूल से घर लौटते दृश्यों के साथ श्याम बड़ा होता है। कहानी का मूल स्वर यह है कि बच्चे के शिक्षण और संस्कार की सबसे श्रेष्ठ जगह घर और मां की गोद होती है। इस फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला था। यहीं से राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार आरंभ होते हैं।

□ मराठी/ १९५३/ श्वेत-श्याम/, □ निर्देशक: प्रहलाद केशव अत्रे, □ संगीत: वसंत देसाई, □ पात्र: वनमाला/ माधव वझे/ बाबूराव पेंढारकर/ सुमति गुप्ते।

□ पात्र: बलराज साहनी/ निरुपा. राय/ मुराद/ रतन कुमार।

अवव्यार

अवव्यार जीवन पर्यंत दूर-दूर तक भ्रमण कर लोगों को अपने भजन व प्रवचनों के माध्यम से आपसी भाईचारा, सद्भाव तथा मानवता में विश्वास विकसित करती है। अवव्यार के प्रवचन एवं पद्मावली तमिल साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर मानी जाती है। संत जैसी इस महिला ने अपना संपूर्ण जीवन मानवता की आँख के आँसू पोंछने में व्यतीत कर दिए।

□ तमिल/ १९५३/ श्वेत-श्याम/ १८१ मिनट□ जेमिनी स्टुडियो □ निर्देशक: कोथा मंगलम् सुब्बू, □ संगीत: एम.डी. पार्थ सारथी, □ कलाकार: के.बी. सुंदरम बाल/ कुसला कुमारी/ एम.के. राधा।

मिर्जा गालिब

फिल्म की पृष्ठ-भूमि अंतिम मुगल शासक बहादुर शाह जफर के काल की है। फिल्म की कहानी गायिका मोती बेगम तथा शायर गालिब के दुखद प्यार को प्रदर्शित करती है। कोतवाल जुए का झूठा आरोप लगाकर गालिब को जेल भिजवा देता है। गालिब, जेल से रिहा होते हैं लेकिन उनका सामना मोती बेगम की मौत से होता है। इस फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला था।

□ हिंदी/ १९५४/ श्वेत-श्याम/, १४१ मिनट, □ मिनर्वा मूवीटोन, □ निर्देशक: सोहराब मोदी, □ संगीत: गुलाम मोहम्मद, □ कलाकार: भारत भूषण/ सुरैया/ निगार सुलताना/ उल्हास।

बूट पॉलिश

फिल्म की कहानी अनाथ बच्चों के हालात पर आधारित है। माँ-बाप के अभाव में उन्हें रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए दर-दर भटकना पड़ता है। तथाकथित रिश्तेदार अनाथ बच्चों के साथ क्रूर व्यवहार करते हैं। फिल्म में अनाथ बच्चे जॉन चाचा के रूप में सच्चा गॉड फादर पाते हैं जो उन्हें काम करने के लिए प्रेरित करता है और भीख नहीं माँगने की सलाह देता है। नन्हे-मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है- यह गीत बहुत लोकप्रिय हुआ था।

□ हिंदी/ १९५४/ श्वेत-श्याम/, □ आर.के. फिल्म्स, □ निर्देशक: प्रकाश अरोरा, □ संगीत: शंकर-जयकिशन, □ कलाकार: बेबी नाज/ रतन कुमार/ डेविड।

नागिन

नागिन फिल्म की कहानी रोमियो-जूलिएट तर्ज पर है। सपेरे जाति के दो युवक एक युवती को पाना चाहते हैं। फिल्म के गीत-संगीत ने इस साधारण फिल्म को असाधारण प्रेम-कथा में बदल दिया है। इस फिल्म को दर्शकों ने बारबार देखा और हेमंत कुमार के संगीत में गोते लगाए। मेरा मन डोले/ ऊँची-ऊँची दुनिया की दीवारें सैंया तोड़ के...गीत के साथ वैजयंती माला का लावण्य जन चर्चा विषय बना था। इस फिल्म ने आगे चलकर अनेक नाग-नागिन फिल्मों को जन्म दिया।

□ हिंदी/ १९५४/ श्वेत-श्याम/, □ फिलिमस्तान, □ निर्देशक: नंदलाल जसवंतलाल, □ संगीत: हेमंत कुमार, □ पात्र: वैजयंती माला/ प्रदीप कुमार/ मुबारक/ जीवन।

बूट पालिश : जान चाचा तुम कितने अच्छे

पथेर पांचाली

२६ अगस्त १९५५ को सत्यजीत राय की पहली फिल्म पथेर पांचाली का कलकत्ता में प्रथम प्रदर्शन हुआ था। इस फिल्म ने भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक नए अध्याय की शुरूआत करते हुए यथार्थवाद की प्रभावी बुनियाद रखी। अंतरराष्ट्रीय आकलन के लिहाज से यह सर्वाधिक प्रशंसित और प्रसिद्ध भारतीय सिने-कृति रही है। विभूति भूषण बंद्योपाध्याय के उपन्यास पर आधारित 'पथेर पांचाली' बंगाल के एक गरीब ब्राह्मण परिवार की कहानी है, जो अपने पुरखों के गाँव में जहालत भरा जीवन बिता रहा है। पिता एक आदर्शवादी कवि हैं, और परिवार के भरण-पोषण के लिए पुजारी का काम करते हैं। जीवन के प्रति उनके गैरयथार्थवादी रवैए की वजह से परिवार को गरीबी का कष्ट बुरी तरह उठाना पड़ता है। केवल माँ के व्यवहार कौशल की बदौलत किसी तरह गाड़ी खिंचती है। बेटी दुर्गा को नटखट शरारतें करने और पेड़ से जाम चुराने का शौक है। छोटे बेटे अपू के जन्म के साथ फिल्म शुरू होती है। एक बूढ़ी रिश्तेदार भी इस परिवार के साथ रहती है, जिनके सान्निध्य में अपू और दुर्गा को आनंद मिलता है। दुर्गा की जाम चुराने की आदत के कारण एक दिन उस पर अमीर पड़ोसी की स्त्री द्वारा हार चुराने का झूठा आरोप लगा दिया जाता है। नाराजगी में वह घर छोड़कर चली जाती है। अपू उसे वापस लाता है। इस दौरान पिता पैसा कमाने के उद्देश्य से बनारस चले जाते हैं। पुरुष के आलंबन के बगैर माँ गरीबी के विरुद्ध एक हारी हुई लड़ाई लड़ती रहती है। पिता जब वापस लौटता है, तो उसे दुर्गा की मृत्यु की सूचना मिलती है। जिंदगी के इतने आघात सहने के बाद यह परिवार अपना पैतृक घर छोड़कर बनारस के लिए रवाना होने पर

मजबूर हो जाता है। फिल्म उनकी बिदाई के साथ समाप्त होती है। इस फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला है। साथ ही अनेक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए, जो इस प्रकार हैं-

□ कान फिल्मोत्सव में 'सर्वश्रेष्ठ मानवीय सिने-कृति', □ एडिनबर्ग फिल्मोत्सव में डिप्लोमा ऑफ मेरिट, □ मनीला फिल्मोत्सव (१९५६): गोल्डन गार्बो अवॉर्ड, □ अंतरराष्ट्रीय फिल्म प्रदर्शनी (सैन फ्रांसिस्को) प्रथम पुरस्कार, □ अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव 'वैंकूवर' प्रथम पुरस्कार, □ स्ट्रेफोर्ड अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव (कनाडा) १९५८ वर्ष की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का समीक्षक पुरस्कार।

□ बंगला/ १९५५/ १५५ मिनट, □ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: सत्यजीत राय, □ संगीत: रवि शंकर, □ पात्र: करुणा बैनर्जी/ कानू बैनर्जी/ उमा दासगुप्ता।

झनक झनक पायल बाजे

इस फिल्म की कहानी शास्त्रीय कथक नर्तकी की है। उसके पिता उसे अनुशासित एवं संयमित जीवन की सीख देते हैं। उनका बेटा जब प्रशिक्षु नर्तकी के प्रेम में दीवाना होने लगता है, तो वे दोनों प्रेमियों को जुदा कर देते हैं। लेकिन नृत्यकला उन दोनों को जोड़ देती है। गोपीकृष्ण और संध्या के नृत्यों में शांताराम ने इतने रंग भर दिए थे कि यह फिल्म अपने समय में देश भर के थिएटरों से उतरने का नाम नहीं लेती थी। बाद में इसे ७० एम.एम. में भी प्रदर्शित किया गया था। गीत-संगीत और नृत्य पर आधारित फिल्म निर्माण की परंपरा के प्रतीक हिन्दी फिल्मों में सिर्फ शांताराम रहे हैं।

□ हिंदी/रंगीन/ १९५५/ □ राजकमल कला मंदिर, □ वी. शांताराम, □ संगीत : वसंत देसाई, □ पात्र : संध्या/ गोपीकृष्ण।

काबुलीवाला

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इसी नाम की कहानी पर आधारित इस फिल्म में रहमत शेख नामक एक अफगान काबुलीवाला, बादाम- पिस्ते बेचकर इतना धन कमा लेना चाहता है कि अपने देश लौटकर अपनी बेटी और परिवार के पास पहुँच सके। अक्सर वह अपने देश के सपने देखता रहता है। हमेशा बच्चों के बीच रहकर अपनी बिटिया की यादों को ताजा करता रहता है। वह लेखक की पाँच वर्षीय बेटी मिनी से मिलता है। दोनों में खूब पटती है। मकान मालिक से झगड़ने के कारण उसे सजा होती है। जेल से छूटते ही वह मिनी से मिलने जाता है। वह चकित होता है कि मिनी एक सुंदर युवती हो गई है। मिनी की शादी होती है। लेखक विवाह खर्च से कुछ राशि बचाकर रहमत को देता है ताकि वह अपने वतन लौटकर अपनी बेटी से मिल सके। १९५६ में इस फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण-पदक मिला था।

□ बंगला/ श्वेत-श्याम/ १९५६, □ निर्देशक : तपन सिन्हा, □ संगीत : रवि शंकर, □ कलाकार : छवि विस्वास/ टिंकू/ राधा/ मोहन भट्टाचार्य/ जहर रॉय/ काली बनर्जी।

जागते रहो

जागते रहो पहली भारतीय फिल्म है, जिसे कार्लोवी वारी के फिल्म समारोह में ग्रां-प्री पुरस्कार मिला था। बंगला फिल्म एक दिनेर रात्रि पर हिन्दी में राजकपूर ने फिल्म बनाई थी-जागते रहो। गाँव का एक गवई पानी की तलाश में एक बहुमंजिली इमारत में प्रवेश करता है। उसे चोर समझ लिया जाता है। वह छुपने के लिए फ्लेट-दर-फ्लेट भागता है और देखता है कि अपने को उजले समझने वाले ये लोग कितने मैले हैं। फिल्म में जीवन के विविध व्यापार/ संबंधों की कलई हास्य-व्यंग्य की शैली में खोली गई है। अंत में वह गवई सबको आईना दिखाकर उनके कुरूप चेहरे बतलाता है। इस फिल्म की प्रासंगिकता आज भी कायम है। इस फिल्म के अंतिम दृश्य में नरगिस प्रकट होकर गवई (राजकपूर) को पानी पिलाती है।

□ हिन्दी/ १९५६/ श्वेत-श्याम, □ आर.के. फिल्म्स, □ निर्देशक : शम्भू मित्रा तथा अमित मित्रा, □ संगीत : सलिल चौधरी, □ पात्र : राजकपूर / मोतीलाल/ प्रदीप कुमार/ सुमित्रा देवी/ पहाड़ी सान्याल।

जागते रहो : नरगिस-राजकपूर

मदर इंडिया

नायिका राधा आदर्श पत्नी के साथ आदर्श माँ भी है। सूदखोर साहूकार के जाल में उलझ कर यह सुखी किसान परिवार बरबादी की राह पर धकेल दिया जाता है। पति की मौत के बाद राधा बच्चों की परवरिश कर बहादुरी के साथ जीवन संघर्ष करती है। वह सभी बाधाओं से लड़कर अंत में अपने एक बिगड़ैल बेटे को बंदूक से गोली मार देती है। मेहबूब प्रोडक्शन की यह फिल्म १९४० में **औरत** नाम से बनी थी। मदर इंडिया का रोल **नरगिस** ने निभाकर अपने को समस्त भारतीय तारिकाओं में महान बनाया है। यह महज संयोग रहा कि इस फिल्म में नरगिस के बेटे का रोल करने वाले सुनील दत्त आगे चलकर जीवन साथी बने। शकील के गीत तथा नौशाद की धुन और मेहबूब का उत्कृष्ट निर्देशन मदर इंडिया को 'आल टाइम ग्रेट फिल्म' बनाते हैं। प्रमुख गीत : * नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे, * दुनिया में हम आए हैं तो, * घूँघट नहीं खोलूँगी सैया तोरे आगे।

□ हिन्दी/रंगीन/ १९५७/ १९० मिनट, □ मेहबूब प्रोडक्शन, □ निर्देशक : मेहबूब,

□ संगीत : नौशाद, □ पात्र : नरगिस/ राजकुमार/ सुनील दत्त/ राजेन्द्र कुमार/ कन्हैयालाल/ सितारा देवी/ कुमकुम।

प्यासा

फिल्म **प्यासा** कवि विजय की असफल प्रेम गाथा को प्रदर्शित करती है। कॉलेज में साथ पढ़ने वाली दो लड़कियों को वह बेहद प्रेम करता है। एक नर्तकी उसे अपना दोस्त बनाती है। कवि की अपेक्षित मौत को देखते हुए जब उसकी कविताओं को प्रकाशित किया जाता है, तब उसे महसूस होता है उसकी

प्यासा : गुरुदत्त

स्वयं की प्रसिद्धि व सच्चे दोस्तों का असली चेहरा क्या है? गुरुदत्त की कल्पनाशीलता ने इस फिल्म को कालजयी बनाया है। फिल्म का गीत- संगीत उसके चरित्रों को उभारने में सहायक है।

□ हिन्दी/ १९५७/ श्वेत-श्याम/ १५३ मिनट, □ गुरुदत्त फिल्म्स, □ निर्देशक : गुरुदत्त, □ संगीत : एस.डी. बर्मन, □ कलाकार : माला सिन्हा/ गुरुदत्त/ कुमकुम/ वहीदा रहमान।

दो आँखें बारह हाथ

यह फिल्म १९३० की पृष्ठभूमि पर आधारित है। आदिनाथ एक आदर्शवादी जेलर है। वह हत्या के अपराधी छः खूँखार कैदियों को चुनकर उन्हें अच्छा नागरिक बनाने का निश्चय करता है। एक बंजर इलाके में यह प्रयोग आरंभ होता है। कैदी सब्जी उगाकर बाजार में कम भाव में बेचने लगते हैं। गाँव के जमीदार को यह बात पसंद नहीं आती। वह शराब पिलाकर कैदियों को पिटवा देता है। वे उत्तेजित होकर बदला नहीं लेते। जेल अधीक्षक सुधरे हुए कैदियों को रिहा कर देता है। लेकिन जमीदार एक पागल साँड छोड़ता है जिससे जेलर मारा जाता है। इस फिल्म को १९५७ में राष्ट्रपति का स्वर्ण-पदक मिला है।

□ हिन्दी/ १९५७/ श्वेत-श्याम, □ राजकमल कला मंदिर, □ निर्देशक : वी. शांताराम, □ संगीत : वसंत देसाई, □ पात्र : वी. शांताराम/ संध्या/ उल्हास / बाबूराव पेंढारकर।

अजांत्रिक

नायक बिमल के पास एक पुरानी मोटर कार है। उसे लोग 'पुराना घोड़ा' अथवा 'लँगड़ी बतख' कह कर चिढ़ाते हैं। लेकिन बिमल को वह बहुत प्यारी है, जो लगातार उसका साथ देती है। वह उसकी दोस्त भी है और रोजी-रोटी का साधन भी। पंद्रह सालों से वह बिमल के साथ है। फिल्मकार ऋत्विक घटक ने एक आदमी और मशीन के साथ को नई-दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

□ बंगला/ १९५८/ श्वेत-श्याम/ ११७ मिनट, □ एल.बी. फिल्म्स, □ निर्देशक : ऋत्विक घटक, □ संगीत : उस्ताद अली अकबर खाँ, □ पात्र : काली बनर्जी/ काली चटर्जी।

सागर संगमे

परंपरागत ब्राह्मण परिवार की एक संतानहीन विधवा अपनी गरिमा के साथ गाँव में रहती है। गंगासागर जाते समय उसे नाव में कुछ वेश्याओं के साथ सफर करना होता है। ब्राह्मण-मस्तिष्क में पवित्रता तथा शुद्धता का संघर्ष शुरू हो जाता है। नाव उलट जाती है। ब्राह्मण विधवा तथा वेश्या लड़की नाव के एक तख्ते के सहारे अपनी जान बचाते हैं। अपनी साथी गणिका के डूबने पर वह गणिका बाला ब्राह्मणी का सहारा लेती है। भयभीत एवं आशंकित मन में धीरे-धीरे मानवीय रिश्ते विकसित होने लगते हैं। ब्राह्मणी अपने मृत पति के नाम का उपयोग करने का अधिकार देती है, लेकिन सुख के चरम क्षणों के पहले गणिका- बाला बिदा हो जाती है इस संसार से। इस फिल्म को १९५८ में राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत किया गया।

□ बंगला/ श्वेत श्याम/ १९५८, □ निर्देशन : देबकी कुमार बोस, □ संगीत : आर.सी. बोराल, □ पात्र : भारती दास/ मंजू अधिकारी/ जहर रॉय/ शैलेन मुखर्जी।

सांगते ऐका

गाँव का मुखिया पाटिल, युवा कृषक की ईर्ष्या के कारण हत्या करवा देता है। बाद में उसकी पत्नी का अपहरण कर शोषण करता है। उसके परिवार की एक लड़की बड़ी होकर एक डांसिंग-पार्टी में नृत्यांगना बन जाती है। पाटिल का लड़का उसे प्रेम करने लगता है बावजूद अल्प जानकारी के वह उसकी बहन है। इस तथ्य को छिपाने की कोशिश में पाटिल की मौत हो जाती है।

□ मराठी/ १९५९/ श्वेत- श्याम, □ बेनर : चेतना चित्रा, □ निर्देशक : अनन्त माने, □ संगीत : बसंत पंवार, □ कलाकार : सुलोचना/ हंसा वाडकर/ चंद्रकांत/ सूर्यकांत।

कागज के फूल

फिल्मकार गुरुदत्त की आत्मकथा शैली की फिल्म है- कागज के फूल। भारत की पहली सिनेमा स्कोप फिल्म होने का गौरव इसे प्राप्त है। फिल्मकार सुरेश सिन्हा तथा अनाथ लड़की शांति आपस में मिलते हैं। अपने पारस जैसे हाथों के स्पर्श से शांति को सुरेश सिन्हा कंचन बना देते हैं। शांति मशहूर तारिका बन जाती है। सुरेश की पत्नी को यह सहन नहीं होता। शांति के जीवन से चले जाने के कारण सुरेश शराब में डूबकर बरबादी की राह चल पड़ते हैं। उनकी फिल्में फ्लॉप होने लगती हैं। अपने ही स्टुडियो में एक्स्ट्रा कलाकार की हैसियत हो जाती है। महान ग्रीक ट्रेजेडी की तरह विराट त्रासदी का विराट अंत फिल्म के अंतिम दृश्य में है। फिल्म तो पिट गई, मगर गुरुदत्त अमर हो गए।

□ हिन्दी/ १९५९/ श्वेत-श्याम, १४९ मिनट, □ गुरुदत्त फिल्म्स, □ निर्देशक : गुरुदत्त, □ संगीत : एस.डी. बर्मन, □ पात्र : गुरुदत्त/ वहीदा रहमान/ जॉनी वाकर/ महेश कौल/ मेहमूद।

अपूर संसार

सत्यजीत रॉय द्वारा निर्मित विख्यात 'अपु-त्रयी' की यह अंतिम और सर्वाधिक सशक्त कड़ी है। फटेहाल नौजवान अपू का नाटकीय परिस्थितियों में विवाह होता है। उसकी पत्नी अपर्णा की प्रसव के दौरान मृत्यु हो जाती है। अपू इस दुर्घटना के लिए नवजात शिशु को जिम्मेदार मानता है। उसे अपनी जिंदगी व्यर्थ और निराशा में डूबी नजर आने लगती है। वह विवाह पूर्व के दिनों को याद कर दुखी महसूस करता है, जब उपन्यास लेखन और बाँसुरी बजाने के साथ उसकी सुखद शामें व्यतीत होती थीं। पत्नी की मृत्यु के बाद वह अपने बेटे को असहाय छोड़ निरुद्देश्य भटकता रहता है। बरसों बाद एक मित्र की समझाइश पर अपू अपने पुत्र के प्रति उपेक्षा भाव त्याग कर उसे स्वीकार करता है। लेकिन बच्चे के लिए इतने लंबे अंतराल में बाप की पहचान पराई हो चुकी होती है। फिल्म को राष्ट्रपति के स्वर्ण पदक द्वारा १९५९ में सम्मानित किया गया था। लंदन फिल्मोत्सव में इसे सर्वश्रेष्ठ मौलिक और कल्पनाशील फिल्म के लिए 'सदरलैंड ट्रॉफी' प्रदान की गई थी।

□ बंगला/ १९५९/ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक : सत्यजीत रॉय, □ संगीत : रविशंकर, □ पात्र : सौमित्र चटर्जी/ शर्मिला टैगोर/ स्वप्न मुखर्जी।

सुजाता

बिमल रॉय की श्रेष्ठ फिल्मों में से एक है **सुजाता।** सुजाता रेलवे कुली की अनाथ और अछूत कन्या है। रेलवे में इंजीनियर चौधरी दम्पति सुजाता को गोद ले लेते हैं। उनकी बेटी है रमा। दोनों की परवरिश दो बहनों की तरह होती है। गिरिबाला नामक एक अनुदारवादी महिला मित्र कुछ दिनों के लिए चौधरी परिवार में आकर रहती है। वह अपने पोते अधीर का विवाह रमा से करने की

मुगल-ए-आजम : दिलीप कुमार-मधुबाला
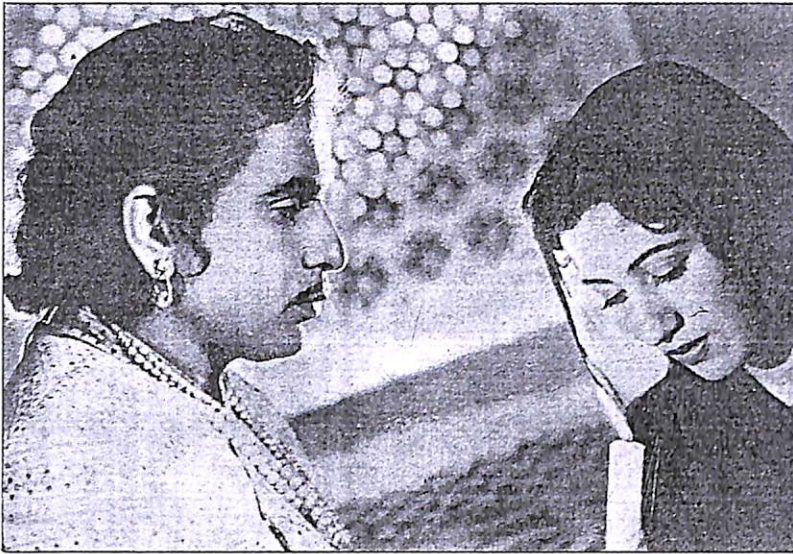
इच्छा पाले हुए है। उसकी इच्छा सुजाता के प्रति भी तीव्र है। परिवार में एक तूफान-सा आ जाता है। जब श्रीमती चौधरी के लिए सुजाता अपना खून देकर उनका जीवन बचाती है, तो बात शांत हो जाती है।

□ हिन्दी/ १९५९/ श्वेत-श्याम/ १६६ मिनट, □ बिमल रॉय प्रोडक्शन, □ निर्देशक : बिमल रॉय, □ संगीत : एस.डी. बर्मन, □ पात्र : नूतन/ सुनील दत्त/ शशिकला।

मुगल-ए-आंजम

मुगल-ए-आजम हिन्दी फिल्मों में 'आलटाइम ग्रेट' फिल्म है। इसके निर्देशक के. आसिफ इसलिए मूवी- मुगल कहे जाते हैं कि वे एक फिल्म के निर्माण में बरसों लगा देते थे। इतिहास भले ही सलीम और अनारकली की मोहब्बत पर अपनी मोहर लगाने से इंकार कर दे, यह प्रेम- कथानक फिल्म वालों को लुभाता रहा है। भव्य सेट शीश महल, उम्दा कलाकार और बेहतरीन अदाकारी ने मिलकर मुगल-ए-आजम को महान बनाया है। शकील ने १२ गीत लिखे। नौशाद के संगीत में नहाकर लता/ बड़े गुलामअली खाँ साहब/ शमशाद/ रफी की आवाज ने कीर्तिमान कायम किए हैं- प्रमुख गीत - * मोहे पनघट पे नंदलाल, * तेरी महफिल में किस्मत आजमा कर, * मुहब्बत की झूठी कहानी पर रोए, * प्यार किया तो डरना क्या? अकबर के रोल में पृथ्वीराज कुछ इस तरह काम कर गए कि आज दूसरे अकबर की तुलना उनसे की जाती है।

□ हिन्दी/ १९६०/ रंगीन / १९२ मिनट, □ स्टर्लिंग इन्वेस्टमेंट, □ निर्देशक : के. आसिफ, □ संगीत : नौशाद, □ पात्र : दिलीप कुमार/ मधुबाला/ पृथ्वीराज/ दुर्गा खोटे/ निगार/ मुराद/ जिल्लो/ सुरेन्द्र/ गोपीकृष्ण।

अनुराधा

एक डॉक्टर शहरी चकाचौंध भरी जिंदगी को त्याग कर दूर देहातों में सेवा करने का मिशन बनाता है। उसकी पढ़ी-लिखी पत्नी गाँव की जिंदगी से बोर हो जाती है तथा डॉक्टर से शहर लौटने का आग्रह करती है। लेकिन वह अपनी मानव-सेवा के रास्ते में अडिग रहता है। पत्नी तथा स्वयं की निजी जिंदगी के सुखों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। इस फिल्म का गीत- संगीत स्मरणीय है।

□ हिंदी/ १९६०/ □ निर्देशकः ऋषिकेश मुखर्जी, □ संगीतः रविशंकर, □ कलाकार लीला नायडू/ बलराज साहनी/ 'अभि भट्टाचार्य

कानून

एक बूढ़ा व्यक्ति भूख से तंग आकर चोरी करता है और एक हत्या में शामिल कर दिया जाता है। सरकारी वकील को आशंका होती है कि जज स्वयं प्रकरण में शामिल है। वह (वकील) अत्यधिक परेशान हो जाता है। क्योंकि वह जज की बेटी से प्यार करता है। सारे रहस्य को नाटकीय ढंग से प्रकट करने के प्रयत्न होते हैं। फिल्म में एक भी गीत नहीं होने के बावजूद यह टिकट खिड़की पर सफल रही थी। कोर्ट रूम के दृश्य अत्यंत सजीव तथा बहस वाले बन पड़े थे।

□ हिंदी/१९६०/ □ निर्माता-निर्देशक : बी. आर. चोपड़ा □ संगीत : सलिल चौधरी □ कलाकार : अशोक कुमार/ राजेंद्र कुमार/ नंदा।

देवी

चंडीपुर के जमींदार कालीकिंकर राय 'दुर्गा' की उपासना में आस्था रखते हैं। उनका बड़ा बेटा तारापद दब्बू किस्म का इंसान है, जबकि छोटे बेटे उमा प्रसाद की दिलचस्पी तार्किकता और अध्यवसाय में है। वह अपने पिता की धार्मिक भीरूता को सही नहीं मानता। उमा की पत्नी दोया को उसके ससुर काफी चाहते हैं। तारापद का ५ वर्षीय पुत्र खोका भी दोया के प्रति गहरा आकर्षण रखता है। जो उसे अपने सगे बेटे की तरह प्यार करती है। कालीकिंकर एक दिन स्वप्न में देखते हैं कि दोया, माँ काली की अवतार है। वे उसे देवी का दर्जा देकर पूजने लग जाते हैं। गाँव का एक बीमार बच्चा दोया के स्पर्श से ठीक हो जाता है। उमा प्रसाद को धर्म के नाम पर यह तमाशेबाजी उचित नहीं लगती। वह अपनी पत्नी को लेकर शहर जाना चाहता है। लेकिन दोया इसके लिए तैयार नहीं होती। वह अब तक खुद को देवी समझने लगती है। हताश उमाप्रसाद अकेला शहर चला जाता है। इस बीच खोका की तबियत गंभीर रूप से बिगड़ती है। उसे डॉक्टर के पास ले जाने की बजाए कालीकिंकर दोया के चरणों में रख देते हैं। उचित चिकित्सा के अभाव में बच्चा दम तोड़ देता है। उमा प्रसाद को शहर से लौटने

फिल्म देवी : सौमित्र चटर्जी-शर्मिला ठाकुर

पर पता चलता है कि खोका की मौत के सदमे से दोया का मानसिक संतुलन बिगड़ गया है। वह अपने पति की बाँहों में इस राहतदायी अनुभव के साथ आखिरी साँस लेती है, कि उसमें किसी देवी का नहीं वरन मानुषी का ही अंश था। अवार्ड राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक।

□ बंगला/ १९६०/ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: सत्यजीत रॉय, □ संगीत: अली अकबर खान □ पात्र : छवि विश्वास/ सौमित्र चटर्जी/ शर्मिला टैगोर।

गंगा जमना

फिल्म की कहानी दो भाइयों के भिन्न-भिन्न जीवन पथ पर आधारित है। गंगा पर बेबुनियाद आरोप लगाकर उसे अपराधी साबित कर दिया जाता है। फलस्वरूप वह डाकुओं के गिरोह में शामिल हो जाता है। गंगा गिरोह के अन्य सदस्यों को सुधारने का प्रयास करता है लेकिन वे नहीं मानते। दूसरा भाई जमना पुलिस ऑफिसर बनता है। गंगा की प्रेमिका धन्नू की जब मौत होती है तो वह आवेश में आकर खलनायक हरीराम की हत्या करवा देता है और अपने भाई जमना (पुलिस ऑफिसर) के समक्ष आत्मसमर्पण कर देता है। दिलीप कुमार ने निर्माता की हैसियत से यह पहली फिल्म बनाई थी। नौशाद ने उत्तर भारतीय लोक धुनों का फिल्म में बेहतर उपयोग किया है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९६१/ १७५ मिनट, □ निर्देशक: नितीन बोस, □ संगीत: नौशाद, □ कलाकार: दिलीप कुमार/ वैजयंतीमाला/नासिर खान/ अजरा।

तीन कन्या

नारी चरित्र को समझना देवताओं के लिए भी असंभव काम माना जाता है। यह फिल्म तीन स्त्री पात्रों की मदद से नारी के व्यक्तित्व की विभिन्न छवियों को पेश करती है। पहली पात्र है, एक अनाथ लड़की जो अपने प्रति हमदर्दी रखने वाले पोस्ट मास्टर नंदलाल की बुरे दिनों में जी-जान से मदद करती है। दूसरी स्त्री मृणमयी की परिवार वाले उसकी मर्जी के खिलाफ शादी कर देते हैं। विवाह को अपनी स्वच्छंदता में बाधा समझने वाली मृणमयी शादी की पहली ही रात घर छोड़ कर भाग जाती है। बाद में उसके विचारों में परिवर्तन होता है, और वह पति के पास लौटती है। तीसरा चरित्र फणिभूषण साहा की पत्नी 'मणिमाला' का है, जो अपने चाचा की संपत्ति की वारिस बनकर माणिकपुर आती है। बदले परिवेश में मणिमाला की आभूषणों के प्रति आसक्ति जाग उठती है। परिवार की देखभाल के बजाए उसका काम केवल गहने एकत्र करना रह जाता है। पति के अचानक दिवालिया होने पर उसे भय महसूस होता है कि उसके प्रिय गहने छिन जाएँगे। फणिभूषण के पैसों की तलाश में कलकत्ता जाने के दौरान वह अपने गहनों के साथ घर से चुपचाप भाग जाती है। मार्ग में उसे जान से हाथ धोना पड़ता है। इस बीच उसका पति उसके लिए कलकत्ता से आकर्षक हार लेकर लौटता है। मणिमाला इसे पाने के लिए अपनी कब्र में से उठकर चली आती है। मेलबोर्न फिल्मोत्सव में 'तीन कन्या' को ग्रां.प्रि. अवार्ड दिया गया था।

□ बंगला/ १९६१/ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: सत्यजीत रॉय, □ पात्र: अनिल चटर्जी/ कणिका मजूमदार/ अपर्णा दास-. गुप्ता।

साहब, बीवी और गुलाम

उन्नीसवीं सदी ने जब करवट ली, तब की पृष्ठभूमि पर यह फिल्म है, जब जमींदारी प्रथा अपने पूरे यौवन पर थी। फिल्म में एक जमींदार परिवार की कथा फ्लेशबेक में कही गई है। बाद में वह परिवार बरबाद होकर उनकी कोठी खंडहरों में बदल जाती है। चौधरी के जमींदार परिवार में महिलाओं के लिए यह रिवाज था कि वे अपने हाथों से पति को शराब पिलाएँ और नाच-गाना पेश करें। इसके अलावा पति को कोठे पर मुजरे सुनने के लिए भी इजाजत रहती थी। छोटी बहू को ये विचार पसंद नहीं थे। वह उदार तथा दयालु स्वभाव की थी। गाँव से भूतनाथ नामक एक रिश्तेदार आकर वहाँ ठहरता है। उसे सिंदूर फैक्टरी में काम मिल जाता है। छोटी बहू उससे चमत्कारिक सिंदूर मँगवाती है ताकि माँग में भरने से उसके पति घर लौट आएँ। उसके पति उसे शराब पीने की सलाह देते हैं। वह शराब पीने लगती है। और इतनी पीती है कि एक दिन सब समाप्त हो जाता है। मीनाकुमारी ने इस फिल्म में अद्‌भुत रोल किया था। गुरुदत्त ने बंगला जमींदारी का सजीव चित्रण कर इसे कालजयी फिल्म बना दिया है।

□ हिंदी/१९६२/रंगीन/ □ गुरुदत्त फिल्म्स □ निर्देशक : गुरुदत्त/ अबरार अल्वी/ □ पात्र : मीना कुमारी/ गुरुदत्त/ वहीदा रहमान/ रहमान

महानगर

सुब्रत मजुमदार अपनी छोटी तनख्वाह में परिवार का गुजारा न कर पाने से पत्नी आरती को नौकरी के लिए प्रोत्साहित करता है। उसके वृद्ध पिता प्रिय गोपाल को यह पसंद नहीं कि उनकी बहू घर के बाहर कदम रखे। मगर बेटे के सहारे जीने के कारण वे अपनी राय प्रकट नहीं करते। आरती को सेल्सगर्ल की नौकरी मिल जाती है। उसके लाए पैसे घर को नई शक्ति देते हैं। लेकिन जल्दी ही सुब्रत महसूस करता है कि आरती का संसर्ग पर-पुरुष के साथ गहराता जा रहा है। वह उस पर नौकरी छोड़ने के लिए दबाव डालता है। अगली सुबह आरती भारी मन से इस्तीफा लेकर दफ्तर जाती है, जहाँ उसे सुब्रत का फोन मिलता है कि उसकी नौकरी छूट गई है, इसलिए आरती अभी इस्तीफा न दे। परिवार में अब आरती एकमात्र कमाऊ सदस्या रह जाती है। सुब्रत के पिता कमाई का एक अजीब तरीका ढूँढ़ते हैं। वे अपने पूर्व छात्रों से गुरु दक्षिणा मांगना शुरू कर देते हैं। महानगरीय जीवन की जद्दोजहद इस परिवार को कई समझौते करने पर मजबूर करती है। संबंधों का तनाव भी इसे घेरे रहता है। बर्लिन फिल्मोत्सव में फिल्म को सर्वश्रेष्ठ निर्देशन के लिए सिल्वर बीयर पुरस्कार।

सौमित्र चटर्जी : महानगर में

□ बंगला/ १९६३, □ निर्देशक : सत्यजीत रॉय, □ पात्र : अनिल चटर्जी/ माधवी मुखर्जी/ विकी रेडवुड।

सर्वश्रेष्ठ फिल्म

फिल्म कल्चर

फिल्मफेयर पुरस्कार १९५३ से १९७५

दो बीघा जमीन (१९५३)
☆ विमल रॉय

बूट पॉलिश (१९५४)
☆ राजकपूर

जागृति (१९५५)
☆ एस. मुखर्जी

झनक-झनक पायल बाजे (१९५६)
☆ वी. शांताराम

मदर इंडिया (१९५७)
☆ मेहबूब खान

मधुमति (१९५८)
☆ विमल रॉय

सुजाता (१९५९)
☆ विमल रॉय

मुगल-ए-आजम (१९६०)
☆ के.आसिफ

जिस देश में गंगा बहती है (१९६१)
☆ राजकपूर

साहब, बीवी और गुलाम (१९६२)
☆ गुरुदत्त

बंदिनी (१९६३)
☆ विमल रॉय

दोस्ती (१९६४)
☆ ताराचंद बड़जात्या

हिमालय की गोद में (१९६५)
☆ शंकरभाई जे. भट्ट

गाइड (१९६६)
☆ देव आनंद

उपकार (१९६७)
☆ मनोज कुमार

ब्रह्मचारी (१९६८)
☆ जी.पी. सिप्पी

आराधना (१९६९)
☆ शक्ति सामंत

खिलौना (१९७०)
☆ एल.वी. प्रसाद

आनंद (१९७१)
☆ ऋषिकेश मुखर्जी और एन.सी.सिप्पी

बेईमान (१९७२)
☆ सोहनलाल कँवर

अनुराग (१९७३)
☆ शक्ति सामंत

रजनीगंधा (१९७४)
☆ सुरेश जिन्दल

दीवार (१९७५)
☆ गुलशन रॉय
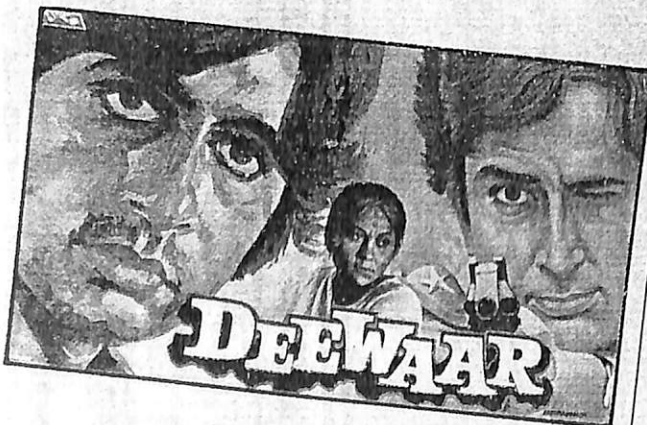
चारूलता

फिल्म का आधार गुरुदेव टैगोर की कहानी 'नष्टनीड़' है। बौद्धिक रुझान वाला रईस भूपति एक राजनीतिक अखबार का संपादन करता है। व्यस्तता के बीच उसे अपनी पत्नी 'चारू' के लिए समय नहीं मिल पाता। चारू का अकेलापन भूपति के चचेरे भाई अमल के आगमन से खत्म होता है। समान साहित्यिक अभिरुचियों के कारण दोनों एक-दूसरे के करीब आ जाते हैं। भूपति के व्यावसायिक दिक्कतों में घिरने पर अमल उसके साथ हमदर्दी महसूस करता है। अपने आचरण में भी उसे विश्वासघात की बू आती है, और वह पश्चाताप के लिए 'चारू' से दूर चला जाता है। चारू किसी तरह इस आघात

चारूलता : माधबी मुखर्जी

को बर्दाश्त करती है, किन्तु कई दिनों बाद अमल का एक पत्र उसकी भावनाओं का बाँध तोड़ देता है। भूपति इस सच्चाई का पता चलने पर नाराजगी के साथ घर छोड़कर चले जाते हैं। फिर उन्हें चारू के प्रति अपनी गलती का अहसास होता है। पर-पुरुष की ओर पत्नी के आकर्षित होने के पीछे उनका भी दोष था। इस आत्मस्वीकार के साथ वे घर वापस लौटते हैं। बर्लिन फिल्मोत्सव में फिल्म के श्रेष्ठ निर्देशन के लिए सत्यजीत रॉय को सम्मानित किया गया। सत्यजीत रॉय की तमाम फिल्मों में 'चारूलता' श्रेष्ठता की दृष्टि से सर्वप्रथम है।

□ बंगला/ १९६४, □ निर्देशक : सत्यजीत राय, □ पात्र : सौमित्र चटर्जी/ माधवी मुखर्जी/ शैलेन्द्र मुखर्जी।

यादें

फिल्म एक शादी-शुदा आदमी की अतीत की स्मृतियों को दृश्य-दर-दृश्य प्रस्तुत करती है। स्क्रीन पर सिर्फ एक पात्र दिखाई देता है। उसके बच्चों एवं पत्नी की आवाजें सुनाई देती है। नायक पत्नी एवं बच्चों को मौत के बाद केवल स्मृतियों के सहारे जीता है। सुनील दत्त ने इसे प्रयोग के बतौर बनाया था। विश्व की यह एकपात्रीय एकमात्र फिल्म है।
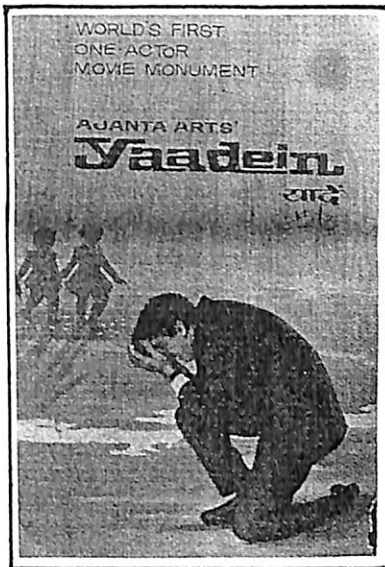
□ हिन्दी/ रंगीन/ १९६४, □ अजंता आर्ट्स, □ निर्माता-निर्देशक : सुनील दत्त, □ संगीत : वसंत देसाई, □ कलाकार : सुनील दत्त।

गाइड

आर.के. नारायण के उपन्यास पर आधारित फिल्म **गाइड** हिन्दी और अँगरेजी दोनों भाषाओं में बनी है। विजय आनंद के कल्पनाशील निर्देशन ने इस फिल्म को चाक्षुष आनंद देने के साथ 'वर्ल्ड क्लास' का दर्जा दिया है। देवआनंद तथा वहीदा रहमान के उत्कृष्ट अभिनय से सँवरी फिल्म गाइड आलटाइम ग्रेट श्रेणी की है। रोजी एक देवदासी की बेटी है। एक चरित्रहीन पुरातत्ववेत्ता मार्को के साथ रोजी की शादी कर दी जाती है। पति-पत्नी दोनों में जरा भी नहीं पटती। ऐसे समय में राजू गाइड रोजी के जीवन में ताजगी भरा प्रवेश लेता है। रोजी अच्छी नर्तकी है। मार्को को यह सब पसंद नहीं। लेकिन राजू की कोशिशों से रोजी राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर लेती है। राजू अपना अधिकार जताता है, लेकिन रोजी यह नहीं चाहती। दोनों में दूरियाँ बढ़ती हैं। राजू अपने को शराब में डूबो लेता है। एक गलत काम से उसे जेल की सजा होती है। जब वह जेल से छूटता है, तो गलतफहमी में लोग उसे संत समझ लेते हैं। वह साधू बन जाता है। एस.डी. बर्मन के गीत-संगीत से यह फिल्म दर्शनीय के साथ श्रवणीय भी है।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९६५/ १७९ मिनट, □ नवकेतन इंटरनेशनल, □ निर्देशक : विजय आनंद, □ संगीत : एस.डी. बर्मन, □ पात्र: देवआनंद/ वहीदा रहमान/ किशोर साहू/ लीला चिटनीस/ उल्हास।

अतिथि

फिल्म अतिथि एक घुमक्कड़ किशोर तारापदा के जीवन पर आधारित है। वह अक्सर घर से भाग कर किसी संगीत दल या खिलाड़ियों के साथ चला जाता है। जब वह हमेशा के लिए घर छोड़कर जाता है, तो रास्ते में जमींदार मोती से उसकी मुलाकात होती है। वह अपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा से लौट रहा है। तारापदा न केवल जमींदार बल्कि उसकी पत्नी का दिल जीत लेता है। उनकी बेटी से भी प्रेम हासिल कर लेता है। दोनों की शादी तय कर तैयारी शुरू होती है उसी बीच तारापदा फिर से गायब हो जाता है।

□ बंगला/ १९६५, □ न्यू थिएटर्स, □ निर्देशक तपन सिन्हा।

चेम्मीन

राष्ट्रपति के स्वर्ण कमल से सम्मानित मलयालम फिल्म चेम्मीन . हिन्दी लड़की करुथम्मा और मुस्लिम युवक परिकुट्टी के असफल प्रेम की दुखांत कहानी है। करुथम्मा के पिता अक्खड़ स्वभाव के मछुहारे हैं। वह बेटी पर दबाव डालते हैं कि उनकी पसंद के लड़के से शादी कर ले। करुथम्मा को यह सब पसंद नहीं है। दोनों प्रेमियों को मौत मिला देती है।

□ मलयालम/ १९६५, □ कनमणि फिल्म्स, □ निर्देशक : रामू करिआत, □ संगीत : सलिल चौधरी, □ पात्र : सत्येन/ शीला/ मधु/ श्रीधरन नायर।

कंकू

फिल्म, औरत के सम्मान, उसकी एक छोटी- सी गलती तथा उसके बुरे परिणाम और गाँव के रिवाज को प्रदर्शित करती है। कंकू गर्भवती युवती के साथ किस्मत क्रूर मजाक करता है। उसका पति मर जाता है। लेकिन कंकू की जीवन के प्रति अदम्य लालसा है। वह साहस के साथ शक्ति प्राप्त करती है जीने के लिए। गाँव का चालाक बनिया, मालकचंद उसके यौवन से आकर्षित होकर सहानुभूति दिखाता है। वह कंकू को उसके लड़के की शादी में सहायता करता है। कंकू बनिए के प्रति अपने दिल में प्यार पनपाती है। वे पहली बार अकेले में मिलते हैं। लेकिन, समाज के रीति-रिवाज के मुताबिक उसे इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। इस फिल्म को मध्यप्रदेश के फिल्मकार कांतिलाल राठौड़ ने निर्देशित किया है।

□ गुजराती/ १९६६/ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक : कांतिलाल राठौड़, □ संगीत : दिलीप ढोलकिया, □ कलाकार : पल्लवी मेहता/ किशोर जरीवाला/ किशोर भट्ट।

तीसरी कसम

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर शैलेन्द्र ने हिन्दी में फिल्म बनाई- तीसरी कसम। एक तरह से शैलेन्द्र की रेणु के प्रति यह आदरांजलि थी। बासु भट्टाचार्य के प्रभावी निर्देशन, राजकपूर- वहीदा के परिपक्व अभिनय ने साहित्य को सैल्यूलाइड पर हूबहू ऐसा उतारा है कि एक कविता की

तरह चलती है फिल्म। हीरामन गाड़ीवाला और नौटंकी में काम करने वाली 'बाई' के बीच पनपे अनगढ़ प्यार की यह ऐसी कहानी है, जो हर संवेदनशील दर्शक को भीतर तक झकझोर देती है। अंत में गाड़ीवान हीरामन नौटंकी की बाई को कभी अपनी गाड़ी में नहीं बैठाने की तीसरी कसम लेता है।

□ हिन्दी/ १९६६/ श्वेत-श्याम/ १५४ मिनट, □ इमेज मेकर्स, □ निर्देशक : बासु भट्टाचार्य, □ पात्र : राजकपूर/ वहीदा रहमान/ इफ्तेखार/ दुलारी/ सी.के. दुबे।

उपकार

उपकार की कहानी भारतीय संस्कृति एवं संस्कार को श्रेष्ठ साबित करती है। बड़ा भाई अपने छोटे भाई को पढ़ाई के लिए शहर भेजता है। जहाँ वह पश्चिमी जिंदगी का रास्ता चुनकर अपने गाँव, भाई एवं ग्रामीण संस्कृति से घृणा करता है। बड़े भाई का बलिदान तथा राष्ट्रप्रेम की अंत में विजय होती है। फिल्म का गीत संगीत बेहद लोकप्रिय हुआ था। मेरे देश की धरती सोना उगले- राष्ट्रीय गीत जैसा बन गया था। प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की प्रेरणा इस फिल्म के पीछे रही है।

□ हिन्दी/ १९६७/ रंगीन, □ निर्देशक : मनोज कुमार, □ संगीत : कल्याणजी-आनंदजी, □ कलाकार : आशा पारिख/ मनोज कुमार/ प्राण/ प्रेम चोपड़ा।

सारा आकाश

हिन्दी कथाकार राजेन्द्र यादव की कहानी पर आधारित फिल्म **सारा आकाश** भारतीय सिनेमा के उस दौर की है, जब समांतर सिनेमा आंदोलन के बीज अंकुर बनकर फूटने लगे थे। उन्नीस वर्षीय समर की शादी उसकी इच्छा के विरुद्ध की जाती है। समर को शादी से महज विरोध इसलिए है कि उसकी उन्नति के रास्ते शादी से बंद हो जाते हैं। समर की सजा उसकी युवा पत्नी प्रभा झेलती है। शादी के आठ महीने बाद तमाम गलतफहमियाँ ननद द्वारा दूर कर दी जाती हैं और समर-प्रभा की मुट्ठी में सारा आकाश समा जाता है।

□ हिन्दी/ १९६९/ श्वेत-श्याम/ ११० मिनट, □ सिने आई फिल्म्स, □ निर्देशक : बासु चटर्जी, □ संगीत : सलिल चौधरी, □ पात्र : राकेश पांडे/ मधु चक्रवर्ती/ तरला मेहता/ नंदिता।

भुवन शोम

भारतीय सिनेमा में समांतर फिल्मों का शंखनाद करने वाली फिल्म है, **भुवन शोम।** इस फिल्म के माध्यम से मृणाल सेन हिन्दी फिल्माकाश में शामिल हुए। भुवन शोम रेलवे में एक सीनियर ऑफिसर हैं। वे सख्त मिजाज तथा कठोर अनुशासन पसंद हैं। वे विधुर हैं। सही और गलत के बारे में उनके विचार स्पष्ट हैं। एक टिकट कलेक्टर को घूस लेने के अपराध में सजा होने वाली है। इसी दौरान भुवन शोम शिकार करने के इरादे से सौराष्ट्र कच्छ जाते हैं। वहाँ उनका मुकाबला गौरी से होता है, जो सुंदर/ सीधी/ सरल और मुँहफट है। खुशमिजाज गौरी का सामीप्य पाकर शोम साहब की दुनिया ही बदल जाती है। उन्होंने अपने आसपास, जो ताना बुन रखा था, दरअसल दुनिया वैसी नहीं है।

□ हिन्दी/ श्वेत-श्याम/ १९६९/ ११२ मिनट, □ मृणाल सेन प्रोड., □ निर्देशक : मृणाल सेन, □ संगीत : विजय राघव राव, □ पात्र : उत्पल दत्त/ सुहासिनी मूल्ये/ साधू मैहर।

इत्तफाक

फिल्म 'इत्तफाक' जिंदगी को महज संयोग के रूप में प्रदर्शित करती है। सारे दर्शन एवं तर्क- वितर्कों से दूर महज इत्तफाक है जिंदगी कभी-कभी! नायक पर हत्या का आरोप है। वह कानून की निगाह से दूर भागना चाहता है। इस भागने की प्रक्रिया में वह दूसरी हत्या के प्रकरण में फँस जाता है। जो उसने नहीं की थी।

□ हिन्दी/ १९६९, □ निर्देशक : यश चोपड़ा, □ संगीत : सलिल चौधरी, □ कलाकार : नंदा/ राजेश खन्ना।

फिल्म दस्तक : रेहाना सुल्तान-संजीव कुमार

प्रतिद्वंद्वी

पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण सिद्धार्थ चौधरी को चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई अधूरी छोड़ नौकरी की तलाश में जुटना पड़ता है। तमाम प्रयासों के बावजूद सिफारिश के अभाव में उसे नौकरी नहीं मिलती। परिवार में छोटी बहन और भाई सामाजिक प्रतिष्ठा के लिहाज से उसके आगे निकल जाते हैं। सिद्धार्थ को उसकी दृढ़ मान्यताओं के कारण हर जगह तिरस्कार और उपहास का केंद्र बनना पड़ता है। एक लड़की केया उसके जीवन में रोशनी की नई किरण लेकर आती है लेकिन नौकरी न होने के कारण वह उससे विवाह नहीं कर पाता। एक इंटरव्यू में बात बनती दिखाई देती है, तो उसका गैर समझौता परस्त रवैया आड़े आ जाता है। अपने पैरों पर खड़ा होने की प्रक्रिया में उसके पास जमीन नहीं बचती। दवाई विक्रेता के रूप में व्यवसाय शुरू करने के लिए उसे अपनी प्रेमिका और मातृ-भूमि से बहुत दूर जाना पड़ता है। फिल्म को द्वितीय श्रेष्ठ कथाचित्र का राष्ट्रीय अवॉर्ड मिला था।

□ बंगला/ १९७०, □ निर्देशक: सत्यजीत राय, □ पात्र: धृतमान चटर्जी/ जयश्री रॉय/ शेफाली।

दस्तक

फिल्म महानगरों में आवास समस्या एवं उससे प्रभावित मानसिकता का प्रभावी प्रस्तुतिकरण है। एक युवा दम्पत्ति को मकान की तलाश में भटकने के बाद 'रेड लाइट' क्षेत्र में उन्हें एक घर मिलता है। वहाँ उन्हें एकांत नहीं मिल पाता। आए समय दरवाजे पर अजनबियों की दस्तक होती रहती है। पति-पत्नी भावनात्मक रूप से बेहद दुखी हो जाते हैं। फिर से वे दूसरे मकान की तलाश में जगह-जगह दस्तक देते हैं। इस फिल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७०, □ निर्माता-निर्देशक: राजिन्दर सिंह बेदी, संगीत: मदन मोहन, □ कलाकार: रेहाना सुल्तान/ संजीव कुमार।

संस्कार

क्या एक ब्राह्मण, जिसने ब्राह्मणवाद की तमाम परंपराओं को तोड़ा, अपनी मृत्यु के
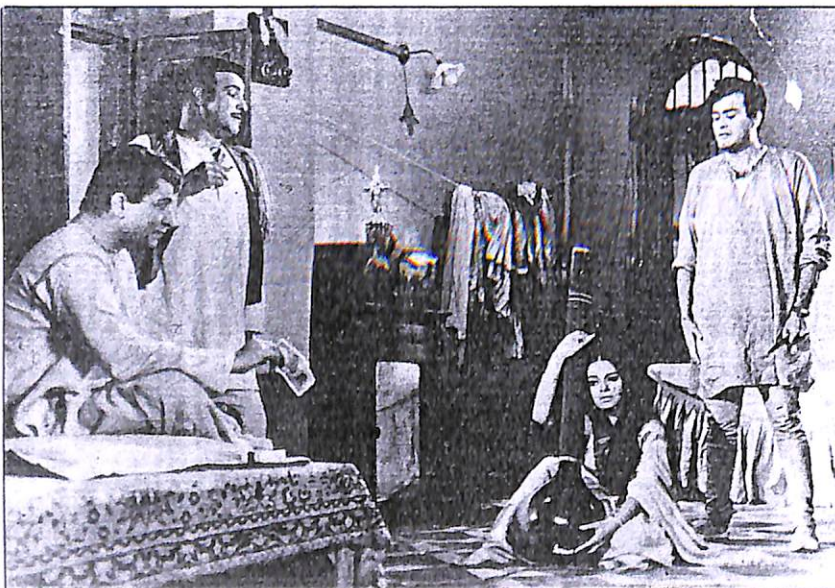
बाद भी ब्राह्मण रहता है या नही, इस तीखे सवाल को यह फिल्म उठाती है। मैसूर के एक छोटे गांव में नारायण अप्पा का मृत शरीर धीरे-धीरे ठंडा होता जा रहा है, दूसरे ब्राह्मण प्रणेशाचार्य के नेतृत्व में समस्या का हल खोजते हैं। किसी भी पुस्तक या धर्मग्रंथ में इस सवाल का जवाब नहीं मिलता। अपने आपको पवित्र दर्शाने वाला प्रणेशाचार्य, जो मृत ब्राह्मण की पत्नी के साथ अवैध संबंध रखता रहा है, गांव छोड़कर चल देता है कि उसका क्या होगा? इस फिल्म के प्रदर्शन पर कर्नाटक में कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने काफी हंगामा किया था।

□ कन्नड़/ १९७०/ ११८ मिनट □ निर्देशक: टी. पट्टाभिरामा रेड्डी/ संगीत: राजीव तारानाथ □ पात्र: गिरीश कर्नाड/ स्नेहलता रेड्डी/ पी. लंकेश।

आनंद

फिल्म की कहानी आनंद मोशाय की असाध्य बीमारी पर अदम्य इच्छा-शक्ति एवं खुश मिजाजी से, जिन्दगी जीने की प्रेरणा देती है। नायक कैंसर से पीड़ित है। उसे यह मालूम है कि उसकी जिंदगी के चंद दिन शेष हैं। वह शेष जिंदगी हँसी-खुशी से बिताना चाहता है। दूसरों पर बोझ नहीं बनना चाहता। वह आनंद का स्रोत बनकर सबके दुख दूर करता चलता है। थोड़े समय के लिए ही सही वह मौत पर विजय पा लेता है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७१, □ निर्देशक: ऋषिकेश मुखर्जी, संगीत: सलिल चौधरी, □ कलाकार: राजेश खन्ना/ अमिताभ बच्चन/ सुमिता सान्याल।

सीमाबद्ध

अपनी मेधावी शैक्षणिक पृष्ठ-भूमि और व्यवहार कौशल के बूते पर श्यामलेंदु चटर्जी काफी छोटी उम्र में ही एक अँगरेज कंपनी के उच्च प्रबंधकीय पद पर पहुँच जाते हैं। उनकी महत्वाकांक्षा कंपनी का निदेशक बनने की है। अपनी पत्नी दोलन के साथ कलकत्ता के एक आलीशान भवन में ऐशो आराम की जिंदगी बिताते हुए वे यही सपना देखते रहते हैं। दोलन की बहन सुदर्शना अवकाश के दौरान उसके पास रहने आती है। श्यामलेंदु के प्रति उसके मन में छुटपन से ही गुप्त प्रशंसा भाव है, जो अब और भी मजबूत हो जाता है। श्यामलेंदु भी सुदर्शना के आगमन को अपने जीवन में ताजी हवा के झोंके की तरह महसूस करते हैं। इस बीच अचानक उनके दफ्तर में गंभीर परेशानियाँ उठ खड़ी होती हैं। वे जिस चालाकी के साथ इस खतरे से निपटते हैं, उसे देखते हुए कंपनी उन्हें पुरस्कार स्वरूप निदेशक बना देती है। श्यामलेंदु का वह स्वप्न तो सच हो जाता है, किंतु सुदर्शना उनका दूसरा चेहरा देखने के बाद उनसे दूर चली जाती है। 'सीमाबद्ध' को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक प्राप्त है।

□ बंगला/ १९७१/श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: सत्यजीत राय, □ पात्र: शर्मिला टैगोर/ वरुण चंदा/ परामिता चौधरी।

कोशिश

गूंगे-बहरे दम्पति के जीवन, उनकी समस्याओं और उनके आपसी रिश्तों को यह फिल्म गहराई से रेखांकित करती है। हरि और आरती का अपना संसार है। लेकिन जिन लोगों के बीच वे जीवन जीते हैं, वे उन्हें सहजता से नहीं जीने देते बल्कि उनके मार्ग में कई बाधाएँ खड़ी कर देते हैं। फिर भी गूंगे-बहरों का अपना संसार चलता रहता है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७२, □ निर्देशक: गुलजार, संगीत: मदन मोहन, □ कलाकार: संजीव कुमार, जया भादुड़ी।

स्वयंवरम्

विश्वम् एवं सीता की वैवाहिक जिंदगी की शुरूआत प्यार भरी होती है। जीवन की कठोर वास्तविकताएँ उनके मार्ग में अनेक परेशानियाँ उत्पन्न करती हैं। विश्वम् की नौकरी छूट जाती है। इसी समय सीता एक बच्चे को जन्म देती है। दुखी सीता को पड़ोसी महिला उसके पति को छोड़कर चले जाने की सलाह देती है। सीता ऐसा करने से इंकार करती है क्योंकि उसका पति उसकी अपनी पसंद का था। उनके लिए सोचनीय मुद्दा यह है कि उनसे गलती क्या एवं कहाँ हुई?

□ मलयालम/ १९७२, १३५ मिनट, □ निर्देशक: अडूर गोपालकृष्णन, संगीत: एम.बी. श्रीनिवासन, □ कलाकार: शारदा/ मधु/ गोपी/ टी. सुकुमारन।

हाथी मेरे साथी

फिल्म की कहानी आदमी व जानवर के बीच दोस्ती तथा वफादारी पर आधारित है। इंसान की गद्दारी को जानवर की वफादारी से भी ईर्ष्या होने लगती है। हाथी, रामू न केवल रोजी-रोटी का साधन है बल्कि उसके जीवन का सब कुछ वही है। अंत में हाथी उसकी जान बचाने में स्वयं मारा जाता है, खलनायक की गोली से। फिल्म का चल चल चल मेरे हाथी मेरे साथी गीत बेहद लोकप्रिय हुआ था। राजेश खन्ना बच्चों के प्रिय सितारे हो गए थे।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७२ □ निर्देशक : थिरुमुगम □ संगीत : लक्ष्मीकांत- प्यारेलाल □ कलाकार : राजेश खन्ना/ तनूजा/ सुजीत कुमार/ के.एन. सिंह।

अशनि संकेत

ब्राह्मण गंगाप्रसाद और उसकी पत्नी अनंगा निर्धन और नीची जाति के किसानों के गाँव में विश्व युद्ध के दौरान रहने आते हैं। अनंगा कृषक पत्नियों के साथ काफी घुल-मिल जाती है। गंगाप्रसाद को गाँव वाले पुजारी के रूप में बेहद सम्मान देते हैं। इसके बावजूद उसके लिए दो वक्त की रोटी का प्रबंध करना मुश्किल है। युद्ध के कारण बाजार में चीजों के दाम बढ़े हुए हैं। गरीबों का जीना दूभर है। हवाई हमले और भुखमरी के बीच ग्रामीण आतंक की जिंदगी जीते हैं। गाँव में पैदा होने वाला अनाज सरकार द्वारा सैनिकों के लिए भेज दिया जाता है। अच्छी फसल के बावजूद मानव निर्मित अकाल की विभीषिका से गंगा उद्विग्न महसूस करता है। चारों तरफ हाहाकार की छाया नजर आती है। स्त्रियों को मुट्ठी भर चावल के बदले अपना शरीर बेचना पड़ता है। एक अस्पृश्य औरत गंगा के द्वार पर अनाज की आशा में दम तोड़ देती है। अनंगा के साथ एक अनजान व्यक्ति बलात्कार की कोशिश करता है। इस कँपा देने वाले माहौल में गंगाप्रसाद की पत्नी उसे अपने गर्भवती होने की सूचना देती है। फिल्म को बर्लिन फिल्मोत्सव में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के गोल्डन बीयर अवॉर्ड से पुरस्कृत किया गया था।

□ बंगला/ १९७३, □ निर्देशक: सत्यजीत

Taking - off
from a successful past ...
... into a promising future.
INDO ZINC
LIMITED
Head Office: 405, Apollo Tower, 2, M.G. Road, Indore-452001 (M.P.), Phone: (0731) 430338, 431220.

राय, □ पात्र: सौमित्र चटर्जी/ संध्या राय/ बबीता।

अचानक

एक सैनिक की शादी अपने सीनियर सेना ऑफिसर की लड़की से होती है। वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है। सैनिक लंबी अवधि के लिए पत्नी से दूर बाहर रहता है। इस बीच उसे अपनी पत्नी के अवैध संबंधों की जानकारी होती है। सैनिक के लिए असहनीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आक्रोश में वह दोनों की हत्या कर स्वयं को पुलिस के हवाले कर देता है। फांसी की सजा के पूर्व सैनिक अंतिम इच्छा अपने घर जाने की जाहिर करता है। जहाँ से वह भागने की असफल कोशिश करता है। पुलिस की गोली से वह सख्त घायल हो जाता है। डॉक्टर उसकी जान सिर्फ कानून को सौंपने के लिए बचाते हैं। फिल्म की कहानी की बुनावट डॉक्टर के दृष्टिकोण से की गई है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७३, □ निर्देशक: गुलजार, संगीत: वसंत देसाई, □ कलाकार: विनोद खन्ना/ इफ्तखार/ लिली चक्रवर्ती।

दुविधा

फिल्म 'दुविधा' एक दुल्हन के सामने अपने वास्तविक पति को पहचानने की दुविधा को प्रस्तुत करती है। शादी के बाद घर लौटते समय दूल्हा-दुल्हन सहित सभी लोग बरगद के पेड़ के नीचे कुछ देर आराम के लिए रुकते हैं। दुल्हन अपना घूंघट हटाती है। बरगद के पेड़ पर भूत रहता है। उसे दुल्हन से मन ही मन प्यार हो जाता है। कुछ दिनों बाद पति व्यवसाय के संबंध में पाँच साल के लिए बाहर जाता है। भूत मौका पाकर पति का रूप धारण कर उसके समक्ष जाता है। दुल्हन सत्य समझकर उसे स्वीकार कर लेती है और गर्भवती हो जाती है। जब असली पति को इस बात का पता चलता है, तो फौरन घर लौटता है। सभी लोगों के समक्ष वास्तविक पति को पहचानने की दुविधापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसी समय एक गडरिया भूत को अपने काबू में कर लेता है। उदार लेकिन दुखी पति-पत्नी अंत में एक दूसरे को स्वीकार करते हैं।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७३/ □ निर्माता-निर्देशक: मणि कौल, संगीत: रमजान खान, □ कलाकार: रवि मेनन/ रईसा पद्मसी।

गरम हवा

गरम हवा फिल्मकार एम.एस. सथ्यू की महत्वपूर्ण फिल्म है। शांताराम की फिल्म पड़ौसी के बाद हिंदू-मुस्लिम सद्भाव पर बनी यह सर्वोत्तम रचना है। आगरा में बसने वाले मुस्लिम परिवार और उसके सदस्यों के आपसी द्वंद्व को फिल्म गहराई से दर्शाती है। विभाजन की त्रासदी के बाद भारतीय मुसलमानों को यह लगने लगा था कि इस देश की जमीन और यहाँ के लोग अब उनके अपने नहीं हैं। सलीम मिर्जा को भारत रहने की कीमत अदा करना होती है। उनके परिवार के सदस्य एक-एक कर पाकिस्तान चले गए हैं। उनका घर, धंधा और बेटी तक छूट जाते हैं। लेकिन उनका बेटा लौटता है और जीवन की मुख्य धारा में शामिल हो जाता है। सलीम मिर्जा भी वैसा ही करते हैं।

□ हिंदी/ श्वेत-श्याम/ १९७३, □ निर्देशक: एम.एस. सथ्यू, संगीत: उस्ताद बहादुर खान, □ पात्र: बलराज साहनी/ शौकत आजमी/ फारुक शेख/ गीता सिद्धार्थ।

निर्मालयम

फिल्म की पृष्ठ-भूमि केरल के एक गाँव में एक पुजारी की विकट पारिवारिक परिस्थिति को दर्शाती है। मंदिर से प्राप्त आय पाँच सदस्य वाले परिवार के लिए इतनी कम साबित होती है कि उनका पेट तक नहीं भर पाता। भुखमरी की स्थिति में पत्नी अपने देह शोषण के लिए मजबूर हो जाती है। लड़का घर छोड़कर चला जाता है। गाँव में आया एक अन्य पुजारी लड़की को खाई में फेंक देता है। अंत में परेशान पुजारी मंदिर में देवी के समक्ष अपनी गर्दन काटकर उनके चरणों में रख देता है। शायद ऐसा कर उस पुजारी ने अपने को निर्मल बना लिया।

□ मलयालम/ १९७३, □ निर्माता-निर्देशक: एम.टी. बासुदेवन नायर, □ कलाकार: पी.जे. एंथोनी.

सौदागर

राजश्री प्रोडक्शन की फिल्म **सौदागर** अमिताभ बच्चन और नूतन के अभिनय की उम्दा प्रस्तुति है। कस्बे के बाजार में मोती का गुड़ बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि वह दिल से गुड़ बनाकर बेचता है, जिसके स्वाद को सब पसंद करते हैं। वह उस महिला को काफी पैसा देता है, जो उसके लिए काम करती है। यदि मोती उससे शादी कर ले, तो सारा पैसा बच जाएगा और वह धनी व्यक्ति बन सकता है। वह उससे शादी कर लेता है। काफी पैसा जमा होने पर पहली पत्नी तलाक ले लेती है। वह दूसरी शादी रचाता है लेकिन दूसरी पत्नी वैसा गुड़ नहीं बना पाती। अब सिर्फ पहली पत्नी ही उसे और उसके धंधे को बचा सकती है।

□ हिंदी/ १९७३, श्वेत-श्याम □ निर्देशक: सुधेन्दू रॉय, संगीत: रवीन्द्र जैन, □ कलाकार: अमिताभ/ नूतन/ पद्मा खन्ना।

अंकुर

श्याम बेनेगल की यह पहली फिल्म है और इसी फिल्म ने उन्हें राष्ट्रीय स्तर का फिल्मकार बना दिया। जमींदारी प्रथा द्वारा शोषण और अन्याय पर यह फिल्म आधारित है। एक जमींदार का बेटा अक्खड़ स्वभाव का है। शादी-शुदा होने के बावजूद वह फार्म-हाउस पर नियुक्त एक गूँगे-बहरे नौकर की सुंदर बीवी को अपनी हवस का शिकार बनाकर गर्भवती कर देता है। गूँगा पति और उसकी बीवी इस शोषण के विरुद्ध असहाय बने रह जाते हैं। जमींदार पुत्र की असली पत्नी आकर अपना अधिकार जताती है, और नौकर दम्पत्ति को नौकरी से निकलवा देती है।

इस अन्याय के विरुद्ध एक बच्चा एक पत्थर उठाकर जमींदार के घर की खिड़की को दे मारता है, जो अन्याय-शोषण के विरुद्ध एक पहल का प्रतीक है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७४, १३८ मिनट, □ निर्देशक: श्याम बेनेगल, संगीत: वनराज भाटिया, □ पात्र: शबाना आजमी/ साधू मैहर/ अनंत नाग/ प्रिया तेंडुलकर/ आगा मोहम्मद हुसैन।

अंकुर : साधू मैहर-शबाना

आविष्कार

फिल्मकार वासु भट्टाचार्य नारी मन के अंतर्द्वंद्व और स्त्री-पुरुष संबंधों पर फिल्म बनाने के विशेषज्ञ रहे हैं। अनुभव/ आविष्कार और गृह प्रवेश एक तरह से इन संबंधों की त्रयी है। हालाँकि पंचवटी नाम से एक और फिल्म प्रस्तुत की है। शादी-शुदा दम्पत्ति के जीवन में उतार-चढ़ाव को सुंदर ढंग से फिल्म आविष्कार चित्रित करती है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७४, □ निर्देशक: वासु भट्टाचार्य,□ संगीत: कनु रॉय, □ पात्र: शर्मिला ठाकुर/ राजेश खन्ना।

दीवार

फिल्म दीवार की कहानी दो भाइयों की है- विजय और रवि। विजय के जीवन में खुशियाँ तो आती हैं मगर वह गलत धंधों में लगकर जिंदगी को खुशनुमा बनाता है। इसके पीछे उसका उद्देश्य है अपनी माँ को वे तमाम

दीवार : अमिताभ-शशिकपूर

सुख देना, जिनके लिए वह वंचित रही है। जब विजय की माँ को पता चलता है कि यह सारी दौलत स्मगलिंग/ अपराध और गलत तरीके से आई है, तो वह सबको ठुकरा देती है। विजय का दूसरा भाई पुलिस इन्सपेक्टर है। उन दोनों भाइयों के बीच एक दीवार है। एक ओर अच्छाई है और दूसरी ओर बुराई। इस फिल्म में माँ की भूमिका महत्वपूर्ण है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७४, □ निर्देशक: यश चोपड़ा, संगीत: आर.डी. बर्मन, □ पात्र: अमिताभ/ शशि कपूर/ नीतू सिंह/ परवीन बॉबी।

शोले

शोले हिंदी सिनेमा की सबसे अधिक खूनी फिल्म है। इसने हिंदी सिनेमा के परदे को खून से इतना लाल कर दिया कि बीस साल बाद भी आज वह लथपथ है। तकनीकी गुणवत्ता/ पटकथा की कसावट/ कहानी और चरित्रों की बुनावट और उम्दा कलाकारों की उम्दा

अदाकारी के बावजूद **शोले** को सिर पर नहीं बैठाया जा सकता क्योंकि इस फिल्म ने लार्जर देन लाइफ साइज का जो गब्बरसिंह पैदा किया वह हमारे समूचे जीवन को अजगर की तरह लील रहा है। बदले की चरम परिणति इस फिल्म में है। शोले एक फिल्म न होकर एक 'कल्चर' बन गई थी। इसे आल टाइम ग्रेट बनाने के लिए बंबई के मैट्रो सिनेमा में पाँच साल तक कथित रूप से प्रदर्शित किया गया था, लेकिन इसी के निर्माता-निर्देशक की अगली फिल्म 'शान' ऐसी धड़ाम से जमीन पर गिरी कि उसने पानी तक नहीं माँगा। शोले की तारीफ में कई लोगों ने बहुत कशीदे काढ़े हैं, लेकिन यह फिल्म भारतीय सिनेमा की आत्महत्या समान है। हालाँकि इसी के समकालीन जय संतोषी माँ फिल्म ने इससे आनुपातिक रूप में अधिक धंधा किया।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९७५, २०० मिनट, □ निर्देशक: रमेश सिप्पी, संगीत: आर.डी. बर्मन, □ पात्र: धर्मेन्द्र/ संजीव कुमार/ अमिताभ/ जया भादुड़ी/ हेमा मालिनी/ अमजद खान।

जन अरण्य

बेकारी से त्रस्त आ चुका नौजवान सोमनाथ अपने एक परिचित की सलाह पर व्यापार में हाथ आजमाने की कोशिश करता है। मगर यहाँ भी उसे अपनी आत्मा गिरवी रखनी पड़ती है। अपने सामान की बिक्री के लिए वह जिस अधिकारी से संपर्क करता है, उसकी तरफ से स्वीकृति नहीं मिलती। दोस्त के माध्यम से उसे पता चलता है, कि अधिकारी की पत्नी रोगिणी होने के कारण शैया सुख देने में अक्षम है। लिहाजा सोमनाथ को उसे प्रसन्न करने के लिए लड़की की व्यवस्था करनी चाहिए। बेहयाई और तिकड़मों के इस दौर में तमाम संस्कारों को ताक पर रख सोमनाथ एक कालगर्ल ज्योतिका के पास पहुँचता है। उसे देखकर उसकी आँखें फटी रह जाती हैं। वह उसके अभिन्न मित्र की बहन थी, जो अपनी पहचान स्वीकार नहीं करना चाहती। सोमनाथ घिसटते हुए कदमों मे अधिकारी की इच्छापूर्ति के लिए उसे अपने साथ लेकर जाता है।

□ बंगला/ १९७५, □ निर्देशक: सत्यजीत राय, □ पात्र: प्रदीप मुखर्जी/ दीपांकर डे/ उत्पल दत्त/ सत्य बेनर्जी।

चोमना डूडी

कन्नड़ फिल्म चोमना डूडी में निर्देशक ब.व. कारंथ बंधुआ मजदूरों और शोषित एवं समस्या ग्रसित दुनिया में ले जाते हैं। चोमना और उसका परिवार हरिजन होकर बंधुआ हैं। चोमना ने बीस बरस पहले बीस रुपए का कर्ज लिया था। उसे अदा करने के लिए वे जी-तोड़ मेहनत कर पसीना बहाते हैं। चोमना का सपना है कि उसके पास भी जमीन का एक टुकड़ा हो, मगर वह सपना आकार नहीं ले पाता। उसका एक बेटा नदी में डूबकर मर जाता है। दूसरा, ईसाई बन जाता है और तीसरे की हैजे से मौत हो जाती है। उसकी बेटी एक ओवरसियर के साथ देह संबंध कायम कर पैसे लाती है। उन पैसों से चोमना का कर्ज तो चुक जाता है, लेकिन अपनी बेटी को पराए मर्द की बाहों में देख सदमे से उसकी मृत्यु हो जाती है।

□ कन्नड़ / १९७५/ श्वेत-श्याम/ १४१ मिनट, □ निर्देशक-संगीत : ब.व. कारंथ, □ पात्र : सुंदर राजन/ वासुदेवराव/ जयनारायण/ नागराजा।

२७ डाउन

हिन्दी के सुपरिचित कहानीकार रमेश बक्षी के उपन्यास पर आधारित फिल्म २७ **डाउन** एक ऐसे द्वंद्व में जीने वाले पात्र की कहानी है जो अपने कस्बाई संस्कारों से बाहर आकर महानगर की लड़की को प्रेम तो करता है लेकिन अपने वर्ग की मानसिकता के चलते

पिता से विद्रोह कर शादी नहीं कर पाता। शहर की उस प्रेमिका को छोड़ देता है। नतीजतन न तो वह ईमानदार प्रेमी रह पाता और न ही ईमानदार पति। न ही ईमानदार पुत्र। इच्छा से तय किए गए सपनों के खाके में वह अनिच्छा से जीता है। यही द्वंद्व इस फिल्म की कहानी का केंद्र है। बंबई-वाराणसी ट्रेन को इसमें एक प्रतीक की तरह इस्तेमाल किया गया है। चरित्र को रेलवे कंडक्टर बनाकर सांकेतिक रूप में यह दर्शाने की कोशिश की गई है कि जिस तरह ट्रेन किसी एक शहर की नहीं होती, नायक भी कहीं का नहीं रह पाता है। मध्यवर्ग की इस त्रिशंकु त्रासदी का कथानक उन दिनों फिल्मों में सर्वाधिक नया माना गया था।

□ हिन्दी/ १९७५/ श्वेत-श्याम/ ११८ मिनट, □ निर्माता-निर्देशक : अवतार कौल, □ संगीत : भूपेन हरि, □ कलाकार : एम.के. रैना/ राखी।

जय संतोषी माँ

सन् १९७५ में जब फिल्म **शोले** देश के सिनेमाघरों में आग बरसा कर हिंसा से परदे को लाल कर रही थी, तो दूसरी ओर कम बजट की धार्मिक फिल्म 'जय संतोषी माँ' ने टिकट खिड़की पर चमत्कार कर दिखाया। इस फिल्म ने शोले के बराबर और कहीं उससे ज्यादा कमाई की। इस फिल्म को देखने महिलाओं के झुंड सिनेमाघरों पर जाते थे। परदे पर संतोषी माँ के अवतरण पर आरती उतारना, नारियल तोड़ना और जय-जयकार से सिनेमा घर मंदिर जैसे बन गए थे। भारत की सात सुपरहिट फिल्मों में जय संतोषी माँ का स्थान भी है। इस फिल्म की हीरोइन अनिता गुहा जहाँ जाती, वहाँ लोग उन्हें साष्टांग-प्रणाम करने लग जाते थे और कुछ बरसों तक वह **देवी** बनी रही।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९७५, □ निर्देशक : सतराम रोहरा/ □ पात्र : आशीष कुमार/ कानन कौशल/ अनिता गुहा।

घरौंदा

कार्यालय की टाइपिस्ट छाया एवं क्लर्क सुदीप अपनी प्रेम की दुनिया बसाने के प्रयास में महानगरीय वास्तविकता के समक्ष हार जाते हैं। सुदीप शादी करने से पहले एक फ्लेट बुक कराता है। लेकिन उसे धोखा हो जाता है। सुदीप अपनी प्रेमिका छाया को उसके बॉस से, जो पहले से छाया को मन ही मन चाहता है, शादी करने के लिए कहता है। विस्मित छाया उसके कहने पर शादी कर लेती है। इसलिए कि बूढ़ा बॉस जल्दी ही मर जाएगा। दुखी सुदीप और अधिक दुखी हो जाता है यह देखकर कि छाया सुखद जिंदगी जी रही है। अंत में, सुदीप कल्पना के पंख काटकर वास्तविकता को स्वीकारता है।

□ हिन्दी/ १९७६/ रंगीन, □ निर्माता-निर्देशक : भीमसेन, □ संगीत : जयदेव, □ कलाकार : अमोल पालेकर/ जरीना वहाब/ श्रीराम लागू।

स्वामी

सौदामिनी निहायत हठधर्मी किस्म की लड़की है। उसकी शादी एक विधुर तथा स्वभाव से अंतर्मुखी व्यक्ति के साथ होती है। वह आधे मन से संयुक्त परिवार एवं पति के साथ रहती है। लेकिन धीरे-धीरे वह अपने पति की सौम्यता एवं उदारता की कायल हो जाती है। वह उसे अपने पुराने प्रेमी से मिलने जाने तक की इजाजत दे देता है। लेकिन वह ऐसा कर नहीं पाती। फिल्म की कहानी दो अलग-अलग स्वभाव एवं परिस्थितियों के व्यक्तियों के मनोविज्ञान और उनके आपसी तालमेल को बखूबी प्रकट करती है।

□ हिन्दी/ १९७७/ रंगीन/ १३० मिनट, □ निर्देशक : बासु चटर्जी, □ संगीत : राजेश रोशन, □ पात्र : गिरीश कर्नाड/ शबाना आजमी/ शशिकला।

□ हिन्दी/ १९७७/ रंगीन, □ निर्देशक : मनमोहन देसाई, □ संगीत : लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, □ पात्र : विनोद खन्ना/ ऋषिकपूर/ अमिताभ/ नीतूसिंह/ शबाना/ परवीन बॉबी।

घट-श्राद्ध

फिल्म की कहानी सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रिवाज के क्रूर शिकंजे को प्रदर्शित करती है। सोलह साल की मासूम लड़की विधवा हो जाती है। गाँव के स्कूल टीचर की भावनाओं के बहकावे में आकर वह गर्भवती हो जाती है। पूरा गाँव उसके इस कृत्य के खिलाफ तीव्र विरोध करता है। सामाजिक खिलाफत को देखते हुए पिता अपनी लड़की के जिंदा होने के बावजूद उसका घट-श्राद्ध करता है। यह क्रिया व्यक्ति के मरने के बाद की जाती है। फिल्म का अंत एक सोलह साल की लड़की की शादी पचास वर्षीय व्यक्ति के साथ के सांकेतिक दृश्य को दिखाते हुए होती हैं ताकि एक और पिता को घट-श्राद्ध की रस्म करना पड़े।

□ कन्नड़/ १९७७/ १४४ मिनट, □ निर्देशक : गिरीश कसरावल्ली, □ संगीत : ब.व. कारंथ, □ पात्र : अजित कुमार/ मीना/ रामास्वामी आयंगार/ शांता।

शतरंज के खिलाड़ी

मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी पर आधारित यह फिल्म साहित्य और सिनेमा के अंतर्संबंध की पड़ताल के लिहाज से मानक कृति है। फिल्म के अंत को लेकर काफी विवाद खड़े हुए थे, जो मूल कथानक से कुछ भिन्न है। इसके बावजूद सत्यजीत राय की चुनिंदा, सर्वाधिक प्रभावशाली फिल्मों में इसे शुमार किया जाता है। देश, कालखंड की छवियों के चित्रांकन की बुनियाद पर भी यह एक लाजवाब रचना थी। फिल्म की शुरूआत होती है, शतरंज की बिसात के दृश्य से, जिस पर दो जबरदस्त खिलाड़ी मिर्जा सज्जाद अली और मीर डटे हुए हैं। पृष्ठभूमि में हैं नवाब वाजिद अली शाह का लखनऊ। विलासिता और राजनीतिक उदासीनता में डूबा हुआ। लोग कबूतर उड़ा रहे हैं। बटेर लड़ा रहे हैं, लेकिन देश की राजनीतिक हालत के बारे में सोचने की उनके पास फुरसत नहीं है। इधर मीर और मिर्जा दीन-दुनिया से बेखबर सिर्फ शतरंज के खेल में उलझे हुए हैं। लार्ड डलहौजी की हड़पनीति के तहत जब अँगरेज सेनाएँ लखनऊ पर हमला बोलती हैं, तो शतरंज के ये दोनों खिलाड़ी शहर से दूर गोमती के तट की ओर इस डर से भाग खड़े होते हैं, कि कहीं नवाब की सेना में भरती न कर लिए जाएँ, उनके शतरंज के खेल में अवरोध पैदा न हो। अँगरेज सेनाएँ नवाब वाजिद अली शाह को आसानी से गिरफ्तार कर लौटती हैं। गोमती के किनारे शतरंज के दोनों खिलाड़ी एक नजर सेना की ओर देखते हैं, और वापस अपने खेल में व्यस्त हो जाते हैं। मूल कहानी के अंत में मीर और मिर्जा एक-दूसरे की हत्या कर देते हैं। राजनीतिक अंधःपतन की यह चरम सीमा थी। यह घटनाचक्र अहिंसा की सौम्य शांति का नहीं, अकर्मण्यता और जड़ता का पर्याय था। ऐतिहासिक परिदृश्य के फिल्मांकन में राय ने अत्यधिक प्रामाणिक और प्रभावशाली रवैए का परिचय दिया है।

□ हिन्दी-उर्दू/ १९७७/ १३३ मि./ रंगीन, □ निर्देशन / पटकथा/ संगीत : सत्यजीत राय, □ कलाकार : संजीव कुमार/ सईद जाफरी/ रिचर्ड एटनबरो/ शबाना आजमी/ अमजद खान।

अमर-अकबर-एंथोनी

ट्रेंड सेटर फिल्मों में मनमोहन देसाई की फिल्म 'अमर-अकबर-एंथोनी' का स्थान महत्वपूर्ण है। यह तीन भाइयों की कहानी है, जो बचपन में दुर्भाग्य से बिछुड़ गए थे। वे अलग-अलग परिस्थितियों में पल कर बड़े होते हैं। उनके धर्म और विश्वास भी अलग-अलग हैं। उनके पिता एक अपराध में जेल जाते हैं। कई हादसों और रोचक घटनाओं से गुजर कर तीनों भाई फिर मिलते हैं और पूरा परिवार आनंदित हो जाता है। फिल्म को बारबार देखने पर भी उसका आनंद बना रहता है।

भूमिका

चालीस के दशक की मराठी लोक रंगमंच तथा सिनेमा की कलाकार रही हंसा वाडकर की आत्मकथा पर यह फिल्म आधारित है। निर्देशक श्याम बेनेगल ने उस समय को परदे पर रूपायित करते हुए कामकाजी महिला के

सर्वश्रेष्ठ फिल्म

फिल्मफेयर पुरस्कार १९७६ से १९९३

फिल्म कल्चर

मौसम (१९७६)
☆ मल्लिकार्जुन राव

भूमिका (१९७७)
☆ ललित एम.बिजलानी और फ्रेनी एम.वरिआवा

मैं तुलसी तेरे आँगन की (१९७८)
☆ राज खोसला

अर्द्धसत्य (१९८३)
☆ मनमोहन शेट्टी और प्रदीप उप्पूर

स्पर्श (१९८४)
☆ बासु भट्टाचार्य

राम तेरी गंगा मैली (१९८५)
☆ रणधीर कपूर

कयामत से कयामत तक (१९८८)
☆ नासिर हुसैन

मैंने प्यार किया (१९८९)
☆ ताराचंद बड़जात्या

जुनून (१९७९)
☆ शशि कपूर

खूबसूरत (१९८०)
☆ एन.सी.सिप्पी और ऋषिकेश मुखर्जी

कलयुग (१९८१)
☆ शशि कपूर

शक्ति (१९८२)
☆ मुशीर रिआज

घायल (१९९०)
☆ धर्मेन्द्र

लम्हे (१९९१)
☆ यश चोपड़ा

जो जीता वही सिकंदर (१९९२)
☆ नासिर हुसैन

हम हैं राही प्यार के (१९९३)
☆ महेश भट्ट

प्रति लोगों के नजरिए को दर्शाया है। बचपन से लेकर बड़े होने तक हंसा का जीवन कष्टमय रहा। गिद्ध की तरह लोग उसे नोचते रहे। उसकी माँ के प्रेमी से पहले उसकी शादी होती है, जो बड़ा लालची तथा दुष्ट है। सुख की तलाश में वह एक सहअभिनेता, एक निर्देशक और एक जमींदार के संपर्क में आती है। अंत में उसका अनुभव यही कहता है कि अकेले रहो और जियो।

□ हिन्दी/ १९७७/ रंगीन, □ निर्देशक : श्याम बेनेगल, □ संगीत : वनराज भाटिया, □ पात्र : स्मिता पाटिल/ अमोल पालेकर/ नसीरुद्दीन शाह/ अमरीशपुरी/ अनंत नाग।

थेम्पू

जीवन को तीन घंटे का सर्कस दर्शा कर राजकपूर ने अपनी फिल्म 'मेरा नाम जोकर' में एक दर्शन पेश किया था। कुछ इसी किस्म की फिल्म मलयालम में **जी. अरविन्दन** ने भी बनाई है। एक छोटे से गाँव में शहर से सर्कस आता है। भोले-भाले ग्रामीण इसे किसी कौतुक की तरह देखते हैं। सर्कस का भारी भरकम तम्बू लगना, हाथी-घोड़ों की आवाजें, जोकर का परिहास, यह सब गाँव वालों के लिए रोमांच का अनुभव है। फिर कुछ दिनों तक गाँव की शांत एकरसता भरी जिंदगी में हलचल मचा कर सर्कस वापस चला जाता है। उसके उखड़ते तम्बुओं के पीछे बची रहती है, ग्रामीणों के जेहन में कुछ डोलती हुई स्मृतियाँ। तमाशे के आने और जाने के साथ पृष्ठभूमि में जिंदगी का कारवां बदस्तूर चलता रहता है। फिल्म को सर्वश्रेष्ठ निर्देशन और छायांकन का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

□ मलयालम/ १९७८/ १३० मिनट, □ निर्देशक : जी. अरविन्दन, □ संगीत : राधाकृष्णन, □ पात्र : गोपी/ वेलु/ श्रीरामन।

कल्लोल

कल्लोल निर्दोष लोगों पर अत्याचार करने वालों के आतंक और उनकी नैतिक दुर्बलताओं का चित्रांकन है। एक जमींदार चौधरी से गाँव के लोग बहुत डरते हैं, और भेंटपूजा स्वरूप उसे प्रतिदिन मछलियाँ ला कर देते हैं। एक दिन नदी में शार्क मछली आ जाती है और छोटी मछलियों को निगलना शुरू कर देती है। गाँव का बहादुर युवक मणि उसे मार डालता है। जमींदार उसके साहस को देखकर उससे द्वेष रखने लगता है। उसे पीड़ित करने के उद्देश्य से वह उसकी प्रेमिका पर अपनी रखैल बनने के लिए दबाव डालता है। जमींदार के इस रवैए से नाराज होकर ग्रामीण, मणि के नेतृत्व में उसके विरुद्ध उठ खड़े होते हैं।

□ असमिया/ १९७८/ रंगीन/ ९५ मिनट,

□ निर्देशक : अतुल बारदोली, □ पात्र : चंद्र बरुआ, लचित पोकन/ बीना सैकिया/ भारत राजकोवा।

चमेली मेमसाहब

असम के एक चाय बागान का अँगरेज मालिक बर्कले ग्रामीण युवती चमेली से विवाह करता है। वह कुछ समय बाद कुष्ठ रोग का शिकार हो जाती है। उसके आरोग्य के लिए बर्कले अपने बागान में एक बंगला बनवाता है, जहाँ चमेली अपने बच्चे को जन्म देती है। नवजात शिशु पर उसके रोग का कोई असर नहीं पड़ता। मगर चमेली उसकी परवरिश न कर पाने के दुख से त्रस्त आकर आत्महत्या कर लेती है। अभिशप्त बंगले में उसकी मर्मांतक चीखें गूँजती रहती हैं। प्रियतमा के वियोग से आहत बर्कले नवजात शिशु के रूप में चमेली की याद संजो कर रखता है। आजादी के बाद अपने तमाम अँगरेज साथियों के इंग्लैंड चले जाने के बावजूद वह हिन्दुस्तान नहीं छोड़ता।

□ बंगला/ १९७८/ १२९ मिनट/ रंगीन, □ निर्देशक : इंदर सेन, □ संगीत : भूपेन हजारिका, □ पात्र : राखी/ जार्ज बेकर/ अनिल चटर्जी।

सावित्री

फिल्म का कथासार इस स्थापना में है, कि दुनिया से बर्बरता का खात्मा होने की बजाए प्रेम की अनुभूतियाँ दम तोड़ रही हैं। परस्पर नफरत के समंदर में संवेदना के लिए कोई जगह नहीं। सावित्री एक किशोरी की कहानी है, जिसका विवाह विचित्र परिस्थितियों में मल्लेशी के साथ होता है। उसके पिता का गाँव के एक व्यक्ति से झगड़ा है, जो उसका अपहरण कर नीची जाति के मल्लेशी से उसे विवाह करने पर मजबूर करता है। इस माध्यम से वह उसके पिता की सामाजिक प्रतिष्ठा धूमिल कर सके। सावित्री के पिता को जब यह बात मालूम होती है, तो वह मल्लेशी को एक नाबालिग लड़की को फुसलाने के जुर्म में जेल भिजवा देता है। सजा पूरी कर मल्लेशी वापस लौटता है, और नए सिरे से अपनी वैवाहिक जिंदगी शुरू करना चाहता है। किन्तु सावित्री के पिता उसकी साजिश से हत्या कर देते हैं। अँगरेजों की द्वेष भावना का शिकार मासूम सावित्री और उसके पति को होना पड़ता है।

□ कन्नड़ / १९७८/ १२० मिनट, □ निर्देशक : टी.एस. रंगा, □ पात्र : सोमशेखर/ अनिल ठक्कर/ वसंत कुमार/ अश्विनी।

कस्तूरी

कस्तूरी एक चिड़िया का नाम है, जो बस्तर के घने जंगलों में पाई जाती है। इसे भाग्यशाली पंछी मानते हैं। शहर से एक प्रोफेसर अपनी पत्नी के साथ इस चिड़िया की तलाश में बस्तर के आदिवासी अंचल में आता है। ये लोग एक वन अधिकारी के घर ठहरते हैं। चिड़िया पाने की कोशिश में प्रोफेसर के हाथों एक घोसला टूट जाता है। उसमें रखे चिड़िया के अंडे नष्ट हो जाते हैं। एक आदिवासी पुजारी इस अपराध के लिए प्राध्यापक पर विपत्ति आने का श्राप देता है। उसकी बात सच होती है, और प्रोफेसर लकवे का शिकार हो कर बिस्तर पकड़ लेता है। उसकी पत्नी तनाव के कारण अंधविश्वासों में घिर जाती है। फिल्म के माध्यम से मानव और प्रकृति के संबंधों की पड़ताल का प्रयास किया गया है। इसे सर्वश्रेष्ठ हिंदी फीचर फिल्म का राष्ट्रीय अवार्ड मिला था।

□ हिंदी/ १९७८/ १३१ मिनट □ निर्देशक : विमल दत्त □ संगीत : उत्तमसिंह □ पात्र: नूतन/ श्रीराम लागू/ परीक्षित साहनी।
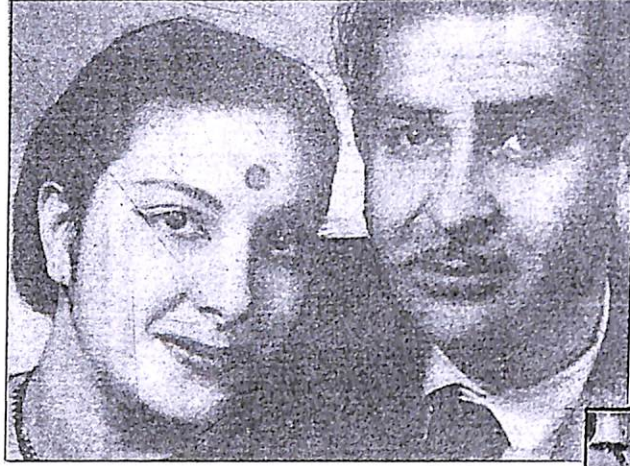
राज कपूर : श्रेष्ठ फिल्में

नर्गिस : श्रेष्ठ फिल्में

- □ मेला (१९४८) : दिलीप कुमार
- □ अंदाज (१९४९) : राज कपूर/ दिलीप कुमार
- □ जोगन (१९५०) : दिलीप कुमार
- □ आवारा (१९५१) : राज कपूर
- □ दीदार (१९५१) : दिलीप कुमार
- □ हमलोग (१९५१) : बलराज साहनी
- □ अम्बर (१९५२) : राज कपूर
- □ आह (१९५३) : राज कपूर
- □ श्री चारसौ बीस (१९५५) : राज कपूर
- □ चोरी-चोरी (१९५६) : राज कपूर
- □ मदर इंडिया (१९५७) : राजकुमार
- □ परदेसी (१९५७) : बलराज साहनी
- □ लाजवंती (१९५८) : बलराज साहनी
- □ रात और दिन (१९६७) : प्रदीप कुमार
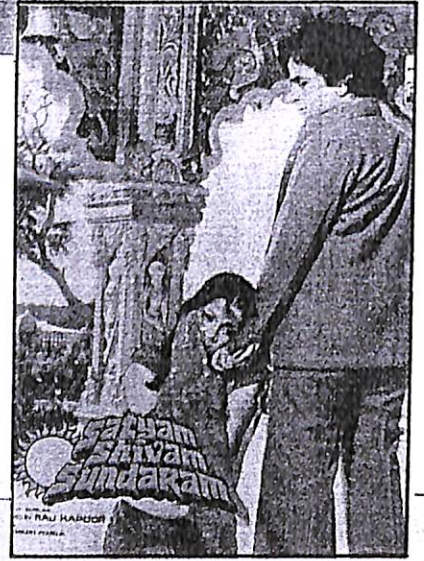
- □ नीलकमल (१९४७) : मधुबाला
- □ आग (१९४८) : नर्गिस
- □ अंदाज (१९४९) : नर्गिस
- □ बरसात (१९४९) : नर्गिस
- □ सरगम (१९५०) : रेहाना
- □ आवारा (१९५१) : नर्गिस
- □ आह (१९५३) : नर्गिस
- □ श्री चारसौ बीस (१९५५) : नर्गिस
- □ चोरी-चोरी (१९५६) : नर्गिस
- □ जागते रहो (१९५६) :-
- □ शारदा (१९५७) : मीना कुमारी
- □ परवरिश (१९५८) : माला सिन्हा
- □ फिर सुबह होगी (१९५८) : माला सिन्हा
- □ अनाड़ी (१९५९) : नूतन
- □ छलिया (१९६०) : नूतन
- □ जिस देश में गंगा बहती है (१९६०) : पद्‌मिनी
- □ संगम (१९६४) : वैजयंतीमाला
- □ तीसरी कसम (१९६६) : वहीदा रहमान
- □ मेरा नाम जोकर (१९७०) : सिमी/पद्‌मिनी
- □ कल आज और कल (१९७१) :-

दूरत्व

एक युवा अध्यापक की मानसिक उथल-पुथल की यह कहानी आधुनिक जीवन के मानदंडों का औचित्य टटोलने का भी प्रयास है। अध्यापक मोहभंग की अवस्था में न केवल अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह कर उसे तलाक दे देता है, बल्कि साम्यवादी विचारधारा के प्रति उसकी प्रतिबद्ध मान्यताएँ भी बिखर जाती हैं। एकाकीपन और अन्यमनस्कता के लंबे दौर से गुजरने के बाद वह वापस अपनी जिंदगी का पुराना स्वरूप पाने की चेष्टा करता है। प्रसिद्ध निर्देशक बुद्धदेव दासगुप्ता की यह पहली फिल्म थी। * विशेष ज्यूरी अवार्ड (बर्लिन फिल्मोत्सव), * समीक्षक पुरस्कार (लोकर्नो फिल्मोत्सव)

□ बंगला/ १९७८/ रंगीन/ १९६ मिनट, □ निर्देशक : बुद्धदेव दासगुप्ता, □ पात्र : ममता शंकर/ प्रदीप मुखर्जी/ स्निग्धा बनर्जी।

गणदेवता

ताराशंकर बनर्जी के उपन्यास पर आधारित इस फिल्म में विषमतापूर्ण राजकीय व्यवस्था के खिलाफ ग्रामीण समाज के विद्रोह का चित्रण है। गाँव के दो मजदूर

फिल्म गणदेवता

वस्तु-विनिमय के रूप में दिए जाने वाले मेहनताने को स्वीकार नहीं करते। उनसे काम लेने वाला एक अमीर किसान इसे अपनी सत्ता के लिए खतरा मानता है। वह निर्धन मजदूरों की बस्ती में आग लगवा देता है। पुलिस मामले की तफ्तीश का नाटक रचती है। गाँव में ब्रिटिश हुकूमत द्वारा नजरबंद कर भेजे गए एक क्रांतिकारी को जब इस अन्याय का पता चलता है, तो वह पददलित लोगों को अपने हक के लिए संघर्ष में संगठित करने की शपथ लेता है।

□ बंगला/ १९७८/ १७२ मि./ रंगीन, □ निर्देशक : राजन तरफदार, □ संगीत : हेमंत मुखर्जी, □ पात्र : सौमित्र चटर्जी/ संध्या राय/ समित भंज/ माधवी चक्रवर्ती।

परशुराम

भारतीय पौराणिक कथाओं में परशुराम के चरित्र का जिक्र ऐसे उग्र स्वभाव वाले ऋषि के रूप में होता है, जिन्होंने हाथों में फरसा लेकर शत्रुओं का संहार किया था। निर्देशक मृणाल सेन ने अपनी फिल्म में इस मिथक को समकालीन संदर्भों में पेश करने की कोशिश की है। कलकत्ता जैसे महानगर में गाँवों से अपना पुश्तैनी कृषि व्यवसाय छोड़कर आए लोग दुर्दशापूर्ण जीवन जीते हैं।

फिल्म परशुराम : श्रीला मजूमदार

इन्हीं में एक व्यक्ति 'परशुराम' भी है, जो गाँव से पलायन कर आया है। अस्तित्व के लिए उसके संघर्ष को फिल्म एक मदारी की आँखों से दर्शाती है, जो परशुराम पर प्रतिपल नजर रखता है। रोजी-रोटी के लिए तरसते 'परशुराम' को उसकी प्रेमिका एक अमीर सेठ की खातिर छोड़कर चली जाती है। विक्षुब्ध परशुराम पूँजीवादी समाज को अपने दुश्मन के रूप में देखता है। उसके भीतर का आक्रोश किसी सशक्त प्रतिक्रिया का रूप नहीं ले पाता। एक दिन गुस्से में आकर वह एक बहुमंजिला इमारत पर चढ़ता है और नीचे फुटपाथ पर गिर कर जान दे देता है।

□ बंगला/ १९७८/ ९९ मिनट, □ निर्देशक : मृणाल सेन, □ संगीत : ब.व. कारंथ, □ पात्र : अरुण मुखर्जी/ श्रीला मजूमदार/ निर्मल घोष।

अग्रहरथिल कझुथाई

ब्राह्मणवादी रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर इस फिल्म में व्यंग्यात्मक तरीके से चोट की गई है। ब्राह्मण बहुल गाँव में गधे का एक अनाथ बच्चा एक प्राध्यापक के घर में पनाह लेता है। गाँव भर के ब्राह्मण इसके लिए प्राध्यापक की खिल्ली उड़ाते हैं। गधे के आगमन से उन्हें अपने जनजीवन के दूषित होने का डर है। इसके समानांतर प्राध्यापक के घर काम करने वाली एक गूँगी-बहरी लड़की और गाँव के एक चित्रकार के प्रेम प्रसंग का कथानक भी चलता है। इनके नवजात शिशु को दाई मंदिर में छोड़ आती है, जिसे देखकर पुजारी मानते हैं कि यह गधे की ही करतूत है। खीज कर सारे ब्राह्मण गधे के निरीह बच्चे को मार डालते हैं। लेकिन अगले ही दिन गाँव से गुजरने वाले एक खानाबदोश काफिले से उन्हें पता चलता है, कि गधे को मारकर उन्होंने अपने लिए विपत्ति बुला ली है। इस श्राप से डरे हुए ब्राह्मण तुरत-फुरत 'दिवंगत गर्दभ' को मसीहा मान कर उसे पूजने लगते हैं, और उसकी याद में मंदिर का निर्माण करवाते हैं। इस फिल्म को सर्वश्रेष्ठ तमिल फिल्म का राष्ट्रीय अवार्ड मिला था।

□ तमिल/१९७८/ ९५ मिनट, □ निर्देशक : जॉन अब्राहम, □ पात्र : स्वाति/ वीरधवन/ कृष्णराज।

आक्रमण

रवि अपनी सहपाठिनी लक्ष्मी के विशिष्ट व्यक्तित्व की ओर आकर्षित है, जो अपने नन्हे बच्चे के साथ एकाकी जीवन जीती है। रवि उसके चरित्र की तहों को उलटने के उद्देश्य से उससे मित्रता बढ़ाने की कोशिश करता है, लेकिन बात अंतरंगता में नहीं बदल पाती। कुछ समय बाद रवि एक महाविद्यालय में प्राध्यापक बन कर दूसरे शहर चला जाता है। लक्ष्मी की स्मृतियाँ उसके साथ रहती हैं। एक दिन कॉलेज में उसकी मुलाकात एक छात्रा नंदिनी से होती है, जो लक्ष्मी की छोटी बहन है। रवि इस वजह से उसमें दिलचस्पी लेने लगता है। मगर नंदिनी अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण उससे मित्रता करने में झिझकती है। वह एक प्रकार के मानसिक भय की शिकार है। लक्ष्मी भी रवि का प्रस्ताव इसलिए स्वीकार नहीं करती, क्योंकि वह सामाजिक परंपरा की बेड़ियों में आबद्ध थी। फिल्म तीनों चरित्रों- रवि, लक्ष्मी और नंदिनी के मानसिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण करती है। अंततः रवि दोनों स्त्रियों के प्रेम से वंचित रहने के बाद जीवन के यथार्थ को स्वीकार लेता है।

□ कन्नड़/ १९७९/ १४१ मिनट, □ निर्देशक : गिरीश कासरवल्ली, □ संगीत : ब.व. कारंथ, □ पात्र : विजय काशी/ वैशाली।

शंकराभरणम्

फिल्म प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ, शंकर शास्त्री के जीवन को संगीत व नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करती है। ऐसे समय जब पॉप संगीत शास्त्रीय संगीत को गर्त में धकेलने की कगार पर है तब शंकर शास्त्री शास्त्रीय संगीत की शास्त्रीयता को बचाने का प्रयास करते हैं। उनकी प्रशंसिका तुलसी उनके सहयोग तथा शरण में आ जाती है।

□ तेलुगु/ १९७९/ रंगीन, □ निर्देशक : के. विश्वनाथ, □ संगीत : के.वी. महादेवन,

स्पर्श : शबाना-नसीर

□ पात्र : सौमैय्यांजलु/ मंजू/ भार्गवी/ बेबी तुलसी।

मीरा

फिल्म मीरा की भगवान कृष्ण के प्रति अनुराग एवं भक्ति भावना पर यह फिल्म आधारित है। मीरा का परिवार दुर्गा पूजक है। इसलिए उसकी कृष्ण भक्ति को धर्म-विद्रोह के रूप में समझकर परिवार व समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। मीरा को लेकर कई फिल्में कई बार बनी हैं। प्रसिद्ध शास्त्रीय गायिका सुब्बा लक्ष्मी को लेकर चालीस के दशक में मीरा बनी थी। इस बार मीरा का निर्देशन गुलजार ने किया है।

□ हिन्दी/ १९७९/ रंगीन, □ निर्देशक : गुलजार, □ संगीत : रविशंकर, □ कलाकार : हेमा मालिनी/ विनोद खन्ना/ विद्या सिन्हा।

स्पर्श

नाम के अनुरूप यह फिल्म दृष्टिहीन व्यक्तियों के जीवन को बड़ी गहराई से छूती है। दृष्टिहीन बच्चों के स्कूल का प्रधानाध्यापक अनिरुद्ध खुद भी आँखों की ज्योति से वंचित है। इसे वह अपने लिए अभिशाप नहीं मानता। बल्कि उसकी कोशिश है कि स्वाभिमान और आत्मावलंबन के साथ जिंदगी बिता सके। किसी की मदद लेना उसे कतई पसंद नहीं। इसीलिए जब स्कूल की नई अध्यापिका सहानुभूतिपूर्वक उसके काम में हाथ बटाना चाहती है, तो वह नाराज हो जाता है। आरंभिक गलतफहमियों के बाद ये दोनों एक-दूसरे का भावनात्मक संबल बनते हैं। एक दृष्टिहीन व्यक्ति के जटिल मनोविज्ञान को खूबसूरती से टटोलने वाली इस फिल्म को ताशकंद फिल्मोत्सव के लिए भारतीय प्रविष्टि के रूप में चुना गया था। सर्वश्रेष्ठ अभिनय और पटकथा के लिए राष्ट्रीय अवार्ड जीतने के अलावा यह सर्वोत्कृष्ट हिन्दी फीचर फिल्म का सम्मान पाने में भी सफल रही।

□ स्पर्श/ १९७९/ १४३ मिनट, □ निर्देशन / पटकथा/ कहानी : सई परांजपे, □ संगीत : कानू रे, □ कलाकार : नसीरुद्दीन शाह/ शबाना आजमी।

शोध

सुनील बंद्योपाध्याय की कहानी पर आधारित यह फिल्म अपने सशक्त कथ्य और शिल्प की बदौलत बहुत गहरा प्रभाव छोड़ती है। सभ्यता के इस आधुनिक युग में भी अंधविश्वासों से त्रस्त ऐसे समाज का दायरा छोटा नहीं है, जो अपनी मानसिक भीरुता की वजह से शोषण और गरीबी का जीवन जीने पर मजबूर है। एक जोशीला नौजवान सुरेन्द्र 'सोनागाँव' के निवासियों को अंधविश्वास की जकड़न से मुक्त करने का निश्चय करता है। इस हेतु को अपनाने के पीछे उसकी व्यक्तिगत कहानी है। उसके माँ-बाप को गाँव वालों ने प्रेतबाधा का शिकार मान कर निर्ममतापूर्वक मार डाला था। सुरेन्द्र बड़ा होने पर गाँव से दूर एक कस्बे में नौकरी करता है, और हर हफ्ते ढोल-ढमाके के साथ मध्यरात्रि को गाँव लौटता है। स्वांग रचकर, लोगों को भूत पकड़ने हेतु एक-एक भूत बीस रुपया देकर वह गाँव वालों की जड़ मान्यताओं पर व्यंग्यात्मक तरीके से प्रहार करता है। लेकिन लोग उसकी बात नहीं समझते। उनकी कायरता और मताग्रह की वजह से उत्पीड़न का सिलसिला खत्म नहीं होता। सुरेन्द्र की नवजागरण प्रेरित शोध अधूरी रहती है। इस फिल्म को राष्ट्रपति के स्वर्ण कमल और सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फीचर फिल्म के राष्ट्रीय अवार्ड से पुरस्कृत किया गया था।

□ शोध/ १९७९/ १३६ मिनट, □ निर्देशक : विप्लव रायचौधरी, □ पात्र : ओमपुरी/ हेमंत दास/ कनू बंद्योपाध्याय।

एक बार फिर

एक बार फिर हिन्दी की पहली फीचर फिल्म थी, जिसे पूरी तरह इंग्लैंड में फिलमाया गया। एक भारतीय फिल्मस्टार महेन्द्र अपनी पत्नी कल्पना के साथ एक कार्यक्रम में भाग लेने लंदन जाता है। यहाँ कल्पना को अपने पति के चरित्र की छवियाँ बिलकुल बदली हुई महसूस होती है। विवादों, चाटुकारों, प्रेम प्रसंगों के बीच घिरे महेन्द्र के साथ वह खुद को अजनबी पाती है। पति की उपेक्षा उसे एक युवा चित्रकार की ओर भावनात्मक रूप से निकट संबंधों के लिए प्रेरित करती है जो बाद में शारीरिक अंतरंगता में भी बदल जाते हैं। लेकिन इसके पीछे कल्पना में अपने पति की तमाम बेवफाइयों के बावजूद एक किस्म का अपराध बोध पलता रहता है। व्यावसायिक हिन्दी सिनेमा में वयस्क विषयों पर आधारित यह आरंभिक फिल्म थी। जिसमें काफी 'बोल्ड' तरीके से हिन्दुस्तानी स्त्री के विवाहेत्तर संबंधों की वकालत की गई थी।

□ हिन्दी/ १९७९/ रंगीन, □ निर्देशक : विनोद पांडे, □ संगीत : रघुनाथ सेठ, □ पात्र : दीप्ती नवल/ सुरेश ओबेराय/ प्रदीप वर्मा/ सईद जाफरी।

एक दिन प्रतिदिन

यह कलकत्ता के एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के कष्टप्रद जीवन की कहानी है जो दिन-ब-दिन जटिलतर होती परिस्थितियों में

जी रहा है। परिवार में आजीविका का एकमात्र स्रोत बड़ी बेटी है। एक शाम जब वह दफ्तर से घर नहीं लौटती, तो परिवार के सामने संकट की स्थिति पैदा हो जाती है। उनकी यथायोग्य सामाजिक प्रतिष्ठा पर भी इससे आघात पहुँचता है। परिवार के सदस्य कलकत्ता महानगर की जनसंकुल बस्तियों में उसे ढूँढते फिरते हैं। एक दिन अचानक लड़की लौट आती है। परिवार, ठंडेपन और रुखाई के साथ उसके आगमन को देखता है। उसका स्वच्छंद आचरण परिवार के सदस्य बर्दाश्त

हरिजन की मृत्यु हो जाती है। उसके दाह संस्कार के लिए कोई ब्राह्मण तैयार नहीं होता। समाज के दलित लोगों को कुछ समय के लिए सम्मान देने के आडंबरपूर्ण दिखावे की पोल यहाँ खुल जाती है। गाँव के मुखिया का बेटा पुलिस की मदद से मृत हरिजन के दाहकर्म की व्यवस्था करता है। इस पर उसके पिता व गाँव वाले उससे नाराज हो जाते हैं। वह हरिजनों के साथ रहने लगता है व उन्हें

मृणाल सेन की फिल्म : एक दिन प्रतिदिन

नहीं कर पाते। फिल्म में स्त्री स्वातंत्र्य के मसले पर समाज की पुरातनपंथी मान्यताओं को लेकर तीखा सवाल उठाया गया है। इसे कई अवार्ड प्राप्त हुए थे।

□ बंगला/ १९७९/ ९५ मिनट, □ निर्देशक : मृणाल सेन, □ संगीत : ब.व. कारंथ, □ पात्र : ममता शंकर/ गीता सेन/ सत्य बैनर्जी/ श्रीला मजूमदार।

ग्रहण

कर्नाटक के गाँवों में देवी चवदेश्वरी की पूजा स्वरूप एक उत्सव मनाया जाता है। इस दौरान हरिजन, दीक्षित होकर ब्राह्मण बन जाते हैं। देवी की पूजा भी 'देवगौड़ा' कहे जाने वाले इन अंत्यज ब्राह्मणों के द्वारा होती है। उत्सव खत्म होने के बाद इन लोगों को पुनः अस्पृश्य बनना पड़ता है। फिल्मकार 'नागभरणा' ने अंत्यजों की इस क्षणिक दीक्षा को एक प्रकार का ग्रहण मानते हुए इस परंपरा से जुड़ी विडंबनाओं पर आक्षेप की कोशिश अपनी फिल्म के माध्यम से की है। इसी शूटिंग के दौरान उन्हें काफी दिक्कतें पेश आईं। गाँव के प्रमुख पुजारी को रिश्वत देने के बाद वे वहाँ शूटिंग की अनुमति हासिल कर सके। फिल्म के आरंभ में इस विचित्र प्रथा के उद्‌भव से जुड़ी कहानी का जिक्र है। कथानक का प्रभावशाली मोड़ तब आता है, जब उत्सव के अंतिम दिन देवी की सवारी ढोते हुए एक

धार्मिक उत्सव में तमाशा न बनने की सलाह देता है। उत्तेजित ग्रामीण उसे पीट-पीट कर मार डालते हैं। उत्सव की प्रथा बरकरार रहती है।

□ कन्नड़/ १९७९/ १२५ मिनट, □ निर्देशक टी.एस. नागभरणा, □ संगीत : विजया भास्कर, □ कलाकार : आनंद/ गोविंदराव/ वैंकटरमण गौड़ा/ एस.एन. शेट्टी।

गृह प्रवेश

स्त्री-पुरुष संबंध, निर्देशक बासु भट्टाचार्य की फिल्मों का प्रमुख विषय रहे हैं। इस श्रृंखला में 'अनुभव' और 'आविष्कार' जैसी फिल्में बनाने के बाद उन्होंने 'गृह प्रवेश' का निर्माण किया था। हिन्दू रिवाजों के अनुसार नई वधू के परिवार में आगमन पर एक रस्म पूरी की जाती है, जिसे 'गृह प्रवेश' कहते हैं। इसे प्रतीक बनाकर बासु ने एक मकान की चारदीवारी को घर में बदलने की जरूरत पर जोर दिया है। अमर और मानसी एक औसत मध्यवर्गीय दंपति हैं। उनके दांपत्य में उस वक्त दरार आ जाती है, जब अमर अपने दफ्तर की टायपिस्ट 'सपना' की ओर आकृष्ट होने लगता है। लेकिन मानसी, पति की इस बेरुखी से विचलित हुए बगैर उसे अपने घर लौटने हेतु प्रेरित करने में सफल होती है। एक ऐसे समाज में जहाँ बहुविवाह प्रचलित नहीं हैं, पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन तथा उनके संबंध किन मुश्किलों का शिकार हो सकते हैं, इनका सबका फिल्म में चित्रण है।

□ हिन्दी/ १९७९/ १४४ मिनट, □ निर्देशक : बासु भट्टाचार्य, □ संगीत : कानू रे, □ पात्र : संजीव कुमार/ शर्मिला/ सारिका।

झोर

प्रख्यात अभिनेता स्वर्गीय उत्पल दत्त ने कुछ बहुप्रशंसित फिल्मों का निर्देशन भी किया था, यह बात अधिक लोग नहीं जानते होंगे। 'झोर' उनकी एक ऐसी ही फिल्म थी, जिसमें उन्होंने सती प्रथा और हिन्दू समाज की अन्य कुरीतियों का मसला छूने की कोशिश की है। फिल्म का ताना-बाना अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश आधिपत्य वाले भारत की सामाजिक व्यवस्थाओं की पृष्ठभूमि पर आधारित है। बंगाल में हिन्दू कॉलेज का प्राध्यापक 'देरोजियो' अपने छात्रों को जीवन के उच्चादर्शों और राष्ट्रप्रेम का संदेश देता है। लेकिन वहीं उसके चारों ओर समाज में भयंकर कुरीतियाँ व्याप्त हैं। गाँव की एक दुखियारी विधवा स्त्री सरस्वती उसके घर में शरण लेती है, जिसे लोग सती करने पर आमादा थे। देरोजियो न केवल उसे सहारा देता है, बल्कि प्रखर रूप से सामाजिक कुप्रथाओं के खिलाफ आवाज भी बुलंद करता है। बदले में उसे हर प्रकार की प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं। यहाँ तक कि लोगों के दबाव में उसकी सहायता प्राप्त महिलाएँ उस पर चरित्र हनन का घृणित आरोप लगाने से भी नहीं चूकतीं। निराशा की अवस्था में प्राध्यापक जीवन में अंतिम पल किसी तरह व्यतीत करता है। लेकिन उसके द्वारा शिक्षित कुछ छात्र नवोत्थान की मशाल अपने हाथों में ले लेते हैं।

□ बंगला/ १९७९/ १०० मिनट, □ निर्देशक : उत्पल दत्त, □ संगीत : प्रशांत भट्टाचार्य, □ कलाकार : उज्ज्वल सेनगुप्ता/ इंद्राणी मुखर्जी/ सागरिका/ कौशिक।

जय बाबा फेलूनाथ

सत्यजीत राय की अन्य फिल्मों से यह कुछ हटकर है। इसमें भी कथानक के 'ट्रीटमेंट' की विशिष्ट राय-शैली साफ पहचानी जा सकती है। एक निजी जासूस फेलूनाथ अपने साथियों तपेश और जटायु के साथ कुछ दिनों के लिए छुट्टियाँ मनाने बनारस जाता है। लेकिन जासूसी यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। उनके एक मित्र घोषाल के घर से गणेशजी की बहुमूल्य मूर्ति चोरी हो जाती है। शक होता है, चुराई गई मूर्तियों के एक सौदागर पर, जो साधुवेश में रहता है। फेलूनाथ और उसके साथी मामले की तहकीकात करते हैं। इस काम में उनकी मदद एक नन्हा जासूस करता है। राय ने इस बच्चे के माध्यम से अपुत्रयी की अपनी यादगार पहचान को फिर से छूने

बोरदिया केमिकल्स प्रा. लि.

(शत प्रतिशत निर्यातक इकाई)

उत्पादक व निर्यातक-एच. एसिड

(डाई-इन्टरमिडिएट)

हमारा लक्ष्य व उपलब्धि- 'शून्य प्रदूषण'

फैक्ट्री :-
ग्राम- बिबड़ोद
जिला- रतलाम (म.प्र.)
फोन- 20328, 20984
टेलेक्स- 07301-204-BCPL IN
फैक्स- 07412-31745

कार्यालय :-
31, बजाज खाना
जिला- रतलाम (म.प्र.)
फोन- 20584, 31777
ग्राम- बोरदिया

वृक्ष लगाइए - हरियाली लाइये।

महाशक्तीमान

IS 269

ISI

महेन्द्र सीमेन्ट
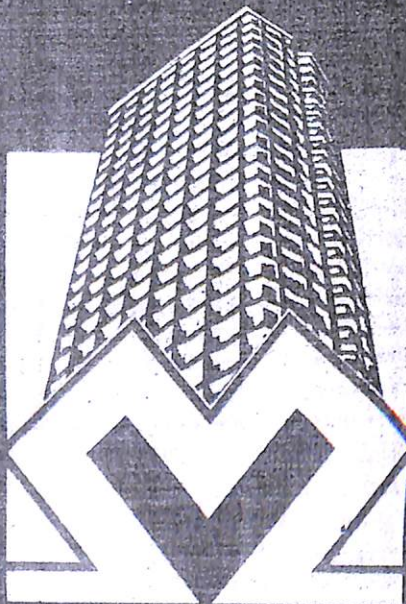
Mahendra

निर्माण कार्य की जान व शान

की कोशिश की है। बनारस की गलियों का सूक्ष्मतम विवरण उनकी फिल्म में नजर आता है। दूरदर्शन पर प्रसारित 'सत्यजीत राय प्रेजेन्ट्स' धारावाहिक की कुछ कड़ियाँ इसी फिल्म का विस्तारित रूप थी।

□ बंगला/ १९७९/ १०० मिनट, □ निर्देशक : सत्यजीत राय, □ संगीत : सत्यजीत राय, □ पात्र : सौमित्र चटर्जी/ मा. जीत बोस/ उत्पल दत्त।

कुमट्टी

जी. अरविन्दन की यह फिल्म मूल रूप से बाल दर्शकों के लिए निर्दिष्ट फंतासी प्रधान सिने कृति है, किन्तु इसका प्रस्तुतिकरण वयस्कों को भी आकर्षित करता है। कहानी किसी परीकथा की तरह दिलचस्प है। एक जादूगर गाँव के बच्चों से दोस्ती गाँठ कर उन्हें खेल-खेल में जानवर का रूप दे देता है। जादू का असर खत्म होने पर बाकी बच्चे तो पुनः मनुष्य रूप में लौट आते हैं, किन्तु एक बच्चा कुत्ता बना रह जाता है। इस बेचारे को एक दयालु लड़की शरण देती है। बच्चे की विधवा माँ उसे कुत्ते के रूप में भी पहचान तो लेती है, मगर जादूगर के गाँव से चले जाने के कारण उसे वापस बालक बनाना संभव नही होता। माँ-बेटे की दर्दनाक अवस्था का पता चलने पर जादूगर गाँव आता है, और नन्हें बच्चे को श्वान रूप से मुक्त करता है। फिल्म की सबसे बड़ी खासियत थी, इसका संगीत। मेनहिम फिल्मोत्सव में यह पुरस्कृत की गई थी।

□ मलयालम/ १९७९/ ९० मिनट, □ निर्देशक : जी. अरविन्दन/ □ संगीत : राधा कृष्णन/कोवलम, □ पात्र : रामन्नी/ अशोकन/ वक्किल/ शंकर/ विलासिनी।

२२ जून १८९७

नचिकेत और जयू पटवर्धन ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख 'अध्याय' चाफेकर बंधुओं की कहानी पर '२२ जून १८९७' नाम से फिल्म का निर्माण किया है। यह तारीख एक अँगरेज जनरल की हत्या के लिए निर्धारित थी। जिसे अंजाम देने का प्रयास करते हैं एक भजन गायक के तीन बेटे दामोदर, बालकृष्ण और वसुदेव चाफेकर। इनके क्रांतिकारी संगठन के कुछ सदस्यों की गद्दारी के कारण ये लोग पकड़े जाते हैं। अंततः तीनों भाइयों को फाँसी की सजा दे दी जाती है। चाफेकर भाइयों के इस बलिदान के साथ बाल गंगाधर तिलक का भी संदर्भ जुड़ा हुआ है, जिनसे उन्होंने प्रेरणा पाई थी।

□ मराठी/ १९७९/ १२० मिनट, □ निर्देशक : नचिकेत-जयू पटवर्धन, □ संगीत : आनंद मोडक, □ पात्र : प्रभाकर पाटणकर/ रॉड गिलबर्ट/ सदाशिव अमरापुरकर/ उदयन दीक्षित।

सर्व साक्षी

फिल्म एक सत्यकथा पर आधारित है। आदर्शवादी अध्यापक रवि अपनी पत्नी के साथ रंजनवाड़ी गाँव आता है। उसकी ख्वाहिश है कि ग्रामीण कुछ पढ़े-लिखें। समझदार बनें। लेकिन गाँव में व्याप्त अंधविश्वासों और धार्मिक पाखंड को देखकर वह स्तब्ध रह जाता है। यहाँ तक कि उसकी गर्भवती पत्नी भी अंधविश्वासों का पालन करने लगती है। **गाँव का ओझा 'भगत'** झाड़-फूँक के नाटक से भोले-भाले ग्रामीणों को बेवकूफ बनाता है। रवि की बातों से उसे अपने प्रपंच का भांडा फूटने का डर है। वह उसे एक हत्या के झूठे मुकदमे में फँसाने की कोशिश करता है। लेकिन रवि इससे किसी प्रकार बच कर भगत द्वारा दी जाने वाली नर बलि के प्रयास का विरोध कर उसे रंगे हाथों गिरफ्तार करवा देता है। गाँव से अंततः ओझा का आतंक खत्म होता है, किन्तु रवि को बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। उसकी पत्नी प्रसव के दौरान मर जाती है क्योंकि वह अंधविश्वास का शिकार होकर 'भगत' की शरण में गई थी।

□ मराठी/ १९७९/ १३५ मिनट, □ निर्देशक : रामदास फुटाने, □ संगीत : भास्कर चंदावरकर, □ पात्र : स्मिता पाटिल/ अंजली/ विजय जोशी/ जयराम।

आक्रोश

अस्सी के दशक की शुरूआत में जड़ें पकड़ने वाले समांतर सिने आंदोलन की **आक्रोश** पहली महत्वपूर्ण कड़ी थी। आदिवासी शोषण के खिलाफ इससे सशक्त कथ्य वाली फिल्म अब तक नहीं बनी। आजादी के कई साल बाद भी देश के कई हिस्सों में वनवासियों के शोषण का सिलसिला बदस्तूर जारी है। एक आदिवासी 'लाहन्य भीखू' पर अपनी पत्नी की हत्या का झूठा इल्जाम लगाया जाता है। सरकार द्वारा नियुक्त बचाव पक्ष के वकील कुलकर्णी के समक्ष वह कोई सफाई पेश नहीं करता। उसकी चुप्पी से हार कर युवा वकील खुद मामले की छानबीन का जिम्मा लेता है। उसे सच्चाई मालूम होती है, कि भीखू की बीवी के साथ कुछ स्थानीय अधिकारियों, व्यापारियों और नेताओं ने बलात्कार करने के बाद उसकी हत्या कर दी थी। इस दर्दनाक हकीकत का पता लगने पर वकील, भीखू की मदद की कोशिश करता है। वह उसके बचाव को अपना नैतिक दायित्व मानता है। किन्तु इस प्रक्रिया में उसे कई **परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं। राज्यतंत्र की** विद्रूपताओं के साथ वह एक-एक करके परिचित होता है। पढ़ा- लिखा होने के बावजूद सत्य के लिए उसे अपने संघर्ष में सफलता नहीं मिलती। व्यवस्था का शिकार 'भीखू' उसके समक्ष निर्जीव बुत की तरह बैठा रहता है। उसे न्यायतंत्र की अर्थहीनता से इतनी निराशा है, कि वह अपनी निष्कृति हेतु मुँह ही नहीं खोलना चाहता। उसके बेचैन कर देने वाले मौन में ही कड़वे यथार्थ के प्रति सबसे ताकतवर आक्रोश छिपा है, जिससे दर्शक फिल्म के अंत में परिचित होते हैं। नई दिल्ली में आयोजित ८वें अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में इसे स्वर्ण मयूर प्रदान किया गया था।

सर्वसाक्षी : अंधविश्वासों का प्रदर्शन

□ हिन्दी/ १९८०/ १४४ मिनट, □ निर्देशक : गोविंद निहलानी, विजय तेंडुलकर, □ संगीत : अजीत वर्मन, □ पात्र : नसीरुद्दीन शाह/ स्मिता पाटिल/ ओमपुरी/ अमरीशपुरी/ मोहन आगाशे/ अच्युत पोद्दार।

अकालेर संधाने

चालीस के दशक में बंगाल एक भयंकर मानव निर्मित दुर्भिक्ष का शिकार हुआ था, जिसमें ५० लाख लोगों की जानें गई थीं। इस घटनाचक्र को फिल्माने के लिए कुछ लोग कलकत्ता से एक दूरस्थ गाँव में जाते हैं। ग्रामीणों की जिंदगी शूटिंग की हलचल की वजह से एक नया रूप अख्तियार करती है। कुछ गाँव वाले शूटिंग दल के सदस्यों के साथ हिलमिल जाते हैं। फिल्म निर्माण के दिलचस्प

अनुभवों के साथ निर्देशक शहरी और ग्रामीण जीवन की विषमता को भी प्रश्नोन्मुख तरीके से पेश करता है। इसके समानांतर कथानक को कालिक आयाम देने के लिए गाँव के एक भविष्यवक्ता को सूत्रधार बनाया गया है, जो १९४३ (दुर्भिक्ष वर्ष) और १९८० (फिल्म निर्माण वर्ष) के बीच मिथकीय संबंध जोड़ता है। अकालेर संघाने अपनी अनूठी वृत्तात्मक शैली के लिए काफी सराही गई थी।

□ बंगला/ १९८०/ १२५ मिनट, □ निर्देशक: मृणाल सेन, □ संगीत सलिल चौधरी, □ पात्र धृतिमान चटर्जी/ स्मिता पाटिल/ श्रीला मजूमदार/दीपांकर दे/ राजन तरफदार।

भवनी भवाई

भवाई गुजरात की एक लोकप्रिय लोक नाट्य विधा है। केतन मेहता ने अपनी फिल्म में कथ्य प्रस्तुति के लिए इसी शैली का

उपयोग किया। उनकी यह बहुप्रशंसित फिल्म भवाई शैली की एक लोक कथा 'अछूत नो वेश (अस्पृश्य की पोशाक) पर आधारित थी। समाज में जातीय गुणानुक्रम के आधार पर हरिजनों की स्थिति सबसे निचले स्तर की रही है। गुजरात के एक इलाके में ऊँची जाति के लोगों द्वारा अछूतों के लिए खास पहनावा निर्धारित था। हरिजन अपने पीछे एक झाड़ू बाँध कर चलते थे, ताकि जमीन पर उनके पदचिन्ह बाकी न रहें। इसके अलावा उन्हें गले में पीकदान लटकाना पड़ता था। फिल्म भवनी भवाई इन शर्मनाक सामाजिक प्रतिबंधों के प्रचलन और उन्मूलन की कहानी है। फिल्म के आरंभ में एक बूढ़ा, बच्चों को भवाई शैली में यह कहानी सुनाता है। उसके अनुसार शोषित यदि इकट्ठे हों, तो अन्याय को खत्म कर सकते हैं। हिंदी में यह फिल्म अंधेर नगरी नाम से प्रदर्शित हुई थी। भवनी भवाई को दो राष्ट्रीय अवॉर्ड और यूनेस्को मानवाधिकार सम्मान से पुरस्कृत किया गया।

□ गुजराती/ १९८०/ १३५ मिनट, □ निर्देशक: केतन मेहता, □ संगीत गौरांग व्यास, □ पात्र: नसीरुद्दीन शाह/ स्मिता पाटिल/ मोहन गोखले/ ओम पुरी।

बंछारामेर बागान

फिल्म की कहानी बहुत दिलचस्प है। एक गरीब ग्रामीण किसान बंछाराम जमीन के एक बंजर टुकड़े को अपनी मेहनत से हरे-भरे बाग में बदल देता है। गाँव का जमींदार इसे हड़पने की उम्मीद से बूढ़े हो चुके बंछाराम के साथ एक अनुबंध करता है, कि वह उसकी मृत्यु तक इस बागान के बदले उसे ४०० रुपए प्रति माह देता रहेगा। बंछाराम के मरने के बाद यह बाग जमींदार का होगा। काफी समय गुजर जाता है। इसी बीच बंछा का पुत्र और पुत्रवधू उसके साथ आकर रहने लगते हैं। इन सबकी मेहनत से उद्यान की हालत फिर सुधर जाती है। जमींदार की उत्कट प्रतीक्षा के बाद भी जब बंछा की मौत नहीं होती, तो वह उसे अपने करार की याद दिलाता है। वायदे में अवधि का जिक्र न होने के बावजूद बंछा सौजन्यतावश जहर पीकर मरने का निश्चय कर लेता है। जमींदार उसकी शवयात्रा के सारे प्रबंध करता है। किंतु इस दौरान बंछा के घर पोते की पैदाइश हो जाने से वह खुदकुशी स्थगित कर देता है। यह खबर सुनते ही जमींदार की जान चली जाती है, और वह बंछा के लिए सजाई गई अर्थी पर खुद गिर पड़ता है।

□ बंगला/ १९८०/ ११८ मिनट, □ निर्देशक: तपन सिन्हा, □ कलाकार: दीपांकर डे/ मनोज मित्रा/ माधवी चक्रवर्ती।

आखिर अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा आ ही गया!
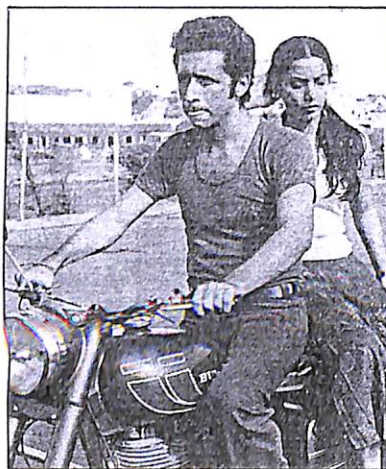
अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है?

निर्देशक सईद मिर्जा लंबे-चौड़े नामों वाली फिल्में बनाने के लिए विख्यात रहे हैं। उनकी पहली फिल्म का नाम था, 'अरविंद देसाई की अजीब दास्तान।' बाद में उन्होंने 'मोहन जोशी हाजिर हो' और 'सलीम लंगड़े पे मत रो' जैसी फिल्में बनाईं। 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है' उनकी दूसरी फिल्म थी। इसमें उन्होंने गोवा के एक कैथोलिक ईसाई परिवार की जिंदगी के जटिल पहलुओं को प्रस्तुत किया है। अल्बर्ट पिंटो एक कार मैकेनिक है, जिसे व्यक्तिगत स्तर पर अपने निकटस्थों के जीवन की मुश्किल भूमिकाओं के बीच अपनी पहचान खोती नजर आती है। उसके परिवार में बूढ़े अशक्त माँ-बाप हैं। अपंग बहन है जो सेल्सगर्ल का काम करते हुए कई जगह अपमानित होती है। बॉस की अभद्रताओं के कारण नौकरी छोड़ चुकी पत्नी है, और एक छोटा विद्रोही भाई जो डकैती के अपराध में पकड़ा जाता है। अल्बर्ट को आत्मकेंद्रित जिंदगी भली लगती है, लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों के रहते वह अपनी मर्जी का जीवन नहीं जी पाता। फिल्म अल्पसंख्यक तबके की सहमी हुई मानसिकता का भी बखूबी चित्रण करती है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८०/ १६० मिनट, □ निर्देशक: सईद मिर्जा, □ संगीत भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: नसीरुद्दीन शाह/ शबाना/ स्मिता पाटिल/ दिलीप धवन/ सुलभा देशपांडे/ अरविन्द देशपांडे।

सिंहासन

राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आचरण को परदे पर प्रस्तुत करने की जो लहर हिंदी सिनेमा में कुछ वर्षों पूर्व चली थी, उसके पहले इस मराठी फिल्म ने एक बेहद सशक्त वक्तव्य देश

की पतित राजनीति पर प्रस्तुत किया। इसमें ग्लैमर या मेलोड्रामा का प्रभाव कहीं नहीं था। यथार्थ को केंद्र में रखकर देश के सत्ताधीशों की कलई इस बुरी तरह उधेड़ी गई थी, कि दर्शक का इरादा परदे पर जाकर पात्रों की गर्दन मरोड़ने का होने लगता है। मुख्यमंत्री 'जीवाजीराव' भ्रष्ट मंत्रियों से घिरे हैं। वे खुद भी दूध के धुले नहीं। धूर्तता और मिथ्याचार में उन्हें कोई पीछे नहीं छोड़ सकता। मूल्यों के लिए अनशन पर बैठे एक गाँधीवादी वरिष्ठ नेता को वे इसी बल पर बेवकूफ बनाते हैं। मजदूर नेताओं को उन्होंने पैसों के सहारे अपना गुलाम बना रखा है। उनके द्वारा उपेक्षित एक मंत्री चाहता है, कि वे पद से हट जाएँ। मुख्यमंत्री महोदय जनता की चिंता

करने के बजाए अपना सिंहासन बचाने में जुटे रहते हैं। यहाँ आम आदमी के नाकारापन को भी लताड़ने की कोशिश की गई है, जो अपने लिए चरित्र से रहित प्रतिनिधियों का चुनाव करता है। अवॉर्ड: सर्वोत्तम मराठी फिल्म।
□ मराठी/ १९८०/ १६० मिनट, श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: जब्बार पटेल, □ संगीत: हृदयनाथ मंगेशकर, □ पात्र: अरुण सरनाईक/ नीलू फुले/ श्रीराम लागू।

चक्र

गंदी बस्तियों में रहने वालों का एक भयावह अनुभव संसार होता है। जिंदगी जहाँ कुचले हुए पैरों से घिसटती चलती है। कला सिनेमा में इस ओर झाँकने की पहली सार्थक कोशिश फिल्म 'चक्र' के माध्यम से की गई थी। कहानी में कई पात्र हैं, जिनमें से हर एक का अपना अतीत है। अपना वर्तमान है और भविष्य की अपनी कल्पनाएँ। कथानक की केंद्रीय चरित्र है एक विधवा महिला 'अम्मा', जो असुरक्षा बोध के कारण किसी पुरुष का मजबूत कंधा चाहती है। बस्ती में एक दिन अजनबी आवारा नौजवान 'लुक्का' आता है। अम्मा से उसकी अंतरंगता हो जाती है। अम्मा का इकलौता बेटा बेन्वा, लुक्का के साथ आवारागर्दी में लिप्त हो जाता है। अम्मा उसे अवैध कामों में संलग्न होते नहीं देखना चाहती। इसी कारण उसके पति को जान से हाथ धोना पड़ा था और वह झुग्गियों में रहने पर मजबूर हुई।

लुक्का के जाने के बाद 'अम्मा' के संबंध एक ट्रक ड्राइवर से होते हैं, जो नशे की लत का शिकार है और इसी वजह को लेकर वह एक आदमी की हत्या कर देता है। पुलिस उसे पकड़ने आती है। इस गंदी बस्ती को संभ्रांत लोग अपराधों के शरण स्थल के रूप में देखते हैं, लिहाजा इसे नष्ट करने का निर्णय लिया जाता है। निर्देशक रवींद्र धर्मराज की इस फिल्म को तृतीय विश्व सिनेमा की प्रतिनिधि प्रस्तुति निरुपित किया गया था।
□ हिंदी/ १९८०/ १४० मिनट, □ निर्देशक: रवीन्द्र धर्मराज, □ संगीत हृदयनाथ मंगेशकर, □ पात्र: स्मिता पाटिल/ नसीरुद्दीन शाह/ कुलभूषण खरबंदा।

बरा

कर्नाटक के अकालग्रस्त जिले बीदर का प्रशासनिक अधिकारी चंद्रा लोगों को राहत मुहैया करवाने की कोशिश में जुटा है। किंतु राजनीतिक उठा-पटक उसके इस काम में रोड़े अटकाती है। मुख्यमंत्री और गृहमंत्री अपने चुनाव क्षेत्र बीदर पर प्रभुत्व जमाने के लिए रस्साकशी में उलझे हुए हैं। चंद्रा इस खेल में मोहरा बन जाता है। दुर्भिक्ष जैसी त्रासदी को जनप्रतिनिधियों द्वारा सत्ता संघर्ष का माध्यम बनाते देख उसे चिढ़ महसूस होती है। प्यास से बेहाल लोगों के लिए वह पानी की तलाश में एक चट्टानी टीले पर कुआँ खुदवाता है, जिसमें उसे सफलता मिलती है।

उमराव जान : रेखा- फारुख शेख

लेकिन जल स्रोत के स्थल को लेकर स्थानीय नेताओं में झगड़ा हो जाता है। नौबत सांप्रदायिक दंगे की आ जाती है। गृहमंत्री इस्तीफा देते हैं। इस खींचातानी के बीच अकाल का आसन्न संकट हाशिए पर लटका रहता है। जनसमस्याओं को राजनीति के मैले तालाब में मछली के कांटे की तरह इस्तेमाल करने वालों के खिलाफ यह फिल्म एक बेहद प्रभावशाली प्रस्तुति थी। इसे हिंदी दर्शकों ने 'सूखा' नाम से देखा है।
□ कन्नड़/ १९८०/ १४० मिनट, □ निर्देशक: एम.एस. सथ्यू, □ पात्र: अनंत नाग/ लवलीन मधु/ नितिन सेठी।

हीरक राजार देशे

'गूपी गायने बाधा बायने' के बाद सत्यजीत राय की यह दूसरी फंतासी प्रधान फिल्म थी, जिसमें गूपी और बाधा के कारनामों का जिक्र है। ये दोनों एक ऐसे राज्य में पहुँचते हैं, जिसका राजा निरंकुश और अत्याचारी है। गरीबों का वह शोषण करता है, और धन की भूख में उसे अपना खजाना हीरों से भर देने की ख्वाहिश है। एक अध्यापक अपने छात्रों के साथ उसके खिलाफ खड़ा होता है, लेकिन उनकी कोशिश बलपूर्वक दबा दी जाती है। बाद में गूपी और बाधा की मदद से ये लोग राजा के अन्यायी साम्राज्य को नेस्तनाबूद करने में सफल होते हैं। फिल्म विचारधारा और सिद्धांतों की भूलभुलैया से दूर रहकर क्रांति का संदेश छोड़ जाती है।

□ बंगला/ १९८०/ ११८ मिनट, □ निर्देशन/ संगीत: सत्यजीत राय, □ कलाकार: तपन चटर्जी/ रॉबी घोष/ उत्पल दत्त/ सौमित्र चटर्जी।

उमराव जान

फिल्म १९वीं शताब्दी में लखनऊ की एक तवायफ की मर्मस्पर्शी दास्तान है। तरुणी 'उमराव' को अपहृत कर कुछ लोग एक वेश्या के हाथों बेच देते हैं। उसे नृत्य-संगीत की तालीम दी जाती है। कुछ ही दिनों में सारा लखनऊ उसका दीवाना हो जाता है। वह 'उमराव' से 'उमराव जान' बन जाती है। मुजरों के अलावा उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। वह एक उम्दा शायरा है, और अपनी शायरी को खूबसूरती से सुमधुर आवाज में लोगों के समक्ष प्रस्तुत करती है। उसकी जिंदगी में तीन पुरुष आते हैं, किंतु कोई उसे लंबे समय तक भावनात्मक सहारा नहीं देता। एक दूषित परिवेश में रहने के लिए मजबूर की गई उमराव अपनी जिंदगी की सार्थकता साहित्य और कला साधना में तलाश करती है। रेखा के अभिनय जीवन की यह सर्वोत्तम फिल्म है।
□ हिंदी/ १९८१/ १४५ मिनट, □ निर्देशक: मुजफ्फर अली, □ संगीत: खय्याम, □ पात्र: रेखा/ फारुख शेख/ नसीरुद्दीन शाह/ राज बब्बर।

टिकट खिड़की पर किस फिल्म का ऊँट किस करवट बैठेगा, कोई नहीं जानता। फिल्म निर्माण के आरंभ से फिल्म-पंडित सुपर हिट और सुपर फ्लॉप की माथापच्ची में लगे हैं। महत्वपूर्ण तो वह आमदर्शक है, जो सबके गणित गलत कर देता है। भारतीय सिनेमा के इतिहास में अब तक **सिर्फ सात फिल्में** सुपर-डुपर हिट सावित हुई हैं। यह सिलसिला शुरू किया बॉम्बे टॉकीज की फिल्म **किस्मत** ने। कलकत्ता के रॉक्सी सिनेमा में यह फिल्म लगातार ३ साल और ८ महीने चली और अंतरराष्ट्रीय कीर्तिमान कायम किया।

सुपरहिट

● किस्मत (१९४२)

बॉम्बे टॉकीज की यह फिल्म पूरी तरह से स्टुडियो में बनी थी और लागत आई थी सिर्फ चार लाख रुपए। अपराध कथा थी किस्मत। पहली बार किसी फिल्म में नायक को अपराधी दर्शाया गया था। अशोक कुमार ने यह नीगेटिव-रोल किया था। नायिका थी-मुमताज शांति। बॉम्बे टॉकीज की खस्ता हालत के दौरान निर्मित होने से 'किस्मत' के वितरण अधिकार बिक नहीं पाए थे, इसलिए 'कमीशन' पर इसे प्रदर्शित किया गया था। गीत-संगीत फिल्म का प्लस पाइंट था-* दूर हटो ऐ दुनिया वालों हिंदुस्तान हमारा है *ओ बादल, धीरे-धीरे आ * घर-घर में दिवाली, मेरे घर में अँधेरा।

● मदर इण्डिया (१९५७)

मेहबूब फिल्म 'मदर इण्डिया' को श्वेत-श्याम में फिल्म 'औरत' के रूप में बना चुके थे। गाँव के साहूकार का शोषण १९५७ में भी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए दोबारा बनाया। मदर इण्डिया का ऑस्कर पुरस्कार के लिए नामांकन हुआ था। सामाजिक/ राजनीतिक और भावना के स्तर पर 'मदर इण्डिया' 'ऑल टाइम ग्रेट फिल्म' है। २५ लाख की लागत से बनी इस फिल्म के वितरण अधिकार प्रति क्षेत्र ३० लाख में बिके थे। फिल्म ने १० करोड़ की आय दी। ढाई साल में निर्मित इस फिल्म से सुनील दत्त को नरगिस मिलीं। राजकुमार-राजेंद्र कुमार को सितारों का दर्जा मिला।

● मुगले आजम (१९६०)

फिल्मकार के. आसिफ ने १० साल में मुगले आजम की रचना की थी। यह फिल्म आज भी जहाँ कहीं प्रदर्शित होती है, दर्शकों की भीड़ उमड़ आती है। सलीम-अनारकली के प्यार की दास्तान को के. आसिफ ने संगमरमर पर नक्काशी के समान खूबसूरती से उकेरा था। यही वजह है कि यह 'क्लासिक फिल्म' की श्रेणी में है। इसकी पटकथा जीनत अमान के पिताजी अमान ने लिखी थी। शीशमहल का सेट बरसों तक दर्शकों का आकर्षण रहा। एक करोड़ की लागत से बनी यह फिल्म २५ लाख प्रति टेरिटरी बेची गई थी। १०० प्रिंट के साथ यह प्रदर्शित हुई थी। आज ३३० प्रिंट चलन में हैं। दिलीप कुमार/ मधुबाला/ पृथ्वीराज/ दुर्गा खोटे/ निगार सुल्ताना जैसे कलाकारों ने 'मुगले आजम' को महान बनाया।

मुगल-ए-आजम
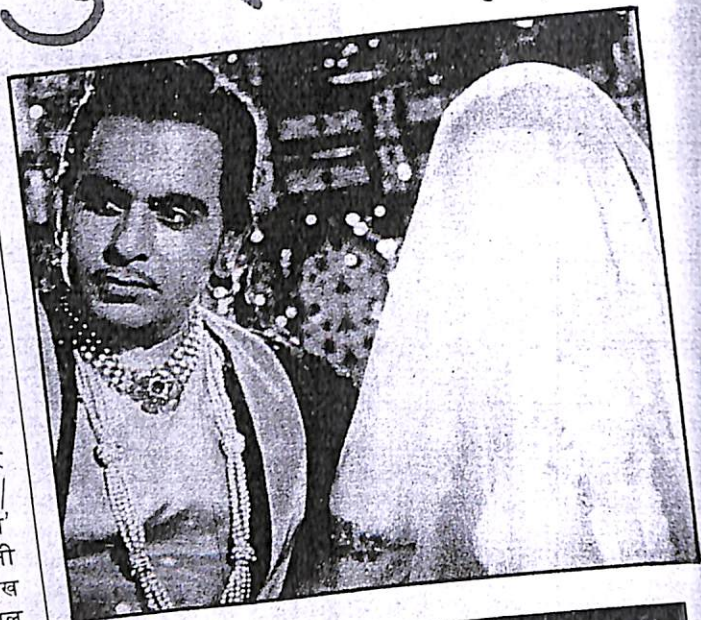
फिल्म कल्चर

झाँसी की रानी
☆ निर्माता-निर्देशक : सोहराब मोदी

लीडर
☆ निर्माता : फिल्मालय
☆ निर्देशक : आर. मुखर्जी

लड़की सह्याद्रि की
☆ निर्माता-निर्देशक : वी. शांताराम

मेरा नाम जोकर
☆ निर्माता-निर्देशक : राजकपूर

पालकी
☆ निर्माता : पूनमचंद शाह
☆ निर्देशक : एम. सादिक

अमन
☆ निर्माता- निर्देशक : मोहनकुमार

जय संतोषी माँ

जय संतोषी माँ (१९७५)

१९७५ के साल में दो फिल्में सुपर हिट रहीं और दोनों के कथानक उत्तरी-दक्षिण ध्रुव समान थे। एक का बजट भारी भरकम था, तो दूसरी लघु-बजट में बनी थी। आज भी **जय संतोषी माँ** तथा फिल्म **शोले** समाज शास्त्रीय अध्ययन का विषय है। 'शुक्रवार की कथा' पर आधारित इस फिल्म की नायिका **अनिता गुहा** को दर्शक देवी मानने लगे थे। सिर्फ ८ लाख में निर्मित इस फिल्म ने दो करोड़ का धंधा किया था। इसके निर्देशक हैं विजय शर्मा।

सुपरफ्लॉप

शालीमार
☆ निर्माता : भूपेन्द्र शाह
☆ निर्देशक : कृष्णा शाह

शान
☆ निर्माता : जी.पी. सिप्पी
☆ निर्देशक : रमेश सिप्पी

सिलसिला
☆ निर्माता-निर्देशक : यश चोपड़ा

रजिया सुल्तान
☆ निर्माता : ए.के. मिश्रा
☆ निर्देशक : कमाल अमरोही

रूप की रानी चोरों का राजा
☆ निर्माता : बोनी कपूर
☆ निर्देशक : सतीश कौशिक

शोले (१९७५)

शोले फिल्म ने भारतीय सिनेमा की घड़ी को उल्टा घुमाया है। रजतपट को खून से लाल कर दिया और इसके रक्त-बीज से हजारों गब्बरसिंह उठ खड़े हुए हैं। दो साल और तीन करोड़ की लागत से रमेश सिप्पी द्वारा निर्देशित इस फिल्म ने ३० करोड़ रुपए कमाए हैं। ५ साल तक यह फिल्म बंबई के मैट्रो सिनेमा में चली है। ७० एम.एम. की इस एक्शन फिल्म के ७०० प्रिंट बनाए जा चुके हैं। शोले से उत्पन्न गब्बरसिंह का चरित्र आगे चलकर उपभोक्ता-संस्कृति का अंग बन गया था।

राम तेरी गंगा मैली (१९८५)

राजकपूर का जादू 'शोले' के दस साल बाद झरनों से बह निकला। रवीन्द्र जैन का मधुर संगीत और मंदाकिनी की मादक देह दौलत ने दर्शकों को ऐसा मोहित किया कि वे बार-बार गंगा स्नान करने लगे। १८३ प्रिंट से प्रदर्शित 'राम तेरी गंगा मैली' की माँग बढ़ने पर २५० प्रिंट जारी किए गए थे। ३६ लाख प्रति टेरिटरी की दर से बिकी इस फिल्म ने पाँच करोड़ का व्यवसाय किया।

राम तेरी गंगा मैली

मैंने प्यार किया (१९८९)

खून की होली खेलने के बाद प्यार के सागर में गोते लगाने के लिए ताराचंद बड़जात्या के पोते सूरज बड़जात्या की पहली फिल्म 'मैंने प्यार किया' ने पूरे देश में बसंत ला दिया और हर गाँव-शहर में कोयल कूकने लगी। इस फिल्म को जब किसी वितरक ने नहीं खरीदा, तो राजश्री वालों ने अपने नेट-वर्क के जरिए प्रदर्शित की। डेढ़ करोड़ की फिल्म ने १० करोड़ कमाए और भारत की अनेक भाषाओं में डब होकर अँगरेजी संस्करण भी तैयार किया गया।

भविष्य में कौनसी फिल्म सुपर-सुपर हिट होगी क्या आप बता सकते हैं?

इमेगी निंग्थेम

मणिपुर के एक छोटे गाँव में अध्यापिका 'घानी' पढ़ाने आती है, जहाँ उसका परिचय ६ वर्ष के एक नन्हे मासूम बच्चे थोईथोई से होता है। घानी उसे बेहद प्यार करने लगती है। बालक का अतीत काफी पीड़ाजनक है। उसकी माँ एक विवाहित पुरुष के बहकावे में आकर गर्भवती हुई थी, और प्रसव के दौरान उसे जान से हाथ धोना पड़ा। घानी यह जानकर स्तब्ध रह जाती है, कि थोईथोई की माँ के साथ अनाचार करने वाला और कोई नहीं बल्कि उसकी बहन एकाशनी का पति दीनाचंद्र है। वह ये बात अपनी बहन को बताती है। एकाशनी पति के अपराध का पाप धोने के लिए अनाथ बच्चे को अपना बेटा मान लेती है। थोईथोई के दादा इसके लिए तैयार नहीं, उधर दीनाचंद्र भी इस पर बुरी तरह बिगड़ता है। मगर एकाशनी को बच्चे पर प्यार लुटाने से कोई नहीं रोक पाता।

□ मणिपुरी/ १९८१/ ११० मिनट, □ निर्देशक: अरिबम श्याम शर्मा, □ पात्र: लेखेन्द्रो/ राशि/ इंग्डम मंत्री।

एन ऑगस्ट रॅक्विम

देश में बनी चुनिंदा अँगरेजी फिल्मों में से यह एक है। फिल्म कलकत्ता के समृद्ध परिवारों की खोखली नैतिकता पर रोशनी डालती है। प्रताप दत्त एक बड़ी फर्म का मालिक है। काम में व्यस्त रहने के कारण अपनी पत्नी को वह वक्त नहीं दे पाता। बीवी के प्रति उसमें वफादारी बिलकुल नहीं है, दफ्तर की लड़कियों से उसके अस्थाई प्रेम-प्रसंग चलते रहते हैं। ऐसी ही एक लड़की रैशेल की रहस्यमय तरीके से अचानक मृत्यु हो जाती है। उसका पति 'डंकन' प्रताप के करीब आकर हकीकत जानने की कोशिश करता है। इस दौरान प्रताप की उपेक्षित पत्नी रीना से उसके संबंध हो जाते हैं। यह जानते हुए भी प्रताप उस पर रोष जाहिर नहीं करता। उसके लिए परिवार जैसी संस्था का कोई मतलब नहीं है। डंकन कुछ समय तक तो प्रताप की बीवी से प्रेम जारी रखता है, फिर उसे मृत रैशेल की याद सताने लगती है, और वह उसको छोड़कर चला जाता है। रीना के गिर्द उदासी के साए फिर घिरने लगते हैं।

□ अँगरेजी/ १९८१/ १०२ मिनट, □ निर्देशक: विक्टर बैनर्जी, □ संगीत: लुई बैंक्स, □ कलाकार: तनूजा/ विमल भगत/ जेक्वलीन/ जसबीर मलिक।

देव आनंद : श्रेष्ठ फिल्में

- □ आँधियाँ (१९५२) : निम्मी
- □ जाल (१९५२) : गीता बाली
- □ पतिता (१९५३) : उषा किरण
- □ टेक्सी ड्रायवर (१९५४) : कल्पना
- □ मुनीमजी (१९५५) : नलिनी जयवंत
- □ दुश्मन (१९५७) : उषा किरण
- □ पेइंग गेस्ट (१९५७) : नूतन
- □ सोलवाँ साल (१९५८) : वहीदा रहमान
- □ बंबई का बाबू (१९६०) : सुचित्रा सेन
- □ तेरे घर के सामने (१९६३) : नूतन
- □ गाइड (१९६५) : वहीदा रहमान
- □ फंटूश (१९६५) : कल्पना कार्तिक
- □ तीन देवियाँ (१९६५) : नंदा/कल्पना
- □ ज्वेल थीफ (१९६७) : वैजयंतीमाला
- □ हरे रामा हरे कृष्णा (१९७०) : जीनत अमान
- □ जॉनी मेरा नाम (१९७०) : हेमा मालिनी
- □ प्रेम पुजारी (१९७०) : वहीदा रहमान
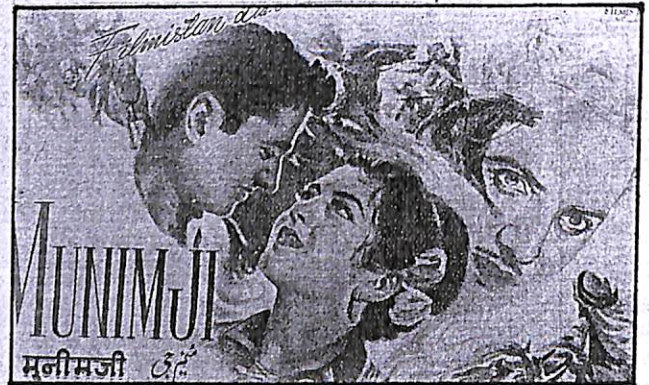
वहीदा रहमान: श्रेष्ठ फिल्में

- □ सी.आई.डी. (१९५६) : देव आनंद
- □ प्यासा (१९५७) : गुरुदत्त
- □ सोलवाँ साल (१९५८) : देव आनंद
- □ कागज के फूल (१९६०) : गुरुदत्त
- □ एक फूल चार काँटे (१९६०) : सुनील दत्त
- □ चौदहवीं का चाँद (१९६०) : गुरुदत्त
- □ बीस साल बाद (१९६२) : विश्वजीत
- □ साहिब बीवी और गुलाम (१९६२) : गुरुदत्त
- □ मुझे जीने दो (१९६३) : सुनील दत्त
- □ गाइड (१९६५) : देव आनंद
- □ दिल दिया दर्द लिया (१९६६) : दिलीप कुमार
- □ तीसरी कसम (१९६६) : राज कपूर
- □ आदमी (१९६८) : दिलीप कुमार
- □ नीलकमल (१९६८) : राजकुमार
- □ खामोशी (१९६९) : राजेश खन्ना
- □ प्रेम पुजारी (१९७०) : देव आनंद
- □ रेशमा और शेरा (१९७१) : सुनील दत्त
- □ जिंदगी-जिंदगी (१९७२) : सुनील दत्त
- □ कभी-कभी (१९७६) : अमिताभ बच्चन
- □ स्वयं (टेलीफिल्म)

आक्रीत

मुकुट राव शिन्दे कस्बे का एक प्रमुख व्यापारी है, जिसकी भागीदारी कुछ अवैध धंधों में है। लोग उसकी इज्जत करते हैं, क्योंकि वह जिला परिषद् का उपाध्यक्ष है। मुकुट राव की एक रखैल है- रुही, जो उसके बच्चे की माँ बनना चाहती है। लेकिन वंध्यत्व से ग्रस्त होने के कारण उसकी यह ख्वाहिश पूरी नहीं हो पाती। गर्भधारण के लिए वह जादू टोने का भयानक तरीका अपनाने का निर्णय लेती है, जिसके लिए पांच कुँवारी कन्याओं के वध की जरूरत है। मुकुटराव उसके सौंदर्य के वशीभूत होकर इस घृणित काम में सहभागी बनने को तैयार हो जाता है। लेकिन अंततः वे यह घोर पाप करने से बच जाते हैं। निर्देशक के रूप में अमोल पालेकर की 'आक्रीत' पहली फिल्म है।

□ मराठी/ १९८१/ १३३ मिनट, □ निर्देशक: अमोल पालेकर, □ संगीत: भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: अमोल पालेकर/ चित्रा पालेकर/ दिलीप कुलकर्णी।

पोक्कुइविल

ख्यात निर्देशक जी. अरविन्दन की यह फिल्म एक अतिसंवेदनशील नौजवान की कहानी है, जो जिंदगी के तेजी से बदलते घटनाक्रम की सच्चाइयां झेल न पाने के कारण अपना मानसिक संतुलन खो देता है। माँ द्वारा उसे मनोरोगियों के अस्पताल में भर्ती करवाने के आरंभिक दृश्य के बाद फिल्म 'फ्लैश बैक' में चलती है। युवा, अतीत को अपने स्मृति पटल पर लाने की कोशिश करता है। हमदर्द पिता, एक क्रांतिकारी दोस्त और संगीत अनुरागी प्रेमिका के साथ एक चित्रकार के रूप में वह खुशगवार जिंदगी बिता रहा था। फिर अचानक उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। दोस्त कानून की नजर में फरार घोषित कर दिया जाता है और प्रेमिका दूसरे शहर चली जाती है। इन सदमों से नौजवान पागल हो जाता है।

□ मलयालम/ १९८१/ १०७ मिनट, □ निर्देशक: जी. अरविन्दन, □ पात्र: बालचंद्रन/ चुल्लीकाड/ सतीश।

उत्सव

शूद्रक की प्रसिद्ध कृति 'मृच्छकटिकम' का यह फिल्म रूपांतरण है। जिसमें बेहद रोचकता के साथ वसंत सेना और चारुदत्त के प्रेम की कहानी प्रस्तुत की गई है। परिदृश्य प्राचीन भारत का है, जब 'वात्स्यायन' ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कामसूत्र' की रचना की थी। उज्जयिनी की नगर वधू 'वसंत सेना' के अतीव सौंदर्य की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। राजा का कुटिल साला 'समस्थानक' उसका प्रेम पाने के लिए लालायित है। मगर वसंत सेना एक गरीब ब्राह्मण युवक चारुदत्त से प्यार करती है। चारुदत्त विवाहित पुरुष है, पर उसकी पत्नी को इस संबंध पर आपत्ति

रेखा का देह-उत्सव

नहीं। राजनीतिक पृष्ठ-भूमि में कुछ लोग राजा के खिलाफ विद्रोह की योजना बना रहे हैं। मदनोत्सव के दिन विद्रोह की तिथि निर्धारित की जाती है। इसी दिन चारुदत्त और समस्थानक वसंत सेना से एकांतलाप के लिए उसे बुलाने अलग-अलग मिट्टी की गाड़ी (मृच्छकटिक) भेजते हैं। समस्थानक वसंत सेना का प्रेम न मिलने से खीज कर उसका गला दबा देता है और चारुदत्त पर इसका इल्जाम डालता है। निर्दोष चारुदत्त को फाँसी लगते वक्त वसंत सेना वधस्थल पर जीवित उपस्थित हो जाती हैं। उसे जीवित देख समस्थानक भागने की कोशिश करता है। इसी बीच सूचना मिलती है, कि राज्य में सत्ता परिवर्तन हो गया है, और नए राजा ने सभी कैदियों को मुक्त कर दिया है। लोग समस्थानक को पीटते हैं। वसंत सेना चारुदत्त और उसकी पत्नी को मिलाने के बाद खुद अपनी पुरानी जिंदगी में लौट जाती है।

□ हिंदी/ १९८१/ १४५ मिनट, □ निर्देशक: गिरीश कर्नाड, □ संगीत: लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, □ पात्र: रेखा/ शेखर सुमन/ शशि कपूर/ अमजद खान।

थन्नीर-थन्नीर

एथिपट्टी तमिलनाडु का एक गाँव है, जहाँ लोगों को पानी के लिए २० मील दूर एक पहाड़ी झरने तक जाना पड़ता है। गाँव वालों की निरंतर माँग के बावजूद जब सरकार वहाँ कुआँ नहीं खुदवाती, तो वे विरोध स्वरूप चुनावों के बहिष्कार का निर्णय लेते हैं। इसी बीच गाँव में कानून द्वारा हत्या का आरोपी और फरार घोषित किया गया 'वेल्लयचामी' शरण पाने आता है। ग्रामीण की पानी के लिए व्यथा देखकर वह झरने से बैलगाड़ी द्वारा पानी लाने की जिम्मेदारी लेता है। गाँव वाले उसे अपराधी जानते हुए भी उसको स्नेह

करने लगते हैं। स्थानीय नेताओं और अधिकारियों को उसकी लोकप्रियता सहन नहीं होती। वे उसकी बैलगाड़ी तोड़ डालते हैं। वेल्लयचामी गाँव वालों को एक दूरस्थ नदी से नहर द्वारा पानी लाने की योजना समझाता है, किंतु प्रशासन की नजर में यह सरकारी मामलों का अनाधिकृत हस्तक्षेप है। जब एक पुलिस वाला वेल्लयचामी को गिरफ्तार करने की चेष्टा करता है, तो उसकी पत्नी इसका विरोध करती है। ग्रामीणों की मदद से वेल्लयचामी जंगल की ओर भागता है, जहाँ उसकी मृत्यु हो जाती है।

□ तमिल/ १९८१/ १४० मिनट, □ निर्देशक: के. बालाचंदर, □ संगीत: विश्वनाथन, □ कलाकार: सरिता/ शनमुधम/ वीर स्वामी/ एम.आर. राधा।

सद्गति

'सद्गति' मुंशी प्रेमचंद की सर्वाधिक प्रभावशाली और चर्चित कहानियों में एक है। ब्राह्मणवाद के पाखंड पर इसमें गहरी चोट की गई थी। हरिजन दुखी अपनी बेटी के विवाह का मुहूर्त निकलवाने गाँव के पंडित के पास जाता है। पंडितजी उसे लकड़ी की एक मोटी गाँठ फाड़ने के काम में लगा देते हैं। चिलचिलाती धूप में एक के बाद एक फरमाईश पूरी करते हुए दुखी की जान चली जाती है। पंडित के घर के बाहर पड़ी दुखी की लाश देख मोहल्ले वाले उनसे यह हटाने के लिए कहते हैं। मगर लाश को छूने हेतु कोई तैयार नहीं होता। रात के गहरे अँधेरे में पंडितजी खुद लाश के पैर में रस्सी बाँधकर उसे गाँव के बाहर ले जाते हैं, और वापस लौटकर घर को गंगाजल से पवित्र करते हैं। अस्पृश्यों की समाज में दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करने वाली इस कहानी के सशक्त प्रस्तुतिकरण के लिए फिल्म काफी सराही गई थी।

□ हिंदी/ १९८१/ ५० मिनट/ रंगीन □ निर्देशक : सत्यजीत राय □ संगीत : सत्यजीत राय □ पात्र : ओम पुरी/ स्मिता पाटिल/ गीता सिद्धार्थ।

ओप्पोल

बालक अप्पू एक युवती मालू को अपनी बड़ी बहन समझता है। वास्तव में वह उसकी माँ है। एक दिन अप्पू को पता चलता है कि, मालू का विवाह होने वाला है वह विवाह स्थल पर पहुँच कर नाराजगी में मालू के भावी पति के साथ बदतमीजी करता है, जिस पर मालू उसे फटकारती है। खिन्न अप्पू वहाँ से चला जाता है, और अपने दोस्त नंबी के साथ एक गुफा में छिप जाता है। कुछ समय बाद मालू उसे ढूँढते हुए वहाँ आती है। वह शादी के बजाए अपने नाजायज पुत्र अप्पू के साथ रहने का निर्णय लेती है। इस फिल्म को १९८० में दूसरी श्रेष्ठ फीचर फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

□ मलयालम/ १९८१/ १४३ मिनट, □ निर्देशक: के.एस. सेतुमाधवन, □ संगीत: श्रीनिवासन, □ पात्र:मेनका/ बालन नायर/ मास्टर अरविंद।

निंजाथई किल्लाथई

सुख के मायावी क्षितिज को पकड़ने की कोशिश में एक अजीब स्थिति तक पहुँच जाने वाली एक युवती की यह रोचक कहानी है। विजी अपने जैसी रुचियों वाले युवक राम से प्यार करती है। पर विजी का भाई उसकी शादी प्रताप से करा देता है, जो मन ही मन उसे चाहता था। विजी इस विवाह की कमजोर बुनियाद को स्वीकार नहीं करती। इस बीच राम और उसकी पत्नी भी उसके घर के समीप रहने आ जाते हैं। विजी उनका सुखी दांपत्य देखकर जलन महसूस करती है। अपने प्रति उसकी उदासीनता देखते हुए प्रताप शहर छोड़कर चला जाता है। विजी पुराने संबंधों से प्रेरित होकर राम से मिलने पहुँचती है। लेकिन यह जानकर उसके होश उड़ जाते हैं, कि 'राम' के साथ रहने वाली स्त्री उसकी जायज पत्नी नहीं है। स्तब्ध विजी वापस अपने पति को घर लाने हवाई अड्डे की ओर भागती है।

□ तमिल/ १९८१/ १२५ मिनट, □ निर्देशक: जे. महेन्द्रन, □ संगीत: इलैया राजा, □ पात्र:सुहासिनी/ प्रताप/ मोहन शरत् बाबू।

कलयुग

फिल्म आधुनिक समाज में रिश्तों के व्यवसायीकरण का चित्रांकन है। कहानी का आधार है दो चचेरे भाइयों पूरणचंद और खूबचंद के बीच व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा से उपजने वाला पारिवारिक कलह। परिवार में वयोवृद्ध दादाजी दोनों के बीच सुलह कराने की कोशिश करते हैं, मगर उन्हें सफलता नहीं मिल पाती। दिन ब दिन भाइयों की शत्रुता बढ़ती ही जाती है। यहाँ तक कि वे एक-दूसरे की हत्या पर भी उतारू हो उठते हैं। बड़ा भाई खुदकुशी कर लेता है। अंत में परिवार के

अमिताभ बच्चन : श्रेष्ठ फिल्में

- □ आनंद (१९७०) : सुमित्रा सान्याल
- □ रेशमा और शेरा (१९७१) : राखी
- □ बंसी बिरजू (१९७२) : जया भादुड़ी
- □ बॉम्बे-टू-गोवा (१९७३) : अरुणा ईरानी
- □ अभिमान (१९७३) : जया भादुड़ी
- □ नमक हराम (१९७३) : -
- □ सौदागर (१९७३) : नूतन
- □ जंजीर (१९७४) : जया भादुड़ी
- □ दीवार (१९७५) : परवीन बॉबी
- □ शोले (१९७५) : जया भादुड़ी
- □ मिली (१९७५) : जया भादुड़ी
- □ कभी-कभी (१९७६) : वहीदा रहमान
- □ अमर अकबर एंथोनी (१९७७) : परवीन बॉबी
- □ डॉन (१९७७) : जीनत अमान
- □ त्रिशूल (१९७७) : राखी
- □ चुपके-चुपके (१९७७) : जया भादुड़ी
- □ मुकद्दर का सिकंदर (१९७८) : रेखा/राखी
- □ आलाप (१९७८) : रेखा
- □ मंजिल (१९७९) : मौसमी चटर्जी
- □ नसीब (१९८१) : हेमा मालिनी
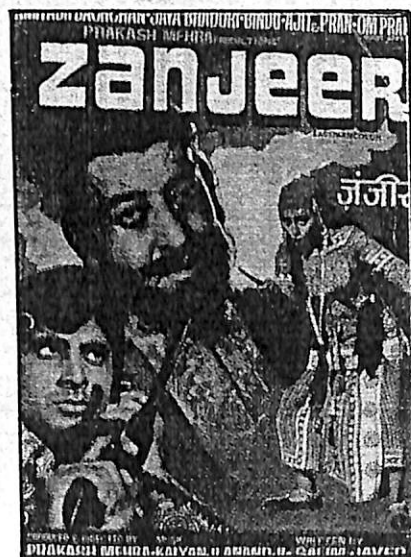
- □ सिलसिला (१९८१) : जया भादुड़ी/ रेखा
- □ नमक हलाल (१९८२) : स्मिता पाटील
- □ शक्ति (१९८४) : स्मिता पाटील
- □ आखरी रास्ता (१९८६) : जयाप्रदा/श्रीदेवी
- □ मैं आजाद हूँ (१९८९) : शबाना आजमी
- □ अग्निपथ (१९९०) : माधवी
- □ हम (१९९१) : किमी काटकर

नाम पर सिर्फ संबंधों की जर्जर दास्तान बची रह जाती है। एक महाकाव्य की शैली में श्याम बेनेगल ने इसे बनाया है।
□ हिंदी/ १९८१/ १५२ मिनट, □ निर्देशक: श्याम बेनेगल, □ संगीत: वनराज भाटिया, □ पात्र: शशि कपूर/ रेखा/ अनंत नाग/ राज बब्बर/ विक्टर बैनर्जी/ कुलभूषण खरबंदा।

३६ चौरंगी लेन

कलकत्ता के '३६ चौरंगी लेन' पते वाले अपने मकान में एक वृद्ध आंग्ल भारतीय महिला वॉयलेट स्टोनहम सर्वथा अकेली रहती हैं। आजीविका के लिए उन्होंने स्कूल में लड़कियों को पढ़ाने का काम अपना रखा है। एक दिन उनकी सूनी जिंदगी में समरेश और नंदिता का प्रेमी युगल आता है जो सार्वजनिक स्थलों पर मोहब्बत करने से तंग आकर वृद्धा के मकान में पनाह लेते हैं। वॉयलेट इन्हें अपने बच्चों की तरह स्नेह देती हैं। उनको अपनी अर्थहीन जिंदगी का शून्य भरता नजर आता है। फिर समरेश और नंदिता की शादी हो जाती है, और वे वृद्धा का मकान छोड़कर चले जाते हैं। वॉयलेट स्टोनहम संबंधों की क्षणिक सुखद अनुभूतियों को हाथ से फिसलने नहीं देना चाहतीं। उसे उम्मीद है कि युगल उसके पास फिर लौटेगा। लेकिन समरेश और नंदिता वापस नहीं आते। फिल्म मनीला फिल्मोत्सव में सर्वोत्तम प्रविष्टि घोषित की गई थी। अपर्णा सेन द्वारा निर्देशित यह फिल्म बहुत लोकप्रिय हुई थी।
□ अँगरेजी/ १९८१/ १२२ मिनट, □ निर्देशक: अपर्णा सेन, □ संगीत: वनराज भाटिया, □ पात्र: जेनिफर कैंडल/ धृतिमान चटर्जी/ देवाश्री रॉय।

दाखल

एक खानाबदोश कबीले की लड़की 'अंदी' युवावस्था में अन्य जाति के 'जोगा' नामक किसान के साथ भागकर बंगाल के तटीय दक्षिणी भाग में बस गई थी। जहाँ किसानों को फसल उगाने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। अंदी के पति की मृत्यु के बाद स्थानीय जमींदार उसकी जमीन हड़पना चाहता है। इसके लिए वह एक साजिश रचकर अपने पिट्ठू गोविंदा के जरिए अंदी की जाति के मुखिया को पटा लेता है। मुखिया अदालत में यह बयान देता है कि अंतर्जातीय विवाह उसके समाज में मान्य न होने के कारण अंदी और जोगा की शादी गैर कानूनी थी। इस आधार पर अंदी उसके पति की संपत्ति पर कोई हक नहीं रखती। गोविंदा को इस साजिशपूर्ण बर्ताव के लिए अंदी बुरा भला कहती है, जिस पर खीजकर वह उसकी झोपड़ी में आग लगा देता है। अंदी तमाम मुश्किलों के बावजूद अपनी लड़ाई अकेले जारी रखती है। फिल्म वर्ष की सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के राष्ट्रपति अवॉर्ड और फ्रांस में आयोजित मानवाधिकार फिल्मोत्सव में 'ग्रांड ज्यूरी' पुरस्कार से सम्मानित हुई थी।
□ बंगला/ १९८१/ ७२ मिनट, □ निर्देशक: गौतम घोष, □ पात्र: ममता शंकर/ रॉबिन सेन गुप्ता/ सुनील मुखर्जी।

एलिप्पथयम् (चूहेदानी)

उन्नी एक जागीरदार परिवार का वरिष्ठतम सदस्य है। जीवन के प्रति उसके

३६ चौरंगी लेन

पुराने मानदंड बदलते समाज में उसे टिकने नहीं देते। परिवार में सिर्फ उसकी बहनें हैं, जिन पर वह आर्थिक रूप से निर्भर है। जागीर प्रथा अब नहीं रही। उन्नी अपने जीवन स्तर की गिरावट को निःसहाय भाव से देखता रहता है। उसमें परिस्थिति का मुकाबला करने की हिम्मत नहीं। मुश्किल अवसरों पर वह किसी चूहे की तरह अपने बिल में घुस जाता है। अतीत की यादें उसे कचोटती रहती हैं, और वर्तमान का प्रश्नोन्मुख चेहरा उसके आगे मुँह बाए खड़ा रहता है। अकर्मण्यता के अपराध बोध और समाज से अलगाव की अनुभूति उसे गहन उदासी और अन्यमनस्कता की ओर धकेल देते हैं। ब्रिटिश फिल्म संस्थान द्वारा यह फिल्म पुरस्कृत की गई थी।
□ मलयालम/ १९८१/ १२१ मिनट, □ निर्देशक: अडूर गोपालकृष्णन, □ पात्र: करमना/ शारदा/ राजम के. नायर।

चोख

फाँसी पर चढ़ने वाला एक श्रमिक नेता जदुनाथ सरकार मरने से पहले नेत्रदान कर जाता है। उसकी आँखें पाने के लिए एक प्रकार की वर्ग संघर्ष की चिंगारी भड़क उठती है। अमीर व्यवसाई जेठिया अपने बेटे के लिए जदुनाथ की आँखें हासिल करने हेतु प्रभाव का उपयोग करता है। दूसरी ओर एक गरीब नेत्रहीन श्रमिक छेदीलाल को भी आँखों की जरूरत है। मजदूर चाहते हैं, कि जदुनाथ के नेत्र उसे ही दिए जाएँ। जेठिया को जब पता चलता है कि नेत्र बैंक में रखी आँखें उस क्रांतिकारी कामगार नेता की हैं, जिसे उन्होंने षड्यंत्रपूर्वक मृत्युदंड दिलवाया था, तो वे अस्पताल अधीक्षक से इन्हें नष्ट करने पर जोर डालते हैं। जदुनाथ की आँख के रूप में एक विद्रोही की स्मृति का बचे रहना उन्हें मंजूर नहीं। उधर अस्पताल के बाहर श्रमिकों की भीड़ जमा हो जाती है। वे छेदीलाल को नेत्र दिए जाने की माँग करते हैं। पुलिस द्वारा बल प्रयोग करने पर जदुनाथ की विधवा छेदीलाल का हाथ पकड़कर पहला कदम आगे बढ़ाती है। एक मृत मजदूर के नेत्र इस प्रकार क्रांति की उस अंतर्दृष्टि का प्रतीक बन जाते हैं, जो कभी मद्धिम नहीं पड़ती। फिल्म को नवें अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव (नई दिल्ली) में रजत मयूर पुरस्कार दिया गया।
□ बंगला/ १९८२/ ९५ मिनट, □ निर्देशक:

उत्पलेंदु चक्रवर्ती, □ कलाकार: ओम पुरी/ श्यामानंद जालान/ श्रीला मजूमदार/ अनिल चटर्जी।

कथा

कछुए और खरगोश की प्रसिद्ध कहानी का यह आधुनिक प्रस्तुतिकरण है। आज के दूषित प्रतिस्पर्धा वाले दौर में संयत चाल वाला कछुआ नहीं जीतता, बल्कि तिकड़म की कुलाँचे भरने वाले खरगोश की जीत होती है। फिल्म इस कड़वी सच्चाई को बेहद मनोरंजक तरीके से प्रस्तुत करती है। बंबई की एक भीड़ भरी चाल में रहने वाला राजा अंतर्मुखी स्वभाव का आदर्शवादी युवक है। जिस लड़की संध्या से उसे मोहब्बत है, उसके सामने अपनी मृदु भावनाएँ व्यक्त करने में वह हिचकता है। एक दिन दूसरे शहर से उसका दोस्त 'बासु' उसके साथ रहने आ जाता है। उसकी मान्यताएँ और स्वभाव 'राजा' से बिलकुल भिन्न है। वह लच्छेदार बातों से सबको बेवकूफ बनाता है। यहाँ तक कि संध्या भी उसके प्रभाव में आ जाती है। तिकड़मी बासु, राजा के बॉस को प्रभावित कर उनकी कंपनी में ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाता है। इसके अलावा हजरत बॉस की बीवी और बेटी से एक साथ इश्क भी फरमाते हैं। दूसरी ओर संध्या के माँ-बाप की ख्वाहिश है, कि बासु उससे शादी कर ले। माँ-बेटी से प्रेम प्रपंच के

चक्कर में बासु को नौकरी से निकाल दिया जाता है। संध्या की जिम्मेदारी वह राजा पर छोड़कर भाग खड़ा होता है। दर्शक सोचते हैं जीत किसकी हुई?

□ हिंदी/ १९८२/ १४० मिनट, □ निर्देशक: सई परांजपे, □ संगीत: राजकमल, □ पात्र: फारुख शेख/ नसीरुद्दीन शाह/ दीप्ती नवल।

खारिज

एक मध्यमवर्गीय परिवार में काम करने वाला नाबालिग नौकर रसोई घर में रहस्यमय तरीके से मरा पाया जाता है। तफ्तीश और पड़ोसियों की शंकालु निगाहों के कारण परिवार के युवा दंपति और उनका नन्हा बच्चा मनोवैज्ञानिक रूप से खुद को विचलित महसूस करते हैं। गांव से आए नौकर के पिता को जवाब देना उनके लिए मुश्किल हो जाता है। सब एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। शव परीक्षण से पता चलता है, कि नौकर की हत्या नहीं हुई थी। अंततः मुकदमा खारिज कर दिया जाता है, किंतु उससे पैदा हुई हलचल की लहरें नहीं रुकतीं। कान फिल्मोत्सव में इस फिल्म को विशेष ज्यूरी अवॉर्ड मिला। इसके अलावा शिकागो फिल्म समारोह में यह 'ब्रांज ह्यूगो' पुरस्कार से सम्मानित की गई।

□ बंगला/ १९८२/ ९६ मिनट, □ निर्देशक: मृणाल सेन, □ संगीत: ब.व. कारंथ, □ पात्र: अंजन दत्त/ ममता शंकर/ इंद्रनील मोइत्रा/ श्रीला मजूमदार।

मासूम

इंदू और डी.के. मल्होत्रा की सुखद वैवाहिक जिंदगी में उस वक्त दरार आ जाती

है. जब उन्हें गुमनाम स्रोत से एक खत मिलता है। जिसमें लिखा है, कि डी.के. आकर अपने उस बच्चे को साथ ले जाए, जिसकी माँ के साथ उसके विवाहेत्तर संबंध थे। महिला की मृत्यु हो जाने के कारण बच्चा अब अनाथ हो चुका है। इंदू अपने पति के इस नाजायज बच्चे के बारे में जानकर खुद को छला गया महसूस करती है। डी.के. द्वारा स्पष्टीकरण देने के बावजूद उसे यकीन नहीं होता, कि यह बच्चा महज एक क्षणिक संबंध की निशानी था, और इसमें उसका कोई दोष नहीं है। एक नन्हे, **मासूम**, अबोध बच्चे का आगमन इस परिवार के लिए संदेह और कलह की जमीन बन जाता है। बाल कलाकारों का प्रभावशाली अभिनय इस फिल्म की खासियत थी। वैचारिक धरातल पर यह मर्मस्पर्शी तरीके से नाजायज बच्चे की सहमी हुई जिंदगी का रेखांकन करती है।

□ हिंदी/ १९८२/ १३५ मिनट, □ निर्देशक: शेखर कपूर, □ संगीत: आर.डी. बर्मन, □ पात्र: नसीरुद्दीन शाह/ शबाना आजमी/ जुगल हंसराज।

फनियम्मा

यह कर्नाटक के गाँव मलनाड में रहने वाली एक बाल विधवा फनियम्मा की सच्ची कहानी है। जिसका विवाह बचपन में तमाम शगुन देखकर किया जाता है। किंतु शादी के कुछ ही दिनों बाद वह विधवा हो जाती है। परंपराओं के अनुसार वयःसंधि की उम्र तक पहुँचने पर उसे केश कटवाकर विधवा वेश धारण करना पड़ता है। आरंभिक नाराजगी के बाद वह धीरे-धीरे अपनी स्थिति से

समझौता कर लेती है। लोगों के दुःख-दर्द बाँटने में उसका जीवन गुजर जाता है। एक दिन गाँव की लड़की 'दक्षयिनी' विधवा होने पर सिर मुँडवाने हेतु जब तैयार नहीं होती; तो फनियम्मा उसका समर्थन करती है। वह गाँव वालों को समझाती है कि जमाना बदल चुका है, और पुरानी परंपराओं से चिपके रहना अब उचित नहीं। महिला निर्देशिका प्रेमा कारंथ की यह पहली फिल्म है।

□ कन्नड़/ १९८२/ ११५ मिनट, □ निर्देशक: प्रेमा कारंथ, □ संगीत: ब.व. कारंथ, □ पात्र: शारदा राव/ प्रतिमा कासरवल्ली।

सीता राति

प्रणव और अरुणा बचपन के दोस्त हैं। बड़े होने पर उनमें प्रेम हो जाता है। अरुणा के साथ आर्थिक कठिनाइयाँ हैं। पिता की मृत्यु के बाद वह स्कूल में नौकरी कर लेती है, जिसका प्रबंध प्रणव के पिता अखिल बाबू के हाथों में है। उच्च अध्ययन के लिए प्रणव शहर चला जाता है। उसके लौटने पर अरुणा शादी का प्रस्ताव रखती है, पर पिता के इंकार की वजह से वह टालमटोल करने लगता है। अखिल बाबू सरपंच के चुनाव में खड़े होना चाहते हैं। अरुणा उनका समर्थन करने हेतु तैयार नहीं होती। प्रणव का भीरु स्वभाव और नैतिक दुर्बलता देखकर वह उससे नाता तोड़ लेती है। स्त्री के समर्थ व्यक्तित्व का प्रभावी चित्रांकन करने के लिए यह फिल्म उड़िया भाषा की सर्वश्रेष्ठ फिल्म के रूप में पुरस्कृत की गई थी।

□ उड़िया/ १९८२/ ९० मिनट/ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: मनमोहन महापात्र, □ पात्र: अरुण नंदा/ महाश्वेता राय/ साधू मैहरा।

उंबरठा

सुलभा समाज शास्त्र में उपाधि प्राप्त एक विवाहित महिला है। उसके पति और सास नहीं चाहते कि वह घर की दहलीज से बाहर जाकर नौकरी करे। सुलभा को एक महिलाश्रम से नियुक्ति पत्र मिलता है। वह खुद को रोक नहीं पाती और यह नौकरी कर लेती है। नारी उद्धार गृह में उसे भ्रष्टाचार और अनैतिकता की मलिन हकीकत का सामना करना पड़ता है। यौन उत्पीड़न, शोषण और अत्याचार का यहाँ बोलबाला है। किंतु आश्रम की दुःखी महिलाओं से उसे स्नेह मिलता है। वह उनकी वेदना दूर करने में जुट जाती है। कुछ समय बाद घर लौटने पर उसे पता चलता है, कि उसके पति और परिवार के अन्य सदस्य उससे सख्त नाराज हैं। उसको अपनी पारिवारिक जिंदगी नाटकीय और अर्थहीन महसूस होने लगती है। घर की बजाए महिलाश्रम के जीवन में उसे अपना ध्येय नजर आता है, और वह इसकी तलाश में चल देती है। यह फिल्म हिंदी में **सुबह** नाम से बनी है।

□ मराठी/ १९८२/ १३५ मिनट, रंगीन, □ निर्देशक: जब्बार पटेल, □ संगीत: हृदयनाथ मंगेशकर, □ पात्र: स्मिता पाटिल/ गिरीश कर्नाड/ आशालता।

आरोहण

हरि मोण्डल एक जमींदार की जमीन पर भागीदारी से काम करने वाला ग्रामीण किसान है। उसके परिवार में पत्नी, दो बच्चे, भाई बोलाई, बहन तेपी, एक विधवा स्त्री और उसकी बेटी पंची साथ रहते हैं। परिवार के अन्य सदस्यों को गरीबी के कारण शहर जाना पड़ता है, जहाँ वे परिस्थितियों का शिकार होते हैं। हरि अपनी बहन तेपी के विवाह हेतु जमींदार से इस शर्त पर पैसा लेता है कि अब वह हिस्सेदारी से नहीं बल्कि दैनिक मजदूर के रूप में उसकी जमीन पर काम करेगा। हरि का भाई इस निर्णय से नाराज होकर कलकत्ता चला जाता है। पंची भी शहर के आकर्षण में कलकत्ता भाग जाती

है, जहाँ उसे एक अमीर की रखैल बनना पड़ता है। गाँव में हरि का संघर्ष खत्म नहीं होता। जमींदार के गुंडे उसकी फसल को आग लगा देते हैं, और बैल चुरा ले जाते हैं। प्रशासन भी जमींदार की सहायता करता है। हरि अन्याय के खिलाफ हिम्मत नहीं हारता। अंततः उसकी जमीन लंबे संघर्ष के बाद उसे मिलती है, लेकिन तब तक उसका परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। हरि का निरंतर संघर्ष विषम सामाजिक तंत्र में समृद्ध, सुविधा संपन्न, शोषक व्यक्तियों के विरुद्ध असहाय भूमिहीनों की राजनीतिक चेतना के उत्थान (आरोहण) का प्रतीक है, किंतु इस प्रक्रिया में हरि की अपनी जिंदगी ढलान पर लुढ़कती रहती है।

□ हिंदी/ १९८२/ १४७ मिनट, श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: श्याम बेनेगल, □ संगीत: पूरणदास बाऊल, □ कलाकार: ओम पुरी/ श्रीला मजूमदार/ विक्टर बैनर्जी/ पंकज कपूर।

आदि शंकराचार्य

संस्कृत भाषा में बनी यह पहली फिल्म है। भारत के महान संत एवं विचारक शंकराचार्य का जीवन चरित इसमें वर्णित है। तरुण 'शंकर' अपने पिता की मृत्यु के उपरांत जीवन के महासत्य की खोज में संन्यासी वेश धारण कर देशाटन पर निकल पड़ते हैं। वेदांत का गहन अध्ययन करने के बाद उनके द्वारा प्रसिद्ध 'अद्वैत-दर्शन' की रचना होती है। जिसका संदेश वे अपने अनुयाइयों के बीच बाँटते हैं। हिंदू दर्शन की कई गूढ़ मान्यताएँ शंकर शास्त्रार्थ के जरिए विश्लेषित करते हैं। करीब १००० वर्ष पूर्व जन्मे इस विद्वान दार्शनिक और तत्ववेत्ता ने ३२ वर्ष की आयु में देह त्यागी थी। प्रभावी प्रस्तुतिकरण और निर्देशन के लिए फिल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया।

पहली संस्कृत फिल्म : आदि शंकराचार्य

□ संस्कृत/ १९८३/ १३० मिनट, □ निर्देशक: जी.वी. अय्यर, □ संगीत: बालमुरली कृष्णन, □ पात्र: एस.डी बैनर्जी/ भारत भूषण/ नागभरणा।

अपरूपा

अपरूपा की इच्छा के विपरीत उसके अभिभावक उसकी शादी मि. बरुआ से कर देते हैं, जिनका एक बड़ा चाय बागान है। व्यवसाय की झंझटों में पत्नी के लिए वे वक्त नहीं निकाल पाते। नव विवाहिता अपरूपा पार्टियों आदि में मन बहलाने की कोशिश करती है। एक दिन जब उसे पता चलता है, कि उसके पिता मि. बरुआ के कर्जदार थे, तो वह खुद को निर्जीव वस्तु की तरह बिका हुआ महसूस करने लगती है। इस बीच उसका एक कॉलेज का दोस्त उससे मिलने आता है। वह अपनी नीरस जिंदगी की सलाखों से बाहर निकलकर उसके साथ चली जाना चाहती है। फिल्म के तीन प्रमुख पात्रों के अंतर्सम्बंध का ताना-बाना बड़ी कुशलता से बुना गया है।

□ असमिया/ १९८२/ १२४ मिनट, □ निर्देशक: जाह्नू बरुआ, □ संगीत: भूपेन हजारिका, □ पात्र: सुहासिनी मुले/ बिजू फूकन/ सुशील।

अर्धसत्य

'तराजू' के एक पलड़े पर जिंदगी/ दूसरे पर मौत: इनके ठीक बीच तुलता हुआ अर्धसत्य। सामाजिक और राजनीतिक विद्रूपताओं के कलुष में डूबे माहौल के बीच एक कर्तव्यनिष्ट पुलिस अधिकारी को मिले जीवन के आधे-अधूरे सच की दास्तान हमारी आँखों के आगे एक झाईं-सी बुन देती है। भद्दे यथार्थ से रूबरू होने के बाद समझ नहीं पड़ता, कि पलकें झुका ली जाएँ या चुरा ली जाएँ। **गोविन्द निहलानी** की यह बेहद सशक्त फिल्म राजनीतिक सिनेमा को एक नई परिभाषा देने के लिए याद की जाती है। फिल्म का नायक 'अनंत वेलणकर' एक ईमानदार, गुस्सैल पुलिस इंस्पेक्टर है। व्यवस्था के प्रति उसके दिल में गुबार भरे हुए हैं। वह इसको अपनी मर्जी से सुधारना चाहता है। पर उसकी यह ख्वाहिश जड़ता से अकड़े इस शासन तंत्र में एक बदहवास कोशिश भर साबित होती है।

वेलणकर का गुस्सा कई वजहों का प्रक्षेप है। बचपन में वह अपनी माँ को पिता के हाथों बेदर्दी से पिटते देखता है। महिलाओं के उत्पीड़न के खिलाफ खड़े होने की भावना उसमें यहीं से जाग जाती है। एक दिन जब उसकी प्रेमिका को कुछ गुंडे बस में छेड़ते हैं, तो वह उनकी बर्बर तरीके से धुनाई करता है। उसका तरीका देखकर प्रेमिका भौंचक रह जाती है। इंस्पेक्टर वेलणकर के मानसिक उत्ताप का सबसे बड़ा कारण है, रामा शेट्टी। जिसे एक सड़क छाप गुंडे से बड़ा राजनेता बनते देख वह न्याय व्यवस्था के प्रति निराशा में डूब जाता है। कानून का प्रतिनिधि होने के बावजूद वह शेट्टी को गिरफ्तार नहीं कर पाता, क्योंकि उस पर राजनीतिज्ञों का वरदहस्त है। इन दोनों का व्यक्तित्व फिल्म की सर्वाधिक प्रभावशाली धुरी महसूस होती है। सत्य को जानते हुए भी असत्य को परे न धकेल पाने की मानसिक यंत्रणा से पीड़ित वेलणकर के हाथों पुलिस हिरासत में एक गुंडे की मौत हो जाती है। वह मुअत्तल कर दिया जाता है। उसके जीवन का फैसला उसी रामा शेट्टी के हाथों में है, जो अब सत्ता में पहुँच चुका है। बदली भूमिकाओं में सच्चाई का पलड़ा भी बदला हुआ नजर आता है। अर्धसत्य वर्ष की सर्वश्रेष्ठ हिंदी फिल्म घोषित की गई थी।

□ हिंदी/ १९८३/ १३० मिनट, □ निर्देशक: गोविन्द निहलानी, □ संगीत: अजीत वर्मन, □ पात्र: ओम पुरी/ स्मिता पाटिल/ सदाशिव अमरापुरकर।

जाने भी दो यारो

राजनीतिक कॉमेडी के लिहाज से यह हिंदी सिनेमा की श्रेष्ठतम कृति है। फिल्म में हास्य के खूबसूरत प्रस्तुतिकरण के साथ भ्रष्टाचारियों की बखियाँ उधेड़ी गई है। विनोद और सुधीर गरीब फोटोग्राफर हैं, किंतु उनमें उत्साह की कमी नहीं। उनकी इसी खूबी का इस्तेमाल स्कैंडलबाज पत्रिका 'खबरदार' की संपादिका 'शोभा' अपने फायदे के लिए करती है। वह उन्हें बिल्डिंग माफिया 'तरनेजा' और 'आहूजा' के काले धंधों का पर्दाफाश करने का काम सौंपती है। दोनों युवा फोटोग्राफर पूरी मेहनत और लगन से इस चुनौती को पूरा करते हैं। किंतु अंत में उन्हें पता चलता है, कि वे बेईमानों के हाथ की कठपुतली बन गए हैं।

□ हिंदी/ १९८३/ १३० मिनट □ निर्देशक: कुंदन शाह, □ संगीत: वनराज भाटिया, □ पात्र: नसीरुद्दीन शाह/ रवि वासवानी/ ओम पुरी/ पंकज कपूर/ सतीश शाह।

खंडहर

फोटोग्राफर सुभाष अपने दोस्तों के साथ शहर से एक छोटे से गाँव में तफरीह के लिए

जाता है। यहाँ उसके दोस्त दीपू की बूढ़ी चाची रहती है। उन्हें अपनी जवान बेटी यामिनी के विवाह की चिंता है। एक नौजवान उनकी बेटी से शादी का वायदा कर चला गया था। वे सुभाष को वही नौजवान समझकर अपना वादा निभाने का आग्रह करती हैं। मृत्यु शैया पर पड़े होने के कारण उनसे सच्चाई जाहिर करने की कोई हिम्मत नहीं कर पाता। सुभाष अपने दयालु स्वभाव के बावजूद इस बंधन के लिए तैयार नहीं। उसमें यामिनी के प्रति सहानुभूति तो है, किंतु वह अपनी आजादी को इसके बदले छोड़ना नहीं चाहता। उसे शहर वापस लौटना है। गाँव वह कुछ पुरानी इमारतों की तस्वीर खींचने के लिए गया था, और अपने पीछे इंसानी खंडहर छोड़कर चला आता है। फिल्म चरित्रों के आंतरिक मनोभावों और अंतर्द्वंद्व को शिद्दत से टटोलती है। इसे बर्लिन फिल्मोत्सव के लिए भारतीय प्रविष्टि के रूप में शामिल किया गया था।

□ हिंदी/ १९८३/ १०८ मिनट, □ निर्देशक: मृणाल सेन, □ संगीत: भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: शबाना आजमी/ नसीरुद्दीन शाह/ पंकज कपूर।

मंडी

मंडी, यानी वह जगह जहाँ निर्जीव वस्तुओं की तरह औरत की खरीद फरोख्त होती है। समाज के हर तबके के लोग यहाँ आते हैं, फटीचर भी प्रतिष्ठित भी। चरित्र के निम्नतम स्तर को छूने के बावजूद उनकी वापसी यहाँ से नैतिकता के दूध-धुले प्रतिमानों के साथ होती है। और पीछे बचा रहता है उनके मुँह से उगला हुआ एक हिकारत भरा शब्द- वेश्या! लोकप्रिय सिनेमा में तवायफों की कहानी के चित्रांकन के कई प्रयास हुए हैं, किंतु कुल मिलाकर इनमें ड्रामाई अंदाज ज्यादा था। कला फिल्मों की श्रृंखला में श्याम बेनेगल ने समाज की इन उपेक्षित नारियों की जिंदगी को जस का तस पेश करने की कोशिश की अपनी फिल्म 'मंडी' के माध्यम से। पिछली शताब्दी में कोठा संस्कृति अपने शबाब पर थी। नवाबों के जाने के बाद यहाँ नाचने गाने वाली स्त्रियों के समक्ष अस्तित्व का प्रश्न आ खड़ा हुआ। ऐसी ही एक प्रौढ़ा 'रुक्मणी' तमाम आशंकाओं के बीच एक कोठा चलाती है जहाँ कई वेश्याएँ जहालत भरा जीवन बसर करने पर मजबूर हैं। इनमें से कुछ का काम गाना-बजाना है, तो कुछ का सिर्फ देह व्यापार। रुक्मणी की सबसे प्रिय शिष्या है, जीनत। जो एक युवक से प्रेम करती है। बाद में पता चलता है कि जीनत और यह युवक एक ही पिता की संतान हैं। ये दोनों इस बात से अनभिज्ञ होकर भाग जाते हैं। दूसरी ओर एक नाबालिग लड़की से जबरदस्ती पेशा करवाने के जुर्म में रुक्मणी का कोठा बंद कर दिया जाता है। वह एक नई बस्ती बसाने की तलाश में जुट जाती है। लंदन फिल्मोत्सव में यह भारतीय प्रविष्टि थी।

□ हिंदी/ १९८३/ १६२ मिनट □ निर्देशक: श्याम बेनेगल, □ संगीत: वनराज भाटिया, □ पात्र: शबाना आजमी/ स्मिता पाटिल/ नसीरुद्दीन शाह/ कुलभूषण खरबंदा/ ओम पुरी।

स्मृति चित्रे

फिल्म एक महिला के स्मृति चित्रों की सत्य कहानी पर आधारित है। पिछली शताब्दी में देश की कट्टर धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध एक स्त्री के संघर्ष का चित्रण इसमें काफी प्रभावशाली तरीके से हुआ था। महिला द्वारा जीवन के उत्तरार्ध में अपनी यादों को ताजा करने की कोशिश के साथ फिल्म की शुरूआत होती है। महिला लक्ष्मीबाई ने एक कट्टर हिंदू परिवार में जन्म लेकर धर्मांतरित ईसाई व्यक्ति नारायण तिलक से विवाह किया था। उसकी स्मृतियों का दायरा सन् १८८० से १९०० तक २० वर्षों के कालखंड पर केंद्रित है। ११ वर्ष की उम्र में विवाहित लक्ष्मी के पति का व्यवहार बेरुखी भरा था, और अपने पैतृक संबंधियों में वह हेय दृष्टि से देखी जाती थी। गैर धर्म के व्यक्ति के हाथों पानी पीने को अपराध समझने वाले समाज में उसका विश्वास धर्म की उपादेयता से हट जाता है और वह सड़ी-गली रूढ़ियों के खिलाफ खड़ी होती है। मराठी साहित्य में लक्ष्मी के स्मृति चित्र अपनी रोचकता और प्रेरणास्पद वृत्तांत के लिए खास स्थान रखते हैं।

□ मराठी/ १९८३/ श्वेत-श्याम, □ निर्देशक: विजया मेहता □ कलाकार: सुहास जोशी/ रवीन्द्र मनकानी/ सुधीर जोशी/ विश्वास मेहदले।

माया मिरिगा

फिल्म एक संयुक्त परिवार के विघटन की कहानी है। राजकिशोर बाबू की पाँच संतानें हैं। सबका अपना-अपना संसार है। बड़े बेटे की शादी हो चुकी है। उसकी पत्नी प्रभा एक बच्ची को जन्म देती है जिसमें नौकरी से सेवानिवृत्त हो चुके राज बाबू को शेष जिंदगी की उम्मीद नजर आती है। मंझला बेटा उच्च शिक्षा के बाद बड़ा अधिकारी बनता है, और अमीर घराने की लड़की से विवाह करता है। नई बहू अपने दंभ में परिवार की बुनियाद को हिला कर रख देती है। तनाव यहाँ तक बढ़ता है कि भाई अलग घर बसाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। वृद्ध राजकिशोर अपनी नन्हीं पोती से पूछते हैं, कि कहीं वह भी तो उन्हें छोड़कर नहीं चली जाएगी?

उड़िया फिल्म माया मृग

□ उड़िया/ १९८३/ १२० मिनट, □ निर्देशक: नीरद महापात्र, □ संगीत: भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: बंसीधर सत्पथी/ मणिमाला/ मनस्विनी।

फटिक चंद

एक प्रतिष्ठित वकील के १२ वर्षीय बेटे 'बबलू' का दो बदमाश अपहरण कर लेते हैं। उसे लेकर भागते वक्त इनकी कार दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है, और वे घायल बबलू को सड़क पर छोड़ भाग खड़े होते हैं। बबलू अपनी याददाश्त खो देता है। उसकी मुलाकात एक करतब दिखाने वाले मदारी हारुन से

होती है, जिसे वह अपना नाम फटिकचंद बताता है। बबलू उर्फ फटिकचंद को मदारी के करतब देखकर बड़ी हैरत होती है, और वह उसे अपना आदर्श मान लेता है। हारुन एक सहृदय इंसान है, पर अपनी गरीबी के कारण
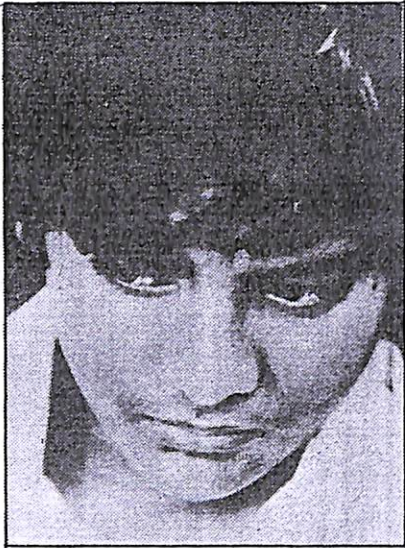
वह बबलू को साथ नहीं रख सकता। बबलू के पिता इश्तेहार छपवाते हैं कि उसे ढूँढकर लाने वाले को इनाम दिया जाएगा। वही बदमाश, जिन्होंने बबलू का अपहरण किया था, उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं। झड़प में बबलू की स्मृति लौट आती है। वह हारुन के साथ अपने घर पहुँचता है। उसके पिता हारुन को तिरस्कारपूर्वक पैसे देना चाहते हैं, जिन्हें वह स्वीकार नहीं करता। सत्यजीत राय की कहानी पर आधारित यह फिल्म उनके पुत्र संदीप राय ने बनाई थी।

□ बंगला/ १९८३/ १०८ मिनट, □ निर्देशक: संदीप राय, □ पात्र: राजीव गांगुली/ कामू मुखर्जी।

सागर संगमम्

के. विश्वनाथ भावों की पवित्रता पर जोर देने वाली फिल्मों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उनकी फिल्म **'शंकराभरणम्'** संगीत की गरिमा पर आधारित थी, जबकि 'सागर संगमम्' में उन्होंने नृत्य के शुद्ध स्वरूप को विषय बनाया। फिल्म का नायक बालू शास्त्रीय नृत्य में निहित कला साधना को ईश्वर की पूजा का रूप मानता है। इसमें कोई विकार उसे पसंद नहीं। समझौतों के लिए तैयार न होने के कारण वह विपन्नता में कष्टप्रद जीवन गुजारता है। शराब की लत उसे बुरी तरह जकड़ लेती है। आजीविका के लिए वह कभी कभार अखबार में नृत्य समीक्षा संबंधी स्तंभ लिख देता है। एक नर्तकी शैलजा की ख्याति बुलंदियों पर है, किंतु बालू उसे परिपूर्ण नहीं मानता। अपनी समीक्षा में वह उसकी आलोचना करता है और इसे सही ठहराने के लिए खुद एक सार्वजनिक कार्यक्रम में नृत्य का प्रदर्शन कर खामियों पर रोशनी डालता है। उसे मालूम नहीं कि शैलजा उसकी पूर्व प्रेमिका 'माधवी' की बेटी है। यह पता चलने पर वह उसको नृत्य की गहरी तालीम देता है। माधवी एक समय स्वयं दक्ष नर्तकी थी। बालू से प्रेम होने के बावजूद वह विवाहित होने के कारण उसके साथ नहीं रह सकी। विदेश में पति की मृत्यु होने के बाद वह अपनी बेटी के साथ लंबे अरसे के अंतराल से लौटी थी। बालू, माधवी के वैधव्य का दुःख जानकर विचलित हो जाता है। शैलजा अपनी माँ और बालू के पवित्र संबंध को गलत समझती है। माधवी द्वारा एक स्टेज-शो के दौरान बालू की कहानी सुनाने के बाद उसका संदेह दूर होता है। वह अपने गुरु से प्राप्त तालीम का सुंदर प्रदर्शन कर उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है। भाव-विभोर बालू अपनी दुरावस्था के बावजूद नृत्यकला को उत्कर्ष पर देख राहत महसूस करता है।

नायक बालू के रूप में कमल हासन ने अपनी नृत्य प्रतिभा का चमत्कृत करने वाला परिचय दिया है। फिल्म श्रेष्ठ अभिनय व निर्देशन के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित की गई थी।

□ तेलुगु/ १९८३/ १५३ मिनट, □ निर्देशक: के. विश्वनाथ, □ संगीत: इलैया राजा, □ पात्र: कमल हासन/ जया प्रदा/ शैलजा।

अंधी गली

राजनीतिक चेतना के लिहाज से बंगाल देश का सर्वाधिक अग्रणी प्रदेश माना जाता है। सत्तर के दशक में यहाँ राजनीतिक ध्रुवीकरण का असर काफी गहरा था। ऐसे ही माहौल के बीच वामपंथी विचारों वाला हेमंत अपने साथियों के साथ पकड़ा जाता है। पुलिस इन्हें खुले मैदान में ले जाकर भागने को कहती है, और 'प्रायोजित मुठभेड़' कही जाने वाली शैली में इन पर गोलियाँ चलाई जाती हैं। हेमंत किसी प्रकार बच निकलने में सफल होता है, वह कलकत्ता से बंबई चला आता है। यहाँ उसे नए सिरे से जिंदगी की शुरूआत करनी पड़ती है। अतीत की छाप उस पर इतनी गहरी है, कि सड़क से गुजरते हुए उसे हर पदचाप अपना पीछा करती महसूस होती है। बंबई के परिवेश में उसका वैचारिक रूपांतरण हो जाता है। हर दूसरे आदमी की तरह उसे भी अब एक अदद मकान, बीवी और आर्थिक सुरक्षा की तलाश है। वह सादगी पसंद जया से शादी करता है, और मकान खरीदने के लिए उससे जबरदस्ती मॉडलिंग करवाने में भी उसे हिचक नहीं होती। उसका रूक्ष व्यवहार देखकर जया अंततः खुदकुशी कर लेती है। पुलिस द्वारा एक बार फिर हेमंत का पीछा किया जाता है पर एक दूसरे रास्ते पर, जहाँ सिर्फ अंधेरा है। वैयक्तिक धरातल पर विचारधाराएँ किस तरह राहें बदल लेती हैं, इसका सशक्त चित्रण फिल्म में हुआ है।

□ हिंदी/ १९८४/ १४० मिनट, □ निर्देशक: बुद्धदेव दासगुप्ता, □ पात्र: कुलभूषण खरबंदा/ दीप्ति नवल/ एम.के. रैना।

अचमिल्लै-अचमिल्लै

एक स्वतंत्रता सेनानी की पुत्री थेनमोझी अपने ही जैसे आदर्शवादी विचारों वाले नौजवान उलगनाथन से शादी करती है। उलगनाथन दूसरों की मदद करने वाला व्यक्ति है और जाति में काफी सम्मान की नजर से देखा जाता है। इसी वजह से कुछ राजनीतिक दल उसे अपने साथ मिलाने को उत्सुक हैं। एक दल द्वारा मंत्री पद दिए जाने के प्रलोभन में वह इसमें शामिल हो जाता है। थेनमोझी को यह बात ठीक नहीं लगती। वह चाहती है कि उसका पति राजनीति की गंदगी से दूर रहे। सत्ता की भूख उलगनाथन को अंधा बना देती है। अपने आदर्शों को छोड़

अनकही

मानसिक रूप से अपरिपक्व युवती इंदु अपने उपचार के लिए पिता के साथ बंबई रहने वाले नंदू के घर आती है। इंदु बहुत अच्छी गायिका है, पर मनोरोग के कारण उस पर असहजता के दौरे पड़ते हैं। उसके पिता को उसकी शादी की चिंता है। डॉक्टर से इंदु के स्वस्थ होने की संभावना जानकर उन्हें बड़ी राहत मिलती है। नंदू के पिता जो सिद्ध ज्योतिषी हैं, उनकी भविष्यवाणी के अनुसार इंदु की प्रसव के दौरान मृत्यु हो जाएगी। यह जानकर नंदू उससे विवाह का फैसला करता है, ताकि उसकी मृत्यु के उपरांत अपनी प्रेमिका सुषमा से भी शादी कर सके। सुषमा को यह खतरनाक योजना पसंद नहीं। नंदू अपने फैसले के अनुसार इंदु से विवाह कर लेता है। इस बीच उपचार से उसकी तबीयत भी सुधर चुकी है, और धीरे-धीरे वह सामान्य जीवन के अनुकूल हो जाती है। गर्भधारण के उपरात जब उसे नंदू के पिता की भविष्यवाणी का पता चलता है, तो उसके जीवन में लौटी खुशियों के फूल फिर मुरझाते नजर आते हैं। वह सुषमा के पास पहुँच कर उससे नंदू का हाथ थामने का अनुरोध भी करती है। सुषमा के घर ही अचानक प्रसव पीड़ा शुरू होने से उसे अस्पताल ले जाना पड़ता है। सब उसके जीवन की कामना करते हैं। यहाँ तक कि नंदू भी, जो इंदु से भावनात्मक लगाव महसूस करने लगा है। इंदु का जीवन खत्म नहीं होता, पर सुषमा खुदकुशी कर नंदू के नाम एक पत्र छोड़ जाती है। भीमसेन जोशी का शास्त्रीय गायन फिल्म का प्रमुख आकर्षण है।

□ हिन्दी/ १९८४/ १३० मिनट □ निर्देशक: अमोल पालेकर □ संगीत: जयदेव □ पात्र: अमोल पालेकर/ दीप्ति नवल/ श्रीराम लागू।

शम्मी कपूर: श्रेष्ठ फिल्में

- ☐ शमा-परवाना (१९५४): सुरैया
- ☐ मिर्जा साहिबाँ (१९५७): श्यामा
- ☐ तुमसा नहीं देखा (१९५७): अमीता
- ☐ दिल देके देखो (१९५९): आशा पारिख
- ☐ उजाला (१९५९): माला सिन्हा
- ☐ जंगली (१९६१): सायरा बानो
- ☐ दिल तेरा दीवाना (१९६२): माला सिन्हा
- ☐ प्रोफेसर (१९६२): कल्पना
- ☐ ब्लफ मास्टर (१९६३): सायरा बानो
- ☐ काश्मीर की कली (१९६४): शर्मिला टैगोर
- ☐ राजकुमार (१९६४): साधना
- ☐ जानवर (१९६५): राजश्री
- ☐ बदतमीज़ (१९६६): साधना
- ☐ तीसरी मंजिल (१९६६): आशा पारिख
- ☐ ब्रह्मचारी (१९६८): राजश्री
- ☐ पगला कहीं का (१९७०): आशा पारिख
- ☐ अंदाज (१९७१): हेमा मालिनी
- ☐ मनोरंजन (१९७४): जीनत
- ☐ विधाता (१९८२)
- ☐ प्रेमरोग (१९८३)
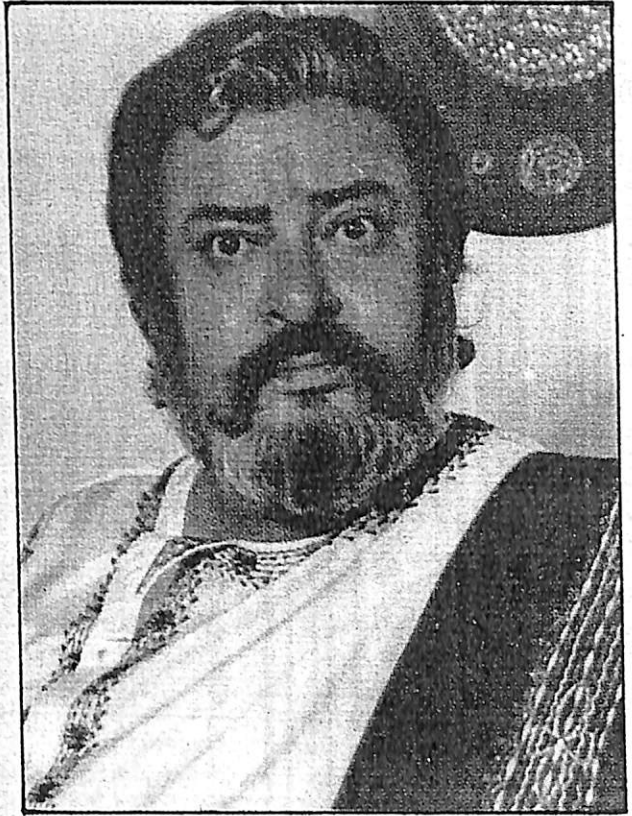
वह अनैतिकता के रसातल में पहुँच जाता है। अपना विरोध करने वाली एक मासूम लड़की की हत्या करने में भी उसे हिचक नहीं होती। निहित स्वार्थ के लिए वह दंगे भड़काता है। भ्रष्टाचारियों से हाथ मिलाता है। जोड़-तोड़ के जरिए मंत्री पद हासिल करता है। धनमोझी उसके चारित्रिक पतन से बेहद क्षुब्ध है। जब उलगनाथन को इस भद्दी दौड़ से रोकने का कोई चारा नजर नहीं आता, तो वह स्वतंत्रता दिवस को एक सार्वजनिक कार्यक्रम संबोधित करते हुए अपने पति की हत्या कर देती है।

☐ तमिल/ १९८४/ १६० मिनट, ☐ निर्देशक: के. बालचंदर ☐ पात्र: सरिता/ राजेश/ देलही गणेश।

आदमी और औरत

एक-दूसरे से अपरिचित दो पथिक राह में मिलते हैं। एक पुरुष है, और एक स्त्री। इससे ज्यादा उनकी कोई पहचान नहीं। आदमी काम की तलाश में शहर जा रहा है और स्त्री एक दूसरी वजह से। वह गर्भवती है, जबकि गाँव में कोई अस्पताल न होने से उसके पति ने पैसे उधार लेकर उसे शहर भेजा है। बदले में वह जमींदार के यहाँ मजदूरी करेगा। लिहाजा पत्नी के साथ नहीं आ सकता। बीच राह में स्त्री को यह अपरिचित पुरुष मिलता है। बस खराब होने से दोनों को पैदल राह तय करनी है। स्त्री से चला नहीं जाता। वह प्रसव वेदना से कराह रही है। पुरुष उसकी मदद करता है। लंबे रास्ते, सफर की थकान, वक्त की बोरियत सबको पार करते हुए वह स्त्री को उसकी मंजिल तक पहुँचाता है। औरत अस्पताल में एक शिशु को जन्म देती है, और आदमी का कृतज्ञ आँखों से आभार व्यक्त करती है। आदमी स्त्री से उसके पति का नाम पूछता है, ताकि गाँव लौटने पर उसे यह खुश खबर सुना सके। औरत उत्तर देती है: 'अनवर हुसैन'। धर्म के भेद यहाँ खुलते हैं। लेकिन आदमी खुश है। उसने कोई धार्मिक, जातीय या मजहबी नहीं, सिर्फ एक इंसानी रिश्ता निभाया था।

☐ हिंदी/ १९८४/ ५६ मिनट, ☐ निर्देशक: तपन सिन्हा, ☐ पात्र: अमोल पालेकर/ महुवा रायचौधरी।

एक्सीडेंट

दो अमीरज़ादे दीपक और राहुल नशे की हालत में गाड़ी चलाते हुए एक एक्सीडेंट कर देते हैं। उनकी कार के नीचे आकर फुटपाथ पर सोए कुछ मजदूरों की मौत हो जाती है। बचा हुआ एक मजदूर रामन्ना 'स्टीयरिंग' पर बैठे दीपक को पहचान लेता है। दीपक के पिता एक प्रतिष्ठित राजनेता हैं। उनके दबाव से पुलिस मामले की जाँच रोक देती है। वे एक बूढ़े आदमी को उसके परिवार की देखभाल का आश्वासन देकर इस पर राजी कर लेते हैं, कि वह अदालत में दीपक का जुर्म अपने सिर ले लेगा। एक अखबार के पत्रकार को घटना की जानकारी मिलने पर वह अपनी ओर से तहकीकात की कोशिश करता है। पर न्यायालय में बूढ़े व्यक्ति द्वारा जुर्म कबूल कर लेने से उसकी सच्चाई का कोई मतलब नहीं रहता। दीपक के पिता उसे झंझट से बचाने के लिए विदेश भेजने की व्यवस्था करते हैं। हवाई अड्डे जाते हुए दीपक को सड़क से गुजरता रामन्ना पहचान कर उसकी कार के पीछे भागता है। उससे डर कर दीपक की कार का संतुलन बिगड़ जाता है और उसकी कार भागमभाग में एक पेड़ से टकरा जाती है। दुर्घटना के बाद कार से दीपक का शव बाहर लुढ़कता है। उसके पिता प्रकृति के इस न्याय से हतप्रभ रह जाते हैं। इस फिल्म के निर्देशक शंकर नाग की मौत भी सड़क एक्सीडेंट में हुई। यह अजीब संयोग है।

☐ कन्नड़/ १९८४/ १२५ मिनट, ☐ निर्देशक: शंकर नाग, ☐ संगीत: इलैया राजा, ☐ पात्र: अनंत नाग/ शंकर नाग/ अशोक/ श्रीनिवास।

हिप-हिप हुर्रे

हिंदी सिनेमा में खेल एक उपेक्षित विषय रहा है। प्रकाश झा की यह फिल्म इसका अपवाद थी। बगैर किसी नाटकीयता के इसमें

खेल भावना और जीवन में क्रीड़ा के महत्व की वकालत की गई है। एक युवा कंप्यूटर इंजीनियर 'संदीप चौधरी' खेलों में दिलचस्पी के कारण एक स्कूल में खेल प्रशिक्षक की नौकरी करता है। स्कूल के बदमाश लड़के रघु और उसके साथियों को संदीप कतई पसंद नहीं। वे उसकी अनुशासनप्रियता की खिल्ली उड़ाते हैं। लेकिन संदीप इनके प्रति दुर्भावना नहीं रखता। वह चाहता है कि ये लड़के अपनी क्रीड़ा क्षमता का सकारात्मक उपयोग करें। एक प्रतिस्पर्धा के लिए संदीप अपने स्कूल की फुटबॉल टीम तैयार करता है। रघु फुटबॉल का बहुत अच्छा खिलाड़ी होने के बावजूद टीम में शामिल नहीं होता। इस वजह से संदीप की टीम हार जाती है। वह इसे अंतिम नतीजा नहीं मानता, और एक 'चैलेंज मैच' का प्रस्ताव रखता है। स्कूल के अन्य अध्यापक इसे दूसरी हार की भूमिका करार देते हैं। 'रघु' के बिना उनके विद्यालय की जीत संभव नहीं। उधर रघु के मन में संदीप के प्रति द्वेषभाव इतना ज्यादा है कि वह खुद को घायल कर इसका इल्जाम संदीप कर लगाता है ताकि उसे नौकरी से बर्खास्त किया जा सके। संदीप, रघु को बचाने के लिए उसका झूठ अपने सिर ले लेता है। अंततः संदीप की खेलभावना रघु को बदलती है। वह चैलेंज मैच के लिए टीम में शामिल होकर स्कूल को विजयी बनाता है। रघु और संदीप के व्यक्तित्व का टकराव फिल्म में बेहद प्रभावशाली ढंग से चित्रित हुआ है।

□ हिंदी/ १९८४/ १२५ मिनट □ निर्देशक : प्रकाश झा □ संगीत : वनराज भाटिया □ पात्र : राजकिरण/ दीप्ति नवल/ निखिल भगत।

होली

होली का उत्सव मन की मलिनताओं के परित्याग का प्रतीक है। निर्देशक केतन मेहता ने इसे दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी की ताकत के व्यर्थ प्रज्वलन का बिम्ब बना कर अपनी यह बहुप्रशंसित फिल्म प्रस्तुत की थी। छात्र जीवन और शिक्षण तंत्र की खामियों पर विचारोत्तेजक तरीके से दृष्टिपात करने वाली 'होली' एक महत्वपूर्ण फिल्म है। कथानक के केंद्र में है एक महाविद्यालय, जहाँ छात्रों और अध्यापकों के बीच अक्सर तनाव चलता रहता है। हॉस्टल में रहने वाले छात्र उद्दंड हैं, और पढ़ाई के बजाए आवारागर्दी में उनकी अधिक दिलचस्पी है। कॉलेज में जब-तब छात्रों या कर्मचारियों की हड़ताल होती रहती है। होली के दिन यहाँ पारंपरिक रूप से अवकाश होता है। छात्र जमकर हुड़दंग मचाते हैं। इस वर्ष प्रिंसिपल द्वारा यह छुट्टी निरस्त किए जाने को लेकर छात्रों के आक्रोश की आग भड़क उठती है। प्रिंसिपल के साथ उनका सीधा टकराव होता है। बात बढ़ते-बढ़ते विप्लव का रूप ले लेती है। कॉलेज में पूरी तरह अराजकता का माहौल छा जाता है। प्रिंसिपल आंदोलनकारी छात्रों की शिनाख्त के लिए हॉस्टल के एक सीधे-सादे छात्र की मदद लेते हैं। उसकी पहचान पर कुछ छात्रों को निष्कासित कर दिया जाता है। क्रुद्ध छात्र मुखबिर लड़के की जानकारी होते ही उसे बुरी तरह प्रताड़ित करते हैं। त्रस्त होकर लड़का आत्महत्या कर लेता है। पुलिस दोषी छात्रों को गिरफ्तार कर ले जाती है। फिल्म का अंत गीत की इन पंक्तियों के साथ होता है: ये कौन सा सफर है/ हम कहाँ जा रहे हैं।

□ हिंदी/ १९८४/ १२० मिनट □ निर्देशक : केतन मेहता □ संगीत : रजत ढोलकिया □ पात्र : नसीरुद्दीन शाह/ ओम पुरी/ आशुतोष/ संजीव गाँधी/ श्रीराम लागू।

मोहन जोशी हाजिर हो!

न्याय में देर किसी अंधेर से कम नहीं होती। न्यायिक व्यवस्था हेतु इसी मलिन पक्ष को यह फिल्म उजागर करती है। बबंई की निम्न वर्गीय बस्ती में रहने वाला वृद्ध मोहन जोशी अपने जर्जर होते मकान की मरम्मत के लिए मकान मालिक से अनुरोध करता है। मालिक कुंदन कापड़िया की ख्वाहिश है कि उसके किराएदार मकान खाली कर दें, ताकि वहाँ एक बहुमंजिला इमारत बना कर मुनाफा कमाया जा सके। इसलिए वह मरम्मत को राजी नहीं होता। बरसों से इस मकान में रह रहा मोहन जोशी का परिवार अपने हक के लिए अदालत की शरण लेता है। यहाँ से शुरू होती है एक अंतहीन दास्तान; पेशियाँ पर

नूतन: श्रेष्ठ फिल्में

- □ शबाब (१९५४) : भारत भूषण
- □ सीमा (१९५५) : बलराज साहनी
- □ पेइंग गेस्ट (१९५७) : देव आनंद
- □ दिल्ली का ठग (१९५८) : किशोर कुमार
- □ सोने की चिड़िया (१९५८) : तलत महमूद
- □ अनाड़ी (१९५९) : राज कपूर
- □ कन्हैया (१९५९) : राज कपूर
- □ सुजाता (१९६०) : सुनील दत्त
- □ छलिया (१९६०) : राज कपूर
- □ बंदिनी (१९६२) : धर्मेन्द्र/ अशोक कुमार
- □ सूरत और सीरत (१९६३) : धर्मेन्द्र
- □ तेरे घर के सामने (१९६५) : देव आनंद
- □ दिल ने फिर याद किया (१९६६) : धर्मेन्द्र
- □ दुल्हन एक रात की (१९६६) : धर्मेन्द्र
- □ सौदागर (१९७३) : अमिताभ बच्चन
- □ मैं तुलसी तेरे आँगन की (१९७८) : विजय आनंद
- □ मेरी जंग (१९८५)
- □ नाम (१९८५)
- □ कर्मा (१९८६) : दिलीप कुमार

पेशियाँ। वकील जोशी को बेवकूफ बनाते हैं; उसकी सारी जमा पूँजी न्याय की देवी को भेंट चढ़ जाती है। मकान मालिक चाहता है कि मुकदमा लंबा खिचे, ताकि मोहन जोशी घबरा कर हाथ टेक दे। बरसों एड़ियाँ रगड़ने के बाद जोशी अदालत को इस बात पर राजी करने में सफल होता है कि उसके मकान की दुरावस्था देखने के बाद फैसला सुनाया जाए। जजों के निरीक्षण पर आने से पहले कुंदन के आदमी रातों-रात मकान का रंग-रोगन कर उसका रूप बदलने की कोशिश करते हैं। जजों का दल घर की दशा के फैसले को लेकर एकमत नहीं हो पाता। वकीलों की बकवास फिर छिड़ते देख खिन्न जोशी उस खम्भे को हिलाकर अपना गुस्सा प्रकट करता है, जिस पर मकान टिका था। पूरा ढाँचा उस पर भरभरा कर गिर पड़ता है।

□हिंदी/ रंगीन/ १९८४/ १३० मिनट □निर्देशक : सईद मिर्जा □संगीत : वनराज भाटिया □पात्र : नसीर/ दीप्ति नवल/ भीष्म साहनी/ दीना पाठक/ सतीश शाह।

मुखामुखम्

फिल्म मानव मन की विचित्रताओं में झांकने की एक कोशिश है। केरल की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यकर्ता 'श्रीधरन' बरसों बाद अपने गाँव वापस लौटता है। लोगों को उसमें एक बदले हुए विचित्र शख्स की छवि नजर आती है। वह न किसी से बोलता है। न मिलता-जुलता है। उसके पहले चेहरे को परखने के लिए फिल्म 'फ्लैश बेक' में लौटती है। पचास और साठ के दशक में कम्युनिस्ट पार्टी के विघटन से पहले युवा श्रीधरन इसका सक्रिय सदस्य था। जिस टाइल कारखाने में उसकी नौकरी थी, वहाँ मजदूरों के हक के लिए लड़ते हुए उसे कई संघर्षों से गुजरना पड़ा। कारखाने के मालिक की एक दिन रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु होने पर पुलिस का संदेह श्रीधरन पर गया, क्योंकि दोनों के बीच तनावपूर्ण संबंध थे। गिरफ्तारी से बचने के लिए श्रीधरन गाँव से भाग जाता है। १० साल भूमिगत रहने के बाद जब उसकी वापसी हुई, तो वह एक मोहभंग अवस्था से गुजरा हुआ शख्स था। उसके लौटने पर गाँव वाले उसे घेर लेते हैं। एक समय वह उनका नायक था। साम्यवादी दल के विघटित धड़े श्रीधरन को अपनी-अपनी तरफ खींचना चाहते हैं। पर वह किसी बुत की तरह संवेदनाहीनअपने घर के अहाते में बैठा रहता है। लोग धीरे-धीरे उसे पागल समझने लगते हैं। एक रात श्रीधरन का मृत शरीर सड़क पर पड़ा मिलता है,किसी ने उसकी हत्या कर दी थी। मौत के बाद श्रीधरन की क्रांतिकारी छवि एक बार फिर राजनीतिक दल के लिए प्रचार का जरिया बन जाती है। कम्युनिस्ट पार्टी पर आक्षेप के आरोप को लेकर फिल्म काफी विवादों का शिकार हुई थी।

□मलयालम १९८४/ १०७ मिनट/

मुखामुखम: आमने-सामने

रंगीन □निर्देशक : अडूर गोपालकृष्णन □ पात्र : पी. गंगा/ बी.के. नायर/ पोनम्मा/ कृष्णकुमार।

पार

बिहार के एक गाँव की हरिजन बस्ती में कुछ लोग आग लगा देते हैं। यहाँ रहने वाले 'नौरंगिया' और उसकी गर्भवती पत्नी 'रामा' को घर छोड़कर भागना पड़ता है। इस घटना से गाँव के संपन्न भूपति वर्ग और हरिजनों के बीच तनाव के सूत्र जुड़े हैं। एक बुजुर्ग अध्यापक ने यहाँ शोषण के खिलाफ दलित वर्ग को संगठित किया था। उससे चिढ़कर जमींदार का भाई उसकी हत्या कर देता है। पुलिस रिश्वत और दबाव के फेर में इसे एक दुर्घटना करार देती है। एक युवा हरिजन 'नौरंगिया' और उसके साथी अपने नेता की हत्या का बदला लेने के लिए जमींदार के भाई को मार डालते हैं। प्रतिक्रियास्वरूप उनकी झोपड़ी में आग लगा दी जाती है। नौरंगिया पुलिस से बचने के लिए अपनी पत्नी के साथ गाँव से भागता है। कई मुश्किलों के बाद ये लोग कलकत्ता पहुँचते हैं। यहाँ उनके समक्ष रोजी-रोटी का प्रश्न खड़ा होता है। लाख कोशिशों के बावजूद नौरंगिया को जब कोई काम नहीं मिलता, और नौबत भूखों मरने की आ जाती है, तो वह वापस अपने गाँव लौटने का निर्णय लेता है। मगर वापसी के लिए उसके पास पैसे नहीं। एक दिन भटकते हुए उसे एक अजीब काम मिलता है; सूअरों के रेवड़ को नदी के पार पहुँचाने का। नौरंगिया अपनी गर्भवती पत्नी के साथ नारकीय यातना से गुजर कर यह काम पूरा करता है। पार पहुँचने पर रामा महसूस करती है कि उसका गर्भस्थ शिशु निश्चल हो गया है। नौरंगिया उसके पेट पर कान लगाकर किसी संवेदन का आभास पाने की कोशिश करता है। नसीरुद्दीन शाह को इस फिल्म के लिए वेनिस फिल्मोत्सव में सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला था। 'पार' यूनेस्को शांति अवार्ड से भी पुरस्कृत की गई।

□ हिंदी/ १९८४/ १२० मिनट/ रंगीन □ निर्देशक : गौतम घोष □ पात्र : नसीरुद्दीन शाह/ शबाना आजमी/ ओम पुरी/ उत्पल दत्त।

चिदम्बरम्: स्मिता पाटिल

चिदंबरम

पहाड़ी इलाके में स्थित एक सरकारी पशु फार्म का निरीक्षक शंकरन एक दुर्बोध चरित्र वाला व्यक्ति है। लोग उसे काफी इज्जत की नजर से देखते हैं। मगर उसकी अपनी कुछ कमजोरियाँ हैं, जिन्हें नैतिकता के झीने आवरण में वह छुपाए रखता है। एक दिन उसके अधीनस्थ काम करने वाला गड़रिया 'मुनियन्दी' विवाह कर गाँव से अपनी सुंदर पत्नी 'शिवकामी' को फार्म पर लाता है। उसकी खूबसूरती देखकर शंकरन की नैतिक दुर्बलताएँ उस पर हावी होने लगती हैं। वह शिवकामी का सामीप्य पाने का यत्न करता है। मगर मुनियन्दीको उसकी नीयत पर शक

नहीं होता, बल्कि वह शंकरन के सहकर्मी जेकब को लंपट मानता है। शिवकामी, शंकरन के रुतबे से प्रभावित हो उसके करीब आ जाती है। एक दिन मुनियन्दी दोनों को प्रणयरत देख लेता है। उसके यकीन को गहरी चोट लगती है। अगले दिन घर की छत से लटकती हुई उसकी लाश मिलती है। शंकरन को जब इस बात का पता चलता है, तो वह अपराध बोध में जकड़ जाता है। मन की कायरता उसे नौकरी छोड़ने पर मजबूर करती है, और वह खुद को शराब में डुबो लेता है। यहाँ-वहाँ निरुद्देश्य भटकना उसकी नियति बन जाती है। एक दिन वह ऐसी ही बदहाली के आलम में चिदंबरम के मंदिर पहुँचता है। इस स्थल के बारे में पौराणिक कथा है कि यहाँ शिव का 'लिंग रूप' से 'नटराज मुद्रा' में रूपांतरण हुआ था। मंदिर की सीढ़ियों से उतरते वक्त शंकरन की नजर एक भिखारिन पर पड़ती है। गौर से देखने पर घावों से भरे चेहरे वाली इस औरत में वह शिवकामी को पाता है। मुनियन्दी आत्महत्या करने से पहले उसे इस हालत में छोड़ गया था। शंकरन के जीवन की एक गुत्थी पूरी होती है।

□ मलयालम/ १९८५/ १०३ मिनट/ रंगीन। □ निर्देशक : जी. अरविंदन □ पात्र : गोपी/ स्मिता पाटिल/ श्रीनिवास।

मयूरी

सत्य घटना पर आधारित यह फिल्म एक युवती के अनेक संघर्षों से गुजर कर नर्तकी बनने की कहानी है। पारिवारिक विरोध के बावजूद मयूरी नृत्य के प्रति अपना प्रेम छोड़ना नहीं चाहती। उसकी माँ की एक

'स्टेज-शो' के दौरान थिएटर में आग लग जाने से मृत्यु हो गई थी। इसलिए उसके पिता उसे नर्तकी बनते नहीं देखना चाहते। अपने सहपाठी मोहन की मदद से मयूरी नृत्य का अपना शौक पूरा करती है। यह दोनों परिणय सूत्र में बँधने के लिए भी उत्सुक हैं। इसी बीच एक दुर्घटना में जख्मी हो जाने से मयूरी का पैर काटना पड़ता है। उसकी जिंदगी नृत्य के काबिल न रह जाने के कारण अर्थहीन हो जाती है। विकलांग जानकर मोहन भी उससे कन्नी काट लेता है। अपमानित मयूरी हार नहीं मानती। एक डॉक्टर के द्वारा उसे पता चलता है, कि 'जयपुर फुट' (नकली पैर) लगाकर वह नृत्य का अभ्यास जारी रख सकती है। कड़ी शारीरिक पीड़ा झेलने के बाद मयूरी एक बार फिर नकली पैर के सहारे दक्ष नृत्यांगना बनती है, और अपने प्रदर्शन से सबको चमत्कृत कर देती है। फिल्म की नायिका **सुधा चंद्रन** के जीवन की यह वास्तविक कहानी है। इस वजह से फिल्म का खास महत्व है। हिंदी में यह 'नाचे मयूरी' नाम से प्रदर्शित हुई थी।

□ तेलुगु /१९८५/ १३५ मिनट, रंगीन, □ निर्देशक: सिंगीतम श्रीनिवासम, □ संगीत: एस.पी. बालसुब्रमण्यम, □ पात्र: सुधाचंद्रन/ पी. नारायण/ सुधाकर।

आघात

फिल्म ट्रेड यूनियनों की राजनीति में समाजवादी आंदोलन का उपहास बनने की प्रक्रिया पर विचारोत्तेजक वक्तव्य है। शिवालिक कारखाने के कामगारों में दो मजदूर संगठन सक्रिय हैं, जिनके बीच टकराव होता रहता है। इनमें एक का नेता है-माधव वर्मा, जिसकी यूनियन कारखाने के प्रबंधकों द्वारा मान्य है। माधव का विश्वास वैचारिक लड़ाई के गाँधीवादी तरीके में है, जबकि दूसरी ओर है 'रुस्तम पटेल' का गुट, जो अपने कुछ गुंडे साथियों के साथ निहित स्वार्थ की राजनीति आक्रामक तरीके से खेलना चाहता है। उसका दाहिना हाथ है कृष्णन राजू। एक दिन कारखाने में काम करते हुए एक मजदूर छोटेलाल बुरी तरह जख्मी हो जाता है। मजदूर संघ उसके लिए प्रबंधकों से मुआवजे की माँग करते हैं। माधव सहजता के धरातल पर जितनी राशि नियत करता है, रुस्तम के पिछलग्गू मामले को गरमाने के लिए उससे अधिक का प्रस्ताव रखते हैं। इस मुद्दे पर यूनियनों के बीच तलवारें खिंच उठती

न्यू देहली टाइम्स

अकबर इलाहाबादी ने तोप के मुकाबले में अखबार निकालने की बात की थी, लेकिन आज कलम की ताकत कुछ भी नहीं बची है। समाचार पत्र राजनीतिज्ञों के इशारों पर सौदेबाजियाँ करते हैं, और उनमें छपी खबरों का कोई मतलब नहीं होता। ईमानदार पत्रकार कड़े दबावों के तले काम करते हैं। राजनीति और पत्रकारिता के संबंधों पर रोशनी डालने के लिए इस अत्यंत प्रभावोत्पादक फिल्म का निर्माण किया गया था। एक प्रतिष्ठित दैनिक **'न्यू देहली टाइम्स'** का संपादक विकास पांडे सच की तरफदारी में यकीन रखता है। अखबार के मालिक वृद्ध उद्योगपति 'जगन्नाथ' उसकी कार्यशैली से सहमत हैं, किंतु उनका बेटा जुगल पत्रकारिता को सौदेबाजी का जरिया मानता है। विकास पांडे की दिलचस्पी पड़ोसी राज्य के राजनीतिक घटनाक्रम में है, जहाँ मुख्यमंत्री के खिलाफ एक उभरता हुआ नेता अजय सिंह खिलाफत की जमीन तैयार कर रहा है। अनुसूचित वर्ग के विधायकों का प्रतिनिधि भालेराम मुख्यमंत्री की सरकार बचाए रखने के लिए जिम्मेदार है। एक दिन गाजीपुर के सर्किट हाउस में उसकी हत्या हो जाती है। अपनी पैनी नजर और सतत खोजबीन से विकास यह पता लगाने में सफल रहता है कि भालेराम की हत्या के लिए अजय सिंह जिम्मेदार है। वह इस सनसनीखेज रपट को अपने पत्र में प्रमुखता से छापना चाहता है। किंतु इस बीच अखबार के मालिक जगन्नाथ की अस्वस्थता के कारण उनके बेटे ने प्रबंधन के सूत्र अपने हाथ में ले लिए हैं। उसकी कोशिश विकास की रपट के बदले अजय सिंह को ब्लैकमेल करने की है। वह प्रलोभन में आकर इसे छापने से इंकार कर देता है। अपनी राजनीतिक साख बचाने के लिए अजय सिंह साम, दाम, दंड, भेद के जरिए विकास को धमकाने का प्रयास करता है। मगर अंततः जगन्नाथ बाबू के हस्तक्षेप से विकास की स्टोरी अखबार में छप जाती है। परिस्थितियों में एक और बदलाव तब आता है, जब विकास को सर्किट हाउस के बूढ़े चौकीदार से यह बात मालूम होती है कि भालेराम वहाँ वस्तुतः अजय सिंह के प्रस्ताव पर चर्चा के लिए आया था। उसके इस तरह पाला बदलने से मुख्यमंत्री अवगत हो गए थे। और उसकी हत्या में दरअसल मुख्यमंत्री के खेमे का भी हाथ था। इस रहस्योद्घाटन के बाद विकास स्तब्ध रह जाता है। उसके अनभिज्ञ रहते हुए मुख्यमंत्री का खेमा उसे अजय सिंह के खिलाफ चतुराई से इस्तेमाल करता रहा था। अगले दिन विकास को खबर मिलती है, कि मुख्यमंत्री और अजय सिंह के बीच सुलह हो गई है। टी.वी. पर दोनों गले मिलते हुए दिखाए जाते हैं। मंत्रिपरिषद् में स्थान के आश्वासन पर अजय ने मुख्यमंत्री के विरुद्ध हथियार रख दिए थे। इस प्रमुख खबर के अलावा एक छोटा सा समाचार यह भी होता है कि सर्किट हाउस के चौकीदार की गत रात किसी ने हत्या कर दी।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८५/ १२३ मिनट, □ निर्देशक: रमेश शर्मा, □ संगीत: लुई बैंक्स, □ कलाकार: शशि कपूर/ ओम पुरी/ कुलभूषण खरबंदा/ शर्मिला टैगोर।

हैं। उधर अस्पताल में 'छोटेलाल' दम तोड़ देता है। उसके दाह संस्कार का जिम्मा माधव के लोग लेते हैं, क्योंकि मृतक उनकी यूनियन का सदस्य था। दाह स्थल पर रुस्तम पटेल भी अपने साथियों के साथ आता है, और लच्छेदार जोशीले भाषण से मजदूरों को भड़काने की कोशिश करता है। दोनों पक्ष बर्बरता पर उतर आते हैं। उनके बीच हिंसक द्वंद्व छिड़ जाता है। इस तमाशे से खिन्न माधव की पेशानी पर प्रश्नवाचक रेखाएँ घिर आती है। क्या क्रांति का यही रास्ता है?

□ हिंदी/ १९८५/ १४७ मिनट/ रंगीन। □ निर्देशक : गोविंद निहलानी। □ संगीत : वनराज भाटिया। □ पात्र : ओमपुरी/ नसीर/ दीपा साही/ पंकज कपूर/ सदाशिव अमरापुरकर।

ऐसी ही कुछ ऐतिहासिक पुस्तकों की समय यात्रा के अनुभव से गुजरने के बाद गोडबोले की जिंदगी बदल जाती है। वह वापस अपनी दिनचर्या में लौटता है, मगर पूरे जोश-खरोश के साथ। उधर उसकी पत्नी पर यौवन का ज्वार उतरने से अब तक उदासी घिर जाती है। 'लाडूवाला' अब उससे संपर्क करता है।

□ हिंदी/ १९८५/ ११८ मिनट/ रंगीन, □ निर्देशक: नचिकेत- जयू पटवर्धन, □ संगीत: हृदयनाथ मंगेशकर, □ पात्र: सुधीर जोशी/ अनुराधा पटेल/ नसीरुद्दीन शाह।

दामुल

बिहार के कुछ गाँवों में जमींदारों ने कमजोर तबके के शोषण के लिए 'पन्हा' की कुटिल व्यवस्था चला रखी है। इसके तहत गरीब मजदूरों और किसानों को नाममात्र की मजदूरी और आश्रय के बदले आजीवन बँधुआ बना लिया जाता है। एक गरीब श्रमिक संजीवन और उसकी पत्नी इसी उत्पीड़न के दुष्चक्र का शिकार बनते हैं। संजीवन, 'पन्हा' के तहत जागीरदार माधो के लिए काम करता है। उसे अपने पिता द्वारा माधो से लिया गया ऋण उतारना है। माधो ने उसके पिता को भी धूर्तता का शिकार बनाने के बाद उसकी हत्या कर दी थी। अपनी गिरफ्त संजीवन पर मजबूत करने के लिए जागीरदार उसे झूठे मुकदमे में फँसाकर उसे पनाह देने का स्वांग रचता है। सजा से बचने हेतु संजीवन को माधो की हर बात माननी पड़ती है। माधो, संजीवन और उसके भाई को लोगों के मवेशी चुराने के लिए मजबूर करता है। गाँव में माधो का राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी बच्चासिंह हरिजनों को उसके विरुद्ध भड़काने की कोशिश में है। मगर आतंकित हरिजन इसकी हिम्मत नहीं जुटा पाते। गाँव में तनाव की लहरें उठने लगती हैं। एक दिन माधो के लिए मवेशी चुराकर भागते संजीवन और उसके भाई को पीछा करते लोगों की गोलियों का शिकार बनना पड़ता है। संजीवन के भाई की मृत्यु हो जाती है। जागीरदार उनकी कोई मदद नहीं करता। संजीवन के मन में नाराजगी पनपने लगती है। अपने टूटे-फूटे घर में भाग्य को कोसते संजीवन को एक दिन गाँव में आई एक विधवा 'महात्मईन' बातचीत के लिए बुलाती है। जिसका माधो ने आर्थिक और शारीरिक शोषण किया था। संजीवन जब उससे मिलने पहुँचता है, तो 'महात्मईन' की उसे सिर्फ लाश मिलती है। माधो के आदमियों ने बलात्कार करने के बाद उसकी हत्या कर दी थी। इल्जाम संजीवन पर लगाकर यही लोग उसे फाँसी पर चढ़वा देते हैं। इस अन्याय का बदला उसकी पत्नी माधो की हत्या कर लेती है। अवॉर्ड: स्वर्ण कमल। फिल्म फेयर समीक्षक पुरस्कार। सर्वश्रेष्ठ निर्देशन का राष्ट्रीय अवॉर्ड।

□ हिंदी/ १९८५/ १२५ मिनट, रंगीन, □ निर्देशक: प्रकाश झा, □ संगीत: रघुनाथ सेठ, □ पात्र: मनोहर सिंह/अन्नू कपूर/ दीप्ति नवल।

प्रकाश झा की फिल्म दामुल

अनंत यात्रा

एक कंपनी में प्रतिष्ठित पद पर काम करने वाला गोडबोले अपनी जिंदगी से निराश है। दिनचर्या की एकरसता से वह तंग आ चुका है। सिर पर अवतरित चाँद; उतरा हुआ चेहरा उसकी उकताहट बयान करते हैं। बच्चे अपने में मस्त हैं, और बीवी को किटी पार्टियों से फुरसत नहीं।निराश गोडबोले सब कुछ छोड़-छाड़ कर भाग जाना चाहता है। एक दिन उसके फोन की घंटी टनटना उठती है। उस पर कोई 'लाडूवाला' उससे कहता है, कि 'तुम्हें मेरी जरूरत है।' गोडबोले उसके दर्शाए पते पर पहुँचता है। लाडूवाला के घर में किताबें ही किताबें हैं। वह गोडबोले से कोई भी किताब लेकर सामने रखी अलमारी में प्रविष्ट होने को कहता है। हतप्रभ गोडबोले द्वारा कालिदास की 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' लेकर अलमारी में घुसते ही वह दुष्यंत और शकुंतला के काल में पहुँच जाता है। खूबसूरत सन्नारियाँ उसकी सेवा करती हैं और शकुंतला के प्रेम में वह कुछ समय स्वर्गिक आनंद पाने के बाद पुनः अलमारी के बाहर गिर पड़ता है।

जनम

फिल्म एक नौजवान द्वारा समाज में अपनी पैदाइश के अस्पष्ट स्थान और अस्तित्व की जटिलताओं को समझने की कोशिश का खूबसूरत रेखांकन है। एक जमाने में मशहूर रहे फिल्म निर्देशक का बेटा राहुल अपनी माँ के साथ अलग रहता है। उसके पिता अब कर्ज के भारी बोझ तले दबे हैं, और अधेड़ावस्था में अपनी दूसरी पत्नी और उसके बच्चों के घर जिंदगी का शेष समय बिता रहे हैं। राहुल की दादी माँ भी इन लोगों के साथ रहती है। अपने पिता के घर जाने पर राहुल को उसकी सौतेली माँ और भाई-बहनों से प्रताडित होना पड़ता है। उसके पिता इसके विरुद्ध चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाते। अपमानित राहुल अपनी माँ के पास लौटकर स्पष्टीकरण चाहता है कि क्यों वह इस तरह दुःख उठा रही है? पिता के प्रति उसके मन में बेहद आक्रोश है। उसे अपनी माँ से पता चलता है, कि उसकी दादी ने उसके पिता को इस दूसरे विवाह पर मजबूर किया था। और कानूनी धरातल पर मान्य शादी राहुल की माँ और उसके पिता के बीच कभी हुई ही नहीं। राहुल अपनी पैदाइश को नाजायज जानकर बुरी तरह टूट जाता है। निराशा की हालत में उसकी प्रेमिका उसे नैतिक ताकत देती है। उसी की सलाह पर वह एक फिल्म का निर्देशन करता है, जिसमें उसकी अपनी जिंदगी की कहानी है। फिल्म काफी सफल होती है, और इसे श्रेष्ठ निर्देशक का अवॉर्ड दिया जाता है। पुरस्कार देने राहुल के पिता आते हैं, और सबके सामने उसे अपना बेटा कबूल करते हैं। मूल रूप से 'जनम' दूरदर्शन के लिए निर्मित फिल्म थी।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८५/ १४३ मिनट, □ निर्देशक: महेश भट्ट, □ संगीत: अजीत वर्मन, □ पात्र: कुमार गौरव/ अनीता कँवर/ आकाश खुराना/ दीपक काजिर/ अनुपम खेर।

परमा

भारतीय समाज में स्त्री को कई वर्जनाओं के बीच रहना पड़ता है। गृहस्थी के नीरस चक्र में वह अपनी कई ख्वाहिशें दबाकर चलती है। जज्बातों के संवेग यदि किसी विवाहित स्त्री को परपुरुष की ओर आकर्षित करे, तो इससे बढ़कर उसके लिए दूसरा कोई पाप नहीं होता। 'परमा' एक ऐसी नारी की कहानी है, जिसे अपने से कम उम्र के युवक के साथ प्रेम करने के लिए परिवार में बहिष्कार का शिकार होना पड़ता है। उसकी भावनाओं में झांकने की कोशिश कोई नहीं करता। एक कुलीन, समृद्ध परिवार की वधू परमा का जीवन दिनचर्या की एकरसता में डूबा हुआ है। पति, बच्चों और सास के प्रति अपनी भूमिकाओं के निर्वाह में उसकी निजी पहचान कहीं खोकर रह गई है। पति को व्यवसाय से फुरसत नहीं मिलती। परमा के सौंदर्य में यौवन के आखरी चिन्ह बाकी हैं। ऐसे ही ढलते हुए दौर में उसकी मुलाकात अपने भतीजे के मित्र राहुल से होती है, जो एक प्रतिभाशाली छायाकार है। वह परमा के सौंदर्य में कैमरे की संभावनाएँ देखता है। आरंभिक हिचकिचाहट के बाद परमा उसकी तरफ अनजाने ही आकृष्ट हो जाती है। उम्र में राहुल से बड़ी होने के कारण उसके मन में एक प्रकार का अपराध बोध भी बना रहता है। इसी वजह से उसके साथ अपने संबंधों को एक सीमा से बाहर वह नहीं ले जाती। राहुल, परमा की अनिच्छा के बावजूद उसके कुछ चित्र खींचता है, और इन्हें किसी बड़ी पत्रिका में छपवाने का वायदा करता है। परमा जीवन के शून्य को भरने की उम्मीद में उससे मिलना जारी रखती है। एक दिन राहुल अमेरिका चला जाता है। परमा अपनी जिंदगी के नियमित क्रम में जकड़ी हुई अकेली रह जाती है। कई दिनों तक उसे राहुल का कोई पता नहीं चलता। फिर एक दिन उसका भेजा लिफाफा परमा के घर आता है। जिसमें एक विदेशी पत्रिका में छपे परमा के कुछ चित्र थे। इन्हें देखकर उसके परिवार वाले उसे गलत नजर से देखने लगते हैं। अपने ही घर में वह अजनबी हो जाती है। पति और बच्चे उससे बात तक नहीं करते। इस बर्ताव से निराश परमा एक दिन आत्महत्या का प्रयास करती है। किसी तरह उसे बचाया जाता है। उसके घरवालों को अपनी गलती का अहसास होता है। डॉक्टर परमा को मनोचिकित्सा की सलाह देता है, ताकि उसके मन का अपराध बोध हटाया जा सके। मगर परमा खुद को अपराधी महसूस नहीं करती। उसके भीतर अब रिश्तों के प्रति निर्लिप्तता का भाव है।

□ हिंदी/ १९८५/ १३९ मिनट/ रंगीन, □ निर्देशक: अपर्णा सेन, □ संगीत: भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: राखी मुकुल शर्मा/ दीपांकर डे।

देव शिशु

भारत की आध्यात्मिक संपदा गौरवपूर्ण है। लेकिन धर्म के नाम पर भोले लोगों का आर्थिक व शारीरिक शोषण भी यहाँ कम नहीं होता। धार्मिक भावनाओं के शोषण की शर्मनाक हकीकत पर यह फिल्म एक गहरा आक्षेप है। सीधे-सादे ग्रामीण दंपति रघुवर और सीता गाँव में आई बाढ़ से त्रस्त होकर अपने रिश्तेदारों के पास दूसरे गाँव जाते हैं। सड़क पर उन्हें एक ठेले के गिर्द जमा लोगों का हुजूम नजर आता है। जिसमें तीन सिर और चार हाथों वाला एक नन्हा बच्चा रखा हुआ है। दो व्यक्ति इसे जोर-शोर से 'देव शिशु' (ईश्वर का पुत्र) कहकर प्रचारित करते हैं, जिसके दर्शन से सारी मनोकामनाएँ पूरी होंगी। श्रद्धालु बच्चे पर सिक्कों की बरसात कर रहे हैं। रघुवर बच्चे को पहचान लेता है। यह उसका अपना बच्चा था। जिसके जन्म को गाँव के तांत्रिक प्रसादजी ने अभिशाप बताकर उससे यह बच्चा छीन लिया था। अब उसी बच्चे को प्रसाद और उसके साथी द्वारा 'देव शिशु' बताकर कमाई का जरिया बनाते देख रघुवर विरोध करता है। लेकिन लोग उसे ईशनिंदा का पाप करने के लिए पीटने लगते हैं। जान बचाकर भागा रघुवर अपनी पत्नी के पास लौटता है और उसके साथ बलात् शारीरिक संपर्क स्थापित करता है ताकि उसे फिर एक 'देव शिशु' मिल सके। जिसका शरीर विकारों से भरा हो। इसके बदले लोग उसे पैसा दें। सामान्य शिशु तो सिर्फ भीख माँग सकता है। फिल्म को लोकर्नो फिल्मोत्सव में दो अवॉर्ड प्राप्त हुए थे।

□ हिंदी/ १९८५/ १०७ मिनट/ रंगीन, □ निर्देशक: उत्पलेंदु चक्रवर्ती, □ पात्र: स्मिता पाटिल/ साधु मेहर/ ओमपुरी।

अंजुमन

लखनऊ की प्रसिद्ध चिकन कढ़ाई कला के कारीगरों की दुर्दशा पर रोशनी डालने की कोशिश इस फिल्म में की गई है। कथानक का केंद्रीय सूत्र ऐसी ही एक गरीब बुनकर 'अंजुमन' की जिंदगी से जुड़ा है। कपड़ों पर चिकन कढ़ाई करने वाली अंजुमन को खून सोख लेने वाले इस काम के बदले अन्य कारीगरों की तरह नाममात्र की मजदूरी मिलती है। जहालत से घिरी अंजुमन के लिए एकमात्र राहत का सबब है उसका साहित्य प्रेम। एक जमाने में उसका रिश्ता प्रतिष्ठित घराने से हुआ करता था। नवाबी सत्ता के ढलने और मुल्क के सियासती मंजर में बदलाव के बाद उसे चिकन का काम करने पर मजबूर होना पड़ा। घर के नजदीक रहने वाला समृद्ध परिवार का युवक 'साजिद' उससे मोहब्बत करता है, पर आर्थिक धरातल पर यह बेमेल संबंध साजिद की माँ को पसंद

मीना कुमारी: श्रेष्ठ फिल्में

- □ बैजू बावरा (१९५२): भारत भूषण
- □ परिणिता (१९५३): अशोक कुमार
- □ बंदिश (१९५५): अशोक कुमार
- □ एक ही रास्ता (१९५५): सुनील दत्त
- □ मिस मेरी (१९५७): किशोर कुमार
- □ शारदा (१९५७): राज कपूर
- □ चार दिल चार राहें (१९५९): राज कपूर
- □ शरारत (१९५९): किशोर कुमार
- □ दिल अपना और प्रीत पराई (१९६०)
- □ कोहिनूर (१९६०): दिलीप कुमार
- □ भाभी की चूड़ियाँ (१९६१)
- □ प्यार का सागर (१९६१): राजेंद्र कुमार
- □ मैं चुप रहूँगी (१९६२): सुनील दत्त
- □ साहब बीवी और गुलाम (१९६२): गुरुदत्त
- □ दिल एक मंदिर (१९६३): राजकुमार
- □ चित्रलेखा (१९६४): प्रदीप कुमार
- □ काजल (१९६५): राजकुमार
- □ फूल और पत्थर (१९६६): धर्मेन्द्र
- □ बहू बेगम (१९६७): प्रदीप कुमार
- □ पाकीज़ा (१९७१): राजकुमार
- □ मेरे अपने (१९७१):

सर्वश्रेष्ठ फिल्म

राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित

फिल्म कल्चर

□ श्याम ची आई
मराठी/श्वेत-श्याम/१९५३
निर्देशक : प्रह्लाद अत्रे

□ मिर्जा गालिब
उर्दू/श्वेत-श्याम/१९५४
निर्देशक : सोहराब मोदी

□ पथेर पांचाली
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९५५
निर्देशक : सत्यजीत रॉय

□ काबुलीवाला
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९५६
निर्देशक : तपन सिन्हा

□ दो आँखें बारह हाथ
हिंदी/श्वेत-श्याम/१९५७
निर्देशक : वी. शांताराम

□ सागर संगमे
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९५८
निर्देशक : देवकी कुमार बोस

□ अपूर संसार
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९५९
निर्देशक : सत्यजीत रॉय

□ अनुराधा
हिंदी/श्वेत-श्याम/१९६०
निर्देशक : ऋषिकेश मुखर्जी

□ भगिनी निवेदिता
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९६१
निर्देशक : विजय बसु

□ दादा ठाकुर
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९६२
निर्देशक : सुधीर मुखर्जी

□ शहर और सपना
हिंदी/श्वेत-श्याम/१९६३
निर्देशक : ख्वाजा अहमद अब्बास

□ चारुलता
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९६४
निर्देशक : सत्यजीत रॉय

□ चेम्मीन
मलयालम/रंगीन/१९६५
निर्देशक : रामू करियात

□ तीसरी कसम
हिंदी/श्वेत-श्याम/१९६६
निर्देशक : बासु भट्टाचार्य

□ हाटे-बाजारे
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९६७
निर्देशक : तपन सिन्हा

□ गूपी गायन, बाधा बायन
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९६८
निर्देशक : सत्यजीत रॉय

□ भुवन शोम
हिंदी/श्वेत-श्याम/१९६९
निर्देशक : मृणाल सेन

□ संस्कार
कन्नड़/श्वेत-श्याम/१९७०
निर्देशक : टी. पट्टाभिरामा रेड्डी

□ सीमाबद्ध
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९७१
निर्देशक : सत्यजीत रॉय

□ स्वयम्बरम्
मलयालम/श्वेत-श्याम/१९७२
निर्देशक : अडूर गोपालकृष्णन्

□ निर्माल्यम्
मलयालम/श्वेत-श्याम/१९७३
निर्देशक : एम.टी. वासुदेवन नायर

□ कोरस
बंगाली/श्वेत-श्याम/१९७४
निर्देशक : मृणाल सेन

□ चोमना डुडी
कन्नड/श्वेत-श्याम/१९७५
निर्देशक : ब.व. कारंत

□ मृगया
हिंदी/रंगीन/१९७६
निर्देशक : मृणाल सेन

□ घटश्राद्ध
कन्नड़/श्वेत-श्याम/१९७७
निर्देशक : गिरीश कासरवल्ली

□ शोध
हिंदी/रंगीन/१९७८
निर्देशक : विप्लव रायचौधरी

□ एक दिन प्रतिदिन
बंगाली/रंगीन/१९७९
निर्देशक : मृणाल सेन

□ अकालेर संधाने
बंगला/रंगीन/१९८०
निर्देशक : मृणाल सेन

□ दाखल
बंगाली/रंगीन/१९८१
निर्देशक : गौतम घोष

□ चोख
बंगाली/रंगीन/१९८२
निर्देशक : उत्पलेन्दू चक्रवर्ती

□ आदि शंकराचार्य
संस्कृत/रंगीन/१९८३
निर्देशक : जी.वी. अय्यर

□ दामुल
हिंदी/रंगीन/१९८४
निर्देशक : प्रकाश झा

□ चिदंबरम्
मलयालम/रंगीन/१९८५
निर्देशक : जी. अरविंदन

□ तबरन कथे
कन्नड़/ रंगीन/ १९८७
निर्देशक : गिरीश कसरावल्ली

□ पिरावी
मलयालम/रंगीन/१९८८
निर्देशक : शाजी एन. करुण

□ बाघ बहादुर
हिंदी/रंगीन/१९८९
निर्देशक : बुद्धदेव दासगुप्ता

□ मरुपक्कम
तमिल/रंगीन/१९९०
निर्देशक : के.एस. सेतुमाधवन

□ तहादेर कथा
बंगला/रंगीन/१९९१
निर्देशक : बुद्धदेव दासगुप्ता

□ आगंतुक
बंगाली/रंगीन/१९९२
निर्देशक : सत्यजीत रॉय

□ भगवद्गीता
संस्कृत/रंगीन/१९९३
निर्देशक : जी.वी. अय्यर

नहीं। चिकन के कपड़ों का व्यवसाई 'बाँके नवाब' अंजुमन को हासिल करना चाहता है। मगर वह उसे अहमियत नहीं देती। उसके इंकार से चिढ़कर बाँके शहर में शिया-सुन्नी फसाद करवा देता है। इसके पीछे चिकन कारीगरों द्वारा मजदूरी बढ़ाने की माँग को निष्फल करने की कोशिश छिपी है। गरीब मजदूर राजनीतिक साजिशों के जरिए शोषण का शिकार बनते हैं। मगर इसका उन्हें गुमान नहीं हो पाता।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८६/ १४० मिनट. □ निर्देशक: मुजफ्फर अली. □ संगीत: खय्याम, □ पात्र: शबाना आजमी/ फारुख शेख/ शौकत कैफी।

एक पल

स्त्री की शारीरिक जरूरतों को समाज में हल्की नजर से देखा जाता है। उसके व्यक्तित्व की पहचान में यौन संबंधी आकर्षण के लिए कोई जगह नहीं होती। लेकिन यदि विवाहेतर संबंध की कामना पुरुष के तईं गंभीर अपराध नहीं है, तो महिला पर भी इसे आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। 'रुदाली' के लिए चर्चित हो चुकी निर्देशिका कल्पना लाजमी ने इसी विचार को सामने रखते हुए अपनी पहली फिल्म एक पल का निर्माण किया था। नायिका 'प्रियम' शर्मीले स्वभाव की एक अंतर्मुखी युवती है। एक आशिक मिजाज नौजवान 'जीत' से उसकी दोस्ती प्रेम में बदल जाती है। कुछ दिनों बाद जीत उच्च शिक्षा के लिए विदेश चला जाता है। प्रियम की शादी उसके माता-पिता एक युवा इंजीनियर 'वेद' से कर देते हैं जिसके पास पत्नी को देने के लिए जरा भी वक्त नहीं। प्रियम का समय घर के माली की कम उम्र पत्नी रुक्मणी के साथ कटता है। वह उसे बेवफाई के मिथ्या आरोप में पति के हाथों पिटते देखती है। रुक्मणी के बच्चे को उसका पति नाजायज मानकर मार डालता है। इस विचलित करने वाले माहौल में प्रियम को अकेला छोड़ 'वेद' व्यवसाय के सिलसिले में एक वर्ष के लिए विदेश जाता है। इस बीच जीत की वापसी होती है। प्रियम के साथ उसके पुराने संबंध फिर ताजा हो उठते हैं। भावना के वशीभूत प्रियम गर्भवती हो जाती है। जीत के दबाव के बावजूद वह गर्भस्थ शिशु को मारने के लिए राजी नहीं होती। वेद के वापस लौटने पर प्रियम दृढ़ता पूर्वक सच्चाई उसके सामने रख देती है। आरंभिक अंतर्द्वंद के बाद वेद इसे स्वीकार कर लेता है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८६/ १३५ मिनट. □ निर्देशक: कल्पना लाजमी. □ संगीत: भूपेन हजारिका, □ पात्र: शबाना आजमी/ फारुख शेख/ नसीरुद्दीन शाह।

मिर्च मसाला की सोनबाई स्मिता

मिर्च मसाला

फिल्म एक बहादुर महिला सोनबाई की कहानी है। उसने गुजरात में प्रचलित लोककथा के अनुसार गाँव के कुटिल सूबेदार का अपने बूते पर विरोध किया था। चालीस के दशक में गुजरात के एक सागर तटीय गाँव की सोनबाई अपनी गरिमा की रक्षा के लिए साहस अपनाने वाली महिला के रूप में याद की जाती है। गाँव में राजकीय कर वसूलने आए सूबेदार द्वारा अशालीन आचरण करने पर सोनबाई ने उसे करारा तमाचा जड़ दिया था। जबकि इसी सूबेदार से सारे ग्रामीण थर-थर काँपते थे। उसके विरोध की हिम्मत किसी में नहीं थी। सूबेदार से बचने के लिए सोनबाई भागकर मिर्च के एक कारखाने में छिप जाती है। सूबेदार अपने सिपाहियों के साथ कारखाने के चारों ओर घेरा डाल देता है। कारखाने में काम करने वाली औरतें इस आफत के लिए सोनबाई से नाराज हैं, मगर वहाँ का बूढ़ा चौकीदार एक नारी के सम्मान की रक्षा हेतु कारखाने की छत पर मोर्चा संभाल लेता है। सूबेदार की इस धमकी पर कि वह सोनबाई के बाहर न आने की स्थिति में सारे गाँव को आग लगा देगा, मुखिया और बुजुर्ग ग्रामीण सोनबाई पर सूबेदार की बात मान लेने के लिए दबाव डालते हैं। पर वह अपना निर्णय नहीं बदलती। गाँव की कुछ महिलाएँ उसके साहस से प्रभावित होकर सूबेदार के साथ मुकाबले का निश्चय करती हैं। द्वंद्व की शुरूआत होने पर कारखाने की कामगार महिलाओं द्वारा भी मिर्च को बतौर हथियार इस्तेमाल किया जाता है। पुरुषों के सहयोग के बगैर स्त्रियाँ सोनबाई के नेतृत्व में आत्मसम्मान के संघर्ष को मूर्तरूप देती हैं।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८६/ १२८ मिनट, □ निर्देशक: केतन मेहता, □ संगीत: रजत ढोलकिया, □ पात्र: नसीरुद्दीन शाह/ स्मिता पाटिल/ सुरेश ओबेराय/ ओम पुरी।

मौन रागम्

एक स्वाभिमानी, विचारशील लड़की 'दिव्या' को देखने वैवाहिक प्रस्ताव के साथ लड़के वालों का परिवार आता है। दिव्या शादी नहीं करना चाहती, मगर उसके

मैसी साहब

फिल्म में एक रोचक व्यक्तित्व चित्रण है, हास्य और दुखांत की मिली-जुली प्रस्तुति। अँगरेज राज के दौरान मध्यभारत के एक छोटे से कस्बे श्योपुर के सरकारी महकमे में कार्यरत कनिष्ठ बाबू 'फ्रांसिस मैसी' खुद को किसी गोरे साहब से कम नहीं मानता। टूटी-फूटी अँगरेजी और धर्म की साम्यता के आधार पर उसने अपने बारे में यह धारणा कायम की है। वरना नाटे कद और फटीचर व्यक्तित्व वाले मैसी में कोई ऐसी बात नहीं, जो उसे साहब का दर्जा दे सके। लोगों पर रौब गाँठ कर वह उनसे उधार पैसा लेता रहता है। दिल से वह निष्कपट है। सिर्फ विशिष्टता की चाह उसे परेशान करती है। एक आदिवासी युवती से प्रेम विवाह के चक्कर में जनाब भारी कर्ज से दब जाते हैं। आदिवासी प्रथा के अनुसार वर, वधू पक्ष को दहेज देता है। दफ्तर में आए नए अँगरेज अफसर चार्ल्स एडम्स को मैसी अपनी अटपटी बातों से प्रभावित करने में सफल होता है। एडम्स को ग्रामीण इलाकों में सड़कें बनवाने का जुनून है। मगर वित्तीय संसाधनों के अभाव में उसकी यह योजना पूरी नहीं होती। मैसी बाबू उसे अन्य विभागों के लिए आवंटित राशि का इस्तेमाल करने की सलाह देता है। आँकड़ों में हेराफेरी के लिए मैसी को निलंबित होना पड़ता है। उसके चहेते साहब शादी के लिए विदेश चले जाते हैं। उधर उसकी बीवी और नवजात शिशु को उसका ससुर अपने साथ ले जाता है। मैसी ने शादी के लिए पूर्व निर्धारित रकम पूरी अदा नहीं की थी। पत्नी से बेतरह मोहब्बत करने वाला मैसी उसके वियोग में पागल हो जाता है। राशि के प्रबंध हेतु उसे महाजन के द्वार खटखटाने पड़ते हैं। मगर नौकरी छिन जाने के कारण अब उसकी बात कोई नहीं सुनता। मनः संताप से पीड़ित मैसी के हाथों महाजन की हत्या हो जाती है। जेल की सलाखों के पीछे वह मीठी कल्पना करता है, कि एडम्स साहब आकर उसे बचा लेंगे, और उसके बेटे को बड़ा होने पर अपने महकमे में बड़ा बाबू बनाएँगे। आखिर अँगरेज हुकूमत की उसने इतनी खिदमत की है। अगले दिन मैसी को फाँसी हो जाती है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८६/ १२४ मिनट, □ निर्देशक: प्रदीप कृष्ण, □ संगीत: वनराज भाटिया, □ पात्र: रघुबीर यादव/ बैरी जॉन/ अरुंधती रॉय।

मध्यवर्गीय पिता को दो अन्य लड़कियों की भी शादी करना है। दिव्या पूरा प्रयास करती है, कि लड़का उसे पसंद न करे। लेकिन वह उससे बिना दहेज पर विवाह के लिए तैयार हो जाता है। इसके बाद भी दिव्या के इंकार पर उसके पिता दिल के दौरे से पीड़ित हो जाते हैं। उनकी जिंदगी के लिए दिव्या अनिच्छापूर्वक चंद्रकुमार से विवाह कर लेती है। परंतु परिणय के बावजूद वह उसे अपने करीब नहीं आने देती। उसकी कोशिश है कि चंद्रा उससे तलाक ले ले। तनाव की लंबी यंत्रणा से गुजरने के बाद वह चंद्रा को अपने भूतपूर्व प्रेमी के बारे में बताती है, जिसे राजनीतिक गतिविधियों के लिए गोलियों का शिकार होना पड़ा था। उसकी मृत्यु की स्मृतियाँ दिव्या के दिलोदिमाग पर छाई हैं। यह जानने के बाद चंद्रा परस्पर सहमति से तलाक हेतु वकील की मदद लेता है। किंतु उन्हें इसके लिए एक वर्ष तक इंतजार करना होगा। इस प्रतीक्षा की अवधि में दिव्या की मानसिकता धीरे-धीरे बदलने लगती है। वह यथार्थ को सहजता से स्वीकारने का प्रयास करती है। मगर अब चंद्रा उससे खिंचा-खिंचा सा रहता है। एक दिन उसके गंभीर रूप से दुर्घटनाग्रस्त होने पर दिव्या उसकी तत्परता के साथ सुश्रुषा करती है। चंद्रा ठीक होने पर दिव्या को तलाक का स्वीकृति पत्र सौंपता है, जिसे वह फाड़ डालती है। मौन रागम् वर्ष की सर्वश्रेष्ठ तमिल फिल्म के रूप में राष्ट्रीय अवॉर्ड से पुरस्कृत की गई थी।

□ तमिल/ रंगीन/ १९८६/ १४५ मिनट, □ निर्देशक: मणि रत्नम, □ संगीत: इलैया राजा, □ पात्र: मोहन/रेवती।

पंचवटी

भारत-नेपाल सहयोग से बनी यह पहली फिल्म थी। काठमांडू के प्राकृतिक वातावरण में पली-बढ़ी, सौम्य स्वभाव और कलात्मक अभिरुचि वाली चित्रकार 'साध्वी' अपने चित्रों की प्रदर्शनी के लिए बंबई आती है। यहाँ उसका परिचय विक्रम से होता है। वह बड़े व्यवसाय का मालिक होने के बावजूद चित्रकला में गहरी दिलचस्पी वाला व्यक्ति है। विक्रम, साध्वी को अपने घर आमंत्रित करता है। विक्रम का वैवाहिक जीवन सुखद नहीं है, क्योंकि पत्नी से उसकी रुचियाँ नहीं मिलतीं। विक्रम का छोटा भाई जतिन, साध्वी के प्रति आकर्षित होता है। पारिवारिक सहमति से दोनों की शादी कर दी जाती है। जतिन अपने भाई से भिन्न स्वभाव वाला आदमी है। वह साध्वी की भावनाओं की कद्र नहीं करता। उसकी दिलचस्पी केवल शारीरिक संबंधों में है। मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के कारण साध्वी उसके विलासी आचार-विचार और जीवन शैली से तादात्म्य नहीं जोड़ पाती। वह साध्वी को शारीरिक रूप से प्रताड़ित भी करता है। स्वाभिमानी साध्वी उससे दूर रहने का फैसला कर लेती है। विक्रम उसकी वेदना को समझ कर उसे तनावमुक्त करने के लिए काठमांडू ले जाता है, जहाँ दोनों एक-दूसरे को नजदीक से समझने का प्रयास करते हैं। बेमेल विवाह का कड़वा अनुभव साध्वी और विक्रम को एक धरातल पर रखता है। समान रुचियों के कारण वे एक-दूसरे को परस्पर पूरक महसूस करते हैं। साध्वी काठमांडू से गर्भवती होकर लौटती है, और जतिन के प्रश्न पर स्पष्ट कहती है कि यह उसका बच्चा नहीं है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८६/ १५० मिनट, □ निर्देशक : बासु भट्टाचार्य, □ संगीत : शारंगदेव, □ पात्र : सुरेश ओबेराय/ दीप्ति नवल/ अकबर खान।

पापोरी

एक स्कूल शिक्षक की पत्नी पापोरी के लिए जिंदगी अनवरत यातना का रूप ले लेती है। उसकी इकलौती बेटी को असाध्य व्याधि है, और डॉक्टरों के अनुसार वह चंद हफ्तों से ज्यादा जीवित नहीं रह सकती। पापोरी का पति हत्या के एक झूठे मुकदमे में फँसा दिया जाता है। उसके सामने पति और बेटी दोनों को बचाने की चुनौती आ खड़ी होती है। एक सहृदय इंस्पेक्टर उसकी मदद करता है। मुकदमेबाजी की लंबी प्रक्रिया से गुजरने के दौरान ही अस्पताल में चिकित्सकों की लापरवाही के परिणामस्वरूप पापोरी की बेटी की मृत्यु हो जाती है। उसका हौसला टूटने लगता है। इसके समानांतर जारी राजनीतिक गरमाहट के माहौल में किसी के पास उसकी मुश्किलों को समझने का समय नहीं होता। उलटे लोग उसके और इंस्पेक्टर के बीच संबंध की मनगढ़ंत कहानियाँ प्रचारित करने लगते हैं। इंस्पेक्टर पापोरी के पति को बचाने के प्रयास में एक महत्वपूर्ण सुराग तक पहुँचता है, किन्तु उसे उच्च स्तरीय दबाव झेलने पड़ते हैं। इस बीच एक अपराधी पापोरी को असहाय जानकर उसके साथ बलात्कार करता है। वह इसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं करवाती, क्योंकि उसने न्यायतंत्र का नाकारापन पति के मुकदमे में देख रखा है। ईमानदार इंस्पेक्टर को स्थानांतरित कर दिया जाता है, और पापोरी अपने संघर्ष में बिलकुल अकेली रह जाती है। जाहनू बरुआ ने मूल कहानी को असम के एक दशक पुराने छात्र आंदोलन की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है।

□ असमिया/ रंगीन/ १९८६/ १४४ मिनट, □ निर्देशक : जाहनू बरुआ, □ पात्र : गोपी देसाई/ बिजू फुकन/ सुशील गोस्वामी।

राव साहब

जयवंत दलवी के उपन्यास पर आधारित यह फिल्म भारतीय समाज में विधवाओं की दुर्दशा पर रोशनी डालती है। महाराष्ट्र के एक छोटे कस्बे में रहने वाले, राव साहब की जर्जर होती हवेली का एक सुनसान हिस्सा उस वक्त रौनक से भर उठता है, जब बीस वर्षीय भाऊराव अपने से पाँच साल छोटी दुल्हन राधक्का को ब्याह कर घर लाता है। भाऊराव एक दफ्तर में बाबू है और राव

राजकुमार: श्रेष्ठ फिल्में

- □ मदर इंडिया (१९५७) : नर्गिस
- □ पैगाम (१९५९) : वैजयंतीमाला
- □ दिल अपना और प्रीत पराई (१९६०) : मीना कुमारी
- □ घराना (१९६३) : कामिनी कौशल
- □ दिल एक मंदिर (१९६३) : मीना कुमारी
- □ काजल (१९६५) : मीना कुमारी
- □ नीलकमल (१९६८) : वहीदा रहमान
- □ हीर-राँझा (१९७०) : प्रिया
- □ मर्यादा (१९७१) : माला सिन्हा
- □ पाकीज़ा (१९७३) : मीना कुमारी
- □ हिन्दुस्तान की कसम (१९७३) : प्रिया
- □ मरते दम तक (१९८७)
- □ सौदागर (१९९१)
- □ तिरंगा (१९९३)

साहब की मेहरबानी से उनके घर में रहता है। अधेड़ावस्था को अग्रसर होते राव साहब विलायत में शिक्षित बैरिस्टर हैं। अँगरेजियत उन पर हावी है, मगर पुराने भारतीय संस्कार भी छूटे नहीं। उनकी विधवा मौसी भी उनके साथ रहती है। विकृत रीति-रिवाजों के तहत उन्होंने वैधव्य का दुख गहराई से झेला है। मगर उनकी जिंदादिली खत्म नहीं हुई। हवेली में आई नववधू को वे बेहद स्नेह करती हैं। एक दिन अचानक राधक्का का पति बीमारी से ग्रस्त होकर मर जाता है। उसके पिता राधक्का पर परंपरानुसार विधवा वेश धारण करने और सिर के केश मुंडवाने के लिए जोर देते हैं। राव साहब को यह अत्याचार पसंद नहीं। उनके हस्तक्षेप पर राधक्का खुद को सुरक्षित समझती है। राव साहब ने एक विदेशी युवती से प्रेम किया था, किन्तु उनका विवाह नहीं हो सका। मौसी चाहती है कि राव साहब, राधक्का को अपना लें। दोनों के बीच आकर्षण भी पनपता है। लेकिन अपने प्रगतिशील विचारों के बावजूद राव साहब सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध जाकर एक विधवा से विवाह का साहस नहीं जुटा पाते। कथानक की पृष्ठभूमि बीस के दशक की है। फिल्म को दो राष्ट्रीय अवार्ड मिले थे।

□ हिन्दी/रंगीन/ १९८६/ १२३ मिनट, □ निर्देशक: विजया मेहता, □ संगीत भास्कर चंदावरकर। □ पात्र : अनुपम खेर/ तन्वी आजमी/ विजया मेहता।

सुस्मन

वो जुलाहा जो कबीर के अनुसार जीवन दर्शन का सारतत्व (सुस्मन) रचता है, उसकी अपनी जिंदगी मौत से भी बदतर होती है। सुस्मन आंध्र प्रदेश के एक बुनकर रामुलु की कहानी है। वह शोषण और गरीबी के बीच 'इकत' की विख्यात बारीक वस्त्र कारीगरी करता है। बिचौलिए उसके द्वारा निर्मित वस्त्रों को ऊँचे दामों पर बेचते हैं, जबकि उसे इसकी एवज में कौड़ियाँ थमाई जाती हैं। सरकार द्वारा बुनकरों के हित में गठित सहकारी संस्थाओं में भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है। जहालत से आजिज आ चुका रामुलु नहीं चाहता कि उसका बेटा बड़ा होकर पुश्तैनी काम सँभाले। रामुलु को शहर से आई एक वस्त्र निर्यातक महिला 'मंदिरा' बड़ा 'ऑर्डर.' सौंपती है। इसके लिए खरीदी गई रेशम का कुछ हिस्सा पत्नी के कहने पर बेटी की साड़ी में इस्तेमाल करने पर उसे अपमानित होना पड़ता है। खुद्दार रामुलु को इससे गहरी चोट लगती है, और वह काम से विरत हो जाता है। फाकों की नौबत आने पर उसकी पत्नी किसी तरह उसे काम पूरा करने हेतु प्रेरित करती है। रामुलु की कारीगरी से प्रभावित होकर मंदिरा उसे विदेश ले जाती है। जहाँ वह अपनी दिक्कतों को सामने रखता है। लोग चाहते हैं कि औद्योगिकीकरण के इस दौर में रामुलु जैसे कुशल कारीगर हथकरघा कला को भी जीवित रखें।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९८६/ १४० मिनट, □ निर्देशक : श्याम बेनेगल, □ संगीत : वनराज भाटिया, □ पात्र: ओमपुरी/ शबाना आजमी/ कुलभूषण खरबंदा।

ये वो मंजिल तो नहीं

तीन वृद्ध मित्र पुरानी यादों को ताजा करने के लिए अपने गृहनगर राजपुर लौटते हैं। जहाँ कई साल पहले उन्होंने युवावस्था के दिन साथ-साथ बिताए थे। बड़ी उम्मीदों और सुनहरी स्मृतियों के साथ वे यहाँ आते हैं। लेकिन उन्हें महसूस होता है, कि सब कुछ उनकी आशाओं के विपरीत है। सामंतवादी व्यवस्था अब भी बरकरार है। सिर्फ चेहरे बदल गए हैं। जागीरदारों की जगह उद्योगपतियों ने ले ली है। ये लोग उन्हीं धूर्त

ये वो मंजिल तो नहीं!

हथकंडों के साथ गरीबों का शोषण कर रहे हैं। शहर के विश्वविद्यालय में अराजकता का माहौल है। छात्रों के निरुद्देश्य संघर्ष की तुलना वृद्ध मित्र स्वतंत्रता पूर्व भारत की राष्ट्रप्रेम आधारित छात्र राजनीति से करते हैं। कॉलेज में उद्योगपति के बेटे का आतंक है। अपने गुंडे दोस्तों के साथ वह कोहराम मचाता है। एक छात्र रोहित उसके विरुद्ध मुकाबले की अगुवाई करता है। रोहित के मित्र की उद्योगपति के पिट्ठुओं ने क्रूरता से हत्या कर दी थी, जिसने उन्हें कुछ संघर्षशील श्रमिकों को दुर्घटना के बहाने मारते देखा था। छात्र गुटों के बीच द्वंद्व गहराते देख पुलिस हस्तक्षेप करती है। एक पुलिस वाला उद्योगपति के लड़के वाले गुट के हाथों मारा जाता है, जिसका इल्जाम वे रोहित पर लगा देते हैं। पुलिस और गुंडे लड़कों से बचकर भागा रोहित वृद्ध मित्रों के निवास पर शरण लेता है।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९८६/ १३३ मिनट, □ निर्देशक : सुधीर मिश्रा, □ संगीत : रजत ढोलकिया, □ पात्र : मनोहर सिंह/ हबीब तनवीर/ पंकज कपूर/ नसीरुद्दीन शाह।

अनंतरम

आत्मालाप की शैली में ढली यह फिल्म एक संवेदनशील नौजवान अजयन के बारे में है, जो अपनी अव्यक्त भावनाओं का जिक्र खुद से ही कर राहत पाने की कोशिश करता है। एक बच्चे के रूप में इसका जीवन काफी दुखद था। उसकी जन्मदात्री माँ उसे पालने के लिए तैयार नहीं थी। पैदाइश से ही तिरस्कृत इस युवक को एक डॉक्टर ने पाला, और उसे अपने बेटे की तरह प्यार दिया। स्कूल में अजयन मेधावी होने के बावजूद उपेक्षा का शिकार रहा। उसकी विशिष्टता के लिए साधारण समाज में कोई जगह नहीं थी, जो ढर्रे पर चलने वालों को ही महत्व देता है। अजयन की जिंदगी अनुभवों और संबंधों की एक अर्थहीन श्रृंखला है, जिसमें कहानियों की लड़ियाँ जुड़ती जाती हैं। रिश्तों का बेगानापन उसे भावनात्मक रिक्तता की जमीन पर छोड़ जाता है। गहरी उदासी और शिकायतों के साथ अजयन अपने जीवन की परतों को एक-एक कर के खोलता है।

□ मलयालम/ १९८७/ १२५ मिनट, □ निर्देशक : अडूर गोपालकृष्णन, □ पात्र : अशोकन, मैमूटी, शोभना।

हालोधिया चौराए बाओधन खाई : असमी

हलोधिया चोराए बाओधन खाई

राखेश्वर जमीन के एक छोटे से टुकड़े पर खेती कर अपने परिवार का पेट भरता है। लंबी प्रतीक्षा के बाद मानसून का आगमन उसके लिए किसी उपहार से कम नहीं। मगर इस खुशी को गाँव का अमीर किसान सोनाथन खत्म कर देता है। उसके अनुसार राखेश्वर के पिता ने उसकी जमीन गिरवी रखी थी, और कानूनी तौर पर इसकी अवधि पूरी हो जाने के कारण अब वह जमीन का मालिक है। अदालत में अपील करने पर राखेश्वर की कोई सुनवाई नहीं होती। उसके समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न आ खड़ा होता है। मवेशी बेच कर वह मुकदमा लड़ता है। उसके बेटे को पढ़ाई छोड़ नौकरी करनी पड़ती है। मगर दिक्कतों का सिलसिला खत्म नहीं होता। इस बीच सोनाथन की आम चुनावों में उम्मीदवारी देख उसके विपक्षी राखेश्वर का मामला चरित्रहनन के हथियार

संपूर्ण रूपाकार ग्रहण करता एक विचार
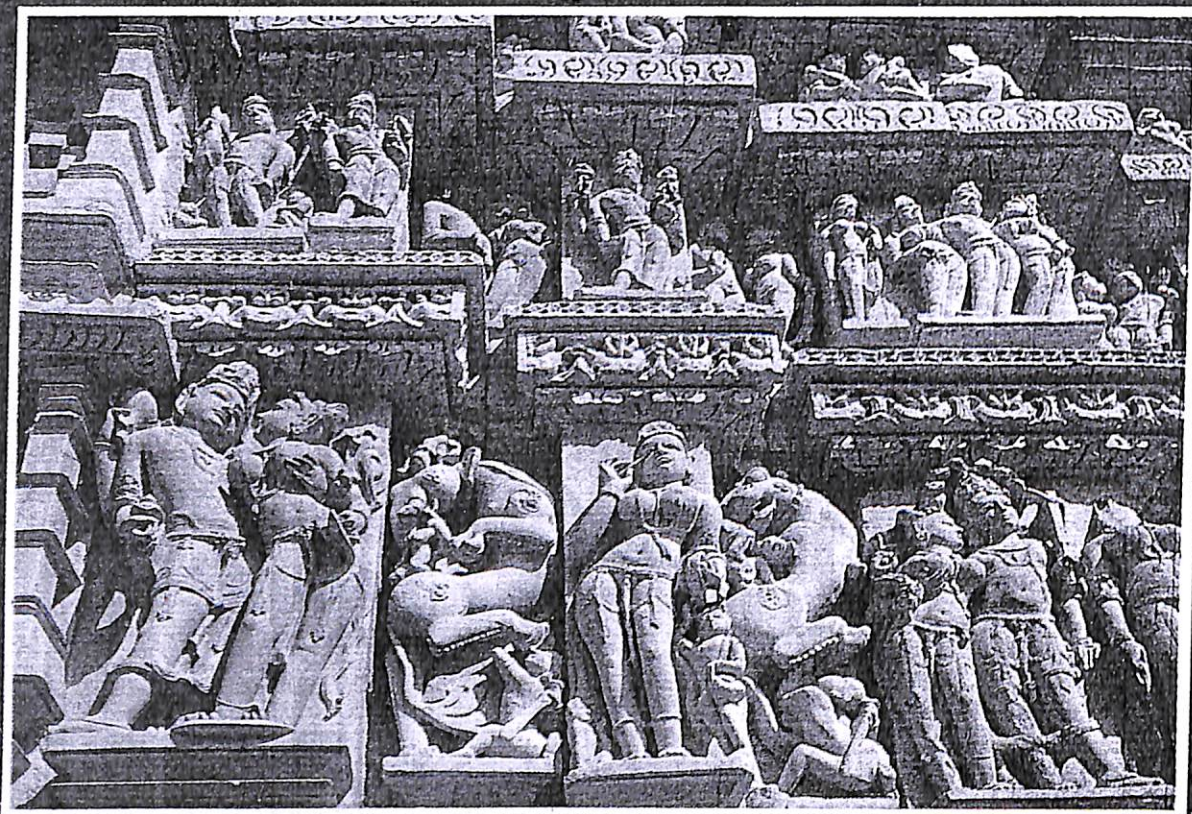
मूर्तियों के रूपाकार यहां एक विचार को सच्चाई बनाते हैं। एक ऐसी सच्चाई जो रूपाकारों को प्रतीकात्मकता की सीमाओं के पार ले जाती है।

शारीरिक सौष्ठव और आध्यात्म की एकात्मकता,को उनके पूरेपन में सच बनता देखें।

खजुराहो

तमस

भारत-पाक विभाजन शताब्दी की सर्वाधिक त्रासद घटनाओं में से एक रही है। करोड़ों लोगों को घरबार छोड़ना पड़ा। कितनों की जानें गईं। जो बचे, उनके जेहन में स्मृतियों के नाम पर सिर्फ स्याह रेखाएँ थीं। इतिहास के इस काले अध्याय पर केंद्रित प्रसिद्ध हिन्दी लेखक भीष्म साहनी के उपन्यास '**तमस**' का यह फिल्म रूपांतरण है। मूलरूप से इसका प्रसारण दूरदर्शन धारावाहिक के रूप में किया गया था, जिसे लेकर देश में कुछ विवाद भी उठे, लेकिन तारीफ की विस्तीर्ण चौखट को देखते हुए इनकी अहमियत ज्यादा नहीं थी। दूरदर्शन पर करोड़ों लोगों द्वारा सराहे जाने के बाद 'तमस' पाँच घंटे की अवधि वाली फिल्म के रूप में प्रदर्शित की गई। उम्दा फिल्मांकन के लिहाज से यह इतिहास का जिंदा दस्तावेज है। कथानक की पृष्ठभूमि विभाजन काल के पंजाब से जुड़ी है, जहाँ भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए थे। धार्मिक रूप से संवेदनशील माहौल में कोई दियासलाई किस तरह आग के कारखाने में तब्दील हो सकती है, इसका अंदाजा कहानी के आरंभ से लगाया जा सकता है। गरीब नाथू चमार को एक अज्ञात व्यक्ति सूअर मारने के लिए पैसे देता है। अगले दिन नाथू के मारे सूअर के आधार पर शहर में भयंकर फसाद शुरू हो जाते हैं। मोहल्ले में उठती आग की लपटों से घबरा कर नाथू अपनी गर्भवती पत्नी को लेकर शहर से भागता है। मगर उसे कहीं सुरक्षा नहीं मिलती, क्योंकि पूरा देश इसी रक्तरंजित परिवेश में डूबा हुआ है। एक के बाद एक भयानक अनुभवों से ये दोनों गुजरते हैं। कहीं दंगाइयों की हवस से बचने के लिए स्त्रियाँ सामूहिक रूप से कुएँ में कूद कर जान दे रही हैं, तो कहीं घरों को लूटा जा रहा है। अल्ला हो अकबर, हर-हर महादेव, सतश्री अकाल जैसे ईश्वरीय सद्-वाक्यों में नाथू और उसकी पत्नी को शैतानियत की कँपा देने वाली धमकियाँ महसूस होती हैं। **ब्रितानवी हुक्मरान उपद्रव को रोकने में कोई** दिलचस्पी नहीं लेना चाहते, क्योंकि उन्हें इस देश से जाना है। हिंसा-प्रतिहिंसा की प्रदीर्घ श्रृंखला के बाद माहौल शांत होता है। लेकिन तब तक जीवन के नाम पर सिर्फ ठिठुरते अवशेष बचे रहते हैं। लाशों की लंबी कतार में नाथू की भी लाश होती है। नेपथ्य में उसकी पत्नी की हृदय विदारक चीखें सुनाई पड़ती हैं।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९८७/ ३०० मिनट, □ निर्देशक : गोविन्द निहलानी, □ संगीत : वनराज भाटिया, □ पात्र : ओमपुरी/ दीपा साही/ ए.के. हंगल/ हरीश पटेल।

के बतौर इस्तेमाल करते हैं। कलेक्टर की समझाइश पर सोनाथन, राखेश्वर की जमीन वापस उसे सौंप देता है। भूमि स्वामित्व के कागजात लेकर लौटते वक्त राखेश्वर को अपने चारों ओर सोनाथन के मुस्कराते चुनावी पोस्टर नजर आते हैं।

□ असमिया / रंगीन/ १९८७/ १२० मिनट, □ निर्देशक : जाह्नू बरुआ, □ पात्र : इंद्र बनिया/ पूर्णिमा पाठक/ प्रांजल सेकिया/ बादलदास।

पुष्पक विमान

हिन्दू पौराणिक ग्रंथों के अनुसार पुष्पक विमान स्वर्गिक अनुभूतियों के लोक में ले जाने वाला वाहन है। इसी परिकल्पना को आधुनिक रंग देकर यह अनूठी फिल्म बनाई गई थी, जिसमें एक भी संवाद नहीं है। इसके बावजूद फिल्म बेहद रोचकता के साथ दर्शकों का मनोरंजन करती है। नायक कमल अपनी बेरोजगारी से परेशान है। एक दिन सड़क किनारे उसे नशे में धुत्त एक अमीर आदमी पड़ा मिलता है, जिसकी पतलून में पाँच सितारा होटल 'पुष्पक' के कमरे की चाबी होती है। वह उसे अपने कमरे में बंद कर खुद होटल पहुँच जाता है। यहाँ उसे ऐशो आराम की सारी सुविधाएँ हासिल होती हैं। एक सुंदर नवयौवना से भी उसका संपर्क होता है, जो उसको रईस आदमी समझती है। लेकिन जिस व्यक्ति को कमल ने अपने घर बंद किया था, उसे मारने की फिराक में एक हत्यारा कमल के पीछे पड़ जाता है। स्वर्गलोक के ये खतरनाक दृश्य देखने के बाद पुष्पक विमान से नीचे उतर कर कमल पुनः बेकार नौजवानों की कतार में खड़ा हो जाता है। फिल्म हिन्दी दर्शकों के लिए पुष्पक नाम से प्रदर्शित हुई थी।

□ कन्नड़/ १९८७/ १३० मिनट, □ निर्देशक : सिंगीथम श्रीनिवास राव, □ पात्र : कमल हासन/ अमला/ टीनू आनंद/ समीर खख्खर।

पेस्टनजी

फिल्म बंबई के पारसी समुदाय की जिन्दगी को गहराई से टटोलने की कोशिश है। दो अभिन्न मित्र पेस्टनजी और फिरोज प्रौढ़ता को अग्रसर होते कुँवारे व्यक्ति हैं। एक युवती उनकी जिंदगी में आती है, जीरो। जिससे फिरोज प्रेम करता है, मगर शादी के प्रस्ताव पर विचार करने में उसे देर हो जाती है। लिहाजा इस बीच पेस्टनजी, जीरो के साथ विवाह कर लेते हैं। फिरोज नौकरी के सिलसिले में बंबई से बाहर चला जाता है। पेस्टनजी और जीरो की शादी अधिक सफल नहीं हो पाती। घरेलू विवाद के सिलसिले में पेस्टनजी एक महिला वकील के संपर्क में आते हैं, और उससे उनकी घनिष्ठता शारीरिक संबंधों तक पहुँच जाती है। फिरोज बंबई लौटने पर यह बदला हुआ दृश्य देखता है। जीरो की हालत उसे व्यथित कर देती है। वह पेस्टनजी को इसके लिए फटकारता है। आर्थिक अभावों और पारिवारिक मुश्किलों के बीच दिल के दौरे से पेस्टनजी की मृत्यु हो जाती है। उनकी शवयात्रा के लिए पैसा जुटा पाना भी मुश्किल होता है।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९८७/ १२० मिनट, □ निर्देशक : विजया मेहता, □ संगीत : वनराज भाटिया, □ पात्र : अनुपम खेर/ नसीरुद्दीन शाह/ शबाना आजमी/ किरण खेर।

नायकन

तमिल में नायकन का अर्थ होता है, हीरो। फिल्म एक तस्कर 'शक्ति वेलु' की कहानी है, जो लोगों के लिए हीरो है मगर कानून की नजर में अपराधी। बचपन में वेलु अपने पिता की पुलिस के हाथों मौत के बाद तमिलनाडु के छोटे गाँव से बंबई की बस्ती धारावी आया था। यहाँ के अपराधियों के साथ रहकर वह एक बड़ा तस्कर बन जाता है। गलत काम में संलग्न होने के बावजूद उसकी मानवता खत्म नहीं होती। गरीबों की वह मदद करता है और अपनी पत्नी व बच्चों पर अपने अपराध कर्म की छाया नहीं पड़ने देना चाहता है। लेकिन उसके प्रतिद्वंद्वी तस्कर गुट के लोग उसे मारने की फिराक में हैं। एक हमले में वेलु की पत्नी और बेटा मारे जाते हैं। उसकी नाराज बेटी उसे छोड़कर चली जाती है। बस्ती के लोगों की शुभकामनाओं के भरोसे वह अकेला जीवन काटता है। आत्मचिंतन के बावजूद वेलु समझ नहीं पाता कि उससे कहाँ भूल हुई? परिस्थितियों ने उसे जिस रूप में ढाला, वह

उसकी नियति थी। एक दिन पुलिस वेलु को पकड़कर ले जाती है। जेल से रिहा होने पर उसके ही गैंग का एक आदमी उसे मार डालता है। लोग अपने हीरो को दुःखद मौत मरता देखते हैं।

□ तमिल/ १९८७/ १४५ मिनट/ रंगीन □ निर्देशक : मणि रत्नम् □ संगीत : इलैया राजा □ पात्र : कमल हासन/ सुरन्या/ जनकराज।

इजाजत

बारिश से भीगे रेलवे स्टेशन के प्रतीक्षालय में एक महिला और एक पुरुष की मुलाकात होती है। दोनों को सुबह की ट्रेन पकड़नी है, जिसके पहले उनके पास कुछ घंटों का अंतराल है। इसी दौरान वे एक-दूसरे को पहचानते हैं। कुछ बरसों पूर्व वे पति-पत्नी थे। पुरुष का नाम है महेन्द्र और स्त्री का सुधा। दांपत्य के त्रिकोण ने उनके बीच दूरियाँ पैदा कर दी थीं। महेन्द्र की जिंदगी में एक लड़की का आगमन इसका कारण बना, जिसका प्यार उसके प्रति पागलपन की हद तक था। अनपेक्षित परिस्थितियों में अजनबी की तरह मिले महेन्द्र और सुधा स्टेशन पर सारी रात अपने अतीत की गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश करते हैं। हालाँकि उन्हें मालूम है, सुबह होते ही इन सारी बातों का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। अपने विशिष्ट चरित्र चित्रण और गंभीर कथानक के लिए यह फिल्म बेहद चर्चित हुई थी।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९८७/ १११ मिनट □ निर्देशक : गुलजार □ संगीत : आर.डी. बर्मन □ पात्र : नसीरुद्दीन शाह/ रेखा/ अनुराधा पटेल।

फेरा (वापसी)

फेरा एक कलाकार के जीवन की विडंबनाओं की कहानी है। थिएटर में गहरी रुचि रखने वाले शशांक को विरासत के बतौर मिलता है एक टूटा-फूटा मकान और कला के प्रति प्रेम का दर्जा। वह बंगाल के प्रसिद्ध लोक नाट्य जात्रा के लिए नाटक लिखता है। उसके चरित्र वास्तविक जिंदगी के विपरीत जीवन के उच्चादर्शों में यकीन रखने वाले हैं जिनके माध्यम से वह समाज में नव जागरण का संदेश प्रसारित करना चाहता है। मगर इसके बदले उसे मिलती हैं रुसवाइयाँ और कठोर हकीकत। उसकी पत्नी एक दूसरे आदमी के लिए उसे छोड़कर चली जाती है। वह अपनी विधवा बहन और उसके छोटे बच्चे कानू के साथ जीवन गुजारता है। मानव संबंधों और कलात्मक सृजन को लेकर उसके मन में कई विचार हैं, जिन्हें वह किसी के साथ बाँट नहीं पाता। नन्हा कानू उसका एकमात्र दोस्त है। थिएटर के आदर्शलोक और यथार्थ के बीच शशांक की जिंदगी झूलती रहती है।

□ बंगला/ रंगीन/ १९८७/ ९० मिनट □ निर्देशक : बुद्धदेव दासगुप्ता □ पात्र : अलकनंदा/ सुब्रत नंदी/ सुनील मुखर्जी।

स्वाती थिरूनाल

भावुक और स्वाभिमानी नौजवान सामंत 'थिरूनाल' कला के प्रति गहरा प्रेम रखता है। ब्रिटिश आधिपत्य वाले भारत की एक छोटी रियासत में उसकी नाट्य संगीत कला की साधना जारी रहती है। सारे जागीरदार जहाँ अँगरेज हुकूमत के आगे नाक रगड़ते हैं वहीं थिरूनाल इसे कोई महत्व नहीं देता। 'तंजावुर' से आई प्रतिभाशाली नर्तकी सुगंध वल्ली उसे अपनी ओर आकृष्ट करती है। लेकिन थिरूनाल की संगीत प्रशिक्षिका को यह संबंध पसंद नहीं। सरकार का नया अँगरेज जनरल इलाके के सामाजिक परिवेश को दूषित कर देता है। गाँव से दूर त्रावनकोर में उपद्रव की सूचनाएँ मिलती हैं। संवेदनशील थिरूनाल कला के पतन का माहौल देखकर एकांतवास अपना लेता है। एक दिन निद्रालीन अवस्था में ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

□ मलयालम/ रंगीन/ १९८७/ १३५ मिनट □ निर्देशक : लेनिन राजेन्द्रन् □ पात्र : अनंत नाग/ श्रीविद्या/ अम्बिका।
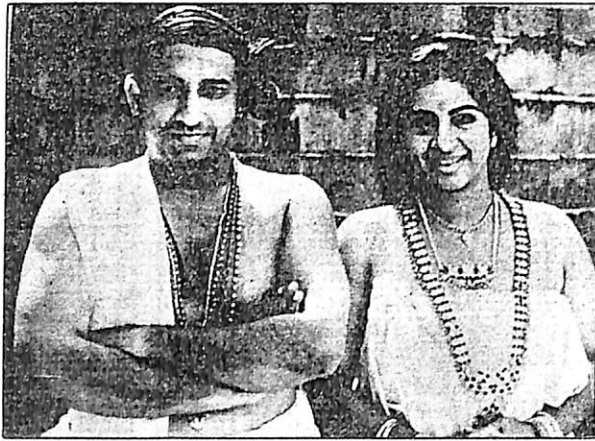
स्वाति थिरूनाल (मलयालम)

तबरना कथे

नगर पालिका में भृत्य की नौकरी करने वाले तबरा शेट्टी को कर संग्रहकर्ता के पद पर अस्थाई नियुक्ति दी जाती है ताकि वह कर विरोध पर उतारू कहवा उत्पादकों से कर वसूले। तबरा इस क्षणिक पदोन्नति से फूला नहीं समाता। मगर उसकी खुशियाँ तब हवा हो जाती हैं जब गाँव के किसानों का विरोध उसे झेलना पड़ता है। घबराया तबरा कर लिए बगैर वसूली की झूठी रसीदें काट देता है जिसकी सजा उसे अपनी मामूली तनख्वाह में से राशि कटवाकर उठानी पड़ती है। आर्थिक तंगी के कठिन दौर में उसकी पत्नी को दुःसाध्य रोग हो जाता है। उसके इलाज हेतु वह सरकार से अग्रिम पेंशन के रूप में ऋण की माँग करता है। उसकी अपील दफ्तरों की नौकरशाही में महीनों घिसटती रहती है। आखिर उसे ऋण लंबी प्रतीक्षा के बाद मिलता है। मगर तब तक उसकी बीवी मृत्युशैया पर होती है और बेटा घर से भाग चुका होता है। खिन्न तबरा ऋण में मिली सारी राशि को देश की आजादी के रजत जयंती अवसर पर एकत्र किए जा रहे कल्याण कोष में दान दे देता है।

□ कन्नड़/ रंगीन/ १९८७/ १४० मिनट □ निर्देशक : गिरीश कसरावल्ली □ संगीत : एल. वैद्यनाथन □ पात्र : चारू हासन/ आर. नागेश/ मास्टर संतोष।

अंतर्जली यात्रा

पिछली शताब्दी में बंगाल के गंगा तटीय गाँवों में विधुर व्यक्तियों के मरने से पूर्व उनके विवाह की प्रथा प्रचलित थी ताकि उन्हें मोक्ष मिल सके। ऐसे ही एक गाँव के समीप नदी तट पर एक वयोवृद्ध मरणासन्न ब्राह्मण को लाया जाता है। ज्योतिषी बताते हैं कि इसके साथ किसी युवती को सती होना होगा। लोग गाँव के एक गरीब ब्राह्मण को राजी कर लेते हैं कि वह अपनी युवा बेटी यशोवती का विवाह वृद्ध से कर दे। मासूम यशोवती को इस भयानक अत्याचार में धकेला जाते देख नदी तट पर शवों को जलाने का काम करने वाला अस्पृश्य जाति का बैजू इसका विरोध करता है। मगर उसकी बात सुनी नहीं जाती। गाँव वाले यशोवती को उसके मृत्युशैया पर लेटे दूल्हे के साथ छोड़ जाते हैं। वृद्ध की मृत्यु होने पर उसके सती होने का समारोह आयोजित किया जाएगा। असहाय अवस्था में यशोवती धूप, बारिश, अंधड़ झेलती हुई पति की मौत और तदनंतर अपने सती होने की प्रतीक्षा करती है। नदी के कीचड़ भरे तट पर वृद्ध की शैया बिछा दी जाती है। मगर उसका देहांत तुरंत नहीं होता। जवान पत्नी को देखकर उसकी जिजीविषा जाग उठती है। बैजू, यशोवती की व्यथा का मूल साक्षी बना

रहता है। वह उसे भागने की राह दिखाता है। मगर लोक-लाज के बंधन में जकड़ी यशोवती इसके लिए राजी नहीं होती। एक दिन नदी की लहर में बहते वृद्ध पति के शरीर को बचाने के प्रयास में वह खुद भी जान दे देती है। हिंदी में यह महायात्रा के नाम से बनी है।

□ बंगला/ रंगीन/ १९८७/ १६० मिनट □ निर्देशक : गौतम घोष □ पात्र : शत्रुघ्न सिन्हा/ शपा घोष/ प्रमोद गांगुली।

पिरावी

गांव के बस अड्डे पर एक बूढ़ा व्यक्ति रोज अपने बेटे रघु का इंतजार करता है, मगर उसकी प्रतीक्षा खत्म नहीं होती। गाँव से दूर त्रिवेन्द्रम के इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ने वाले रघु की बहन मालती को पता चलता है कि उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। रघु के पिता उसकी रिहाई के लिए त्रिवेन्द्रम् जाकर गृहमंत्री से मिलते हैं, जिसके बच्चों को उन्होंने कभी पढ़ाया था। मंत्री का अनुरोध पत्र देखकर पुलिस महानिदेशक रघु के पिता को झूठे आश्वासन के साथ वापस भेज देता है। सीधे-सादे वृद्ध पिता राजनीतिक प्रभाव इस्तेमाल करने के बाद बेटे की वापसी का भरोसा लेकर गांव लौट आते हैं। लेकिन मालती मामला संदिग्ध महसूस कर खुद अपने भाई के बारे में जानकारी एकत्र करने की कोशिश करती है। रघु के मित्रों से उसे मालूम होता है कि कॉलेज के समारोह में सरकार विरोधी गीत गाने के आरोप में उसे गिरफ्तार कर लिया गया था। और संभवतः पुलिस लॉक-अप में उत्पीड़न से उसकी मृत्यु हो गई। मालती यह सच्चाई अपने बूढ़े पिता को नहीं बता पाती, जो अब भी रघु के लौटने का सपना देखते रहते हैं।

□ कन्नड़/ रंगीन/ १९८८/ ११० मिनट □ निर्देशक : शाजी एन. करुण □ पात्र : प्रेमजी/ अर्चना/ सी.वी. श्रीरमन।

कोलाहल

असम के एक छोटे कस्बे का जनजीवन भारत के अन्य हिस्सों सा खास लय में ढला है। भीड़-भाड़ से भरी सड़कों से गुजरती लॉरियों में से कुछ बच्चे अनाज चुराने का काम करते हैं। इन्हीं में एक बच्चा मोती भी है जिसकी माँ किरण उसके साथ बदहाली का जीवन गुजारती है। काम की तलाश में दूसरे शहर गया किरण का पति अरसे बाद भी नहीं लौटा। उसका गुजारा बेटे द्वारा चुराकर लाए जाने वाले अन्न के सहारे होता है। वह खुद पुरुषों की गलत नजर के कारण कोई काम नहीं कर पाती। एक दिन उसका नन्हा बेटा अनाज चुराते वक्त बोरियों के नीचे दबकर मर जाता है। ट्रक चालक इन्हीं में से एक बोरी चावल के बदले किरण से अस्मत के सौदे का प्रस्ताव रखता है जिसे वह नकार देती है। निःसहाय किरण पर एक विपत्ति तब टूटती है, जब उसे पता चलता है कि उसका पति दूसरे गाँव में पुनर्विवाह कर चैन की जिंदगी बसर कर रहा है।

□ असमिया/ रंगीन/ १९८८/ ११८ मिनट □ निर्देशक : भाबेन्द्रनाथ सैकिया □ पात्र : रून्नू देवी ठाकुर/ विभुरंजन चौधरी/ अरुण नाथ।

१९२१

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सन् १९२१ का विशेष महत्व है। इस वर्ष केरल के मालाबार तट पर रहने वाले मुस्लिम किसानों ने अँगरेज सत्ता के विरुद्ध बगावत की थी जिसे प्रख्यात भोपला विद्रोह के नाम से जाना जाता है। इसी ऐतिहासिक घटनाक्रम को फिल्म में प्रस्तुत किया गया है। तथ्यों की प्रामाणिकता और इतिहास के जीवंत दृश्यांकन के लिहाज से इस फिल्म का खास महत्व है। फिल्म 'भोपला विद्रोह' मुस्लिम किसानों के हिंदू जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष मानने की धारणा गलत साबित करते हुए इसे हिंदुओं और मुसलमानों के ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ सम्मिलित संघर्ष के रूप में चित्रित करती है। इस फिल्म के दृश्य इतने सजीव हैं कि दर्शक को लगता है जैसे वह रणभूमि में बैठा हो।

मलयालम फिल्म १९२१

□ मलयालम/ रंगीन/ १९८८/ १८५ मिनट □ निर्देशक : आई.वी. शशि □ पात्र : मैमूटी/ मधु/ सुरेश/ गोपी।

राख

निर्देशक बासु भट्टाचार्य के बेटे **आदित्य** की यह पहली फिल्म प्रभावशाली प्रस्तुति के लिए काफी सराही गई थी। पंगु कानून व्यवस्था और अपराधियों द्वारा समाज में फैलाई गई अराजकता के बीच फँसे एक नौजवान की यह

भारत का राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय

एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा फिल्म संग्रहालय

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अंतर्गत फरवरी १९६४ में पुणे में स्थापित □ राष्ट्रीय सिनेमा का संरक्षण/ शोध और अध्ययन □ विश्व सिनेमा की सर्वोत्तम फिल्मों का संकलन और प्रदर्शन □ राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय में वर्तमान संग्रह इस प्रकार है-

- □ फिल्म १२,४८७
- □ पत्रिकाएँ १५२
- □ प्रेस कतरनें १,२१,२७३
- □ फोटोग्राफ ९५,७५८
- □ ऑडियो टेप १५०
- □ माइक्रो फिल्म १,९५७
- □ पोस्टर ६,०२२
- □ फिल्म पुस्तकें २०,३७७
- □ पटकथाएँ २१,०८९
- □ पेम्फलेट-बुकलेट ७,२१६
- □ ग्रोमोफोन रिकॉर्ड १,८२२
- □ वीडियो कैसेट ८०८
- □ स्लाइड्स २,८२०
- □ फिल्मी गानों की किताबें ५,८६८

धर्मेन्द्र : श्रेष्ठ फिल्में

- ☐ शोला और शबनम (१९६१) : तरला
- ☐ अनपढ़ (१९६२) : माला सिन्हा
- ☐ सूरत और सीरत (१९६२) : नूतन
- ☐ बंदिनी (१९६३) : नूतन
- ☐ ममता (१९६४) : सुचित्रा सेन
- ☐ काजल (१९६५) : मीना कुमारी
- ☐ अनुपमा (१९६६) : शर्मिला ठाकुर
- ☐ फूल और पत्थर (१९६६) : मीना कुमारी
- ☐ सत्यकाम (१९६९) : शर्मिला ठाकुर
- ☐ जीवन-मृत्यु (१९७०) : राखी
- ☐ मेरा गाँव मेरा देश (१९७१) : आशा पारिख
- ☐ सीता और गीता (१९७२) : हेमा मालिनी
- ☐ जुगनू (१९७३) : हेमा मालिनी
- ☐ लोफर (१९७३) : मुमताज
- ☐ चैताली (१९७५) : सायरा बानो
- ☐ शोले (१९७५) : हेमा मालिनी
- ☐ चुपके-चुपके (१९७७) : शर्मिला ठाकुर
- ☐ शालीमार (१९७८) : जीनत अमान
- ☐ रजिया-सुल्तान (१९८४) : हेमा मालिनी
- ☐ हुकूमत (१९८७) : रति अग्निहोत्री
- ☐ हथियार (१९८९)

हेमा मालिनी : श्रेष्ठ फिल्में

- ☐ अभिनेत्री (१९७०) : शशि कपूर
- ☐ शराफत (१९७०) : धर्मेन्द्र
- ☐ जॉनी मेरा नाम (१९७०) : देव आनंद
- ☐ अंदाज (१९७०) : शम्मी कपूर
- ☐ सीता और गीता (१९७२) : धर्मेन्द्र
- ☐ राजा जानी (१९७२) : धर्मेन्द्र
- ☐ जुगनू (१९७३) : धर्मेन्द्र
- ☐ शोले (१९७५) : धर्मेन्द्र
- ☐ चरस (१९७६) : धर्मेन्द्र
- ☐ आजाद (१९७८) : धर्मेन्द्र
- ☐ पलकों की छाँव में (१९७८) : राजेश खन्ना
- ☐ संन्यासी (१९७९) : मनोज कुमार
- ☐ लाल पत्थर (१९७९) : राजकुमार
- ☐ मीरा (१९७९) : विनोद खन्ना
- ☐ किनारा (१९८०) : जीतेन्द्र
- ☐ खुशबू (१९८०) : जीतेन्द्र
- ☐ क्रांति (१९८०) : मनोज कुमार
- ☐ रजिया सुल्तान (१९८४) : धर्मेन्द्र
- ☐ एक चादर मैली-सी (१९८७) : ऋषि कपूर
- ☐ रिहाई (१९९०) : विनोद खन्ना

कहानी देश के मौजूदा परिदृश्य पर एक अलग दृष्टिकोण से रोशनी डालती है। सौम्य स्वभाव के युवक आमिर के सामने उसकी प्रेमिका के साथ सामूहिक बलात्कार होता है। लेकिन अपराधियो के खिलाफ पुलिस कोई कार्रवाई नही कर पाती, क्योकि वे एक ताकतवर माफिया समूह से जुडे हैं। इंस्पेक्टर कपूर द्वारा आमिर की मदद के प्रयास पर उसे निलंबित कर दिया जाता है। नौजवान आमिर न केवल बलात्कार के हादसे से परेशान है, बल्कि इसलिए भी कि वह एक नपुंसक व्यक्ति की तरह अपराधियों के आगे सहमा हुआ खडा रहा। उसकी अनुभूतियाँ राख में शरारे को ढूँढने की मुश्किल कोशिश बनकर रह जाती है।

☐ हिंदी/ रंगीन/ १९८८/ १५४ मिनट ☐ निर्देशक : आदित्य भट्टाचार्य ☐ संगीत : रंजीत बारोट ☐ पात्र : पंकज कपूर/ सुप्रिया पाठक/ आमिर खान।

सलाम बॉम्बे

हाल के वर्षों में अगर कोई भारतीय फिल्म अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक चर्चित हुई, तो वह है **सलाम बॉम्बे।** इस फिल्म को कान फिल्मोत्सव में प्रतिष्ठित पॉम देओर पुरस्कार प्राप्त हुआ था। बंबई महानगर की चकाचौंध में फुटपाथ के हाशिए पर अपनी जिंदगी की इबारत लिखने वाले बेसहारा, गरीब लोगों के जीवन का यह फिल्म बेहद यथार्थपरक चित्रण करती है। इसके निर्माण के लिए शोध प्रक्रिया के तहत निर्देशिका **मीरा नायर** ने कई दिन बंबई की गंदी बस्तियों में गुजारे थे। वृत्तचित्र नुमा इस फिल्म के चरित्रों के रूप में असली जिंदगी के पात्र लिए गए हैं। झुग्गी-झोपड़ियों, सुधार गृह, जेल, अनाथालय जैसी जगहों के बच्चों को लेकर उनसे वास्तविक जीवन का अभिनय कराया गया। फिल्म के मुख्य पात्र 'कृष्णा' का चरित्र ऐसे ही एक बच्चे ने निभाया है। कृष्णा अपने गाँव के सर्कस से निकाले जाने के बाद काम की तलाश में बंबई आता है। यहाँ उसे जिंदगी के दूसरे ही चेहरे के दर्शन होते हैं। जिसमें अपराध है, भुखमरी है, और कराहता हुआ सच है। एक होटल में चाय पिलाने वाले लड़के का काम करने वाले कृष्णा का सामना महानगर में वेश्यावृत्ति, मादक पदार्थों की सौदागरी, भाड़े पर हत्या जैसे धंधों से जुड़े लोगों के साथ होता है। कृष्णा का स्वप्न है कि वह किराए के पैसे जुटाने के बाद वापस अपनी माँ के पास गाँव लौट जाएगा। लेकिन उसका यह सपना बंबई की सर्पिल सड़कों में खोकर रह जाता है। फिल्म की एक प्रमुख विशेषता प्रख्यात वॉयलिन वादक एल.सुब्रमण्यम का संगीत है।
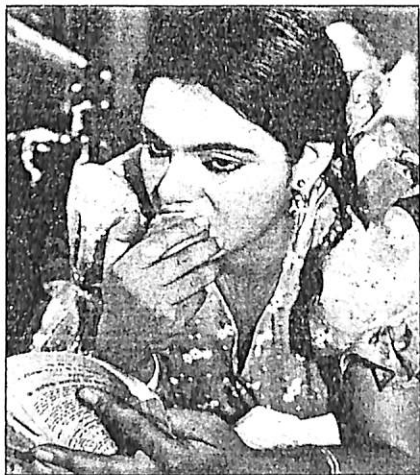
☐ हिंदी/ रंगीन/ १९८८/ ११३ मिनट, ☐ निर्देशक: मीरा नायर, ☐ संगीत: एल. सुब्रमण्यम, ☐ पात्र: शफीक सईद/ रघुवीर यादव/ नाना पाटेकर/ अनीता कँवर।

मीरा नायर की सलाम बॉम्बे

दासी

निजामशाही के दौरान आंध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में दासी प्रथा जोरों पर थी। परिवार में विवाह के दौरान लड़की के साथ एक दासी को भी बिदा किया जाता था, जो वर पक्ष के घर बँधुआ मजदूर की तरह काम करती थी। फिल्म, एक ऐसी ही दासी कमलाक्षी की मार्मिक कहानी है, जिसे अपनी स्वामिनी जानकी के साथ बिदा किया जाता है। जानकी का दुष्चरित्र पति कमलाक्षी से जानवरों की तरह काम कराने के अलावा उसको वासना पूर्ति का साधन भी बनाता है। दिन-रात घर के कामों में जुटी कमलाक्षी को भोजन के रूप में सिर्फ जूठन दी जाती है। दिन के सारे प्रहर पसीने में झोंकने के बाद रात्रि को उसे जानकी के पति और उसके लफंगे दोस्तों की शैयासंगिनी बनना पड़ता है। एक दिन उसे पता चलता है, कि वह गर्भवती हो चुकी है। जानकी, कमलाक्षी को गर्भपात के लिए मजबूर करती है। स्वयं बंध्या होने और पति के अपनी दासी से अवैध संबंध की पीड़ा के कारण जानकी को कमलाक्षी का माँ बनना ईर्ष्यास्वरूप बर्दाश्त नहीं होता। गर्भस्थ शिशु की दूषित वंशावली के बावजूद दासी उसका वध नहीं करना चाहती। पर अंततः इस कठोर आत्म स्वीकार के साथ कि उसकी अपनी कोई पहचान नहीं, वह गर्भपात के लिए तैयार हो जाती है। इस मर्मांतक पीड़ा से गुजरने के बाद उसे फिर अपने नियमित क्रम में जुटना पड़ता है। श्रेष्ठ फिल्मांकन के लिए 'दासी' को ५ राष्ट्रीय अवॉर्ड दिए गए थे।

☐ तेलुगु/ रंगीन/ १९८८/ ९४ मिनट ☐ निर्देशक : बी. नरसिंहराव ☐ पात्र : अर्चना/ रूपा/ भूपाल रेड्डी।

एक दिन अचानक

एक अधेड़ प्राध्यापक किसी को सूचित किए बगैर अचानक एक दिन घर से कहीं चले जाते हैं। उनका परिवार इससे परेशान हो उठता है। उन्हें ढूँढने की सारी कोशिशें असफल रहती हैं। किताबों में हर वक्त खोए रहने वाले प्रोफेसर के चले जाने के बाद परिवार के सदस्य उनके बारे में अपनी- अपनी मान्यताओं पर विचार कर उनकी शख्सियत को समझने का प्रयास करते हैं। प्राध्यापक के बेटे की राय में वे एक पुरातनपंथी, अड़ियल और सख्त दिल इंसान थे। बड़ी बेटी उन्हें संवेदनशील बुद्धिजीवी के रूप में देखती थी। जबकि छोटी पुत्री के अनुसार उनका मिजाज दिखावटी ज्यादा था। पत्नी की धारणा से प्रोफेसर एक एकांतप्रिय, अध्यवसाई व्यक्ति थे, जिन्हें दुनियादारी से कोई मतलब नहीं था।

इस प्रकार अलग-अलग कसौटियों पर प्राध्यापक का व्यक्तित्व परीक्षण किया जाता है, ताकि उनके घर से भागने की वजह जानी जा सके। पत्नी को डर है कि वे कहीं अपनी अंतरंग अध्यापिका मित्र के साथ न रहने चले गए हों। एक वर्ष बाद भी प्रोफेसर घर वापस नहीं लौटते। परिवार के सदस्य बारिश में नहाई एक शाम उनका ही विषय लेकर चर्चारत् हैं। प्रोफेसर की पत्नी अपने बच्चों को

उनके आखिरी शब्द बताती है, जो जाने से पहले उन्होंने कहे थे 'जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि आदमी के पास जीने के लिए सिर्फ एक ही जिंदगी होती है।'
□ हिंदी/ रंगीन/ १९८८/ १०५ मिनट, □ निर्देशक: मृणाल सेन, □ पात्र: श्रीराम लागू/ उत्तरा बावकर/ शबाना आजमी/ अपर्णा सेन/ अर्जुन चक्रवर्ती।

तृषाग्नि

शरदेंदु बंदोपाध्याय की कहानी पर आधारित यह फिल्म आध्यात्म और लौकिकता के गूढ़ तात्विक प्रश्नों पर विचार करती है। बौद्धमत में यह विषय दो संप्रदायों के मानसिक द्वंद्व का आधार रहा है। फिल्म का कथानक ईसा पूर्व पहली शताब्दी का है। मध्य एशिया के एक बौद्धमठ के प्रमुख पृथमित्र संयत स्वभाव के दयालु वृद्ध संन्यासी हैं। एक दिन रेतीले तूफान में उनका मठ बुरी तरह घिर जाता है। तूफान खत्म होने पर सिर्फ चार व्यक्ति जीवित बचते हैं: पृथमित्र, उनका युवा शिष्य उच्चंड और दो नवजात शिशु निर्वाण व इति। ये लोग एक नए स्थान पर अपनी जिंदगी फिर से शुरू करते हैं। पृथमित्र का शिष्य उच्चंड उनके विपरीत उग्र और नैतिक रूप से दुर्बल स्वभाव वाला व्यक्ति है। मरुभूमि के निर्जन परिवेश और आश्रम की कड़ी दिनचर्या के बीच निर्वाण और इति बड़े होते हैं। यौवन का स्पर्श उन्हें परस्पर आकर्षित करता है। मगर निर्वाण के धार्मिक संस्कार उसे दैहिक सुख और आध्यात्मिक आनंद के बीच चयन की उलझन में जकड़ डालते हैं। इति उसे अपनी ओर खींचना चाहती है। एक दिन उच्चंड दोनों के बीच अंतरंगता को देखकर निर्वाण को फटकारता है। निर्वाण, इति के प्रति मोहासक्ति त्यागकर संन्यास साधना में जुट जाता है। इति यह बात समझती है, कि उच्चंड ने ईर्ष्या भाव से निर्वाण को ब्रह्मचर्य की ओर प्रवृत्त किया था ताकि वह स्वयं इति को पा सके। इति के प्रयासों से निर्वाण एक बार फिर उसकी ओर आकृष्ट होता है। उसकी साधना खंडित होने पर उसे इति के साथ मठ से निष्कासित कर जाता है। एक प्रचंड रेगिस्तानी आँधी इनके अलावा पृथमित्र और उच्चंड को भी अपने में समेट लेती है।
□ हिंदी/ रंगीन/ १९८८/ १३० मिनट, □ निर्देशक: नब्येंदु घोष, □ संगीत: सलिल चौधरी, □ पात्र: आलोक नाथ/ नाना पाटेकर/ नितीश भारद्वाज/ पल्लवी जोशी।

बनानी

तपन बरुआ एक ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ वन अधिकारी है। जंगलों को सुरक्षित और बनाच्छादित बनाए रखने के प्रयास में उसे लकड़ी की अवैध कटाई करने वाले धूर्त लोगों की आँख की किरकिरी बनना पड़ता है। ये लोग धन-बल पर उसे बार-बार तबादले के लिए मजबूर करते हैं। तपन की पत्नी को यह रोज-रोज की जिल्लत बर्दाश्त नहीं होती। वह अपने पति के काम के प्रति अत्यधिक समर्पण को लेकर भी नाराज है। इस हालत में उसे घर के लिए समय नहीं मिल पाता। तपन की एकमात्र बेटी गंभीर हृदय रोग से पीड़ित है। उसके इलाज के लिए वह पैसों का प्रबंध नहीं कर पाता। स्थानांतरित होकर नए गाँव में आए तपन को एक नई उम्मीद नजर आती है, जब वह ग्रामीणों के बीच वन संरक्षण की चेतना जगाने में सफल होता है। उसकी पत्नी भी अब उसके प्रति अपनी धारणा बदलकर लोगों के बीच काम करने लगती है। भ्रष्ट अधिकारियों और लकड़ी के ठेकेदारों से टकराव के कारण एक बार फिर तपन का तबादला कर दिया जाता है। मगर उसके विचारों से प्रेरित गाँव वाले वन नष्ट करने वालों के खिलाफ खुद मोर्चा संभाल लेते हैं।
□ असमिया/ रंगीन/ १९८९/ १०८ मिनट, □ निर्देशक: जाह्नू बरुआ, □ पात्र: सुशील गोस्वामी/ मृदुला बरुआ/ देवू फुकन।

फिल्म सती में शबाना आजमी

सती

१९वीं शताब्दी के बंगाल में एक गूँगी, अनाथ लड़की 'उमा' को ज्योतिषी मनहूस करार देते हैं। उनके अनुसार 'उमा' शादी के उपरांत बहुत जल्द विधवा हो जाएगी। एक रूढ़िवादी, चालाक युवा शिक्षक इस खतरे से मुक्ति का तरीका यह बताता है, कि उमा की शादी किसी पेड़ के साथ कर दी जाए। शास्त्र विधान के लिहाज से इसके बाद वह निःशंक होकर मनुष्य वर भी अपना सकती है। 'उमा' के वृद्ध चाचा न चाहते हुए भी लौकाचार के दबाव में उसकी शादी बरगद के एक पेड़ से कर देते हैं। इसी वृक्ष की छाया में 'उमा' ने अपना बचपन गुजारा था। एक दिन उसका विवाह इस पेड़ से कराने वाला धूर्त शिक्षक उसे फुसलाकर गर्भवती कर देता है। गाँव की महिलाएँ उसको इस अवस्था में देख प्रताड़ित करती हैं। उमा को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। कहीं ठिकाना न मिलने पर वह अपने वृक्ष-पति के साए में शरण लेती है। जहाँ एक बरसाती रात बिजली गिरने से उसकी मृत्यु हो जाती है। बरगद के झरे हुए पत्ते की उसकी निस्पंद देह ढँक लेते हैं।
□ बंगला/ रंगीन/ १९८९/ १४० मिनट, □ निर्देशक: अपर्णा सेन, □ पात्र: शबाना आजमी/ काली बेनर्जी/ प्रदीप मुखर्जी/ रत्ना घोषाल।

गणशत्रु

पश्चिम बंगाल का छोटा सा कस्बा चंडीपुर एक आकर्षक पर्यटक और तीर्थस्थल माना जाता है। यहाँ के प्रसिद्ध त्रिपुरेश्वर मंदिर में देश के कोने-कोने से लोग दर्शनार्थ आते हैं। स्थानीय अस्पताल के प्रमुख चिकित्सक अशोक गुप्ता को एक दिन पता चलता है, कि मंदिर के समीप रहने वाले लोग दूषित जल से होने वाली बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। इस पानी की आपूर्ति मंदिर से होती है, इसलिए वे अपने छोटे भाई निशीथ, जो नगर पालिका का अध्यक्ष भी है, से साफ-सफाई हेतु मंदिर बंद करने का अनुरोध करते हैं। वह इसके लिए राजी नहीं होता, क्योंकि मंदिर का चढ़ावा नगर पालिका की आय का प्रमुख स्रोत है। इसके अलावा निशीथ की भागीदारी मंदिर निर्माण करवाने वाले व्यवसाई से होने के कारण वह किसी विवाद में नहीं उलझना चाहता। डॉ. गुप्ता असहाय होकर अपनी आँखों के सामने कस्बे के लोगों को मरते देखते हैं। उनका भाई उन्हें गणशत्रु (लोगों का दुश्मन) के रूप में बदनाम कर देता है, क्योंकि उन्होंने मंदिर के पवित्र जल को लेकर शंका की थी। धर्म की भीरु धारणाओं में जकड़े लोग डॉ. गुप्ता को शहर छोड़ने पर मजबूर कर देते हैं। उनका परिवार घर से बेदखल कर दिया जाता है। इसके बावजूद मानवता के प्रति अनुराग की भावना उनमें कमजोर नहीं पड़ती। आखिर उनका प्रयास सफल होता है, जब कुछ युवक धार्मिक जड़ता और कपट के खिलाफ खड़े होकर मंदिर के पानी की जाँच हेतु आंदोलन शुरू करते हैं।
□ बंगला/ रंगीन/ १९८९/ १०० मिनट, □ निर्देशक:सत्यजीत राय, □ संगीत: सत्यजीत राय, □ पात्र: सौमित्र चटर्जी/ धृतमान चटर्जी/ रूमा गुहा ठाकुरता/ दीपांकर डे/ ममता शंकर।

खयाल गाथा

खयाल गायकी हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक प्रमुख विधा है। इसके उद्‌भव और विकास के बारे में कई कथाएँ प्रचलित रही हैं। इन सबको फिल्म में समेटने का प्रयास किया गया है। खयाल को प्रस्तुतिकरण के लिहाज से न केवल श्रमसाध्य गायन कला माना जाता है, बल्कि इसके स्वरूप में काफी वैविध्य का भी समावेश है। लोक संगीत और भक्ति संगीत के विभिन्न रूपों में इसका क्रमिक विकास हुआ। आगे चलकर खयाल गायकी, शास्त्रीय नृत्य के साथ भी अभिन्न रूप से जुड़ी। निर्देशक कुमार शाहनी ने अपनी इस

वर्णनात्मक फिल्म में विविध प्रतीकों, दृष्टव्य, गुरु-शिष्य संबंध आदि के चित्रांकन द्वारा ख़याल की गौरवपूर्ण, समृद्ध परंपरा को प्रस्तुत किया है। फिल्म, कला की सौंदर्य शास्त्रीय विवेचना के लिहाज से काफी महत्वपूर्ण मानी जाती है। यह फिल्म मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम के लिए निर्मित की गई है। मांडव/ ग्वालियर तथा भरतपुर में इसकी शूटिंग हुई है।

□ हिंदी/रंगीन/१९८९/१०३ मिनट, □ निर्देशक : कुमार शाहनी/, □ पात्र : बिरजू महाराज/ अलकनंदा समर्थ/ मीता वशिष्ठ।

संजीव कुमार : श्रेष्ठ फिल्में

- □ संघर्ष (१९६८)
- □ राजा और रंक (१९६८) : कुमकुम
- □ अनोखी रात (१९६८) : जांहिदा
- □ दस्तक (१९७०) : रेहाना सुल्ताना
- □ अनुभव (१९७१) : तनूजा
- □ कोशिश (१९७२) : जया भादुड़ी
- □ मनचली (१९७३) : लीना चंदावरकर
- □ अनहोनी (१९७३) : लीना चंदावरकर
- □ अनामिका (१९७३) : जया भादुड़ी
- □ मौसम (१९७५) : शर्मिला टैगोर
- □ आँधी (१९७५) : सुचित्रा सेन
- □ शोले (१९७५)
- □ अर्जुन पंडित (१९७६)
- □ खिलौना (१९७६) : मुमताज
- □ शतरंज के खिलाड़ी (१९७७) : शबाना
- □ त्रिशूल (१९७८)
- □ हमारे तुम्हारे (१९७९) : राखी
- □ गृह प्रवेश (१९८०) : शर्मिला टैगोर
- □ इतनी-सी बात (१९८१) : मौसमी
- □ अंगूर (१९८२) : मौसमी

सूर्योदय

महाराष्ट्र के एक गांव की सीमा के समीप कुछ खानाबदोश परिवार डेरा डालते हैं। लेकिन उनकी अस्थाई मौजूदगी भी ग्रामवासियों को सहन नहीं होती। वे इनका विरोध करते हैं। भोले-भाले फक्कड़ परिवारों की दुर्दशा देख एक सामाजिक कार्यकर्ता उनकी मदद के उद्देश्य से एक नेता को उनसे मिलाने लाता है। नेताजी इन लोगों को अपनी झोपड़ियाँ जलाने की सलाह देते हैं, ताकि इसका इल्जाम ग्रामीणों पर लगाकर सरकार से मुआवजा वसूल किया जा सके। कबीलाई परिवार बेहतरी की उम्मीद में अपना घर जलाने को राजी हो जाते हैं। लेकिन खुद अपनी तबाही का सबब बनने के बावजूद उनकी समस्या का निराकरण नहीं होता। राजनीतिज्ञ अग्निकांड की घटना को स्वार्थ सिद्धि का जरिया बना लेते हैं, दफ्तरों में कोई सुनवाई नहीं होती और अखबार वालों को इसमें सिर्फ एक 'मसाला' नजर आता है। इस सारी खींचतान के बीच बेघर परिवारों की मुश्किलें गहराती जाती हैं। आखिर इनमें से एक युवक 'पिस्तल्यु' के सब्र का बाँध टूटता है, और वह अपने समुदाय से निर्भीकता की माँग करता है। ये लोग निश्चय करते हैं कि जिस तरह कलेजे पर पत्थर रखकर उन्होंने अपनी झोंपड़ियाँ जलाई थीं, उसी कलेजे से उनका निर्माण भी करेंगे।

□ मराठी/ रंगीन/ १९८९/ १०५ मिनट, □ निर्देशक: गंगाविहारी बोराटे, □ संगीत: आनंद मोडक, □ पात्र: नाना पाटेकर/ दीप्ति नवल/ नीलू फुले/ श्रीराम लागू।

सलीम लंगड़े पर मत रो

किसी भी देश में अल्पसंख्यक मानसिकता को समझ पाना आसान नहीं होता। कुछ अजीब तरह की कुंठाएँ उसे समाज की मुख्य धारा से अलग रखती हैं। बंबई की गरीब बस्ती में रहने वाला मुस्लिम युवक सलीम इस मानसिक बेचैनी का शिकार तो है ही, जहालत और अभावों से भरी जिंदगी उसे अपराध-कर्म की तरफ धकेल देती है। परिवार को पालने की कोशिश में वह खुद को अराजकता के जंगल के बीच खड़ा पाता है। उसके पिता जिस मिल में कार्यरत् थे, वह अब बंद हो चुकी है। घर का गुजारा उसकी अवैध स्रोतों से होने वाली कमाई के बूते पर चलता है। छुरेबाजी, गैंगवार, पुलिस अत्याचार आदि के दु:स्वप्न से गुजरते हुए सलीम की मुलाकात एक पढ़े-लिखे समझदार नौजवान असलम से होती है। जो खुद भी बेरोजगार और अल्पसंख्यक समुदाय का है, लेकिन सही और गलत के बीच निर्णय करने की क्षमता उसे सलीम की तरह अपराध का अंधा रास्ता अपनाने नहीं देती। असलम की समझाइश पर सलीम बुरे काम छोड़ देता है। लेकिन प्रतिद्वंद्वी उचक्कों के हाथों एक दिन उसकी मौत हो जाती है, एक गुमनाम और महत्वहीन मौत।

□ हिंदी / रंगीन/ १९८९/ १२० मिनट, □ निर्देशक: सईद मिर्जा, □ संगीत: शारंगदेव देव, □ पात्र: पवन मल्होत्रा/ आशुतोष गोवारीकर/ मकरंद देशपांडे।

दिशा

प्रतिदिन लाखों लोग बड़ी हसरत के साथ काम की तलाश में गाँवों से महानगर का रुख़ करते हैं लेकिन यहाँ उनकी जिंदगी पिंजरे के कबूतर-सी हो जाती है, जो न खुले आकाश में लौट सकता है, न भीतर की घुटन बर्दाश्त कर सकता है। दो किसान बसंत और सोमा महाराष्ट्र के एक छोटे ग्रामीण इलाके में अकाल और भुखमरी से तंग आकर बंबई आने का फैसला करते हैं। सोमा रुपए उधार लेकर नौकरी के लिए रिश्वत की व्यवस्था करता है। पेट भरने की समस्या तो इनकी यहाँ हल हो जाती है, लेकिन राहत का एक बड़ा हिस्सा इनकी जिंदगी से दूर हो जाता है। बंबई की तंग बस्तियों में हालत यह है कि लोगों को सोने के लिए अपनी बारी का इंतजार करना पड़ता है। एक खोली में दसियों लोग रहते हैं। इस घुटन भरी जिंदगी में सोमा तो किसी तरह खुद को शामिल कर लेता है, मगर वसंत को गाँव और अपनी नव ब्याहता पत्नी की याद सताती है। वह अपनी थोड़ी सी कमाई के उपहार खरीदकर उत्साह के साथ गाँव लौटता है। लेकिन यहाँ बीवी का संदिग्ध आचरण देखने के बाद उसके यकीन की दीवार दरक जाती है। और वह बंबई के नारकीय जीवन को झेलते रहने को मजबूर हो जाता है। उसके नगर का रुख करते वक्त सोमा गाँव वापसी की तैयारी में जुटा होता है। दिशा की तलाश में दिशाहीनता का यह आलम अनेक लोगों की नियति बन चुका है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९९०/ १३५ मिनट, □ निर्देशक: सई परांजपे, □ संगीत: आनंद मोडक, □ पात्र: नाना पाटेकर/ रघुवीर यादव/ शबाना आजमी/ ओम पुरी।

दृष्टि

आभिजात्य परिवेश में रहने वाले दंपत्ति निखिल और संध्या एक-दूसरे को गहराई से समझ नहीं पाते। संबंधों का अजनबीपन उन्हें सुख की मृग मरीचिका में भटकने पर मजबूर करता है। शादी की वर्षगाँठ पर आयोजित कार्यक्रम में संध्या की मुलाकात कॉलेज के पुराने मित्र राहुल से होती है, जिसके साथ उसके मृदु संबंध थे। वह एक बार फिर उसकी ओर समान रुचियों के कारण आकर्षित होती है। लेकिन अपनी सहेली प्रभा के सुझाव पर इस विकसित होते नए संबंध को अधूरा छोड़ देती है। संध्या को पता चलता है कि वह गर्भवती है। निखिल यह बच्चा नहीं चाहता। उसके दबाव पर संध्या गर्भपात के लिए

बाजीगरों की बाजीगरी :
शाहरुख-काजोल

फिल्म कल्चर

(फिल्म फेयर अवार्ड : १९५३ से १९९३)

सर्वश्रेष्ठ अभिनेता

दिलीप कुमार (१९५३)
☆ दाग
भारत भूषण (१९५४)
☆ श्री चैतन्य महाप्रभु
दिलीप कुमार (१९५५)
☆ आजाद
दिलीप कुमार (१९५६)
☆ देवदास
दिलीप कुमार (१९५७)
☆ नया दौर
देव आनंद (१९५८)
☆ कालापानी
राजकपूर (१९५९)
☆ अनाड़ी
दिलीप कुमार (१९६०)
☆ कोहिनूर
राजकपूर (१९६१)
☆ जिस देश में गंगा बहती है
अशोक कुमार (१९६२)
☆ राखी
सुनील दत्त (१९६३)
☆ मुझे जीने दो
दिलीप कुमार (१९६४)
☆ लीडर
सुनील दत्त (१९६५)
☆ खानदान
देव आनंद (१९६६)
☆ गाइड
दिलीप कुमार (१९६७)
☆ राम और श्याम
शम्मी कपूर (१९६८)
☆ ब्रह्मचारी
अशोक कुमार (१९६९)
☆ आशीर्वाद
राजेश खन्ना (१९७०)
☆ सच्चा-झूठा
राजेश खन्ना (१९७१)
☆ आनंद
मनोज कुमार (१९७२)
☆ बेईमान
ऋषि कपूर (१९७३)
☆ बॉबी
राजेश खन्ना (१९७४)
☆ आविष्कार
संजीव कुमार (१९७५)
☆ आँधी
संजीव कुमार (१९७६)
☆ अर्जुन पंडित
अमिताभ बच्चन (१९७७)
☆ अमर-अकबर-एंथोनी
अमिताभ बच्चन (१९७३)
☆ डॉन
अमोल पालेकर (१९७९)
☆ गोलमाल
नसीरुद्दीन शाह (१९८०)
☆ आक्रोश
नसीरुद्दीन शाह (१९८१)
☆ चक्र
दिलीप कुमार (१९८२)
☆ शक्ति
नसीरुद्दीन शाह (१९८३)
☆ मासूम
अनुपम खेर (१९८४)
☆ सारांश
कमल हासन (१९८५)
☆ सागर
अनिल कपूर (१९८८)
☆ तेजाब
जैकी श्रॉफ (१९८९)
☆ परिन्दा
सनी देओल (१९९०)
☆ घायल
अमिताभ बच्चन (१९९१)
☆ हम
अनिल कपूर (१९९२)
☆ बेटा
शाहरुख खान (१९९३)
☆ बाजीगर

मजबूर होती है। निखिल उसे वृंदा के साथ अपने संबंधों के बारे में बताता है, और तलाक का अनुरोध करता है। संध्या खुद को एकाकी जीवन की लय में ढाल लेती है। एक वर्ष बाद निखिल उससे मिलता है। वृंदा के साथ उसका प्रणय खत्म हो चुका होता है। निखिल और संध्या जीवन के बिखरे हुए टुकड़ों को सहेजने की कोशिश करते हैं। निखिल जानना चाहता है कि संध्या के गर्भ में क्या राहुल का बच्चा था। संध्या इंकार में सिर हिला देती है। निखिल के साथ उसका लगाव मन के किसी कोने में कभी मद्धिम नहीं पड़ा था। दोनों सागर तट पर समझने की कोशिश करते रहते हैं, कि आखिर उनसे गलती कहाँ हुई?

☐ हिंदी/ रंगीन/ १९८०/ १७१ मिनट, ☐ निर्देशक: गोविंद निहलानी, ☐ संगीत: किशोरी अमोनकर, ☐ पात्र: डिम्पल/ शेखर कपूर/ मीता वशिष्ठ।

एक डॉक्टर की मौत

बरसों की मेहनत के बाद डॉ. दीपांकर राय कुष्ठ रोग का टीका (वेक्सीन) खोजने में सफल होते हैं। उनका मत है कि यह औषधि सहप्रभाव के रूप में महिलाओं का वंध्यत्व दूर करने में भी उपयोगी सिद्ध होगी। इस महत्वपूर्ण खोज के बदले उन्हें तारीफ और सम्मान की बजाए पीड़ा और अवसाद झेलना पड़ते हैं। दीपांकर ने परिवार और अपने सुख को होम कर मानवता की सेवा के उद्देश्य से कुष्ठ का अभिशाप मिटाने के लिए कारगर दवा की खोज में जिंदगी के कई साल समर्पित कर दिए थे। उनकी कामयाबी और अंतरराष्ट्रीय प्रचार की संभावना से जलकर दूसरे चिकित्सक उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगते हैं। दीपांकर को नौकरशाही के मकड़जाल में उलझाया जाता है। वरिष्ठ चिकित्सक उसे प्रताड़ित करते हैं। उसकी खोज की विश्वसनीयता को लेकर उंगली उठाई जाती है। शासकीय इजाजत के बगैर अपनी शोध प्रचारित करने के आरोप में उसका तबादला सुदूर ग्रामीण इलाके में कर दिया जाता है। यहाँ रहकर वह शोध पत्र पूरा नहीं कर पाता, लिहाजा उसकी खोज को अंतरराष्ट्रीय चिकित्सा परिषद् की मान्यता नहीं मिलती। एक दिन उसे पता चलता है, कि उसके द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के आधार पर ही अमेरिका के दो वैज्ञानिकों ने कुष्ठ रोग का टीका ईजाद कर लिया है।

☐ हिंदी/ रंगीन/ १९९०/ १२२ मिनट, ☐ निर्देशक: तपन सिन्हा, ☐ संगीत: तपन सिन्हा ☐ पात्र: पंकज कपूर/ शबाना आजमी।

मरुपक्कम

अतीत के प्रतिबिंब बहुत दूर तक झिलमिलाते हैं। समय के आईने पर उनका अस्तित्व कई अजीब सी उलझनों को जन्म देता है। मानव संबंध की कड़ियाँ कब कहाँ जुड़ जाएँ और कहाँ बिखर जाएँ, कहा नहीं जा सकता। मन की कंदराओं में इतिहास के दोहराव की रीत एक प्रकार की सहमी हुई छाया का अक्स भी अक्सर बुन देती है। 'मरुपक्कम' एक वृद्ध व्यक्ति वेम्बू अय्यर की स्मृतियों की ऐसी ही झिलमिलाहट के उपजे भय को दर्शाती है, जिसका बेटा अम्बी केरल के एक शहर से उसकी बीमारी का हाल-चाल जानने दिल्ली आता है। वेम्बू की पहली पत्नी और अम्बी की सौतेली माँ को उसके संगीत प्रेम की वजह से घर में प्रताड़ित होना पड़ा था। अपनी माँ के उकसावे पर उसने पत्नी पर बदचलनी का आरोप लगाया और उससे तलाक की अपील की। अब वेम्बू का बेटा भी यही गलती दोहराने जा रहा था। अम्बी के अपनी ईसाई पत्नी स्वीटी से संबंध विच्छेद

मीता वशिष्ट : कला फिल्मों का संसार

की खबर सुनकर शारीरिक रुग्णता से ग्रस्त वेम्बू इस कल्पना मात्र से सिहर जाता है, कि उसके बेटे को भी उम्र भर ग्लानि और पश्चाताप की पीड़ा झेलनी होगी। जीवन की ढलान पर नेत्र ज्योति के धुँधलेपन के बावजूद अंतः चक्षु के आगे हकीकतें बहुत साफ आकार ले लेती हैं। वेम्बू इसी अनुभूत सत्य को अम्बी के सामने रखने की कोशिश करता है।

☐ तमिल/ रंगीन/ १९९०/ ८८ मिनट, ☐ निर्देशक: के.एस. सेतुमाधवन, ☐ संगीत: एल. वैद्यनाथन, ☐ पात्र: शिव कुमार/ जया भारती/ राधा/ शेखर।

कस्बा

एक पहाड़ी कस्बे में बेइमानी के साथ धंधा करने वाले व्यापारी मनीराम का बड़ा बेटा धनी शहर से अपने घर लौटता है। उसकी शादी एक खूबसूरत ग्रामीण लड़की तारा से होती है। विवाह अवसर पर धनी अपने दोस्तों के साथ शराब के नशे में धुत्त रहता है और कुछ दिनों बाद शहर वापस चला जाता है। उसकी युवा पत्नी परिवार के असहज परिवेश में अकेली रह जाती है। पड़ोस के गाँव में रहने वाली अपनी विधवा माँ से कभी-कभार मुलाकात ही उसके लिए राहत का जरिया होता है। मनीराम के छोटे बेटे भक्तू की पत्नी तेजो, तारा से द्वेषभाव रखती है। पति की मानसिक अपरिपक्वता ने उसे दमित भावनाओं और ईर्ष्या में जकड़ रखा है। तेजो मनीराम के काले धंधों का सारा व्यवसाय संभालती है। धनी शहर में नकली नोट बनाने के अपराध में गिरफ्तार हो जाता है। मनीराम उसे बचाने के लिए भागदौड़ करते हैं। कस्बे की एकरसता भरी जिंदगी और परिवार में तेजो के कटु व्यवहार के साथ धनी की पत्नी को समय काटना पड़ता है। एक दिन वह घर से निकाल दी जाती है। मनीराम का परिवार फरेब और लिप्सा के कीचड़ में डूबा रहता है।

☐ हिंदी/ रंगीन/ १९९०/ १२१ मिनट, ☐ निर्देशक: कुमार शाहनी, ☐ संगीत: वनराज भाटिया, ☐ पात्र: शत्रुघ्न सिन्हा/ मीता वशिष्ठ/ मनोहर सिंह/ रघुवीर यादव।

लेकिन

पुरातत्व संबंधी सर्वेक्षण के लिए एक नौजवान समीर राजस्थान के मरुस्थलीय गाँव में भेजा जाता है। यहाँ के खंडहर होते राजमहलों में उसे एक रहस्यमय युवती 'रेवा' मिलती है। क्षणिक मौजूदगी के बाद उसके अचानक अदृश्य हो जाने से समीर हैरत में
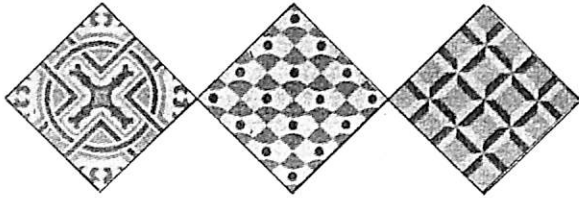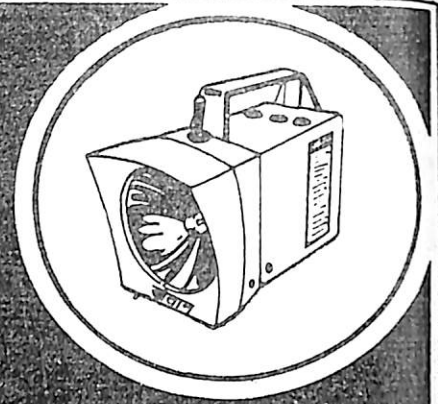
पड़ जाता है। पारदर्शी अस्तित्व के बीच ही वह उसे अपने अतीत की घटनाओं से परिचित कराती है। समीर को पता चलता है कि रेवा वस्तुत: एक अभिशप्त आत्मा है। पूर्वजन्म में उसे गाँव के जागीरदार परसम सिंह के अत्याचार सहने पड़े थे। और वह एक त्रासद मृत्यु से गुजरने के बाद अपनी मुक्ति की आकांक्षा में भटक रही है। समीर के जरिए उसका भटकाव खत्म होता है। रेवा को अंततः अपने दोहरे अस्तित्व से मुक्ति मिल जाती है।
□ हिंदी/ रंगीन/ १९९०/ १७१ मिनट, □ निर्देशक: गुलजार, □ संगीत: हृदयनाथ मंगेशकर, □ पात्र: विनोद खन्ना, डिम्पल, अमजद खान।

मने

एक नवविवाहिति दंपति राजन्ना और गीता शहर के व्यस्ततम इलाके में मकान किराए पर लेते हैं। हर पति-पत्नी की तरह उनके भी सपने हैं, जो यथार्थ पर खरे नहीं उतरते। पति काफी खुशमिजाज स्वभाव का है। अपने नए घर को वह 'स्वर्ग का द्वार' कहता है। इसी तरह टूटी-फूटी चारपाई को उसने नाम दिया है, दिव्य शैया। जिस पर मियाँ-बीवी दुनिया-जहान के सपने देखना चाहते हैं। लेकिन आसपास का शोरगुल उनकी निकटता में खलल डालता है। घर के समीप एक दूकान में होने वाली हथौड़ों और लोहे के सामान की आवाजें उन्हें चैन की साँस नहीं लेने देती। राजन्ना इससे बचने के लिए गीता के साथ पार्क में वक्त गुजारना चाहता है, लेकिन वहाँ कुछ शोहदे उन्हें परेशान करते हैं। शहरी जीवन की कड़वी वास्तविकताओं के बीच इनके सपनों का बिखरना शुरू हो जाता है। अपनी पत्नी से बेहद प्यार करने वाला राजन्ना परिस्थितियों की जटिलता में उस पर चारित्रिक आक्षेप भी लगा देता है। एक सुंदर, सुखद घर की कल्पना में इस नर्क के बीच फँसे राजन्ना और गीता वापस झोपड़ पट्टी के अपने पुराने आवास में लौटना चाहते हैं। लेकिन वहाँ जाकर उनको मालूम होता है कि बस्ती पर बुलडोजर चल चुका है। मने को सर्वश्रेष्ठ कन्नड़ फिल्म का राष्ट्रपति रजत पदक दिया गया था। यह फिल्म हिंदी में घर नाम से प्रदर्शित हुई है।
□ कन्नड़/ रंगीन/ १९९०/ १२५ मिनट, □ निर्देशक: गिरीश कसरावल्ली, □ संगीत: एल. वैद्यनाथन, □ पात्र: नसीरुद्दीन शाह/ दीप्ति नवल।

थोड़ा सा रूमानी हो जाएँ

एक छोटे से पहाड़ी कस्बे में रहने वाले राय परिवार की बड़ी बेटी बिन्नी अपने जीवन में निराशा महसूस करती है। उम्र का एक लंबा फासला गुजरने के बाद भी किसी पुरुष से भावनात्मक संपर्क का न हो पाना उसके हीनताबोध को जन्म देने वाली बात है। लोग उसे अजीब नजरों से देखते हैं। एक रिक्तता उसके चारों ओर घिरने लगती है। अंतर्मन के बाहर भी उसे यही घुटन भरा माहौल नजर आता है। कस्बे में काफी अरसे से बरसात नहीं हुई। बढ़ती उमस से बिन्नी और उसका परिवार परेशान है। एक दिन उनके घर एक अजनबी आता है, जिसका दावा है कि वह बारिश को बुला सकता है उसकी अटपटी बातों से सब सम्मोहित महसूस करते हैं। वह पूरी दृढ़ता के साथ बिन्नी को समझाता है, कि खुशियों को बाहर नहीं, अपने भीतर तलाशने की जरूरत है। भावना के मरुस्थल को बारिश से गीला करने के लिए सिर्फ दिल में थोड़ा-सा रूमानीपन चाहिए। यानी एक उम्मीद, जो जिंदगी को जारी रखती है। फिल्म का स्वरूप पूरी तरह काव्यात्मक है। यह विदेशी फिल्म 'रेन-मेन' पर आधारित है।
□ हिंदी/ रंगीन/ १९९०/ १६० मिनट, □ निर्देशक: अमोल पालेकर, □ संगीत: भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: अनीता कँवर/ नाना पाटेकर/ विक्रम गोखले।

फिल्म लिबास : शबाना तथा ए. के. हंगल

लिबास

प्रतिष्ठित निर्देशक सुधीर के लिए पारिवारिक जीवन से ज्यादा अहमियत रंगकर्म की है। उसकी पत्नी सीमा को इस वजह से जज्बाती तौर पर खालीपन महसूस होता है। एक दिन उसकी जिंदगी में सुधीर का पुराना मित्र टी.के. आता है, जिसकी समृद्धि और लच्छेदार बातों से प्रभावित होकर वह उसके साथ अंतरंग हो जाती है। सुधीर को इसका पता चलने पर वह टी.के. और सीमा को घर से चले जाने के लिए कहता है। यह दोनों परस्पर एक नई जिंदगी की शुरूआत करते हैं। सुधीर से दूर हो जाने के बावजूद सीमा उसके साथ गुजारे दिनों को भुला नहीं पाती। सुधीर के अकेले रह जाने की व्यथा को वह मन ही मन महसूस करती है। टी.के. जब व्यावसायिक काम से एक दिन शहर के बाहर जाता है, तो वह सुधीर से मिलने पहुँचती है। लेकिन सुधीर के साथ एक नई लड़की को देखकर उसे महसूस हो जाता है कि उसकी जगह अब कहाँ है? वह अतीत को पूरी तरह से विसर्जित कर अपनी नूतन दिनचर्या में चुपचाप लौट आती है। अंतर्तम की गहराइयों का प्रतीक समझे जाने वाले वैवाहिक संबंध किसी लिबास से अस्थाई नजर आते हैं।
□ हिन्दी/ रंगीन/ १९९१/ १३५ मिनट, □ निर्देशक: गुलजार, □ संगीत: आर.डी. बर्मन, □ पात्र: शबाना आजमी/ नसीरुद्दीन शाह/ राज बब्बर।

आदि मीमांसा

ब्राह्मण अराखित और नीची जाति का क्षेत्रपाल मधुर संबंधों वाले पड़ोसी हैं। दोनो के परिवारों के बीच सिर्फ एक कच्ची दीवार

उड़िया फिल्म आदि मीमांसा
नीना गुप्ता-मोहन गोखले

का विभाजन है। एक अर्धविक्षिप्त अधेड़ ब्राह्मण विधवा इनके घर अक्सर आती रहती है। लोग उससे डरते हैं, क्योंकि उसमें जब-तब छोटी-मोटी बातों पर अपशब्द कहने की आदत है। क्षेत्रपाल एक दिन उसे अपमानित कर घर से निकाल देता है। नाराज होकर वह अराखित की पत्नी को भड़का देती है, कि वे एक नीची जाति के व्यक्ति के साथ क्यों रह रहे हैं? अराखित का परिवार बरसों की मित्रता को भूलकर घर बदलने की तैयारी कर लेता है। क्षेत्रपाल और उसके बच्चे उदास मन से उन्हें जाते देखते रहते हैं। बच्चों के निरंतर आग्रह पर क्षेत्रपाल थोथे अहं से ऊपर उठकर अपने पुराने मित्र को रोकने हेतु उद्यत हो जाता है। उसके लिए मानवता का रिश्ता कहीं बड़ा है, बजाए मानवनिर्मित भेद के। आदि मीमांसा को राष्ट्रीय एकता पर सर्वोत्तम कथाचित्र का नरगिस दत्त पुरस्कार दिया गया था।
□ उड़िया/ रंगीन/ १९९१/ १०९ मिनट, □ निर्देशक: ए.के. बीर, □ संगीत: भवदीप जयपुरवाले, □ पात्र: ललतेंदु रथ/ मोहन गोखले/ नीना गुप्ता/ बैजनी मिश्रा।

आगंतुक

सुधींद्र और उसकी पत्नी अनिला को एक दिन अपने चाचा मनमोहन का पत्र मिलता है। उन्होंने इच्छा व्यक्त की थी, कि वे कुछ दिन उनके पास कलकत्ता में रहना चाहते हैं। पिछले ३५ साल उन्होंने एक नृतत्वशास्त्री के

बतौर विदेश भ्रमण में गुजारे थे। इस आकस्मिक आगंतुक की पहचान को लेकर अनिला और सुधींद्र को थोड़ा संशय होता है। सुधींद्र को शक है कि वे उससे अपने दादा द्वारा छोड़ी गई संपत्ति का हक माँगने आ रहे हैं। परिवार में केवल छोटा बच्चा 'सात्यकी', मनमोहन के आगमन से खुश होता है। आगंतुक के द्वारा दुनिया-जहान के फलसफे सुनने के बावजूद सुधींद्र और अनिला को केवल संपत्ति की ही चिंता घेरे रहती है। वे अपने पारिवारिक वकील को मामले का निपटारा करने के लिए बुलाते हैं। वकील, मनमोहन की अटपटी बातों से नाराज होकर उन पर एक सीधे-सादे परिवार का धूर्तता से आतिथ्य पाने का आरोप लगाता है। अगली सुबह मनमोहन कलकत्ता से चले जाते हैं। अनिला और सुधींद्र को पता चलता है, कि वे अपने हिस्से की संपत्ति उनके नाम कर गए हैं। आगंतुक, स्वर्गीय सत्यजीत राय की आखिरी फिल्म थी। इस फिल्म को वर्ष १९९२ में सर्वोत्तम कथाचित्र पुरस्कार दिया गया।

□ बंगला/ रंगीन/ १९९१/ १२० मिनट, □ निर्देशक-संगीत: सत्यजीत राय, □ पात्र: उत्पल दत्त/ दीपांकर डे/ ममता शंकर।

वस्तुहारा

अंडमान द्वीप समूह में पुनर्वास मंत्रालय के लिए काम करने वाला वेणु जरूरतमंद व्यक्तियों की तलाश में अक्सर कलकत्ता आता रहता है। एक ऐसी ही यात्रा के दौरान उसकी मुलाकात विधवा स्त्री आरती पनिक्कर और उसकी बेटी से होती है। शरणार्थी होने के बावजूद इन लोगों को अंडमान में इसलिए नहीं बसाया जा सकता, क्योंकि इनके परिवार में कोई पुरुष सदस्य नहीं है। सरकारी नियमों में आबद्ध वेणु विधवा महिला के प्रति बेहद हमदर्दी महसूस करता है। एक उच्च शिक्षित मध्यवर्गीय परिवार से रिश्ता रखने वाली श्रीमती पनिक्कर लंबे अरसे से जहालत भरा जीवन जीने पर मजबूर थी। उनका बेटा राजनीतिक अपराधी के रूप में कैद कर लिया गया था। वेणु को इस परिवार से थोड़े ही समय में अत्यधिक प्यार मिलता है। उसकी वापसी के समय श्रीमती पनिक्कर और उनकी बेटी उसे जहाज पर विदा देने के लिए आती हैं। वेणु इन लोगों की भावनात्मक रिक्तता और पराएपन के दर्द को अनुभव करता है, जो उनकी मातृ-भूमि से बेदखली या सामान्य सुविधाओं के अभाव से कहीं ज्यादा त्रासद है। निर्देशक अरविंदन की यह अंतिम फिल्म थी, जिसे १९९१ में सर्वश्रेष्ठ मलयालम फिल्म का राष्ट्रीय अवॉर्ड प्राप्त हुआ।

□ मलयालम/ रंगीन/ १९९१/ १०३ मिनट, □ निर्देशक: जी. अरविंदन, □ संगीत: सलिल चौधरी, □ पात्र: मोहनलाल/ नीलांजना मित्रा/ नीना गुप्ता।

चौकट राजा

बैंक में कार्यरत राजन स्थानांतरित होकर अपनी पत्नी मीनल के साथ बंबई रहने आता है। मीनल एक दिन घर के बाहर बगीचे में अपनी बेटी को एक व्यक्ति द्वारा सताया जाते देख, उसे तमाचा जड़ देती है। उसे बाद में मालूम पड़ता है, कि नंदू नाम का यह व्यक्ति मानसिक रूप से अपरिपक्व है। अपने उग्र व्यवहार के लिए माफी माँगने वह उसके घर पहुँचती है, जहाँ उसका परिचय नंदू की बीमार माँ से होता है। दीवार पर बने चित्रों से मीनल को याद आ जाता है, कि नंदू उसके बचपन का दोस्त है। वह उसके लिए एक बार पेड़ से आम तोड़ते वक्त जमीन पर गिर जाने के कारण मानसिक विकलांगता का शिकार हो गया था। स्मृतियों के पुनर्जीवित होने के बाद मीनल, नंदू के प्रति स्नेह-भाव रखने लगती है। लेकिन उसके पति राजन को यह ठीक नहीं लगता। दबाव में आकर मीनल, नंदू को मानसिक चिकित्सालय में ले जाती है। इस दौरान नंदू को पता चलता है, कि उसकी माँ की मृत्यु हो चुकी है। वह भागा-भागा मीनल के घर पहुँचता है, जहाँ उसकी बात न समझ पाने के कारण राजन उसे दुत्कार देता है। बरसों बाद मनोरोगियों के आश्रम में नंदू को उसके चित्रों के लिए अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार दिया जाता है। वह मंच पर ख्वाहिश व्यक्त करता है, कि यह सम्मान उसे मीनल के हाथों से मिले।

□ मराठी/ रंगीन/ १९९१/ १४० मिनट, □ निर्देशक: संजय सरकार, □ संगीत: आनंद मोडक, □ पात्र: दिलीप प्रभावलकर/ स्मिता तलवलकर/ दिलीप कुलकर्णी।

महापृथ्वी

मध्यवर्गीय परिवार में एक प्रौढ़ महिला आत्महत्या कर लेती है। उसका पति, छोटा लड़का और मानसिक रोग की शिकार लड़की उसके द्वारा छोड़ी गई डायरी को पढ़ने का साहस नहीं जुटा पाते। कुछ समय बाद महिला का बड़ा लड़का भी विदेश से लौटता है। परिवार के सारे सदस्य अपने घर में घटित इस दुर्घटना के कारण को तलाशने की कोशिश करते हैं। कालिक पृष्ठ-भूमि में पूर्वी और पश्चिम जर्मनी के विलय की घटना अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को झकझोर रही है। विश्व में पुरातन और नवीन के मध्य विचारों का द्वंद्व जारी है। इस महती परिवर्तन के सापेक्ष एक छोटे से परिवार की महिला द्वारा खुदकुशी की घटना कई गुत्थियों की तह में पहुँचने की दरकार रखती है। जीवन के प्रति उसके नैराश्य और मोहभंग का चरम क्षण व्याख्या के धरातल पर प्रकट नहीं हो पाता। मृत महिला की लड़की परिवार के सभी सदस्यों द्वारा मसले के आगे घुटने टेक देने की हताशा के फलस्वरूप उस डायरी को आग के हवाले कर देती है, जिसमें महिला की आत्महत्या से पूर्व अनेक संभावित उलझनों का चेहरा रहस्य की गर्द तले दबा हुआ था।

□ बंगला/ रंगीन/ १९९१/ १०५ मिनट, □ निर्देशक: मृणाल सेन, □ संगीत: ब.व. कारंथ, □ पात्र: विक्टर बैनर्जी/ सौमित्र चटर्जी/ अपर्णा सेन/ अनुसूइया मजुमदार।

अरुण कौल की फिल्म दीक्षा का बाल कलाकार

दीक्षा

उच्च कोटि के विद्वान और प्रगतिशील विचारों के समर्थक ब्राह्मण शेषाद्री से कट्टरपंथी ब्राह्मणों की जमात इसलिए द्वेषभाव रखती है, क्योंकि वे छुआछूत की संकीर्णताओं को नहीं मानते। अस्पृश्य जाति का 'कोगा' जब उनसे अपनी एक संबंधी की मृत्यु पर धार्मिक आचार संपन्न करने का आग्रह करता है, तो वे उसके साथ संवेदना प्रकट करने नीची जाति के लोगों की बस्ती में जाने से भी नहीं हिचकते। मगर उनकी यह निर्भीकता उस वक्त समाज के परंपरावादी दबावों के आगे बरकरार नहीं रह पाती, जब उनकी अपनी युवा विधवा बेटी को गाँव का एक शिक्षक धूर्तता से गर्भवती बना देता है। ब्राह्मणों के दबाव में वे उसका घटश्राद्ध

(दुराचार की आरोपी स्त्रियों के जीवित रहते उनकी शवयात्रा निकालने की कुरीति) संपन्न कर देते हैं। शेषाद्री की निर्दोष, असहाय पुत्री का साथ देता है केवल दलित जाति का कोगा, जो अकेला होने के बावजूद उस पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध लड़ता है। इसके पहले कन्नड़ में 'घटश्राद्ध' नाम से फिल्म बनी है।
□ हिंदी/ रंगीन/ १९९१/ १२० मिनट, □ निर्देशक: अरुण कौल, □ पात्र: मनोहर सिंह/ राजश्री सावंत/ नाना पाटेकर।

फिरिंगोटी

पति की मृत्यु के सदमे से उबरने की कोशिश में एक युवा अध्यापिका गाँव के विद्यालय को सामाजिक जागरण का स्फुरण बिंदु बनाने का निश्चय करती है। जड़ता और अज्ञानता के शिकार ग्रामीणों के बीच अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक विधवा महिला का संघर्ष गाँव के युवा जागीरदार को सहन नहीं होता। वह अपने साथियों की मदद से स्कूल में आग लगा देता है। मगर तब तक एक दूसरी चिंगारी भोले-भाले ग्रामीणों के अंतःस्थल में भी जल चुकी होती है। ज्ञान के प्रकाश से जागृत यह लोग विद्या के ध्वस्त मंदिर के नवनिर्माण की शपथ लेते हैं। फिल्म की अभिनेत्री मलैया गोस्वामी को सर्वश्रेष्ठ अभिनय के लिए राष्ट्रीय अवॉर्ड मिला था।
□ असमिया/ रंगीन/ १९९१/ ११६ मिनट, □ निर्देशक: जाह्नू बरुआ, □ पात्र: मलैया गोस्वामी/ विष्णु खारघोरिया/ हेमेन चौधरी।

भगवद् गीता

भगवान कृष्ण रचित 'भगवद् गीता' जीवन के शाश्वत दर्शन का अद्वितीय ग्रंथ है। कालक्रम की बदलती परिस्थितियों में भी इसमें वर्णित महासत्य सर्वथा प्रासंगिक रहा है। फिल्म निर्देशक जी.वी. अय्यर ने गहन शोध और आत्मचिंतन के उपरांत इस प्राचीनतम कथ्य को नए संदर्भों में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। सकल ब्रह्मांड के परिप्रेक्ष्य में यह फिल्म आधुनिक मानव के जीवन में फैल रहे अंतर्विरोध और विभ्रम को चिरंतन सत्य के अनुभव द्वारा दूर करने की चेष्टा करती है। कथानक को विस्तार देने के लिए दंत कथाओं और प्रतीकात्मक बिम्बों का भी इसमें बखूबी इस्तेमाल हुआ है। फिल्म की आधी शूटिंग १४००० फुट की ऊँचाई पर हिमालय की दुर्गम घाटियों में की गई। भगवद् गीता को वर्ष १९९३ में सर्वोत्तम कथाचित्र पुरस्कार का राष्ट्रीय अवॉर्ड दिया गया था।
□ संस्कृत/ रंगीन/ १९९२/ १५५ मिनट, □ निर्देशक: जी.वी. अय्यर, □ संगीत: ब.व. कारंथ, □ पात्र: जी.वी. राघवेन्द्र/ नीना गुप्ता/ गोपी मनोहर।

तहादेर कथा

देश को आजादी मिलने पर स्वतंत्रता सेनानी शिवनाथ ग्यारह साल की कैद के बाद रिहा किया जाता है। उसके राजनीतिक

- □ गमन (१९७४) : फारुख शेख
- □ मंथन (१९७६) : गिरीश कर्नाड/नसीरुद्दीन शाह
- □ भूमिका (१९८०) : अमोल पालेकर
- □ चक्र (१९८१) : नसीरुद्दीन शाह
- □ सद्गति (१९८१) : ओमपुरी
- □ बाजार (१९८२) : नसीरुद्दीन शाह
- □ अंधेर नगरी (१९८२) : नसीरुद्दीन शाह (भवनी भवाई का हिंदी संस्करण)
- □ मंडी (१९८३) : नसीरुद्दीन शाह
- □ अर्द्ध सत्य (१९८३) ओमपुरी
- □ सुबह (१९८३) : गिरीश कर्नाड
- □ रावण (१९८४) : फारुख शेख
- □ तरंग (१९८४) अमोल पालेकर
- □ अर्थ (१९८५) : कूलभूषण खरबंदा
- □ अमृत (१९८५) : राजेश खन्ना
- □ आखिर क्यों? (१९८५) : राजेश खन्ना
- □ मिर्च मसाला (१९८७) : नसीरुद्दीन शाह
- □ गिद्ध (१९८७) : ओमपुरी
- □ सूत्रधार (१९८७) : नाना पाटेकर
- □ देव शिशु (१९८७) : साधु मैहर
- □ वारिस (१९८८) : राज बब्बर
- □ सितम (१९९१) : नसीरुद्दीन शाह

सहयोगी विपिन दत्ता उसे घर के सदस्यों से मिलवाने ले जाते हैं। शिवनाथ को अपने गाँव का राजनीतिक परिदृश्य बदला-बदला नजर आता है। जिस महान उद्देश्य के लिए लोगों ने मिलकर लड़ाई लड़ी थी, उसमें उसे कई विकृतियाँ पनपती जान पड़ती हैं। स्वतंत्रता का नेताओं द्वारा निजी स्वार्थ हेतु दोहन किए जाते देख, वह बेहद पीड़ा महसूस करता है। विपिन बाबू के आम चुनावों में प्रत्याशी बनने पर शिवनाथ उनके समर्थन में प्रचार करने को तैयार नहीं होता। ऐसे सत्ता-लोलुप व्यक्ति उसके स्वप्न को खंडित करते नजर आते हैं। आदर्शवादी विचारों के लिए शिवनाथ को पागल समझा जाता है। उसके परिवार वाले ही उसकी उद्विग्नता को मानसिक विक्षिप्तता का संकेत मान कर उसे जंजीरों में जकड़ने का प्रयास करते हैं। शिवनाथ की पीड़ा का सही अर्थ केवल उसका बेटा ही समझता है। बेटे की नैतिक सहानुभूति उसके लिए एकमात्र राहत का सबब है। गाँव में एक दिन जादूगर अब्दुल्ला आता है। उसके सम्मोहक करिश्मों के प्रभाव में लोग कई घृणित और शर्मनाक हरकतें करते हैं। अब्दुल्ला, शिवनाथ की कातर अवस्था का फायदा उठाते हुए उसे अपने तमाशे का जरिया बना लेता है। शिवनाथ को सम्मोहित कर वह उससे जानवरों-सी हरकतें करवाता है। उसके निर्देशों पर शिवनाथ थूककर चाटने और बकरियों की तरह पत्तियाँ चबाने को विवश होता है। लेकिन एक दिन शिवनाथ की तंद्रा टूटती है और वह आत्मसम्मान की जरूरत को महसूस कर अपने ऊपर अत्याचार करने वाले अब्दुल्ला का गला दबा देता है। लोग उसे जंजीरों से जकड़ कर पागलखाने की तरफ ले जाते हैं। तहादेर कथा सर्वोत्तम बंगला कथाचित्र के राष्ट्रीय अवॉर्ड से पुरस्कृत की गई थी। फिल्म के नायक मिठुन चक्रवर्ती को वर्ष १९९२ के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।
□ बंगला/ रंगीन/ १९९२/ ९७ मिनट, □ निर्देशक: बुद्धदेव दासगुप्ता, □ पात्र: मिठुन चक्रवर्ती/ दीपांकर डे/ अनुसूइया मजुमदार।

मिस बेट्टीज चिल्ड्रन

स्वातंत्र्य पूर्व भारत के एक छोटे से दक्षिण भारतीय गाँव में युवा अँगरेज महिला जेन बेट्टी जनसेवा का उद्देश्य लेकर आती है। गाँव के पिछड़े हुए जनसमुदाय के बीच प्रचलित देवदासी प्रथा को रोकने में अपनी भूमिका वह सक्रियता के साथ निभाती है। बेट्टी और उसकी मिशनरी साथिनें मंदिरों के लिए बेची जाने वाली अबोध लड़कियों को स्वयं खरीद कर उन्हें बाद में मुक्त कर देती हैं। इसके लिए उन्हें प्रमुख देवदासी कमला देवी के भड़कावे पर ग्रामीणों का कोपभाजन बनना पड़ता है। ये लोग उस पर अपने धार्मिक मामलों में अनधिकृत हस्तक्षेप का आरोप लगाते हैं।

फिल्म कल्चर

(फिल्म फेयर अवार्ड : १९५३ से १९९३)

आमिर-जूही

सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री
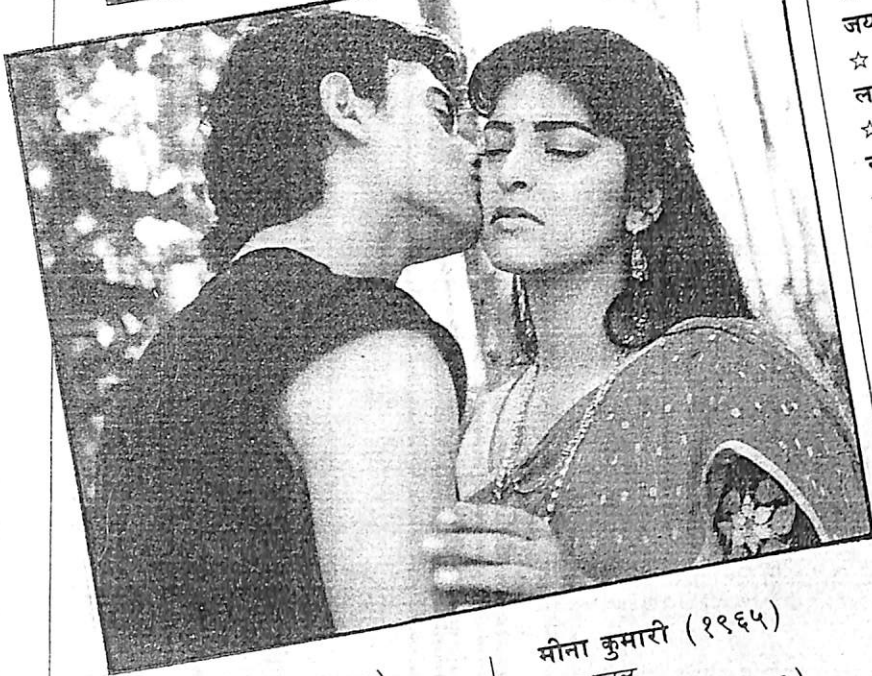
मीना कुमारी (१९५३)
☆ बैजू-बावरा
मीना कुमारी (१९५४)
☆ परिणीता
कामिनी कौशल (१९५५)
☆ बिराज बहू
नूतन (१९५६)
☆ सीमा
नरगिस (१९५७)
☆ मदर इंडिया
वैजयंतीमाला (१९५८)
☆ साधना
नूतन (१९५९)
☆ सुजाता
बीना रॉय (१९६०)
☆ घूँघट
वैजयंतीमाला (१९६१)
☆ गंगा-जमुना
मीना कुमारी (१९६२)
☆ साहिब, बीवी और गुलाम
नूतन (१९६३)
☆ बंदिनी
वैजयंतीमाला (१९६४)
☆ संगम

मीना कुमारी (१९६५)
☆ काजल
वहीदा रहमान (१९६६)
☆ गाइड
नूतन (१९६७)
☆ मिलन
वहीदा रहमान (१९६८)
☆ नीलकमल
शर्मिला ठाकुर (१९६९)
☆ आराधना
मुमताज (१९७०)
☆ खिलौना
आशा पारेख (१९७१)
☆ कटी पतंग
हेमा मालिनी (१९७२)
☆ सीता और गीता
डिम्पल कापड़िया (१९७३)
☆ बॉबी

जया भादुड़ी (१९७३)
☆ अभिमान
जया भादुड़ी (१९७४)
☆ कोरा कागज
लक्ष्मी (१९७५)
☆ जूली
राखी (१९७६)
☆ तपस्या
शबाना आजमी (१९७७)
☆ स्वामी
नूतन (१९७८)
☆ मैं तुलसी तेरे आँगन की
जया भादुड़ी (१९७९)
☆ नौकर
रेखा (१९८०)
☆ खूबसूरत
स्मिता पाटिल (१९८१)
☆ चक्र
पद्मिनी कोल्हापुरे (१९८२)
☆ प्रेमरोग
शबाना आजमी (१९८३)
☆ अर्थ
शबाना आजमी (१९८४)
☆ भावना
डिम्पल कापड़िया (१९८५)
☆ सागर

रेखा (१९८८)
☆ खून भरी माँग
श्रीदेवी (१९८९)
☆ चाल-बाज
माधुरी दीक्षित (१९९०)
☆ दिल
श्रीदेवी (१९९१)
☆ लम्हे
माधुरी दीक्षित (१९९२)
☆ बेटा
जूही चावला (१९९३)
☆ हम हैं राही प्यार के

स्थानीय विरोध से हारकर जेन ऊटी चली जाती है। यहाँ उसे एक अपराधी 'नायकन' की मदद का जिम्मा लेना पड़ता है; जिसका आग्रह है कि जेन उसका पुत्र गोद ले ले। उसके कुछ रिश्तेदार इस बच्चे को संपत्ति के विवाद में मार डालना चाहते हैं। जेन इस उपकार के बदले नायकन से स्वयं को पुलिस के हवाले करने का अनुरोध करती है। प्राणीमात्र की सेवा के रास्ते में जेन बेट्टी को नौजवान डॉक्टर शैंडलर मिलता है, जिसके विचार उससे साम्य रखते हैं। जेन उसे चाहने लगती है। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ने पर शैंडलर उससे दूर चला जाता है। जापानी फौज के हमले में उसकी मृत्यु हो जाती है। जेन के परिचित देश छोड़कर जाने लगते हैं। लेकिन वह अपने आश्रय में पल रहे बच्चों के साथ हिंदुस्तान में ही जिंदगी बिताने का निश्चय करती है।

निर्देशन के सर्वोत्तम प्रथम प्रयास के लिए फिल्म की निर्देशिका पामेला रूक्स को स्वर्ण कमल और इंदिरा गाँधी अवॉर्ड दिया गया था।

☐ अँगरेजी/ रंगीन/ १९९२/ ११२ मिनट, ☐ निर्देशक: पामेला रूक्स, ☐ संगीत: जाकिर हुसैन, ☐ पात्र: जेनी सेग्रोव/ डी. डब्ल्यू. मोफेट/ फेथ ब्रूक/ प्रोतिमा बेदी/ बेरी जॉन/ एमा सैन्डर्सन।

हूँ हुंशी हुंशीलाल

राजा हर्षचंद्र के खोजपुरी साम्राज्य में एक युवा गरीब वैज्ञानिक हुंशीलाल मलेरिया की रोकथाम के लिए मच्छरनाशक एक दवाई का आविष्कार करने में सफल होता है। राजा प्रसन्न होकर उसे इनाम देते हैं। सीधे-सादे हुंशीलाल को उसकी प्रयोगशाला में ही काम करने वाली परवीन से इश्क हो जाता है। उसका व्यवहार काफी संदेहास्पद है। राज्य के गुप्तचरों को खबर मिलती है कि परवीन शत्रु देश की जासूस के रूप में मच्छरों के प्रतिनिधि का काम कर रही है। उसके साथ हुंशीलाल पर भी शक का घेरा कस जाता है। परवीन के प्रति मोहांध हुंशी मच्छरों के प्रति अपनी द्वेषपूर्ण मानसिकता को लेकर पुनर्विचार करने लगता है। परवीन उसे चतुराई से अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करती है। उसके आग्रह पर हुंशी अपना देश छोड़कर मच्छरलोक जाने का निश्चय कर लेता है। लेकिन पारगमन स्वीकृति हासिल करने के लिए उसे नौकरशाही की दमघोंटू गिरफ्त से गुजरना पड़ता है। नाराज होकर वह पूरे दफ्तर में आग लगा देता है। श्रीमान हुंशी गिरफ्तार कर दिमाग के ऑपरेशन के लिए अस्पताल ले जाए जाते हैं, ताकि उन पर से मच्छरों का प्रभाव हटाया जा सके। हास्य के ताने-बाने में फिल्म शासन तंत्र की खामियों पर तीखा कटाक्ष करती है।

☐ गुजराती/ रंगीन/ १९९२/ १४० मिनट, ☐ निर्देशक: संजीव शाह, ☐ संगीत: रजत ढोलकिया, ☐ पात्र: दिलीप जोशी/ रेणुका शहाणे/ मोहन गोखले।

चेलुवी

फिल्म कर्नाटक की एक लोककथा पर आधारित है। गाँव में अपनी वृद्ध माँ और बड़ी बहन के साथ रहने वाली लड़की चेलुवी को यह वरदान प्राप्त है कि वह जंगल में जाकर एक मंत्र बोलने पर वृक्ष का रूप ले सकेगी। इस स्वरूप में उसकी टहनियों पर बेहद खूबसूरत फूल खिलते हैं। गाँव के मुखिया का बेटा कुमार इन फूलों का रहस्य जानने के लिए चेलुवी से विवाह कर लेता है। एक दिन कुमार की छोटी बहन श्यामा जंगल में चेलुवी का वृक्षरूप देखकर गाँव के शरारती बच्चों के साथ उसकी शाखाएँ तहस-नहस कर डालती है। चेलुवी द्वारा पुनः मानव रूप में लौटने का प्रयास करने पर उसका शरीर आधे ठूंठ और अधूरी मानवाकृति में बँट जाता है। जंगल से गुजरता एक लकड़हारा चेलुवी का रुदन सुनकर उसे उसके घर पहुँचाता है। अपने पति से चेलुवी कहती है कि वह जंगल में उसकी टूटी हुई टहनियाँ एकत्र करे। इन्हें अपने साथ जोड़ने पर ही वह पूर्ण रूप से मानव शरीर प्राप्त कर सकेगी।

दिलीप कुमार: श्रेष्ठ फिल्में

- ☐ अमर (१९४८) : मधुबाला
- ☐ मेला (१९४८) : नर्गिस
- ☐ शहीद (१९४८) : कामिनी कौशल
- ☐ अंदाज (१९४९) : नर्गिस
- ☐ शबनम (१९४९) : कामिनी कौशल
- ☐ जोगन (१९५०) : नर्गिस
- ☐ दाग (१९५१) : निम्मी
- ☐ दीदार (१९५१) : नर्गिस
- ☐ तराना (१९५१) : मधुबाला
- ☐ आन (१९५२) : नादिरा/निम्मी
- ☐ संगदिल (१९५२) : मधुबाला
- ☐ फुटपाथ (१९५३) : मीना कुमारी
- ☐ आजाद (१९५५) : मीना कुमारी
- ☐ देवदास (१९५५) : वैजयंतीमाला/सुचित्रा सेन
- ☐ मुसाफिर (१९५७) : उषा किरण
- ☐ नया दौर (१९५७) : वैजयंतीमाला
- ☐ पैगाम (१९५७) : वैजयंतीमाला
- ☐ मधुमति (१९५८) : वैजयंतीमाला
- ☐ कोहिनूर (१९६०) : मीनाकुमारी
- ☐ मुगल-ए-आजम (१९६०) : मधुबाला
- ☐ लीडर (१९६४) : वैजयंतीमाला
- ☐ दिल दिया दर्द लिया (१९६५) : वहीदा रहमान
- ☐ राम और श्याम (१९६७) : वहीदा रहमान
- ☐ संघर्ष (१९६८) : वैजयंतीमाला
- ☐ गंगा-जमुना (१९६९) : वैजयंतीमाला
- ☐ सगीना (१९७२) : सायरा बानो
- ☐ क्रांति (१९८१)
- ☐ विधाता (१९८१)
- ☐ शक्ति (१९८४) : राखी
- ☐ कर्मा (१९८५) : नूतन
- ☐ सौदागर (१९९१)

प्रियतमा की दुर्दशा से घबराया कुमार जंगल की ओर भागता है। किंतु वहाँ उसके पैरों तले जमीन यह देखकर खिसक जाती है, कि उसके पिता ने एक आलीशान भवन बनाने के लिए जंगल को पूरी तरह आग के हवाले कर दिया है।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९९२/ १०२ मिनट, □ निर्देशक: गिरीश कर्नाड, □ संगीत: भास्कर चंदावरकर, □ पात्र: सोनाली कुलकर्णी/ गार्गी यक्कनुंदी/ प्रशांत राव।

जो जीता वही सिकंदर

देहरादून के राजपूत कॉलेज में उच्चवर्गीय लोगों के अँगरेजीदाँ बच्चे पढ़ते हैं जबकि स्थानीय साधारण लड़कों का मॉडल कॉलेज हर क्षेत्र में फिसड्डी समझा जाता है। छोटी-सी होटल चलाने वाले रामलाल के दो बेटे रतन और संजू मॉडल कॉलेज में पढ़ते हैं। रतन साइकल रेस का अच्छा खिलाड़ी है, मगर पिछले वर्ष वह राजपूत कॉलेज के शेखर नामक लड़के से हार गया था। रामलाल जो स्वयं एक समय कुशल साइकल चालक माना जाता था, वह चाहता है कि उसका बेटा इस वर्ष रेस जीतकर कॉलेज का नाम रोशन करे। रतन अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए जी-जान से अभ्यास में जुट जाता है। कॉलेज का आखिरी साल होने के कारण प्रतियोगिता जीतने का उसके पास यह अंतिम मौका था। दूसरी ओर उसके छोटे भाई संजू को कॉलेज की लड़कियाँ छेड़ने और मटरगश्ती से ही फुरसत नहीं मिलती। शेखी बघारने के चक्कर में वह एक अमीर लड़की देविका के समक्ष अपनी समृद्धि का झूठा दिखावा करता है। सच्चाई खुलने पर उसकी बुरी गत बनती है। उधर रतन का प्रतिद्वंद्वी शेखर अपने साथियों के साथ उसे अभ्यास के दौरान घायल कर देता है। प्रतिस्पर्धा का समय नजदीक होने से उसकी सारी उम्मीदें ध्वस्त हो जाती हैं। रामलाल निराश महसूस करते हैं। परिवार की विपत्ति नाकारा समझे जाने वाले संजू को बदल डालती है। भाई और पिता की ख्वाहिश पूरी करने के लिए वह दिन-रात मेहनत कर साइकल रेस जीतता है। लोग उसके रूपांतरण से चकित रह जाते हैं।

□ उर्दू/ रंगीन/ १९९२/ १६५ मिनट, □ निर्देशक: मंसूर खान, □ संगीत: जतिन ललित, □ पात्र: आमिर खान/ दीपक तिजोरी/ हरमीत मामिक/ कुलभूषण खरबंदा।

प्रहार

पारिवारिक विरोध के बावजूद नौजवान पीटर डिसूजा सेना में कमांडो बनने का फैसला करता है। उसके पिता नहीं चाहते, कि उनका इकलौता बेटा खतरों भरा जीवन अपनाए। पीटर अपनी प्रेमिका शर्ले से सगाई की रस्म पूरी कर सैन्य प्रशिक्षण के लिए चला जाता है। उसूलों के पक्के और अनुशासन प्रिय मेजर चौहान अन्य युवकों के साथ उसे कमांडो ट्रेनिंग देते हैं। प्रशिक्षण पूरा होने पर पीटर अपनी शादी के लिए घर लौटने की तैयारी में जुटा होता है, कि इसी बीच उस पर कुछ बच्चों को आतंकवादियों के चंगुल से बचाने की जिम्मेदारी आ जाती है। मेजर चौहान और अन्य साथियों के साथ पीटर यह काम सफलतापूर्वक पूरा करता है, किंतु इस प्रक्रिया में उसे अपनी एक टाँग खोना पड़ती है। अपंगता के कारण वह सेना से निकाल दिया जाता है। मेजर चौहान को पीटर के बंबई लौट जाने के कुछ दिनों बाद उसके विवाह की सूचना मिलती है। वे पीटर और शर्ले की शादी में भाग लेने बंबई पहुँचते हैं, तो उन्हें पता चलता है कि पीटर की मुहल्ले के गुंडों ने हत्या कर दी। वह गुंडों द्वारा अवैध रूप से हफ्ता वसूली का विरोध कर रहा था। मेजर सीमा पर दुश्मन से लड़ने की अपेक्षा देश के भीतर सामाजिक अराजकता को दूर करने की जरूरत अधिक अहम मानकर बंबई में रुकने का फैसला कर लेते हैं। एक युवा विधवा किरण उन्हें अपने घर में आसरा देती है। अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ उनके संघर्ष में लोग उनकी बजाए अपराधियों का साथ देते हैं। भीरुता की शिकार भीड़ मेजर चौहान पर पत्थर फेंकती है, जो दृढ़ता और दिलेरी के साथ असामाजिक तत्वों का अकेले मुकाबला करते हैं। बदले में उन्हें पुरस्कृत किए जाने के पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता है। अदालत मेजर चौहान को कानून तोड़ने का दोषी ठहराती है और विक्षिप्त करार देकर इलाज के लिए मनोरोगियों के अस्पताल भेज दिया जाता है। मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम द्वारा 'प्रहार' के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का अवॉर्ड नाना पाटेकर को दिया गया था।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९९२/ १६१ मिनट, □ निर्देशक: नाना पाटेकर, □ संगीत: लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, □ पात्र: नाना पाटेकर/ माधुरी दीक्षित/ गौतम जोगलेकर/ डिम्पल।

दीपा साही : माया मेम साब

माया मेमसाब

फ्रेंच लेखक गुस्ताव फ्लाबेयर के प्रसिद्ध उपन्यास मदाम बोवरी पर विदेशों में कई फिल्में बनी हैं। माया मेमसाब इसका भारतीय रूपांतरण है। फिल्म की कहानी सुख की मृगतृष्णा में भटकती एक महिला के गिर्द घूमती है। बस्ती से दूर एक निर्जन हवेली में अपने बूढ़े-बीमार पिता के साथ रहने वाली माया अकेलेपन की बोझलता से ग्रस्त है। उसकी असीमित आकांक्षाओं की पूर्ति का एकमात्र धरातल है, उसके सपने। रोमांस और दैहिक सुख की मीठी कल्पनाएँ उसे मन के हिचकोलों पर सवार रखती हैं। जिंदगी के पहले पुरुष के रूप में उसका संपर्क अपने पिता की देखरेख करने वाले डॉक्टर से होता है। जिसके साथ वह विवाह कर लेती है। जल्दी ही वैवाहिक जीवन की एकरसता से उसका मन ऊब जाता है और वह सुख के नए क्षितिज की तलाश करने लगती है। कहानी और उपन्यासों की मिथकीय दुनिया को माया यथार्थ में बदलना चाहती है। लेकिन समाज की वर्जनाएँ इसकी बाधक हैं। आनंद का तीव्र आकर्षण उसे नैतिकता की सीमा रेखा लाँघने को बाध्य करता है। वह विवाहेतर संबंधों में सुख तलाशने की कोशिश करती है। पुरुष उसकी इस दुर्बलता का गलत फायदा उठाते हैं। कल्पना के आकाश को मुट्ठी में भरने के प्रयास में हाथ आई उपेक्षा और उलझनों से त्रस्त आकर माया आत्महत्या कर लेती है।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९९२/ १३० मिनट, □ निर्देशक : केतन मेहता, □ संगीत : हृदयनाथ मंगेशकर, □ पात्र : दीपा साही/ फारुख शेख/ राज बब्बर/ शाहरुख खान।

धारावी

बंबई स्थित धारावी एशिया की सबसे बड़ी गंदी-बस्ती है। उत्तर भारत के एक गाँव से राजकिरण यादव अपनी पत्नी कुमुद के साथ यहाँ रहने आता है। कुमुद के भाई ने बस्ती के लोगों को शिक्षित और जागरूक बनाने का बीड़ा उठा रखा है। उसकी वजह से अपराधी तत्व उसे आँख की किरकिरी समझते हैं। राजकिरण समझौता परस्त जीवन जीने में यकीन रखता है। इस कारण कुमुद के भाई की मान्यताएँ उसे फिजूल मालूम पड़ती हैं। आजीविका के लिए राजकिरण यादव टैक्सी चलाता है। उसकी महत्वाकांक्षाएँ उसे इतने पर संतुष्ट नहीं होने देती। वह चाहता है कि उसके पास ढेर सी दौलत हो और सबसे सुंदर फिल्म तारिका उसकी प्रेमिका बने। इसके लिए वह कुछ दोस्तों से मिलकर एक रंग

निर्माता कारखाने को खरीदने की योजना बनाता है। बस्ती के गुंडे उसे कर्ज देते हैं। कुमुद अपने पति की लिप्सा और नैतिक पतन को देखकर दुखी महसूस करती है। कारखाना खरीदने के बाद यादव दिक्कतों में घिर जाता है। पार्टनर उसे धोखा दे देते हैं, और उसके कारखाने को आग लगा दी जाती है। इस बीच उसे कर्ज देने वाले गुंडे कुमुद के भाई को मार डालते हैं। यादव की पत्नी उसे छोड़कर चली जाती है। उसके पास टैक्सी के सिवाय कुछ नही बचता। वह भी एक दिन गुंडों के आपसी संघर्ष में जलकर राख हो जाती है। यादव बेबसी में जकड़ा हुआ अपने सपनों को बिखरते देखता रहता है। 'धारावी' को सर्वश्रेष्ठ हिंदी फीचर फिल्म के राष्ट्रपति अवार्ड से पुरस्कृत किया गया था।

☐ हिंदी/ रंगीन/ १९९२/ १२० मिनट ☐ निर्देशक : सुधीर मिश्रा ☐ संगीत : रजत ढोलकिया ☐ पात्र : ओमपुरी/ शबाना आजमी/ रघुवीर यादव/ वीरेन्द्र सक्सेना।

रुदाली

राजस्थान के गाँवों में किसी व्यक्ति की मृत्यु पर पेशेवर रोने वाली स्त्रियों को बुलाया जाता है, जिन्हें रुदाली कहते हैं। शनीचरी एक ऐसी ही रुदाली की अभागी बेटी है, जिसकी माँ उसे बचपन में ही छोड़कर चली गई थी। बड़ी होने पर शनीचरी का विवाह एक शराबी से होता है, जिसकी शादी के कुछ समय बाद ही मृत्यु हो जाती है। आजीविका के लिए शनीचरी गाँव के ठाकुर रामअवतार सिंह की हवेली में नौकरानी का काम करती है। एक रुदाली के घर जन्म लेने के बावजूद उसे रोना नहीं आता। इस कारण वह एक संवेदनाहीन स्त्री समझी जाती हैं। शनीचरी का एकमात्र सहारा उसका विक्षिप्त बेटा 'बुधुआ' है, जो एक वेश्या को ब्याह कर घर ले आता है। शनीचरी उसकी कोख में पल रहे बच्चे की खातिर उसे अपने यहाँ शरण देती है। लेकिन बुधुआ की पत्नी गर्भपात करवाकर अपने पतित पेशे की ओर लौट आती है। हर तरफ से रुसवाई की शिकार शनीचरी को ठाकुर का छोटा भाई गोपालसिंह भी भावनात्मक शोषण से पीड़ित करता है। जमींदार रामअवतार जब गंभीर रूप से बीमार पड़ते हैं, तो उन्हें यह शंका सताती है कि उनकी मृत्यु पर कोई रोने वाला नहीं होगा। दूसरे गाँव से आई एक रुदाली 'भीकनी' ठाकुर को आश्वस्त करती है, कि वह उसकी मौत पर रोने के लिए शनीचरी को तैयार करेगी। भीकनी शनीचरी को प्रशिक्षित करने के लिए कुछ समय उसके साथ रहती है। इस दौरान दोनों के बीच आत्मीय लगाव हो जाता है, और वे आपस में एक-दूसरे का दुःख बाँटने की कोशिश करती हैं। एक दिन भीकनी को अपनी मित्र की मृत्यु पर रोने के लिए गाँव से बाहर जाना पड़ता है। शनीचरी कुछ समय बाद जान पाती है कि भीकनी ही उसकी खोई हुई माँ थी, जो अब इस दुनिया में नहीं रही। इस दुःखद खबर के साथ शनीचरी को ठाकुर की मृत्यु पर रोने के लिए हवेली से बुलावा आता है। जहाँ शनीचरी के भीतर बरसों से घनीभूत हो रही

किशोर कुमार: श्रेष्ठ फिल्में

- ☐ नौकरी (१९५४) : शीला रमानी
- ☐ बाप रे बाप (१९५५) : चाँद उस्मानी
- ☐ भाई-भाई (१९५६) : निम्मी
- ☐ मिस मेरी (१९५७) : मीना कुमारी
- ☐ मुसाफिर (१९५७) : उषा किरण
- ☐ दिल्ली का ठग (१९५८) : नूतन
- ☐ चलती का नाम गाड़ी (१९५८) : मधुबाला
- ☐ शरारत (१९५८) : मीना कुमारी
- ☐ झुमरू (१९६१) : मधुबाला
- ☐ हाफ टिकट (१९६२) : मधुबाला
- ☐ रंगोली (१९६२) : वैजयंतीमाला
- ☐ दूर गगन की छाँव में (१९६४) : सुप्रिया
- ☐ पड़ोसन (१९६८)
- ☐ दो दूनी चार (१९६८) : तनूजा
- ☐ दूर का राही (१९७०) : तनूजा

पीड़ा अश्रुधार बनकर बहने लगती है। जीवन के अनेक आघात झेलने पर भी बुत की तरह संवेदनारहित बनी रहने वाली शनीचरी आखिरकार एक दक्ष रुदाली बन जाती है। ठाकुर की मृत्यु पर उसका रोना देखकर लोग अचंभित रह जाते हैं। उसके रुदन के पीछे छुपा कड़वा यथार्थ किसी को नजर नहीं आता। फिल्म में सर्वश्रेष्ठ अभिनय के लिए डिम्पल कपाड़िया को राष्ट्रीय अवार्ड दिया गया था।

□ हिंदी/ रंगीन/ १९९२/ १४० मिनट, □ निर्देशक: कल्पना लाजमी, □ संगीत: भूपेन हजारिका, □ पात्र: डिम्पल/ राज बब्बर/ राखी/ अमजद खान/ रघुबीर यादव।

रोजा

देश के सामयिक परिदृश्य पर आधारित रोजा हाल के वर्षों की सर्वाधिक सफल और बहु प्रशंसित फिल्मों में गिनी जाती है। फिल्म का कथानक उग्रवाद की समस्या से जुड़ा है। एक नव विवाहित कम्प्यूटर इंजीनियर ऋषि कुमार को सरकार द्वारा सर्वेक्षण के लिए काश्मीर भेजा जाता है। जहाँ कुछ उग्रवादी उसका अपहरण कर लेते हैं। ऋषि की पत्नी रोजा उसकी रिहाई के लिए दर-दर भटकती है। उग्रवादी ऋषि को छोड़ने के बदले अपने साथी वसीम खान की रिहाई चाहते हैं। देशभक्त ऋषि को यह कतई बर्दाश्त नहीं, कि उसके बदले एक खूँखार आतंकवादी को छोड़ा जाए। वह उग्रवादियों को समझाने की कोशिश करता है, कि वे एक रक्तरंजित और व्यर्थ की लड़ाई लड़ रहे हैं। किसी भी समस्या का समाधान हिंसा में नहीं ढूँढा जा सकता। उग्रवादियों का सरगना लियाकत उसकी बात का मर्म समझता है, किन्तु आजादी के अंधे नशे में उसे मानवता दूसरी प्राथमिकता की चीज जान पड़ती है। ऋषि की पत्नी रोजा के निरंतर प्रयासों से सरकार द्वारा ऋषि की रिहाई के एवज में वसीम खान को मुक्त करने का फैसला कर लिया जाता है। मगर प्रत्यर्पण के समय ऋषि नियत स्थल पर उपस्थित नहीं होता। वह उग्रवादियों की कैद से भाग जाता है। लियाकत ऋषि को अपनी गिरफ्त में ले लेने के बावजूद उसे रोजा के पास जाने देता है। एक उग्रवादी के हृदय में करवट लेती मान्यताएँ नई उम्मीद का सबब बन जाती हैं। रोजा को राष्ट्रीय एकता पर बनी सर्वोत्तम फिल्म का नरगिस दत्त- पुरस्कार दिया गया। यह हिन्दी में डब होकर प्रदर्शित हुई है।

□ तमिल/ रंगीन/ १९९२/ १३७ मिनट, □ निर्देशक : मणि रत्नम, □ संगीत : ए.आर. रहमान, □ अरविंद/ मधु/ पंकज कपूर।

पद्मा नदीर मांझी

माणिक बंद्योपाध्याय के प्रसिद्ध बंगला उपन्यास पर आधारित यह फिल्म प्रकृति और नियति के टकराव के बीच फँसे लोगों की कहानी है। पद्मा नदी के किनारे बसे केतुपुर गाँव का मछुआरा कुबेर कड़े परिश्रम के जरिए जीवन की गाड़ी खींच रहा है। गाँव में एक अमीर व्यापारी हुसैन मियाँ भी हैं, जिनका चरित्र सबके लिए एक पहेली की तरह है। नदी के कछार पर एक निर्जन द्वीप 'मोयना' के स्वामित्व वाले हुसैन मियाँ अपनी बड़ी नाव के द्वारा सामान की लदाई, ढुलाई में व्यस्त रहते हैं। उनकी कोशिश है कि उनका वनाच्छादित द्वीप कृषि के योग्य हो जाए। इसके लिए वे गरीब मजदूरों को केतुपुर से मोयना ले जाकर उनसे पेड़ों की कटाई का काम करवाते हैं। एक दिन कुबेर की मुलाकात मोयना से भागे हुए एक मजदूर से होती है जो उसे बताता है कि द्वीप का जीवन किस कदर खतरों से भरा है, और हुसैन मियाँ किस प्रकार निर्दयतापूर्वक वहाँ काम करने वालों का शोषण करते हैं। ग्रामीणों में इस बात का पता चलने पर हुसैन मियाँ के विरुद्ध सुगबुगाहट जन्म लेती है, लेकिन नदी में अचानक आए तूफान की त्रासदी के कारण उन्हें झुकना पड़ता है। व्यापारी, ग्रामीणों को दैनिक जरूरत की चीजें मुहैया करवाने के बदले उनसे कोरे कागज पर अँगूठा लगवा लेता है। कुबेर को भी हुसैन की गुलामी स्वीकार करनी पड़ती है। वह उसका नाविक बन जाता है। हुसैन मियाँ के साथ उनके द्वीप 'मोयना' की यात्रा करने के बाद कुबेर की मानसिकता बदल जाती है। वह रुक्ष और गुस्सैल स्वभाव का व्यक्ति बन जाता है। अपने परिवार से पहले की तरह मोहब्बत रखने की बजाए उसके रवैए में उत्पीड़न की भावनाएँ हावी होने लगती हैं। कुबेर महसूस करता है कि उसकी जगह अब केतुपुर के सभ्य-सहज परिवेश में नहीं, बल्कि 'मोयना' के आदिम और जंगली जीवन के बीच रह गई है।

पद्मा नदीर मांझी वर्ष १९९३ में द्वितीय सर्वोत्तम कथाचित्र के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुई। फिल्म के लिए सर्वोत्तम निर्देशन के पुरस्कार स्वरूप निर्देशक गौतम घोष को स्वर्ण कमल प्रदान किया गया। कान फिल्मोत्सव में यह फिल्म यूनेस्को पुरस्कार से सम्मानित हुई।

□ बंगला/ रंगीन/ १९९२/ १३० मिनट, □ निर्देशक : गौतम घोष, □ संगीत : अलाउद्दीन अली/ गौतम घोष, □ पात्र: अशद/ उत्पल दत्त/ रवि घोष/ रूपा/ चम्पा।

एक होता विदूषक

नाच-गाकर जीविकोपार्जन करने वाली मंजुला का नाजायज पुत्र अबूराव एक तमाशेबाज के सान्निध्य में पल कर विदूषक बनता है। उसके शानदार हास्य अभिनय से लोग काफी प्रभावित होते हैं। मन की वेदना को छिपाकर वह सबका मनोरंजन करता है। बढ़ती लोकप्रियता के दौर में एक अभिनेत्री उससे विवाह कर लेती है। लेकिन अबूराव को बाद में पता चलता है कि अभिनेत्री ने उसके साथ शादी अपने पूर्व प्रेमी से प्रतिशोध के उद्देश्य से की थी। इस हकीकत को जानने के बाद अबु खुद को छला गया महसूस करता है। उसकी शादी अधिक समय तक टिक नहीं पाती। पारिवारिक बिखराव के समानांतर उसकी व्यावसायिक कामयाबी का स्तर ऊँचा उठता जाता है। एक विख्यात विदूषक के रूप में सब उसे जानने लगते हैं। अबूराव इस दौरान एक अनाथ बच्ची से मिलता है, जिसके प्रति उसके मन मे हमदर्दी उमड़ आती है। वह उसे हँसाने की कोशिश करता है। लेकिन एक विदूषक के रूप में उसकी दक्षता बेमानी हो जाती है, जब उसके लाख प्रयास के बावजूद नन्हीं बच्ची के मासूम, उदास चेहरे पर खिलखिलाहट नहीं आ पाती। हारा हुआ विदूषक दिल के दौरे का शिकार हो जाता है। शहर के प्रतिष्ठित नेता उसका इस्तेमाल राजनीतिक कार्यक्रम में भीड़ जुटाने के लिए करना चाहते हैं। अबूराव अस्पताल में जबरदस्ती नेताजी के प्रभाव से स्टेज पर लाया जाता है। दर्शकों की भीड़ में उसे अनाथ बच्ची भी नजर आती है। वह सिर्फ उसके लिए अपना हास्य कार्यक्रम पेश करता है। दर्द में लिपटे हास्य को भीड़ पसंद नहीं करती। लेकिन अबूराव की कहानी को सुनकर अनाथ बच्ची का जड़वत चेहरा मुस्करा उठता है। वह विदूषक के लिए जिंदगी का सार्थक बिन्दु बन जाती है। उसका सारा दुख नन्हीं बच्ची की मुस्कान में तिरोहित हो जाता है। 'एक होता विदूषक' को सर्वश्रेष्ठ मराठी कथाचित्र का राष्ट्रीय अवार्ड मिला था।

□ मराठी / रंगीन/ १९९२/ १६० मिनट, □ निर्देशक : जब्बार पटेल, □ संगीत : आनंद मोडक, □ पात्र : लक्ष्मीकांत बेर्डे/ वर्षा उसगाँवकर/ नीलू फुले/ मोहन आगाशे/ दिलीप प्रभावलकर।

अंतरीन

शहरी और आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या है, आदमी के एकाकीपन की। धड़कनों का अजनबी परायापन इस व्यावसायिक युग का एक मलिन आयाम है जिसकी मौजूदगी इंसानी दिलों को एक अजीब से खालीपन में ढँक लेती है। प्रख्यात उर्दू कथाकार सआदत हसन मंटो की इसी विषय पर लिखी गई एक कहानी पर यह फिल्म आधारित है। भावनात्मक रूप से बिलकुल अकेली एक महिला अपने आसपास की रिक्तता को भरने के लिए फोन का सहारा लेती है। यहीं उसे एक ऐसा जरिया नजर आता है, जो समाज की संकीर्ण सीमाओं के बाहर उसकी जज्बाती अनुभूतियों को बिखेर

सकता है। अपने मन की खोह से बाहर निकलने के लिए वह फोन पर उन्मुक्तता और उत्साह के साथ अपनी भावनाएँ व्यक्त करती है। एक दिन उसका संपर्क एक ऐसे पुरुष से फोन के द्वारा होता है, जो उसकी ही तरह भावनात्मक तुष्टि के लिए छटपटा रहा है। दोनों के बीच ढेर सी दुनियादारी की बातें होती हैं। एक-दूसरे से प्रत्यक्ष मिले बगैर वे परस्पर प्रेम का अनुभव करने लग जाते हैं। दिल के सारे गुबार इनके बीच बँटते हैं और सुखद अनुभूतियाँ इनकी साझी संपत्ति बन जाती हैं। एक अपरिभाषित रिश्ते की यह अनूठी तरंग फिर अचानक कहीं बिखरने का संकेत देती है। अनुभव के धरातल पर डोलते रहने के बाद एक दिन दोनों अपनी- अपनी दुनिया में वापस लौट जाते हैं। उनके साथ रहती हैं, सिर्फ अतीत की कुछ प्रतिध्वनियाँ और जिजीविषा की एक नई कड़ी। मगर अंतर्मन के सीमांकन का घेरा फिर सिकुड़ने लगता है।

□ बंगला/ रंगीन/ १९९३/ ९१ मिनट, □ निर्देशक : मृणाल सेन, □ पात्र : डिम्पल कपाड़िया, अंजन दत्त, तथागत सान्याल।

कभी हाँ कभी ना

पढ़ने लिखने में कमजोर युवक सुनील की दिलचस्पी केवल सगीत में है। अपने दोस्तों के साथ वह एक संगीत समूह के लिए काम करता है। इसकी मुख्य गायिका एना से उसे बेहद मोहब्बत है। लेकिन उसकी गरीबी और हिचक इस प्रेम को मजबूत करने में बाधक होती है। संपन्न परिवार का गिटारवादक 'क्रिस' भी एना से प्रेम करता है। इनके बीच अंतरंगता बढ़ते देख सुनील, ईर्ष्या से ग्रस्त होकर दोनों में गलतफहमी पैदा करने से भी नहीं हिचकता। सच्चाई खुलने पर एना उससे नफरत करने लगती है। उसके दोस्त उसे अपने बैंड से भी निकाल देते हैं। अपने किए पर पछतावा महसूस करने के बाद सुनील 'एना' का दिल फिर जीतने की कोशिश करता है। एना उसे माफ कर देती है। उधर क्रिस की शादी उसके माता-पिता एक अमीर परिवार की लड़की से तय कर देते हैं। एना, सुनील के प्यार को समझ कर उसके करीब आ जाती है, लेकिन क्रिस के प्रति उसका प्रेम कम नहीं होता। सुनील महाशय एना की हाँ और ना के बीच झूलते रहते हैं। प्रेम त्रिकोण में उसके हाथ आखिरकार कुछ नहीं बचता। उसे नए सिरे से जिंदगी की शुरूआत करनी पड़ती है।

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९९३/ १६४ मिनट, □ निर्देशक : कुंदन शाह, □ संगीत : जतिन-ललित, □ पात्र : शाहरुख खान/ सुचित्रा कृष्णमूर्ति/ दीपक तिजोरी।

पतंग

फिल्म के कथानक से कई उपकथाएँ जुड़ी हुई हैं, जिनका सम्मिलन बिंदु है, मानपुर का रेलवे स्टेशन। यहाँ अपराधों के साए में अनेक जिंदगियाँ पलती हैं। इन्हीं में से एक है असहाय, गरीब महिला 'जिल्ली' का पुत्र 'सोमरा' जिसे पतंग उड़ाने और उनके पीछे भागने का बेहद शौक है। पतंग की डोर प्रतीक होती है, मनुष्य की आकांक्षा और कल्पनाओं के विस्तार की। रेलों की आवाजाही और पेट भरने के लिए तमाम अनचाही परिस्थितियों से जूझने के बीच सोमरा और उस जैसे दूसरे बहुत से लोग आकाश के फैलाव में अपनी जमीन को चंद लम्हों के लिए भुलाने की कोशिश करते रहते हैं। मगर यह उनके लिए बेहद त्रासद प्रक्रिया है। रेलवे सामान की चोरी करने वालों का गिरोह सोमरा से भी यह काम करवाता है। एक शातिर बदमाश ने अधिकारियों और नेताओं की मिलीभगत से अपने अपराधकर्म को बड़े पैमाने पर चला रखा है। अपराधियों की क्रूरता, राजनीतिज्ञों के गंदे स्वार्थ, लचर शासन तंत्र और वर्ग संघर्ष की लिजलिजी जमीन को सोमरा का किशोर मस्तिष्क हैरत के साथ पढ़ने की कोशिश करता है। लेकिन परिवेश की दूषित हवा के घर्षण से कहीं डोर की तरह वह सहमा हुआ अपनी माँ के आंचल में लौट आता है। उसके सपनों की पतंग लरजती हुई उससे बहुत दूर चली जाती है।

संदीप राय की फिल्म : उत्तोरण

□ हिन्दी/ रंगीन/ १९९३/ १०१ मिनट, □ निर्देशक : गौतम घोष, □ संगीत : गौतम घोष, □ पात्र : शबाना आजमी/ शफीक सईद/ ओमपुरी/ शत्रुघ्न सिन्हा।

उत्तोरण

प्रतिष्ठित डॉक्टर नीहार सेनगुप्ता केवल अमीर मरीजों के इलाज में ही दिलचस्पी लेते हैं। उन्हें जमशेदपुर के रोटरी क्लब द्वारा व्याधियों से संबंधित व्याख्यान का आमंत्रण मिलता है। डॉ. नीहार अपनी कार में जमशेदपुर के लिए रवाना होते हैं। राह के एक गाँव 'कोदली' में उन्हें सड़क पर एक व्यक्ति अर्धमूर्च्छित अवस्था में पड़ा मिलता है। वे अपनी यात्रा स्थगित कर उसकी चिकित्सीय देख-रेख में जुट जाते हैं। गाँव वालों से पता चलता है कि मार्ग में बेहोश पड़े व्यक्ति का नाम हलधर है और वह गांजे की लत के कारण अक्सर इस बुरी हालत में जहाँ-तहाँ पड़ा रहता है। डॉ. सेनगुप्ता की मुलाकात हलधर की बेटी मानसी से होती है, जिसका कष्टप्रद जीवन देखकर वे दहल जाते हैं। पहली बार उन्हें मालूम पड़ता है, कि झाड़-फानूस की छतों से बाहर आम आदमी की जिंदगी कितनी यातनामय है। ग्रामीणों का झाड़-फूँक के जरिए इलाज करने वाले ओझा में उन्हें आधुनिक चिकित्सा तकनीक की सारी उपलब्धियाँ अर्थहीन जान पड़ती हैं। जमशेदपुर में व्याख्यान देने के बाद वे लौटते वक्त कोदली ग्राम में ही ठहर जाते हैं। उनके जीवन को एक नई दिशा मिलती है। सुविधा संपन्न लोगों की चिकित्सा के बजाए वे दीन-हीन ग्रामीणों की सेवा करने का निर्णय लेते हैं।

□ बंगला/ रंगीन/ १९९३/ ८२ मिनट, □ निर्देशक : संदीप रॉय, □ पात्र : सौमित्र चटर्जी/ साधु मैहर/ अनूप मुखोपाध्याय।

सूरज का सातवाँ घोड़ा

कथ्य प्रस्तुति के लिहाज से यह फिल्म हाल की सर्वाधिक चर्चित फिल्म रही है। कथानक का जटिल ताना-बाना बड़ी खूबसूरती के साथ परदे पर अभिव्यक्त हुआ है। फिल्म एक नौजवान द्वारा अतीत के पुनरावलोकन और विश्लेषण की कहानी है। इलाहाबाद में रहने वाले माणेक मुल्ला को नौकरी की अवधि के बाद खाली समय में दोस्तों के साथ बतियाने का शौक है। वह कई सच्चे - झूठे अफसाने उन्हें सुनाता है, जिस पर अक्सर लंबी चौड़ी बहस की जाती है। एक दिन माणेक अपनी ही जिंदगी से जुड़ी तीन प्रेमकथाएँ मित्रों को

सुनाता है, जो एक-दूसरे में जुड़ी हुई हैं। जहाँ एक कहानी का सिरा छूटता है, वहीं से दूसरी शुरू हो जाती है। तीनों में माणेक के तीन अलग-अलग असफल प्रेम- प्रसंग हैं। जिनकी कसक उसे सालती रहती हैं। किस प्रकार कायरतापूर्वक उसने एक असहाय, उत्पीड़ित खानाबदोश लड़की को धोखा दिया, जो उसे अपना सर्वस्व मानती थी। लंपट और क्रूर पिता के भय से वह अपनी एक अन्य प्रेमिका का संबल बनने में असफल रहा। माणेक, फंतासी और यथार्थ के धरातल पर अपने साथियों के साथ प्रेम की व्याख्या को पकड़ने की कोशिश करता है। फिल्म को सर्वोत्तम हिन्दी कथाचित्र पुरस्कार के राष्ट्रीय अवार्ड द्वारा सम्मानित किया गया। मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम ने श्याम बेनेगल को सर्वोत्तम निर्देशक के पुरस्कार से सम्मानित किया है।

□ *हिन्दी/ रंगीन/ १९९३, □ निर्देशक : श्याम बेनेगल, □ संगीत : वनराज भाटिया, □ पात्र : रजत कपूर/ नीना गुप्ता/ अमरीशपुरी/ पल्लवी जोशी।*

विधेयन्

भूख इंसान को गद्दार भी बनाती है, और मुर्दार भी। पेट की अंतड़ियों का खिंचाव आदमी का पृष्ठ-तनाव खत्म कर देता है, और उसकी आकृति सर्वांग समर्पण का रूप ले लेती है। विधेयन् एक ऐसे, ही हारे हुए व्यक्ति की कहानी है, जिसकी गैरत उसकी जरूरत के आगे दम तोड़ देती है। केरल के एक गाँव के जमींदार भास्कर पटेलार का नौकर तोम्मी दासत्वभाव से इस कदर अंतर्ग्रस्त है, कि वह अपने वजूद को स्वीकार ही नहीं करना चाहता। क्रूर, निर्दयी और शोषक जमींदार के समक्ष उसकी पूरी जिंदगी नतमस्तक हो जाती है। भास्कर अपने इस दास के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार करता है। तोम्मी और उसकी पत्नी ओमना, जमींदार के अत्याचार को बगैर किसी 'उफ' के सहते जाते हैं। भास्कर, तोम्मी की बीवी के साथ बलात्कार करता है, लेकिन उसके मुँह पर शिकन तक नहीं खिंचती। जीने के लिए वह इस हद तक जमींदार पर निर्भर है कि उसे अपनी जिंदगी को मुर्दानगी में बदलने का गुमान भी नहीं होता। भास्कर अपने हर बुरे काम में तोम्मी का इस्तेमाल करता है। ये मिलकर कई लोगों की हत्याएँ करते हैं। जमींदार की पत्नी सरोजा जब उसकी पाशविकता को रोकने का प्रयास करती है, तो वह तोम्मी के सहयोग से उसकी हत्या करने से भी नहीं हिचकता। मालिक और दास इस अपराध के बाद छुपने के लिए जंगल की ओर भागते हैं। जहाँ भास्कर की मृत्यु हो जाती है। तोम्मी अपने स्वामी की मौत पर पहले अफसोस महसूस करता है। फिर उसकी चेतना किसी तरह लंबे अंतराल से जागती है। वह विरोध स्वरूप मृत भास्कर के हाथों की गिरफ्त में मौजूद बंदूक छीन कर पानी में बहा देता है।

□ *मलयालम/ रंगीन/ १९९३/ ११२ मिनट, □ निर्देशक : अडूर गोपालकृष्णन, □ संगीत : विजय भास्कर, □ पात्र : मैमूटी/ गोपकुमार/ तन्वी आजमी।*

वो छोकरी : पिता की तलाश : पल्लवी

वो छोकरी

बंगाल के प्रसिद्ध लेखक बनफूल (स्वर्गीय बलाई चंद्र मुखर्जी) की कहानी पर आधारित यह फिल्म एक सर्वथा अकेली लड़की के जीवन संघर्षों की मर्मभेदी दास्तान है। हावड़ा रेलवे स्टेशन पर एक टूटी-फूटी बोगी में रहने वाली किशोर वय की लड़की टुनु को लोग 'वो छोकरी' कह कर पुकारते हैं। यह संबोधन एक सर्वनाम भी है, और हिकारत की चुभती हुई दुनियावी नजर भी। जो आदमी की अंतरात्मा को नोचकर आगे बढ़ जाना चाहती है। इस लड़की को इंतजार है अपने पिता के लौटने का, जो एक दिन उसे और उसकी माँ को बेसहारा छोड़कर सक्रिय राजनीति को कैरियर बनाने के लिए कहीं चले गए थे। टुनु को उम्मीद है कि कभी न कभी वे वापस आएँगे और उसे इस जहालत भरी जिंदगी से बाहर निकाल लेंगे। स्टेशन पर घूमने वाले कुछ अनाथ, गरीब बच्चों के साथ वह अपने अनुभव बाँटती है। उसका अतीत उसके आगे एक प्रश्नवाचक चिन्ह बनकर झूलता रहता है। एक सुखी पारिवारिक माहौल में उसने जन्म लिया था। उसके पिता उसे 'अप्सरा' कह कर बुलाते थे। अचानक राजनीति में उनकी दिलचस्पी इस कदर गहराई, कि उन्होंने परिवार को त्याग दिया। टुनु को बाद में यह सच्चाई मालूम हुई, कि उसके माँ बाप के बीच विवाह नहीं हुआ था। उसकी माँ, पति की बेवफाई से दुखीहोकर शराब की आदी हो जाती है। जब उसे पता चलता है, कि उसके साथ धोखाधड़ी करने वाला व्यक्ति एक बड़ा नेता बन गया है, तो वह उससे मिलने पहुँचती है। अपनी राजनीतिक छवि धूमिल होने के भय से टुनु के पिता उसकी माँ को न केवल पहचानने से इंकार करते हैं, बल्कि गुंडों की मदद से उसका कत्ल करने में भी उन्हें हिचक नहीं होती। टुनु माँ की मृत्यु के बाद बिलकुल अकेली रह जाती है। जिंदा रहने के लिए उसे बद से बदतर अनुभवों से गुजरना पड़ता है। एक विधुर व्यक्ति उसको अपने घर आश्रय देता है, लेकिन बदले में उसकी ख्वाहिश है कि टुनु उसके साथ शादी कर ले। लड़की इस समझौते पर भी राजी होती है। किन्तु विधुर की जल्दी ही मौत हो जाने से उसे रेल की पटरियों के करीब आसरा ढूँढ़ना पड़ता है। जहाँ मुसाफिरों और कुलियों की भूखी निगाहें उसे हरदम बेधती रहती हैं। एक दिन टुनु को पता चलता है कि उसके पिता राजनीतिक कार्य से कलकत्ता आ रहे हैं। वह बड़ी दिक्कतों के बाद भी उनसे मिलने में कामयाब नहीं हो पाती। उसका निष्ठुर बाप पिछली जिंदगी का हर सबूत खत्म करने के उद्देश्य से अपनी बेटी को भी मरवा डालता है। राजनीति और सत्ता का मोह व्यक्ति को किस कदर निर्मम बना सकता है, इसका यह फिल्म सिहरा देने वाला चित्रांकन करती है।

□ *हिन्दी/ रंगीन/ १९९३/ १५० मिनट, □ निर्देशक : शुभांकर घोष, □ पात्र : पल्लवी जोशी/ ओमपुरी/ नीना गुप्ता/ परेश रावल* ■

● **श्रीराम ताम्रकर □ राहुल शर्मा और □ गौरीशंकर पंडित द्वारा प्रस्तुत**

फिल्म-आस्वाद

फिल्म को देखा नहीं पढ़ा जाना चाहिए। ठीक उसी तरह, जिस तरह कविता/ कहानी अथवा उपन्यास को पढ़ा जाता है और पढ़कर उसकी व्याख्या की जाती है। दरअसल फिल्म के असली पारखी उसके दर्शक होते हैं और फिल्म का आस्वाद उनकी प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्त होता है। फिल्म आस्वाद के विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। यहाँ प्रशिक्षित व्यक्ति 'फिल्म-संस्कृति' के व्यापक प्रचार-प्रसार में अपना सही योगदान करते हैं। इस खंड में फिल्म और फिल्म-आस्वाद के अलग-अलग पहलुओं पर विविध लेखकों/ समीक्षकों और विशेषज्ञों के विचार प्रस्तुत हैं। निश्चित ही इससे फिल्म माध्यम को गंभीरता से समझने में मदद मिलेगी।

खण्ड पाँच

धार्मिक फिल्मों का मायाजाल

भारतीय सिनेमा का इतिहास धार्मिक-पौराणिक फिल्मों का रहा है। मूक और सवाक दोनों युगों में लगभग प्रत्येक भाषा में पहली फिल्म धार्मिक बनी है। 'राजा हरिश्चंद्र' से लेकर 'जय संतोषी माँ' तक फिल्म निर्माताओं की झोली देवी-देवताओं ने भरी है। टीवी पर प्रसारित 'रामायण' और 'महाभारत' के दौर में धर्म की लहर देखते ही बनती थी। चमत्कारों के अलावा धार्मिक फिल्मों ने दर्शकों को मर्यादित, संस्कारवान तथा शालीन बनाया। समाज का यही गुण आज नदारद है!

● हेमचंद्र पहारे

धार्मिकता एक विश्वव्यापी मानवीय प्रवृत्ति है। सिनेमा भी लोकरंजन का इस सदी का सबसे सशक्त माध्यम साबित हो चुका है। यह स्वाभाविक है कि भारत में कथा-चित्रों का निर्माण दादा साहेब फालके की सन् १९१३ में प्रदर्शित पौराणिक फिल्म राजा हरिश्चंद्र से प्रारंभ हुआ। संयोगवश इस फिल्म के निर्माण की प्रेरणा भी फालके को एक विदेशी फिल्म 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' से मिली। असंख्य पुराण कथाएँ और संस्कृत के रामायण और 'महाभारत' जैसे महाकाव्य आज भी सिने-सर्जकों के प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं। यह दूरदर्शन पर प्रसारित महाधारावाहिकों की उस सफलता ने प्रमाणित कर दिया जिसके चलते देश-विदेश के अन्य धर्मावलंबियों को भी उसी रुचि के साथ रसिक होते देखा गया।

हिंदी क्षेत्र में दादा साहेब फालके के हरिश्चंद्र, लंकादहन जैसे चलचित्रों के अलावा बंगाल और दक्षिण में भी फिल्मों की शुरूआत धार्मिक फिल्मों के जरिए हुई। कलकत्ता में १९१७ में 'नल दमयंती' तथा दक्षिण में १९२१ में 'भीष्म प्रतिज्ञा' का निर्माण हुआ। दादा साहब ने १९१२ से १९३७ के अरसे में कोई १२५ मूक फिल्में बनाई। उन्हें भारी सफलता मिली। उनकी अंतिम फिल्म 'गंगावतरण' सवाक थी। मूक युग में फालके के अलावा शारदा फिल्म कंपनी के नानूभाई दवे और मायाशंकर भट्ट तथा आर्देशिर ईरानी की इम्पीरियल, चंदूलाल शाह की रणजीत मूवीटोन तथा शांताराम ने भी अनेक धार्मिक फिल्मों का निर्माण किया। आर्देशिर ईरानी की पहली सवाक उल्लेखनीय धार्मिक फिल्म 'वीर अभिमन्यु' थी।

सिनेमा के बोलने लगने के पश्चात १९३१ में जो २३ फिल्में बनीं उनमें से आठ धार्मिक थीं। हरिश्चंद्र के विषय पर ही कलकत्ता के मदन थिएटर ने भी एक फिल्म बनाई। कुछ विषय ऐसे थे जिन पर एक ही भाषा में एक से ज्यादा फिल्में भी बनाई गई। 'शकुंतला' का निर्माण कलकत्ता के मदन और बंबई के सरोज मूवीटोन ने किया। इसके अगले वर्ष भी धार्मिक विषयों पर बनने वाली फिल्मों का सिलसिला इसी तरह जारी रहा। इनमें रणजीत की 'देवी देवयानी', शांताराम (प्रभात) की 'अयोध्या का राजा' (मराठी में भी), ईस्ट इंडिया की देवकी बोस निर्देशित 'सीता' तथा न्यू थिएटर्स कलकत्ता की 'राजरानी मीरा' उल्लेखनीय है।

जहाँ तक धार्मिक विषयों के निर्वाह का सवाल है, सन् १९३२ के बाद से ही न्यू थिएटर्स तथा प्रभात जैसे स्टुडियो ने इन्हें सम सामयिकता का स्पर्श देना शुरू कर पौराणिक पात्रों की मानवीय

फिल्मों में भगवान
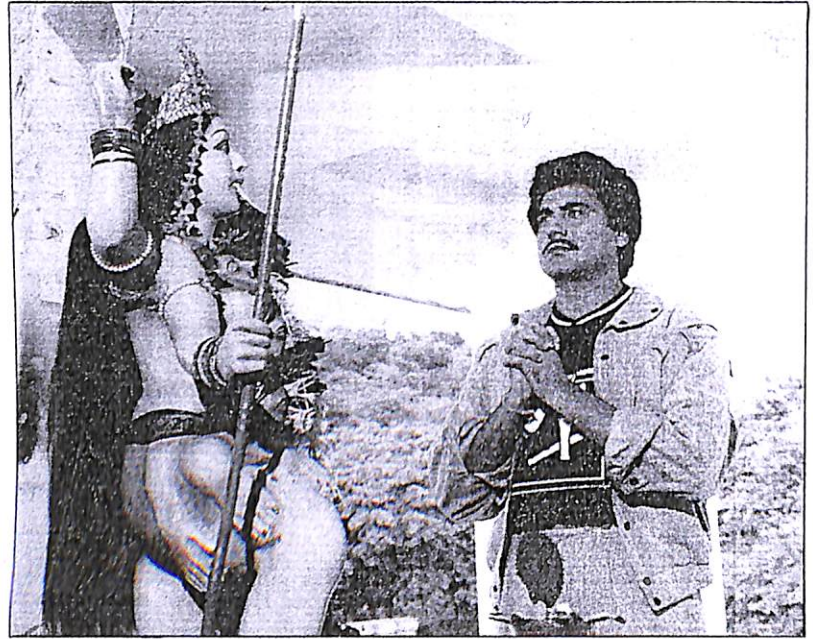
श्रेष्ठ धार्मिक तथा पौराणिक फिल्में

○ देवी देवयानी (१९३१) ○ अयोध्या का राजा (१९३२) ○ श्याम सुंदर (१९३२) ○ मालती माधव (१९३३) ○ राजरानी मीरा (१९३३) ○ चंडीदास (१९३४) ○ सीता (१९३४) ○ गंगावतरण (१९३७) ○ गोपालकृष्ण (१९३८) ○ संत ज्ञानेश्वर (१९४०) ○ भरत मिलाप (१९४२) ○ रामराज्य (१९४३) ○ शकुंतला (१९४३) ○ श्रवण कुमार (१९४६) ○ मीरा (१९४७) ○ संत तुकाराम (१९४८) ○ रामविवाह (१९४९) ○ वीर घटोत्कच (१९४९) ○ हर-हर महादेव (१९५०) ○ श्री गणेश महिमा (१९५०) ○ लक्ष्मीनारायण (१९५१) ○ नागपंचमी (१९५३) ○ चक्रधारी (१९५४) ○ जनम जनम के फेरे (१९५७) ○ सम्पूर्ण रामायण (१९६१) ○ कण कण में भगवान (१९६३) ○ भगवान परशुराम (१९७०) ○ सम्पूर्ण तीर्थयात्रा (१९७०) ○ सम्पूर्ण देवी दर्शन (१९७१) ○ जय संतोषी माँ (१९७५) ○ सत्यनारायण की महापूजा (१९७५) ○ गंगा सागर (१९७८)।

फिल्म 'भरत-मिलाप' (१९४१) की यूनिट के साथ फिल्मकार विजय भट्ट (बीच की पंक्ति में बीचोबीच)

भावनाओं का संवेदनशील चित्रण भी प्रारंभ कर दिया था। 'सीता', 'अयोध्या का राजा', 'अमृत मंथन' आदि के साथ यह जो रुझान शुरू हुआ, उसी का चरमोत्कर्ष हमें दस वर्ष पश्चात विजय भट्ट की राम-त्रयी, रामराज्य, भरत मिलाप तथा रामविवाह के रूप में देखने को मिला।

लेकिन इसके पूर्व भी यदि १९३५-३६ तक के संक्षिप्त अरसे को छोड़ दिया जाए, जिसमें फिल्म निर्माण की गति तनिक अवरुद्ध रही, तो सभी फिल्म कंपनियों द्वारा निर्मित सभी फिल्मों में से सफल फिल्में धार्मिक थीं। सन् १९३६ के वेनिस अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में पहली बार भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली फिल्म प्रभात की 'अमर ज्योति' भी एक धार्मिक फिल्म ही थी। इसके अगले ही वर्ष इसी समारोह में प्रभात की ही फिल्म 'संत तुकाराम' को वहाँ प्रदर्शित तीन सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में शरीक किया गया।

सन् १९३६ से १९४५ के बीच यानी द्वितीय विश्वयुद्ध काल न केवल भारतीय फिल्म उद्योग की चहुँमुखी तरक्की का युग था, बल्कि इसे हिंदी धार्मिक फिल्मों का स्वर्ण-युग भी कहा जाएगा। युद्ध के दौरान निर्मित उल्लेखनीय फिल्में थीं रणजीत की संत तुलसीदास (१९३९), भक्त सूरदास (१९४२), प्रकाश(भट्ट)की भरत मिलाप (१९४२), राम राज्य (१९४३), प्रभात की संत ज्ञानेश्वर (१९४०), गोपाल कृष्ण (१९३८), जयंत देसाई की भक्तराज (१९४३), यूनिटी प्रोडक्शन की 'भक्त कबीर', सनराइज की सती अनुसूया (१९४३) और शांताराम (राजकमल) की शकुंतला (१९४३)।

लेकिन युद्धकाल तथा उसके पश्चात धार्मिक फिल्मों के निर्माण को दोयम दर्जा मिलना शुरू हो गया। फिल्म उद्योग में काले धन के प्रवेश, स्टार सिस्टम, देशभक्ति और सामाजिक विषयों की बढ़ती लोकप्रियता वे कारण रहे, जिन्होंने धार्मिक फिल्मों को उनके ऊँचे आसन से हटा क्रमशः तीसरे-चौथे दर्जे की फिल्मों में शुमार कर दिया। संवेदना व कल्पनाहीन निर्देशकों के हाथों पौराणिक तथा धार्मिक विषयों का जो सतही चित्रण प्रारंभ हुआ उसने इन्हें मात्र वेशभूषा, प्रधान स्टंट फिल्मों के समकक्ष लाकर रख दिया। फिर भी आजादी के पूर्व निर्मित धार्मिक फिल्मों का तकनीक के क्षेत्र में एक बहुत बड़ा योगदान उनके चमत्कारों वाले दृश्य हुआ करते थे। संत ज्ञानेश्वर में भैंस का वेदपाठ करना, लंका का दहन, कालिया मर्दन, आकाशवाणियाँ, राक्षसों के करतब जैसे दृश्यों को स्पेशल इफेक्ट के जरिए जिस तरह विश्वसनीय बनाया जाता था वह दर्शकों को चमत्कृत तो करता ही था, उसने देसी कैमरामैनों और फोटोग्राफरों की उस प्रतिभा और उपचार-कौशल को भी उजागर किया जिसके बल पर उन्होंने साधनहीनता के बावजूद तकनीकी श्रेष्ठता

धार्मिक फिल्में : रोचक बातें

- *□ **'लाइफ ऑफ क्राइस्ट फिल्म'** (१८९६) देखकर दादा साहेब फालके को फिल्म निर्माण की प्रेरणा मिली थी।*
- *□ **भारत** की पहली कथा फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र (१९१३) है।*
- *□ **भारत** की पहली बोलती फिल्म भले ही 'आलमआरा' हो, आज 'अयोध्या का राजा' फिल्म का प्रिंट ही उपलब्ध है।*
- *□ **लगभग** प्रत्येक भारतीय भाषा में प्रथम फिल्म धार्मिक/ पौराणिक बनी है।*
- *□ **राजकपूर** की पहली फिल्म थी 'वाल्मीकि', जिसमें वे 'नारद' बने थे।*
- *□ **अशोक कुमार** बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'सावित्री' में 'सत्यवान' बने थे।*
- *□ **मीना कुमारी** ट्रेजेडी-क्वीन बनने के पहले धार्मिक फिल्में- हनुमान पाताल विजय/ गणेश महिमा/ वीर घटोत्कच/ लक्ष्मी नारायण में अभिनय करती थीं।*
- *□ **विजय भट्ट** ने अपनी तीन कालजयी फिल्मों- भरत मिलाप/ रामराज्य और रामबाण को जोड़कर चौथी फिल्म बनाई थी, **रामायण**। इसकी एक दिन भी शूटिंग नहीं हुई और प्रदर्शित की गई।*

दुनिया ◆ पूजा भट्ट

नईदुनिया ◆ सलमान खान-आमिर खान

नईदुलिया ◆ रवीना टंडन

नईदुनिया ◆ अश्विनी भावे

नईदुनिया ◆ शाहरुख खान

नईदुनिया ◆ आएशा जुल्का

नईदुनिया ♦ शिल्पा शिरोडकर

नईदुनिया
कुलकर्णी
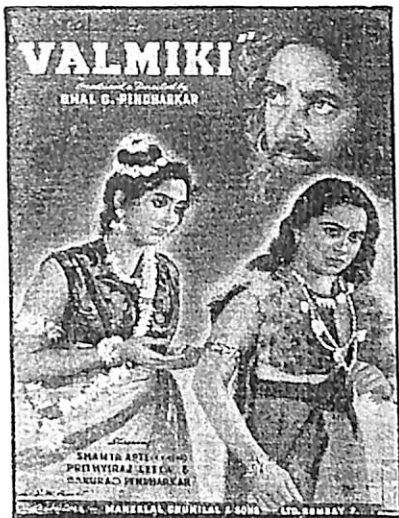
हासिल की। दादा साहेब फालके व शांताराम के काम को उस शैशवकाल में भी अंतरराष्ट्रीय स्तर का माना गया था।

पचास के दशक में भी वीर घटोत्कच/ हर हर महादेव/ श्रीगणेश जन्म/ नागपंचमी/ चक्रधारी/ तुलसीदास और वामन अवतार जैसी फिल्में बेहद लोकप्रिय हुईं। साठ के दशक में धीरूभाई देसाई की सती अनुसूया, वाडिया की पवन पुत्र हनुमान और सम्पूर्ण रामायण, आदर्श लोक की तारामती हरिश्चंद्र, जनम जनम के फेरे तथा नडियादवाला की महाभारत रही। सम्पूर्ण रामायण और महाभारत के निर्देशक कैमरा जादूगर और स्पेशल इफेक्ट के विशेषज्ञ बाबूभाई मिस्त्री थे। हिंदी फिल्मों के मध्य काल में रजत जयंती मनाने वाली फिल्म महाभारत के निर्देशक इन्हीं बाबूभाई मिस्त्री की सेवाएँ कोई बीस बरस बाद अपना दूरदर्शन धारावाहिक बनाते वक्त बी.आर. चोपड़ा को भी लेनी पड़ी।

चमत्कारों के बल पर चलने वाली धार्मिक फिल्मों ने एक चमत्कार सत्तर के दशक के मध्य में उस समय फिर किया जब सिप्पी के सदाबहार तथा कीर्तिमान स्थापक शाहकार **शोले** की टक्कर में एक मामूली सी छोटे बजट की फिल्म **जय संतोषी माँ** ने टिकट खिड़कियों पर तूफान मचा दिया। जय संतोषी माँ की सफलता में उसके मधुर संगीत का भी काफी बड़ा योगदान था जिसके गीत अब भी नवरात्रि के गरबों में गाए जाते हैं।

धार्मिक फिल्मों का अस्सी के दशक का इतिहास वास्तव में दूरदर्शन पर प्रसारित रामानंद सागर के रामायण तथा बी.आर. चोपड़ा के महाभारत का ही है जिसकी याद अभी दर्शकों के मन में ताजा है। रामानंद सागर अपनी कृष्णा वीडियो सीरिज को रामायण जैसी लोकप्रियता नहीं दिला सके। ■

धार्मिक फिल्मों की धर्म-निरपेक्षता

फिल्मों का व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिकीय पक्ष कितना भी प्रबल क्यों न हो, मूलतः वे प्रदर्शनकारी कलाओं का ही एक सशक्त माध्यम हैं। उन्हें कला-माध्यम मानते ही उनकी वह सार्वजनिकता स्पष्ट हो जाती है, जो धर्म, सम्प्रदाय, नस्ल और जाति और भाषा के ऊपर की चीज होती है। हिन्दी की पौराणिक और धार्मिक फिल्मों में अन्य धर्मावलम्बियों का योगदान उनके निर्माण से लेकर दर्शकों की इस निष्पत्ति तक, इतना ज्यादा है कि उनकी धर्म-निरपेक्षता पर किसी भी तरह उंगली नहीं उठाई जा सकती। इन फिल्मों के निर्माण के हर क्षेत्र में मुसलमानों, ईसाइयों और पारसियों की भूमिका प्रारंभ से बहुत महत्वपूर्ण रही है।

निर्माण के स्तर पर देखें तो, सैयद फतेलाल ने प्रभात कंपनी के लिए 'जगतगुरु शंकराचार्य' 'संत तुकाराम' और 'गोरा कुम्हार' बनाई। पारसी होमी तथा जे.बी. एच. वाडिया ने 'संपूर्ण रामायण/ रामभक्त हनुमान/ हनुमान पाताल विजय तथा 'गणेश महिमा' जैसी हिन्दू तथा 'लाले यमन' 'नूरे यमन' जैसी फिल्में बनाई। बाद में अब्दुल गफ्फार, अब्दुल करीम नड़ियादवाला ने 'अयोध्यापति' और 'सम्पूर्ण रामायण' का निर्माण कर इसी सिलसिले को आगे बढ़ाया। कैमरा तथा फोटोग्रॉफी के क्षेत्र में जाल तथा फली मिस्त्री तथा स्पेशल इफेक्ट के क्षेत्र में बाबूभाई मिस्त्री के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

मुसलमान अभिनेताओं ने हिन्दी-हिन्दू-धार्मिक फिल्मों में अपने अभिनय से नए प्रतिमान स्थापित किए हैं। शाहू मोडक ईसाई धर्मावलम्बी होते हुए भी भारतीय जनमानस में उनकी सदाबहार छवि भगवान कृष्ण की ही रही है। (संपूर्ण रामायण' में उन्होंने राम की भूमिका भी की थी) देवकी बोस द्वारा निर्देशित 'सीता' में मुख्तार बेगम ने जहाँ भारत माता की भूमिका की थी वहीं उसमें लक्ष्मण का किरदार गुल हमीद ने किया था। 'सती अनुसूया' के लेखक अहसान रिजवी थे तो बॉम्बे टॉकीज की अशोक कुमार-देविका रानी अभिनीत 'सावित्री' की पटकथा लेखन में नजक नकवी की हिस्सेदारी थी। डब्ल्यू. जेड. अहमद ने शालीमार के लिए 'मीराबाई' बनाई थी। देवकी बोस की ही एक अन्य फिल्म 'पूरन भक्त' के नायक थे लखनऊ के रज्जन मियाँ। इस फिल्म में पूरन के पिता की भूमिका अंसारी नामक एक कलाकार ने की थी। सहगल व पंकज मालिक के गीतों के लिए जानी जाने वाली न्यू थिएटर्स की फिल्म 'कपाल कुंडला' में नजमुल हसन तथा 'चंडीदास' में नवाब काश्मीरी थे। 'द्रोपदी' की भूमिका यदि जेबुन्निसा ने की तो नारद के रूप में डेविड तथा हादी तथा दुर्योधन की भूमिका में याकूब को भी लोग याद करते हैं। शांताराम की फिल्म पड़ोसी तो इस मामले में सबसे बाजी जीत ले जाती है।

पौराणिक कथाओं पर निर्मित दूरदर्शन के धारावाहिकों में से 'महाभारत' के उत्कृष्ट लेखन तथा पात्रों और घटनाओं को समसामयिक प्रासंगिकता प्रदान करने में डॉ. राही मासूम रजा के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकेगा। इसी धारावाहिक में अर्जुन की महत्वपूर्ण भूमिका अर्जुन के नाम से एक 'खान' ने ही निबाही थी। कुछ ही प्रकरणों के प्रसारण के पश्चात बंद हो जाने वाले धारावाहिक 'बाइबल' में भी शम्मी कपूर सहित अनेक हिंदू कलाकारों ने महत्वपूर्ण भूमिकाएँ कर धर्मनिरपेक्षता कायम रखी है।

□ हेप.
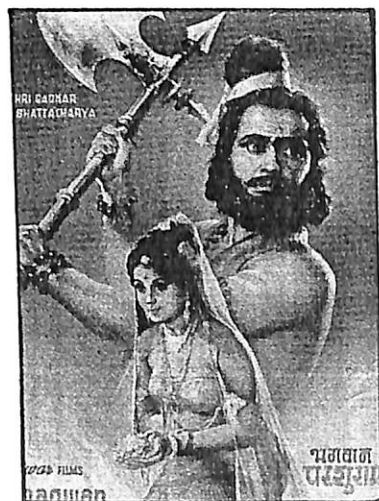
(१९३१ से १९५० तक)

कीर्तिमान

● **१९३१ :**
*चौदह मार्च को भारत की पहली बोलती फिल्म **आलमआरा** (आर्देशिर ईरानी) का बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में प्रथम प्रदर्शन। *तमिल में **कालिदास** और बंगला में **जमाई सास्ती** सवाक फिल्में प्रदर्शित।

● **१९३२ :**
*द मोशन पिक्चर सोसायटी ऑफ इंडिया गठित। *अयोध्या का राजा हिंदी-मराठी में निर्मित।

● **१९३३ :**
*हिमांशु राय ने इंग्लैंड में **कर्मा** (अँगरेजी) फिल्म की शूटिंग की। नायिका देविका रानी। *फिल्म **सैरन्ध्री** रंगीन कराने शांताराम जर्मनी ले गए।

● **१९३४ :**
*देबकी बोस की फिल्म **सीता** का वेनिस फिल्म समारोह में प्रदर्शन।

● **१९३५ :**
*भारतीय फिल्म में पार्श्व गायन की शुरूआत। *बॉम्बे टॉकीज की स्थापना। *पूरन भगत और देवदास प्रदर्शित।

● **१९३६ :**
*फिल्म **अमर ज्योति** (प्रभात) का वेनिस समारोह में प्रदर्शन। *फिल्म **हंटरवाली** (वाडिया ब्रदर्स) सुपरहिट। ***संत तुकाराम*** का वेनिस फिल्मोत्सव में प्रथम तीन फिल्मों में चयन।

● **१९३७ :**
*बंबई में इंडियन मोशन पिक्चर्स एसो. (इम्पा) का गठन। *भारत की पहली रंगीन फिल्म **किसान कन्या** प्रदर्शित।

● **१९३८ :**
*साउथ इंडियन फिल्म चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स का मद्रास में गठन। *ब्रह्मचारी/ स्ट्रीट सिंगर/ त्याग भूमि प्रदर्शित।

● **१९३९ :**
*भारतीय सिनेमा की रजत जयंती का बंबई में समारोह। *आदमी/ पुकार/ वंदे मातरम् रिलीज।

● **१९४० :**
*मेहबूब की **औरत** और रणजीत की **अछूत** का प्रदर्शन। *हिमांशु राय का निधन।

● **१९४१ :**
*भारत की पहली सम्पूर्ण अँगरेजी फिल्म **कोर्ट डान्सर** (वाडिया मूवीटोन) प्रदर्शित। *चित्रलेखा/ पड़ोसी/ खजांची फिल्मों का भारी स्वागत।

● **१९४२ :**
*द्वितीय विश्व युद्ध के कारण फिल्मों की लंबाई ११ हजार फुट तक प्रतिबंधित। *रोटी और भरत मिलाप को सफलता।

● **१९४३ :**
*भारत सरकार द्वारा इन्फरमेशन फिल्म्स ऑफ इंडिया और इंडियन न्यूज परेड प्रारंभ। *शासन की अनुमति बगैर फिल्म प्रदर्शन नहीं। *शकुंतला/ किस्मत बेहद लोकप्रिय।

● **१९४४ :**
*दादा साहेब फालके का निधन। *रतन/ माय सिस्टर/ रामशास्त्री लोकप्रिय।

● **१९४५ :**
*कच्ची फिल्मों पर लगा प्रतिबंध वापस।

● **१९४६ :**
*इन्फरमेशन फिल्म्स ऑफ इंडिया बंद। *फिल्म **नीचा नगर** (चेतन आनंद) कान फिल्म समारोह में प्रदर्शित। *धरती के लाल/ डॉ. कोटनीस की अमर कहानी प्रदर्शित।

● **१९४७ :**
*इम्पा द्वारा **आजादी का उत्सव** फिल्म का निर्माण। *मा. विनायक/ के.एल. सहगल का निधन। *फिल्म किस्मत ने कलकत्ता में ३ साल ८ महीने चलकर विश्व कीर्तिमान बनाया। *शकुंतला का न्यूयॉर्क और रामराज्य/ शाहजहाँ/ डॉ. कोटनीस... का कनाडा में प्रदर्शन।

● **१९४८ :**
*बंबई-मद्रास में फिल्म सेंसर कोड लागू। *फिल्म्स डिवीजन की स्थापना। *भारत की एकमात्र बैले फिल्म **कल्पना** (उदय शंकर) का निर्माण। *पहली कथा फिल्म **अजीत** की १६ एम.एम. में रंगीन शूटिंग और ३५ एम.एम. में ब्लो-अप कराई गई अमेरिका में।

● **१९४९ :**
*शासन की कर-नीति के विरोध में फिल्म वालों द्वारा ३० जून को भारत-बंद। *एस.के. पाटिल की अध्यक्षता में जाँच समिति गठित। *अन्नादुरै तथा करुणानिधि का फिल्मों में प्रवेश।

● **१९५० :**
*संगीतकार खेमचंद प्रकाश का निधन। *ज्याँ रैना फिल्म **द रिवर** की शूटिंग के लिए कलकत्ता आए।

भारत की आजादी के आंदोलन के दौरान ऐतिहासिक फिल्मों का निर्माण भारतीय जन-मानस को जागृत करने के लिए किया गया था। ऐतिहासिक चरित्रों को उनके देश-काल की दृष्टि से इतना सजीव पेश किया गया कि आज उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। इतिहास सदैव वर्तमान को सुधार कर भविष्य का दिशा-दर्शन करता है। क्या अब हमें इतिहास पर विश्वास नहीं रहा?

● वसंत साठे

सन् १९१५ में बनी **'डेथ ऑफ नारायण राव पेशवा'** भारत की पहली ऐतिहासिक फिल्म थी। इसके निर्माता/निर्देशक थे, एस.एन. पाटणकर। सिने इतिहास की दृष्टि से देश की आरंभिक फीचर फिल्मों में इसका क्रम चौथा था। फिल्म की कहानी पेशवा के दो अनुचरों द्वारा हत्या पर आधारित थी। इसके पहले बनी तीन फीचर फिल्मों का विषय पौराणिक था। ब्रिटिश आधिपत्य से नाराज भारतीय दर्शक ऐसी फिल्में उन दिनों पसंद करते थे, जिनमें राष्ट्र-भक्ति का स्वर मुखर होता हो। ऐतिहासिक फिल्मों ने देशप्रेम की संजीवनी प्रवाहित करने के अलावा भारत के गौरवमय अतीत को भी बखूबी परदे पर पेश किया।

'डेथ ऑफ पेशवा' के निर्माण के बाद सात-आठ साल तक देश में कोई ऐतिहासिक फिल्म नहीं बनी। १९२३ में दादा साहब फालके ने भगवान बुद्ध और मदन थिएटर्स ने 'नूरजहाँ' के जीवन चरित् पर फिल्मों का निर्माण किया था। परंतु इस वर्ष निर्मित सर्वाधिक सफल तथा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक फिल्म महाराष्ट्र फिल्म कंपनी की **'सिंहगढ़'** साबित हुई, जिसका निर्देशन बाबूराव पेंटर ने किया था। फिल्म शिवाजी के विश्वस्त सिपहसालार तानाजी द्वारा अपनी जान जोखिम में डालकर दुश्मन से एक किला मुक्त कराने की साहसिक घटना पर आधारित थी। शांताराम ने इसमें 'शैलार मामा' का चरित्र निभाया था। मूक फिल्मों के दौर में महाराष्ट्र फिल्म कंपनी ने दो अन्य जीवनी पर, ऐतिहासिक फिल्में बनाई। बाजी प्रभु देश-पांडे और 'नेताजी पालकर' नामक इन फिल्मों में शिवाजी के सेनापतियों द्वारा मराठा साम्राज्य के लिए संघर्ष का चित्रण था। १९२७ में निर्मित **नेताजी पालकर** बतौर निर्देशक वी. शांताराम की पहली फिल्म थी। इसी दौरान मुगल साम्राज्ञी रजिया सुल्तान के जीवन पर आधारित फिल्म 'रजिया बेगम' बनी। दादा साहब फालके ने शिवाजी के औरंगजेब की हिरासत से भागने की घटना पर फिल्म बनाई। राजस्थान के ऐतिहासिक नायक अमरसिंह राठौड़ के जीवन पर १९२५ में एक फिल्म का निर्माण किया गया। इसी वर्ष एन.डी. सरपोत्दार ने फिल्म 'छत्रपति शंभाजी' बनाई। शिवाजी के इस पुत्र का औरंगजेब ने कत्ल करवा दिया था। इंदौर के मराठाकालीन इतिहास की महारानी अहिल्याबाई के प्रेरणास्पद जीवन पर भी फिल्म का निर्माण हुआ। महाराष्ट्र फिल्म कंपनी द्वारा निर्मित 'शाह ला शाह' (राजा को मात) इस दौर की एक अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक फिल्म थी। इसका संदर्भ मुगलों के खिलाफ शिवाजी के चमकीले उदय से जुड़ा था।

१९२६ में हिमांशु राय ने एक जर्मन प्रतिष्ठान के. सहयोग से बौद्ध धर्म के इतिहास पर **'द लाइट ऑफ एशिया'** बनाई। फ्रेंज ऑस्टीन द्वारा निर्देशित इस फिल्म में तथागत का चरित्र स्वयं हिमांशु राय ने अभिनीत किया था। इस वर्ष शाहजहाँ की प्रेमिका मुमताज महल पर भी एक फिल्म बनी। वर्ष की अन्य प्रमुख ऐतिहासिक फिल्में ताई तेलिन/ उमाजी नाइक और तोतायचे बूंद मराठा काल पर केंद्रित थी। एन.डी. सरपोत्दार ने नारायणराव पेशवा की हत्या की घटना पर दूसरी बार एक मराठी फिल्म 'घा-चा-मा' का निर्माण किया। राजपूत योद्धाओं हमीर, राणा प्रताप और

इस्लामी फिल्में

इस्लाम धर्मावलम्बियों की इस आम धारणा के बावजूद कि बुत या तस्वीरें बनाना तथा नृत्य-संगीत गैर- इस्लामी कृत्य हैं। फिर भी मुस्लिम विषयों पर फिल्मों का निर्माण हुआ। उनकी संख्या बहुत कम है। जिस तरह 'मुस्लिम सोशल' के नाम से बनने वाली **'मेरे महबूब'** जैसी फिल्मों को लेकर डॉ. राही मासूम रजा, कैफी आजमी तथा ख्वाजा अहमद अब्बास को हमेशा एतराज रहा, उसी तरह पाबंदियों की वजह से खालिस मुस्लिम धार्मिक फिल्में जिन्हें कहा जा सके उनका निर्माण कम ही हुआ। इस्लाम धर्म को महत्व देने वाली अब तक कुल पाँच फिल्में ही बनी हैं। 'नूरे इस्लाम'/ गाजी सलाह उद्दीन/ अरब का सितारा/ ऐलान/ और दयारे हबीब। दयारे हबीब हज से संबंधित एक हिन्दी में 'डब' की हुई अरबी भाषा की फिल्म थी। 'नूरे इस्लाम' में इस्लाम के प्रारंभिक युग में सूफियों और मुसलमानों के बीच हुई जंगों का चित्रण था। जहाँ 'अरब का सितारा' नमाज के फलसफे पर आधारित थी वहीं 'ऐलान' में वर्तमान युग में एक सम्प्रदाय के रूप में, मुसलमानों की दुर्दशा का चित्रण था। सलमान रशदी-प्रकरण के बाद हजरत पैगंबर और उनके साथियों की जीवनियों की सुनहरे पर्दे पर पेश किए जाने की संभावना नही के बराबर है। गौरतलब है कि रणजीत मूवीटोन के लिए जयंत देसाई की 'सितमगर' नामक फिल्म के प्रदर्शित होते ही बंबई और दिल्ली में दंगे हो गए थे। पंडित नारायणप्रसाद 'बेताब' लिखित इस फिल्म में नायिका माधुरी एक मुसलमान लड़की होती है, जो एक ऐसे काफिर सिपाही से मोहब्बत करती थी, जो बाद में मुसलमान हो गया था। इसमें एक काफिर बादशाह एक मुसलमान का अपमान करता है। एतराज की बात यह थी कि उस काफिर बादशाह का नाम जब्बार रखा गया था, जो कि खुदा के बहुत से नामों में से एक है। ■

पृथ्वीराज चौहान के चरित्र भी मूक फिल्मों के जमाने में परदे पर रूपायित हुए। एक फिल्म समुद्र में शत्रु से लोहा लेने वाले पहले भारतीय वीर योद्धा 'सावल्य तंडेल' के जीवन पर बनी थी।

इस दौर में निर्मित फिल्मों में सर्वाधिक लोकप्रियता 'अनारकली' को मिली। सलीम-अनारकली के प्रेम-प्रसंग पर आधारित इस फिल्म में प्रमुख भूमिकाएँ सुलोचना और डी. बिलिमोरिया ने निभाई थी। इसी कथानक पर बाद में कई फिल्मों का निर्माण हुआ। दिल्ली के ग्रेट ईस्टर्न बैनर ने 'मुगल शहंशाह के इश्क' नाम से एक फिल्म बनाई। हिमांशु राय द्वारा ताज महल के वास्तुकार का चरित्र फिल्म 'शीराज' में प्रस्तुत किया गया। एन.डी. सरपोत्दार मराठा इतिहास पर 'गानिमी कावा' और 'देशद्रोही' जैसी फिल्में बनाते रहे। रामशंकर चौधरी, जिन्होंने इम्पीरियल फिल्म कंपनी के लिए मूक फिल्मों के दौर में 'अनारकली' का निर्माण किया था, वे १९३५ में इसके सवाक संस्करण के साथ हाजिर हुए। पचास के दशक में फिलिस्तान द्वारा बीना राय और प्रदीप कुमार को केंद्रीय भूमिकाओं में लेकर 'अनारकली' तीसरी बार बनाई गई। इन सभी फिल्मों में अकबर का चरित्र खलनायक की तरह पेश किया गया था। १९६० में के. आसिफ ने जब 'मुगले आजम' बनाई, तो उन्होंने कथानक का अंत बदलकर अकबर की छवि को नए रूप में रेखांकित किया। मुगले आजम अपने जमाने की सबसे भव्य और महँगी फिल्म थी। मधुबाला और दिलीप कुमार की जोड़ी ने इसमें प्रेमी युगल का चरित्र निभाया था। जबकि पृथ्वीराज कपूर अकबर की भूमिका में थे।

१९३० में वी. शांताराम के निर्देशन में
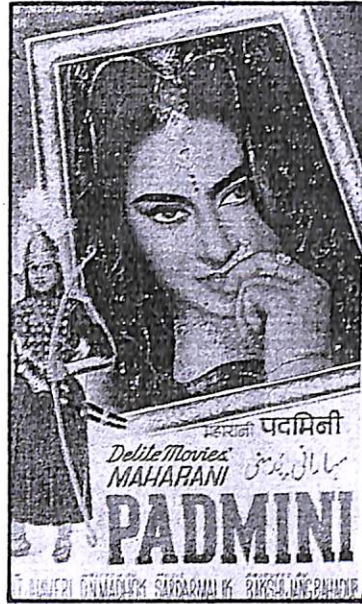
बनी फिल्म थी, 'उदयकाल' इसमें शांताराम ने स्वयं युवा शिवाजी की भूमिका निभाई, जो आजादी के संग्राम में पहला किला फतह करते हैं। इस फिल्म का नाम पहले 'स्वराज्य तोरण' रखा गया था। मगर ब्रिटिश सेंसर ने स्वराज्य शब्द पर आपत्ति प्रकट की। वीरता और पौरुष के भावों से ओतप्रोत 'उदयकाल' पूरे भारत में पसंद की गई। मूक सिनेमा के

दिनों में चाणक्य, चंद्रगुप्त और 'सम्राट अशोक' के जीवन पर भी फिल्में बनीं। पहली सवाक ऐतिहासिक फिल्म का निर्माण १९३१ में इम्पीरियल कंपनी द्वारा किया गया था। एजरा मीर द्वारा निर्देशित यह फिल्म नूरजहाँ और जहाँगीर के रोमांस पर आधारित थी जिसका निर्माण पहले मूक फिल्म के बतौर किया गया था। बाद में इसे आवाज दी गई। इसके हिंदी और अँगरेजी दोनों भाषाओं में संस्करण तैयार हुए थे। १९३० में शारदा फिल्म कंपनी ने प्रसिद्ध जहाँगीरी इंसाफ के विषय पर अदल-ए-जहाँगीर का निर्माण किया। १९३०-३१ के दौरान बनी कुछ अन्य प्रमुख मूक

धार्मिक फिल्मों के विषय में विविधता

हिंदी कथा चित्रों के अस्सी बरस के इतिहास में बनी धार्मिक फिल्मों में विषयवस्तु का निर्वाह हमेशा भक्तिभाव से ही किया गया हो ऐसी बात नहीं है। प्रारंभिक दौर की फिल्में अँगरेजी शासन के दौरान बनी थीं। उनमें देश की आजादी के विषय को भी परोक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाता रहा। पुराणकथाओं में असत् पर सत् की विजय को अक्सर विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष के रूप में सांकेतिक ढंग से प्रस्तुत किया गया। शांताराम, भालजी पेंढारकर और खुद फालके ने अपनी पौराणिक फिल्मों के जरिए छुआछूत, अंधविश्वास और जाति प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के विषयों का भी निहायत ही प्रगतिशील लहजे में निर्वाह किया। देवकी बोस की 'सीता', बाबूराव पटेल की 'द्रौपदी' तथा विजय भट्ट के रामराज्य में राम के पात्रों को मात्र दैवीगुणों से युक्त अलौकिक चरित्रों के रूप में न पेश कर उन्हें सामान्य मानवीय भावनाओं से युक्त ऐसे चरित्रों के रूप में पेश किया गया, जिसके साथ आम दर्शक अपने- आपको 'आइडेन्टीफाय' करता था। इन फिल्मों की सफलता का यही एक बहुत बड़ा कारण था और वही उन्हें आम वेशभूषा प्रधान स्टंट फिल्मों से ऊपर उठाता था।

कथावस्तु के निर्वाह के हिसाब से धार्मिक फिल्मों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी पौराणिक कथाओं की है जिनमें इन्हें सीधे-सीधे कथा-कथन शैली में प्रस्तुत किया गया। वाडिया की 'संपूर्ण रामायण', नडियादवाला का 'महाभारत', शांताराम की 'सैरंध्री' और शकुंतला, जयंत देसाई की 'हर हर महादेव', वसंतराव पेंटर की 'गोकुल का चोर', धीरूभाई देसाई की 'सती अनुसूइया' व 'श्रवण कुमार' ऐसी ही फिल्में थीं।

दूसरी श्रेणी संतों के जीवन पर आधारित फिल्मों की थी जिसमें संत तुकाराम, 'नरसी भगत', 'संत एकनाथ', 'चंडीदास', 'तुलसी दास, बिल्व मंगल, सूरदास, 'पूरन भक्त', 'भक्त कबीर' 'चैतन्य महाप्रभु' 'भक्त अंबरीश' तथा सहगल अभिनीत चंडीदास जैसी फिल्मों को शामिल किया जा सकता है।

तीसरी श्रेणी ऐसी धार्मिक फिल्मों की है जिसमें काल और पात्र तो पौराणिक हैं लेकिन कथावस्तु बिलकुल काल्पनिक है। विनोद देसाई की दर्जनों 'नाग' फिल्में ऐसी ही हैं। चौथी श्रेणी में 'आस्तिक', 'नास्तिक', 'बद्रीनाथ यात्रा', 'जनम जनम के फेरे' जैसी वे फिल्में आती हैं जिनके पात्र तो इस युग के सामान्य संसारी जीव हैं, लेकिन वे धर्म और भक्ति की महत्ता को स्थापित करते हैं।

ऐतिहासिक फिल्में थीं, पृथ्वीराज-संयुक्ता/ थ्रो ऑफ डायस/ शिराजुद्दौला और 'शिवाजी का जन्म'।

सवाक सिनेमा की शुरूआत के बाद ऐतिहासिक फिल्में हिंदी की अपेक्षा क्षेत्रीय भाषाओं में अधिक बनीं। वी. शांताराम ने अपनी ख्यात कृति 'सिंहगढ़' का मराठी संस्करण तैयार किया। हिंदी और उर्दू में बनने वाली फिल्में प्रमुख रूप से मुगल बादशाहों और प्राचीन हिंदू राजाओं पर केंद्रित थीं। १९३४ में ए.आर. कारदार ने ईस्ट इंडिया फिल्म कंपनी के लिए 'चंद्र-गुप्त' का निर्देशन किया। गुल हामिद इसमें चंद्रगुप्त बने थे, जबकि सरोजा देवी उनकी प्रियतमा। चाणक्य की भूमिका 'नजीर' ने निभाई थी। उत्कृष्ट छायांकन के बावजूद बॉक्स ऑफिस पर चंद्रगुप्त को सफलता नहीं मिल सकी। मदन थिएटर्स ने मुगल शहजादी जहांआरा पर फिल्म का निर्माण किया। लेकिन इनके मुकाबले सर्वाधिक सफल ऐतिहासिक फिल्म सोहराब मोदी की 'पुकार' थी। इससे अधिक कामयाबी देश में बनी किसी अन्य ऐतिहासिक फिल्म को नहीं मिली। मुगलिया शानो-शौकत को इसने परदे पर भव्यता के साथ पेश किया। एक और खासियत इस फिल्म की यह थी, कि इसमें हिंदू और मुस्लिम चरित्रों के बीच पारस्परिक सौहार्द एवं सामंजस्य दर्शाया गया था। सोहराब मोदी संग्रामसिंह की भूमिका में उतने ही वजनदार और प्रभावशाली नजर आए, जितने कि जहाँगीर के किरदार में चंद्रमोहन। नसीम ने इसमें नूरजहाँ की भूमिका अदा की थी। 'पुकार' के कथानक की प्रामाणिकता को लेकर चाहे विवाद उठे हों, किंतु ऐतिहासिक परिदृश्य के फिल्मांकन की दृष्टि से यह अतुलनीय कृति साबित हुई।

'पुकार' ने भारत में ऐतिहासिक फिल्मों की एक नई परंपरा का सूत्रपात किया। मोदी ने स्वयं इसके बाद सिकंदर/ पृथ्वी वल्लभ/ एक दिन का सुल्तान/ झाँसी की रानी आदि ऐतिहासिक फिल्में बनाईं। इनमें 'सिकंदर' का प्रस्तुतिकरण 'पुकार' जितना ही प्रभावशाली था। सिकंदर के हिंदुस्तान आगमन और इसे जीतने की असफल कोशिश के इतिहास को पुनर्जीवित करने में यह फिल्म सफल रही। सोहराब मोदी ने इसमें सम्राट पुरु (पोरस) और पृथ्वीराज कपूर ने सिकंदर की भूमिका निभाई थी। सिकंदर के पात्र में पृथ्वीराज का ओजपूर्ण अभिनय भुलाया नहीं जा सकता। 'पृथ्वी वल्लभ' मूलतः फंतासी प्रधान फिल्म थी, किंतु इसमें प्राचीन गुजरात के इतिहास का विशद चित्रण हुआ था। इसे सोहराब मोदी और दुर्गा खोटे के बेहतरीन अभिनय के लिए भी याद किया जाता है।
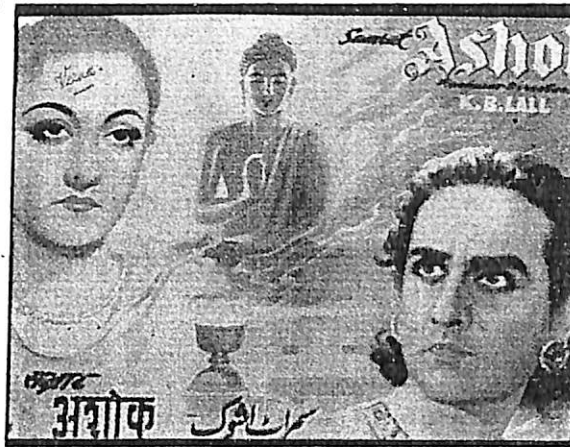
'एक दिन का सुल्तान', पुकार और सिकंदर की तरह असर नहीं छोड़ पाई। यह मूलतः एक कॉमेडी फिल्म थी, जिसे ऐतिहासिक परिदृश्य में रचा गया था। परदे पर इसका कथानक दर्शक अच्छी तरह नहीं समझ सके। सोहराब मोदी ने 'झाँसी की रानी' को टेक्नीकलर में फिल्माने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया। इसके लिए न केवल उन्होंने विदेश से कैमरा मँगवाया, बल्कि स्वयं तकनीकी प्रशिक्षण के तहत हॉलीवुड भी गए। फिल्म की शूटिंग के लिए झाँसी के किले का सेट चेम्बूर (बंबई) में लगवाया गया था। मोदी की कड़ी मेहनत के बावजूद झाँसी की रानी कामयाबी अर्जित नहीं कर सकी। अव्वल तो इसके प्रदर्शन के समय तक भारत को आजादी मिल जाने के कारण कथानक की प्रासंगिकता नहीं बची थी। साथ ही प्रमुख भूमिकाओं में सोहराब मोदी और मेहताब का चयन भी दर्शकों ने पसंद नहीं किया। सोहराब की भूमिका फिल्म पर इस कदर हावी थी कि झाँसी की रानी का मुख्य चरित्र उसके आगे दबकर रह गया।

चालीस के दशक में अनेक ऐतिहासिक फिल्में बाबर/ अकबर/ हुमायूँ/ शाहजहाँ आदि मुगल बादशाहों के जीवन पर बनीं। वजाहत मिर्जा द्वारा निर्देशित 'बाबर' में शेख मुख्तार ने केंद्रीय भूमिका निभाई थी। कमल राय ने 'कुमार' को मुख्य भूमिका में लेकर शहंशाह अकबर का निर्माण किया। मेहबूब कृत 'हुमायूँ' अशोक कुमार, नर्गिस, वीना, शाह नवाज और चंद्रमोहन

जैसे सितारों से सजी थी। इस महत्वा-कांक्षी फिल्म का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। हुमायूँ की भूमिका में अशोक कुमार की कल्पना कुछ अटपटी थी। ए.आर. कारदार की 'शाहजहाँ' में ताज महल की कहानी दोहराई गई। शाहजहाँ की भूमिका एक नवागत कलाकार को दी गई थी। तकनीक और कथ्य प्रस्तुतिकरण दोनों ही दृष्टि से इस फिल्म ने समीक्षकों की काफी तारीफ बटोरी। शाहजहाँ के निर्माण से पूर्व सोहराब मोदी के सहकर्मी रूसी बैंकर ऐतिहासिक फिल्मों के एकमात्र लब्ध प्रतिष्ठित कला निर्देशक थे। शाहजहाँ ने प्रसिद्ध चित्रकार एम.आर. अचरेकर को कला निर्देशक के रूप में पहली बार प्रस्तुत किया। फिल्म में द्वारका दिवेचा का छायांकन और अचरेकर द्वारा निर्मित सेट्स उतने ही प्रभावशाली थे, जितना नौशाद का संगीत। शाहजहाँ प्रख्यात गायक सहगल के कैरियर की आखिरी महत्वपूर्ण फिल्म थी, जिसके लिए उन्होंने अपने कुछ सर्वश्रेष्ठ गीत गाए।

इन तमाम फिल्मों के बीच चालीस के दशक की सबसे विशिष्ट ऐतिहासिक फिल्म प्रभात कंपनी की **'राम शास्त्री'** थी। ८वीं शताब्दी के महाराष्ट्र की पृष्ठ-भूमि में रचित इस फिल्म का कथानक पेशवा द्वारा नियुक्त एक निर्भीक न्यायविद के जीवन पर आधारित था, जिन्होंने न्याय की गरिमा की रक्षा के लिए पेशवा के अग्रज संबंधी को सजा सुनाने में भी हिचक नहीं बरती। फिल्म में अतीत का चित्रांकन परिपूर्णता की कसौटी पर बेदाग साबित हुआ। राम शास्त्री के ओजस्वी चरित्र को गजानन जागीरदार ने अपने शानदार अभिनय से जीवंत बना दिया था।

१९४७ में भारत को आजादी मिली। इसके बाद भगत सिंह/ चंद्रशेखर आजाद/ वासुदेव बलवंत/ वीर पांडे आदि स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के चरित्र परदे पर प्रस्तुत किए गए। चालीस के दशक के आरंभ में जयंत देसाई ने महाराणा प्रताप और चंद्रगुप्त पर फिल्में बनाई थीं। आजादी के तुरंत बाद के.वी. लाल ने 'सम्राट अशोक' का निर्माण किया। लेकिन इन फिल्मों में इतिहास की सजीव झाँकी नहीं उभर पाई। मोहन सिन्हा की भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित फिल्म १८५७ में भी इतिहास बोध कहीं नजर नहीं आया। १९५३ में 'अनारकली' का पुनर्निर्माण एक बार फिर सफल रहा। इसके दो वर्ष बाद जी.पी. सिप्पी ने 'अदले जहाँगीर' की कहानी दोहराई। मीना कुमारी और प्रदीप कुमार की दमदार उपस्थिति भी इसमें जान नहीं डाल सकी। मुगले आजम की बेपनाह कामयाबी से प्रेरित होकर नडियादवाला ने शाहजहाँ और मुमताज के प्रेम पर एक फिल्म का निर्माण किया था। साहिर की शायरी और रोशन के संगीत ने इसे लोकप्रियता दिलाई। उधर शेख मुख्तार का मीना कुमारी को प्रमुख भूमिका में रखकर 'नूरजहाँ' का दोबारा निर्माण फलदायी साबित नहीं हो सका। इससे निराश होकर वे पाकिस्तान चले गए थे। जहाँ आश्चर्यजनक रूप से उनकी फिल्म बेहद पसंद की गई।

मराठी में कई ऐतिहासिक फिल्मों का निर्माण करने वाले भालजी पेंढारकर ने हिंदी में एक फिल्म **शिवाजी** पर बनाई थी। तत्कालीन हिंदू-मुस्लिम कटु संबंधों की वजह से इसका कथानक काफी सतर्कता और संशोधन के साथ पेश किया गया था। पिछले चार दशकों में लोकमान्य तिलक/ सुभाषचंद्र बोस/ महात्मा गाँधी जैसे इतिहास पुरुषों पर कई फिल्मों का निर्माण हुआ। किंतु इनमें विदेशी फिल्मकार रिचर्ड एटनबरो द्वारा राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम के सहयोग से निर्मित 'गाँधी' का जिक्र निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के बतौर किया जाएगा। भगत सिंह के जीवन पर आधारित मनोज कुमार की 'शहीद' भी एक उत्कृष्ट ऐतिहासिक फिल्म थी। एन.एफ.डी.सी. के सौजन्य से बनी एक प्रशंसनीय फिल्म '२२ जून १८९७' में चाफेकर बंधुओं की क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रेरणादायी चित्रांकन था। सफलतम ऐतिहासिक फिल्मों में गिनी जाने वाली 'पुकार' के संवाद लेखक 'कमाल अमरोही' ने काफी बड़ी लागत से **'रजिया सुल्तान'** का निर्माण किया। धर्मेंद्र और हेमा मालिनी इसकी केंद्रीय भूमिकाओं में थे। तड़क-भड़क व भव्यता के बावजूद यह फिल्म निराशाजनक रही। आजकल इतिहास पर आधारित फिल्मों का निर्माण लगभग ठहर गया है। केवल दूरदर्शन पर अब ऐतिहासिक छवियाँ नजर आती हैं। गोविंद निहलानी की टेली फ़िल्म तमस, बी.आर. चोपड़ा कृत बहादुर शाह जफर, डॉ. चंद्रप्रकाश द्वारा निर्मित सीरियल 'चाणक्य' आदि कुछ उम्दा ऐतिहासिक कृतियाँ पिछले दिनों देखने में आईं। शतरंज के खिलाड़ी और 'जुनून' जैसी यथार्थपरक इतिहास केंद्रित फिल्मों के निर्माण की अब उम्मीद नहीं की जा सकती है। ■

श्रेष्ठ ऐतिहासिक फिल्में

○ नूरजहाँ (१९३१) ○ चंद्रगुप्त (१९३४) ○ पुकार (१९३९) ○ सिकन्दर (१९४१) ○ पृथ्वी वल्लभ (१९४३) ○ शहंशाह अकबर (१९४३) ○ राम शास्त्री (१९४४) ○ बाबर (१९४४) ○ आम्रपाली (१९४५) ○ हुमायूँ (१९४५) ○ पन्ना दाई (१९४५) ○ १८५७ (१९४६) ○ महाराणा प्रताप (१९४६) ○ राजपूतानी (१९४६) ○ शाहजहाँ (१९४६) ○ सम्राट अशोक (१९४७) ○ पद्मिनी (१९४८) ○ आनंद मठ (१९५२) ○ छत्रपति शिवाजी (१९५२) ○ जलियांवाला बाग (१९५३) ○ झाँसी की रानी (१९५३) ○ गोलकुंडा का कैदी (१९५४) ○ मिर्जा गालिब (१९५४) ○ भगतसिंह (१९५४) ○ अमरसिंह राठौर (१९५७) ○ टीपू सुल्तान (१९५९) ○ रानी रूपमति (१९५९) ○ बाबर (१९६०) ○ वीर दुर्गादास (१९६०) ○ रुस्तम सोहराब (१९६३) ○ जहाँआरा (१९६४) ○ आम्रपाली (१९६६) ○ शतरंज के खिलाड़ी (१९७७) और कमाल अमरोही की ○ रजिया सुल्ताना.

फेंटेसी

दादा साहब फालके को फिल्म निर्माण की प्रेरणा एक विदेशी फिल्म 'लाइफ आफ क्राइस्ट' देखकर मिली थी। इस फिल्म में ईसा मसीह को पानी पर चलता हुआ दिखाया गया था। वे चाहते थे कि ट्रिक फोटोग्राफी के जरिए ऐसे ही दृश्य वे स्वयं फिल्माएँ। दादा फालके के फिल्म निर्माण के क्षेत्र में प्रवेश करने तक ट्रिक फोटोग्राफी के माध्यम से परदे पर असंभव कृत्यों को संभव होता दिखाया जाने लगा था। इस प्रकार 'राजा हरिश्चन्द्र' से ही कैमरे की कारगुजारियाँ चमत्कार दिखाने लगी थीं।

दादा साहब फालके ने चमत्कारों को परदे पर दिखाने के लिए पौराणिक कथाओं को माध्यम के रूप में चुना। ट्रिक फोटोग्राफर के रूप में दादा साहब की प्रतिभा को प्रमाणित करने वाली दो फिल्में **'लंका दहन'** तथा **'कालिया मर्दन'** हैं। कालिया मर्दन में बाल कृष्ण को विशाल कालिया नाग से युद्ध करते दर्शाया गया है। इस फिल्म में बाल कृष्ण की भूमिका फालके की बेटी मंदाकिनी ने की थी। 'लंका दहन' में हनुमान की उड़ान, उनके द्वारा अपनी पूँछ से सारी लंका को आग लगा देने वाले दृश्य बड़े ही सजीव रूप से चित्रित किए गए थे।

दादा साहब फालके ने ट्रिक फोटोग्राफी का उपयोग मुख्य तौर पर पौराणिक चरित्रों के अलौकिक चमत्कार दर्शाने के लिए किया था। इसके बाद अन्य निर्माताओं ने संत-महात्माओं के जीवन में घटित हुए चमत्कारिक प्रसंगों को दर्शाने के लिए किया। 'संत तुकाराम' पर दो फिल्में बनीं। दोनों में उनके द्वारा नदी में फेंकी गई पुस्तक की वापसी तथा संसार छोड़ते समय उनका विष्णु के साथ रथ पर बैठकर दिव्य लोक जाना दिखाया गया। बोलती फिल्में बनने के बाद भी 'तुकाराम' पर दो फिल्में बनीं। दोनों फ्लॉप हो गईं। इनमें चमत्कार कम और नृत्य-गीत अधिक दिखाए गए थे। दोनों मराठी भाषा में बनी थीं।

'संत तुकाराम' पर सर्वश्रेष्ठ फिल्म १९३६ में प्रभात द्वारा बनाई गई। यह फिल्म बंबई के एक थिएटर में एक वर्ष तक लगातार चलती रही। इस फिल्म में भी 'गाथा' की नदी से वापसी तथा तुकाराम के विमान में स्वर्गारोहण के चमत्कारिक दृश्य दिखाए गए थे। यह फिल्म १९४८ में हिन्दी में डब की गई। मगर मूल फिल्म की तरह सफल नहीं हो पाई।

'संत तुकाराम' पर बनी फिल्मों की

फिल्मों का अजूबा

> फेंटेसी फिल्मों को बनाने में जितना मजा आता है, उससे कहीं ज्यादा मजा उन्हें देखने में मिलता है। पात्रों को चाहे जैसी पोशाक पहनाइए। किसी भी लोक की सैर कराइए। आदमी को तोता और तोते को कुत्ता बना दीजिए, कोई कुछ नहीं कहेगा। चमत्कार/ जादू/ रूपांतर और नाग-नागिन की बीन पिछले साठ सालों से बजती चली आ रही है।

सफलता देखकर बोलती फिल्मों के युग में अन्य संतों पर भी फिल्में बनीं। वह युग संगीत प्रधान फिल्मों का था इसलिए संतों के द्वारा रचे गए भजन प्रमुख आकर्षण होते थे। इसके साथ ही ट्रिक फोटोग्रॉफी के जरिए संतों द्वारा किए गए चमत्कार भी दिखाए जाते थे। इसी तारतम्य में संत सखूबाई/ नरसी भगत/ अजामिक/ तुलसीदास तथा कबीर पर फिल्में बनीं।

प्रभात ने १९४२ में 'संत ज्ञानेश्वर' में जिस उच्च स्तर की ट्रिक फोटोग्रॉफी का प्रदर्शन किया उसकी सराहना अमेरिका तक में हुई। 'संत ज्ञानेश्वर' की ट्रिक फोटोग्रॉफी को ऑस्कर अवार्ड प्राप्त करने वाली फिल्म 'थीफ आफ बगदाद' के समकक्ष रखा गया। भारतीय फिल्म के छायाकार प्रहलाद दत्त थे।

संतों के जीवन के अतिरिक्त चमत्कारिक लोकप्रिय कहानियों में भी ट्रिक फोटोग्रॉफी की काफी गुंजाइश थी। ऐसी फिल्में भी काफी बनीं, इनमें 'गुले बकावली'/ इन्द्रसभा/ पंच कल्याणी/ पारिजात रत्न मंजरी/ बोलती बुलबुल/ बाँसुरी वाला/ तथा हातिमताई मूक युग में निर्मित हुई। सन् १९२७ में 'अलीबाबा चालीस चोर तथा 'अलादीन का चिराग' बनी। इम्पीरियल द्वारा बनाई गई दोनों फिल्मों में ट्रिक फोटोग्रॉफी का भरपूर उपयोग किया गया था। जब फिल्में बोलने लगीं तब अलीबाबा के कई संस्करण बने। सन् १९४० में मेहबूब ने सागर के लिए अलीबाबा बनाई। इसमें सुरेन्द्र एवं वहीदन की प्रमुख भूमिका थी। सरदार अख्तर ने मरजीना की भूमिका की थी। यह फिल्म फ्लॉप हो गई। होमी वाडिया ने 'अलीबाबा' १९५४ में बनाई। इसमें महीपाल तथा शकीला की मुख्य भूमिका थी। यह फिल्म सफल रही। अलीबाबा का सर्वाधिक लोकप्रिय संस्करण १९३२ में बना था। यह फिल्म भारत-रूस सहयोग से बनी थी। कुछ हिस्से भारत में तथा कुछ उजबेकिस्तान में शूट किए गए थे। मूक फिल्मों के युग में एम. भवनानी द्वारा निर्मित फेंटेसी 'मैजिक फ्लूट' काफी चर्चित हुई। यह एक मोची की कहानी थी जो स्वयं को राजकुमार समझने लगता था। जर्मन आपेरा से प्रभावित इस फिल्म में सुलोचना तथा डी. विलिमोरिया की प्रमुख भूमिका थी। जब बोलती फिल्मों का युग आया तब भवनानी ने इसी जोड़ी को लेकर इस फिल्म का सवाक संस्करण बनाया।

मुक युग में हातिमताई का धारावाहिक रूप में चार भागों में निर्माण किया गया था। सवाक युग में भारत मूवीटोन ने इसी धारावाहिक के चारों भागों को फिर से बनाया तथा मारुति को प्रमुख भूमिका दी। होमी वाडिया ने भी जयराज और शकीला को लेकर हातिमताई का निर्माण किया। सन् १९४० से १९५० के बीच 'जादुई' शब्द को शीर्षक में जोड़कर कई फिल्में बनीं इनमें 'जादुई बंधन'/ जादुई रतन में ट्रिक फोटोग्रॉफी का भरपूर उपयोग किया गया था। इनमें से अधिकांश फिल्में अरेबियन नाइट्स की कहानियों पर आधारित थीं।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति एवं आजादी के बाद दक्षिण भारत में नए किस्म की फेंटेसी फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ। इन फिल्मों में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से जादू और चमत्कार दिखलाया जाने लगा। ऐसी फिल्मों में बी. नागीरेड्डी की 'पाताल भैरवी' प्रमुख एवं प्रथम थी। एन.टी. रामाराव की प्रमुख भूमिका वाली यह फिल्म मूल रूप से 'तेलुगु' भाषा में बनी थी। हिन्दी में डब होने के बाद यह जेमिनी द्वारा हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रदर्शित की गई थी। दक्षिण से आई अन्य फेंटेसी फिल्मों में 'देवता' तथा 'बहुत दिन हुए' काफी सफल रहीं। 'देवता' में अंजलि देवी एवं वैजयंतीमाला प्रमुख भूमिकाओं में थीं, इसके द्वितीय भाग में अधिकांश सेट्स पानी के भीतर दिखाए गए थे। 'बहुत दिन हुए' में मधुबाला की प्रमुख भूमिका थी।

'नागिन' याने सर्प के चमत्कारिक करतब दिखाने वाली कई फिल्में बन चुकी हैं। हर्मेश मलहोत्रा की नगीना में मानवीय स्वरूप धारण करने वाली नागिन की भूमिका श्रीदेवी ने की थी तथा राजकुमार

कोहली की 'नागिन' में यह भूमिका रीना रॉय ने की थी। चमत्कार एवं पुनर्जन्म पर आधारित इन फिल्मों में रोमांस एवं संगीत भी प्रमुख तत्व था। पुनर्जन्म एवं जनम-जनम के प्यार पर आधारित फिल्मों में 'महल' से 'मिलन' तक लम्बी श्रृंखला है। अरुणा विकास की 'गहराइयाँ' तथा 'जादू टोना' दुरात्मा द्वारा शरीर पर अधिकार किए जाने की कथाओं पर केन्द्रित थी। राजकुमार कोहली की अनेक सितारों वाली **'जानी दुश्मन'** की केन्द्रीय कथा भी लगभग ऐसी ही थी।

अलौकिक एवं फेंटेसी तत्वों को आकार देने तथा पुनर्जन्म को प्रदर्शित करने के लिए चलचित्र से बेहतर अन्य कोई माध्यम नहीं हो सकता। बच्चों को फेंटेसी से कुछ ज्यादा ही प्यार होता है। इसीलिए चिल्ड्रन्स फिल्म सोसायटी ने काफी फेंटेसी फिल्मों का निर्माण किया है। विज्ञान कथाओं में भी फेंटेसी का भरपूर उपयोग किया जा सकता है। इस सिलसिले में भारतीय फिल्म उद्योग ने एच.जी. वेल्स की कहानी 'इनविजिवल मेन' पर आधारित 'मिस्टर एक्स' का निर्माण किया। अदृश्य व्यक्ति की उस कहानी पर आधारित कई फिल्में बनीं। अनिल कपूर द्वारा अभिनीत **मिस्टर इंडिया** काफी सफल रही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र से लेकर 'अजूबा' तक में ट्रिक फोटोग्रॉफी का भरपूर उपयोग किया गया है तथा फिल्मों को नई दिशा दी गई है।

श्रेष्ठ फिल्में

○ **फेंटेसी**

○ अलीबाबा एण्ड फोर्टी थीव्ज (१९३२) ○ इन्द्र सभा (१९३२) ○ हातिमताई (१९३३) ○ हातिमताई की बेटी (१९४०) ○ अरेबियन नाइट्स (१९४६) ○ सिन्दबाद द सेलर (१९४६) ○ अलादीन और जादुई चिराग (१९५२) ○ पाताल भैरवी (१९५२) ○ शिन शिनाकी बूबला बू (१९५२) ○ नागिन (१९५३/१९७३) ○ जादू टोना (१९७७) लोक परलोक (१९७९) ○ नागिन और सुहागिन (१९७९) ○ अजूबा

● **कास्ट्युम ड्रामा**

○ आलमआरा (१९३१) ○ यहूदी की लड़की (१९३३) ○ अमरज्योति (१९३३) ○ हरीकेन हंसा (१९३७) ○ जम्बो का बेटा (१९३९) ○ राजनर्तकी (१९४१) ○ लाखारानी (१९४५) ○ निशान (१९४९) ○ चन्द्रकांता (१९५६) ○ मदारी (१९५९) ○ धर्मवीर ○ सल्तनत

हिंदी फिल्मों के परिवार को [illegible] में हर [illegible] के साथ प्रस्तुत किया जाता है। और हर बार सही होने के बावजूद [illegible] को ही झुककर समझौता करना होता है। भावनाओं [illegible]

पारिवारिक फिल्म महज मेलोड्रामा

● **शोमा ए. चटर्जी**

'रेंडम हाउस डिक्शनरी' के अनुसार 'मेलोड्रामा' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है : 'ऐसी नाट्य रचना जिसमें भावों और दृश्य प्रभाव को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाए, और चरित्र चित्रण की कीमत पर जहाँ कथावस्तु में रोमांच या भावना का अतिरेक हावी हो।'

इस परिभाषा के परिप्रेक्ष्य में हिंदी सिनेमा कुल मिलाकर सिर से पाँव तक 'मेलोड्रामा' से सराबोर नजर आता है। पारिवारिक फिल्मों के बारे में तो यह बात खास तौर पर सही है। इस स्थापना के तहत हिंदी सिनेमा में पारिवारिक कृतियाँ यथार्थ का विस्तारित तथा वायवीय रूप ही पेश करना चाहती हैं। मगर यहाँ ध्यान रखना चाहिए, कि यह मेलोड्रामा फिल्म निर्माताओं द्वारा किसी विकल्प की तरह प्रयुक्त नहीं किया जाता। इसे कथावस्तु पर जबरन आरोपित किया गया समझना गलत होगा। न ही यह वृत्तांत का नितांत अपरिहार्य अंश है। वस्तुतः इसकी मौजूदगी संरचनात्मक दृष्टि से सिनेमा में उतनी ही स्वाभाविक है, जिस प्रकार हिंदुस्तानी समाज का लोकाचार अपने नैसर्गिक रूप में नाटकीयता को महत्व देता है। नतीजतन फिल्में भी अति-भावुकता के प्रभाव से ग्रस्त नजर आती हैं।

भारतीय सिनेमा पर अपनी किताब में फिल्म समीक्षक फिरोज रंगूनवाला लिखते हैं- 'समाजमूलक फिल्मों की विस्तृत परिधि परिवार की अनेक आंतरिक और बाह्य समस्याओं को समेटती है। परिवार को एक इकाई की तरह जोड़े रखने की जरूरत पर तमाम घरेलू चरित्रों वाले कथानक गढ़े गए हैं।' हिंदी फिल्मों में पारिवारिक मेलोड्रामा के अपने व्यक्तिगत अध्ययन में मैंने पाया कि यह तत्व संतति विषयक, गैर वंशज और यहाँ तक कि असम्बद्ध रिश्तों के धरातल पर भी सर्वत्र गूँथा गया है।

पारिवारिक छवि के प्रति सर्वप्रथम एक प्रकार का 'उत्सवी', बल्कि श्रद्धांजलि अर्पित करने जैसा रुख देखने को मिला। ए.वी.एम./ जेमिनी/ प्रसाद जैसे दक्षिण भारतीय सिने प्रतिष्ठानों की प्रस्तुतियाँ इसकी स्पष्ट झलक देती हैं। इनके शीर्षक से ही अंतर्गठन का आभास मिल जाता था। हिट फिल्म **संसार** इसका जोरदार उदाहरण है। एस.एस. वासन (जिन्हें भारत का सिसिल बी.डी. मिल कहा जाता था) द्वारा निर्मित यह फिल्म १९५१ में प्रदर्शित हुई थी। इसके कथानक में अश्रुपूरित एकरसता के साथ एक गरीब परिवार की जिंदगी का रेखांकन किया गया था। इस परंपरा की शुरूआत १९४८ में एस.एम. युसूफ के निर्देशन में बनी फिल्म 'गृहस्थी' से हुई। इसके बाद १९५१ में 'गुमाश्ता' और शांताराम की 'दहेज' जैसी फिल्मों का निर्माण हुआ। परिवार को मानव संबंधों की पराकाष्ठा पर महिमा मंडित और स्तुत्य निरुपित करने वाला इनका अभिव्यक्ति तत्व प्रबल से प्रबलतम होता गया। आगे चलकर इसमें दिखावे, आडंबर और रूक्षता की गंध आने

[illegible] के लिए [illegible] तथा बलिदान को तैयार रहना, फिल्मों [illegible] स्थाई फार्मूले हैं। सुखद स्थिति सिर्फ इतनी है कि परिवार की चौखट [illegible] तमाम चेहरे हँसते-मुस्कराते फोटो उतरवाते रहते हैं।

लगी। १९६० में निर्मित 'स्वर्ग नर्क' तथा कमजोर कलाकारों को लेकर बनाई गई राजश्री बैनर की ढर्रेदार पारिवारिक फिल्मों में हमें यह चीज साफ दिखाई देगी।

दूसरी ओर परिवार का नकारात्मक अर्थों में प्रयोग हुआ है, जैसे यह टीनएज रोमांस के लिए कबाब में हड्डी का प्रतीक हो। इस प्रकार की फिल्मों में पारिवारिक मेलोड्रामा सिनेमा के प्रभाव और लोकप्रियता को ऊँचाई पर पहुँचाने में इसलिए सफल हो पाया, क्योंकि किशोर प्रेम के नाम पर दर्शक सम्मोहित सी अवस्था में बगैर तार्किकता के साथ हर चीज पचा गए। ऐसी फिल्मों के नाम ढूँढने में दिक्कत नहीं होगी: लव स्टोरी/ लैला मजनूं/ एक दूजे के लिए/ बॉबी/ बेताब/ मैंने प्यार किया आदि एक ही ढाँचे की फिल्में हैं। ये कभी दुखांत और कभी 'अंत भला सो सब भला के मोड़ पर खत्म होती रहीं। यहाँ परिवार को प्रेम संबंधों का विरोधी दर्शाया गया था। परिवार के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा युवाओं की मोहब्बत में रोड़े अटकाने का फार्मूला हर वर्ग के दर्शक को आकर्षित करने में हमेशा सफल हुआ। युवा इसमें खुद की छवियाँ तलाशते रहे जबकि वृद्धों ने अपनी दुश्चिंता से निजात महसूस की।

कई बार पारिवारिक फिल्मों में मेलो-ड्रामा या अति नाटकीयता को इस हद तक खींच दिया जाता है कि परिवार की हैसियत किसी पिंजरे की तरह जान पड़ती है, जिसमें नायक/ नायिका छटपटाहट महसूस करते हैं। इसे चतुराई के साथ नैतिकता, पारिवारिक जिम्मेदारियों और कर्त्तव्य बोध के उपदेशात्मक आवरण तले छिपाकर पेश किया जाता है, जो फिल्म के प्रमुख पात्र की वैयक्तिक इच्छाओं एवं जज्बातों का गला घोंटकर रख दे। अनिल गांगुली की कामयाब फिल्म **'तपस्या'** इसका एक बेहतर उदाहरण है। राखी ने इसमें यादगार भूमिका निभाई थी। एक मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी लड़की अपने छोटे भाई-बहनों की परवरिश के दायित्व में इस कदर उलझकर रह जाती है, कि उसके अपने जीवन में भावनात्मक शून्य के सिवा कुछ नहीं बचता। अंततः उसे इस जकड़न से प्रौढ़ावस्था में जाकर मुक्ति मिलती है, जब बरसों से प्रतीक्षारत प्रेमी के साथ उसका मिलन होता है। रेखा द्वारा अभिनीत 'जीवन धारा' भी इसी विषय पर बनी एक फिल्म थी। पर नाटकीय संवादों से परिपूर्ण इसका ताना बाना समस्या के विश्लेषण की बजाए मात्र दर्शकों को आँसू बहाने पर मजबूर करने के उद्देश्य से रचा गया था। यह ध्येय अक्सर पूरा कर लिया जाता है, और फिल्म की सफलता में संदेह की गुंजाइश नहीं बचती। मिसाल के तौर पर 'तपस्या' का रेडियो विज्ञापन इस वाक्य से शुरू होता था, 'आपको भी किसी की तपस्या होगी'- इसने श्रोताओं के दिमाग में उत्सुकता पैदा की। कमोबेश यही कथानक एवं अंदाज दो अन्य फिल्मों ए.वी.एम. की **'भाभी'** और राज खोसला कृत **'दो रास्ते'** में भी अपनाया गया था, मगर इनकी केंद्रीय भूमिका में पुरुष पात्र थे। दोनों ही फिल्मों में यह चरित्र बलराज साहनी ने दक्षता के साथ निभाए।
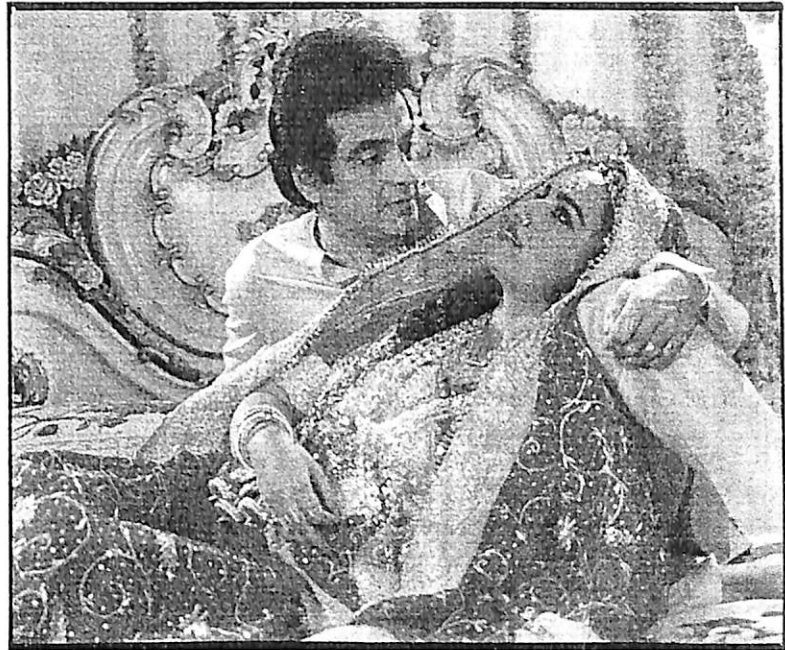
चौथे बिंदु पर हम पारिवारिक फिल्मों में संयुक्त परिवार के कृत्रिम और मनगढ़ंत गौरव गान का विस्तार पाते हैं। जहाँ परिवार के सदस्यों के बीच प्रेम मीठा एवं रससिक्त होता है। कई मामलों में यह मिठास आपको बीमार भी कर सकती है। इस श्रेणी में ऋषिकेश मुखर्जी की **'बावर्ची'** और **'खूबसूरत'**, बिमल राय की **'परिवार'** और शांताराम की **तीन बत्ती चार रास्ता'** जैसी फिल्मों का जिक्र मुनासिब होगा। इन सबमें आत्मकेंद्रित पारिवारिक संरचना की बजाए संयुक्त परिवार के औदात्यपूर्ण स्वरूप की वकालत की गई थी। हालांकि 'तीन बत्ती चार रास्ता' का मूल कथ्य राष्ट्रीय एकता पर आधारित था। फिल्म की बुनावट हल्की-फुल्की एवं सहज होने के कारण इसमें मेलोड्रामा की झलक दिखाई नहीं दी। नई फिल्म 'संसार' में अनुपम खेर ने परिवार के ऐसे मुखिया की भूमिका निभाई, जो अपनी सामंजस्य की क्षमता रखने वाली समझदार बहू (रेखा) की भावनाओं को महत्व देता है। यहाँ हमें युवा दंपति के स्वतंत्र जीवन की जरूरत को लेकर संतुलित रवैए की झलक मिलती है। ऋषिकेश मुखर्जी जैसे चंद ही फिल्मकार हैं, जिन्होंने परिवार में पितृ

जीतेन्द्र- रीना रॉय : बादलों की छाँव में

सत्तामूलक और मातृसत्तामूलक, दोनों व्यवस्थाओं की बराबरी की तरफदारी की। वरना अधिकतर फिल्मों में पुरुष की दमनकारी हठधर्मिता को प्रश्रय दिया गया है।

हिंदी सिनेमा में पारिवारिक मेलो-ड्रामा का इस्तेमाल अक्सर फ्रायड के मनोविज्ञान की विविध मान्यताओं (विशेषतः इडीपस कॉम्प्लेक्स या मातृ मनोग्रंथि) के चित्रांकन के जरिए की तरह भी हुआ है। मेहबूब की फिल्म औरत (१९४०), जिसमें सरदार अख्तर ने प्रमुख भूमिका निभाई थी, के संदर्भ में 'इकबाल मसूद' लिखते हैं- 'यह फिल्म, भारतीय समाज के पौराणिक आद्यप्रारूप का ही रेखांकन है। कृषक माता (सरदार अख्तर) में हम माँ दुर्गा का रूप देख सकते हैं। उसका विद्रोही पुत्र बिरजू-कृष्ण और आज्ञाकारी बेटा राम की छवि से प्रभावित हैं। बिलकुल यही अभिलक्षण सत्तर के दशक की फिल्म **'दीवार'** में भी देखने को मिलते हैं' (सिनेमा इन इंडिया

फिल्म कल्चर

सर्वाधिक गीत सहित

भारतीय फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता है गीत-संगीत। बगैर गीत के फिल्म की कल्पना आसान नहीं है। हर रंग/ हर मौसम/ हर विषय और हर ढंग के गीतों से भरी पड़ी हैं फिल्में। पहले भी फिल्में गीतों की बदौलत चलती थीं और आज भी चल रही हैं, यह शाश्वत सच्चाई है-

- ○ इन्द्रसभा (१९३२) : ७१ गीत
- ○ चतरा बकावली (१९३२) : ४९ गीत
- ○ शादी की रात (१९३२) : ३५ गीत
- ○ मुफलिस आशिक (१९३२) : ३२ गीत
- ○ लैला-मजनू (१९३१) : २४ गीत
- ○ सुभद्रा हरण (१९३२) : २२ गीत
- ○ अमर सहगल (१९५५) : २० गीत
- ○ मीराबाई (१९३२) : १९ गीत
- ○ राधारानी (१९३२) : १७ गीत
- ○ मिस १९३३ (१९३३)/विश्व मोहिनी (१९३३)
- ○ गुण सुन्दरी (१९३४)/दो दीवाने (१९३६) : प्रत्येक १६ गीत

● १९७० में निर्मित फिल्म **हीर-राँझा** (चेतन आनंद) में गद्य के स्थान पर संवाद पद्य में थे। अर्थात् पूरी फिल्म गेय थी।

■ *कुछ साहसी फिल्मकारों ने गीतों के उपवन से निकलकर गीत-रहित फिल्में भी बनाईं, जिन्होंने फिल्म इतिहास में अपना नाम दर्ज कराया है :*

- □ नौजवान (१९३७) : वाडिया मूवीटोन
- □ मुन्ना (१९५४) : के.ए. अब्बास
- □ कानून (१९६०) : बी.आर. चोपड़ा
- □ भुवन शोम (१९६९) : मृणाल सेन
- □ इत्तफाक (१९६९) : यश चोपड़ा
- □ सारा आकाश (१९६९) : बासु चटर्जी
- □ आषाढ़ का एक दिन (१९७१) : मणि कौल
- □ कोशिश (१९७२) : गुलजार
- □ अचानक (१९७३) : गुलजार
- □ चोर-चोर (१९७४) : प्रेम प्रकाश
- □ अंकुर (१९७४) : श्याम बेनेगल
- □ चिरूथा (१९८०) : तनवीर अहमद
- □ सतह से उठता आदमी (१९८०) : मणि कौल
- □ शोध (१९८०) : बिप्लव रायचौधरी

■ *ये सिर्फ उदाहरण मात्र हैं। समांतर सिनेमा की अधिकांश फिल्में गीत रहित हैं। फिल्म* **पुष्पक** *तो संवाद रहित भी थी।*

● **प्रस्तुति : पी.आर. जोशी**

[illegible])। बिमल राय की आरंभिक फिल्म 'माँ' भी माता (लीला चिटनीस) और पुत्र (किशोर कुमार) के स्नेहिल संबंधों की दास्तान थी। इस शृंखला में शक्ति सामंत की 'आराधना' (१९६९), और राजेन्द्रसिंह बेदी के उपन्यास पर आधारित 'एक चादर मैली सी' के नाम भी लिए जा सकते हैं। इसी प्रकार अस्सी के दशक में बनी फार्मूला फिल्म 'कसम पैदा करने वाले की' (कलाकार: मिथुन-स्मिता पाटिल) माँ-बेटे के आत्मीय संबंध की महिमा वर्णित करती है।

'एक चादर मैली सी' को उल्लेखित करते हुए चिदानंद दासगुप्ता ने लिखा है- 'यहाँ मातृमनोग्रंथि का स्वरूप सौतेले रिश्तों से अंतर्ग्रस्त है। रवि अपने सहृदय श्वसुर की पैसों के लालच में हत्या कर देता है, जिन्हें उसकी पत्नी गुड्डी बेहद स्नेह करती थी। गुड्डी, अपनी माँ रानो द्वारा पति के साथ विश्वासघात कर उसके चाचा मंगल से ब्याह रचा लेने के कारण भी क्षुब्ध है। इस प्रकार फ्रायड के इडीपस सिद्धांत का यहाँ विकृत पहलू नजर आता है। पश्चिमी मान्यताओं से इसकी संरचना सिर्फ फिल्म के अंत में 'बीती ताहि बिसार दे' का रुख अपना लेने की भारतीय परंपरा के साथ विभेद रखती है। ग्रीक लोग सामान्यतः उत्पीड़न (चाहे वह नियति का हिस्सा ही क्यों न हो) के बाद क्षमादान के विचार को उचित नहीं मानते।'

सास-बहू की तनातनी भी फिल्मों में फ्रायड की मनोग्रंथियों का एक प्रकार है। अक्सर इनमें बहू के प्रति ही हमदर्दी का भाव रखा गया, ताकि नारी स्वातंत्र्य की अलख जगाई जा सके। पर यह कुल मिलाकर एक बोथरी कोशिश थी।

*भाई-बहन के संबंध पारिवारिक मेलो*ड्रामा का अन्य पहलू है। मेहबूब खान की 'बहन' (१९४१) एक भाई के अपनी छोटी बहन के प्रति अत्यधिक स्नेह की कहानी थी। शेख मुख्तार ने इसमें भाई का रोल निभाया था। इस फार्मूले का बार-बार इस्तेमाल किए जाने के कारण बाद में यह मजाक बनकर रह गया। 'प्यारी बहना' ऐसी फीकी फिल्मों की नवीनतम कड़ी थी। भाई (मिथुन) अपनी बहन (तन्वी) को पत्नी से अधिक महत्व देता है। उसके प्रति अत्यधिक प्यार की वजह से वह उसे अपने प्रेमी के साथ विवाह तक नहीं करने देता, कि कहीं उसकी बहन उससे दूर न चली जाए। रेशम की डोरी/ हवालात/ काजल आदि फिल्मों में भी लगभग ऐसा ही मेलोड्रामा देखने को मिलता है, जिनमें क्रमशः धर्मेंद्र-कुमुद, ऋषि कपूर- पद्मिनी कोल्हापुरे और धर्मेंद्र-मीना कुमारी ने भाई-बहन की भूमिकाएँ निभाई थीं। पिता-पुत्री के बीच भी मेलोड्रामा की जमकर खिंचाई हुई है, लेकिन इनका विस्तार फ्रायड के सिद्धांतों तक नहीं हो पाया। माँ-बेटे और भाई-बहन के प्रगाढ़ आलिंगन चाहे अलहदा तौर पर आपको शर्मसार कर दें, किंतु फिल्मों के लिए यह सहज बात है।

रोमांटिक छेड़छाड़

परिवार को सिनेमा में झटपट न्यायपीठ का भी रूप दे दिया जाता है। सामान्यतः इसके निर्णय उस स्त्री के विरुद्ध ही होते हैं, जो पुरातन मान्यताओं या नैतिकता के भारतीय मानदंडों से विचलन की चेष्टा करे। फिल्में इसे वैवाहिक संबंधों के धरातल पर प्रमाणित करती हैं। *कुछ अपवादों को* छोड़कर अंततः नारी को ही झुकना पड़ता है, भले ही गलती पुरुष की हो। जुदाई (जीतेन्द्र-रेखा)/ थोड़ी-सी बेवफाई (शबाना-राजेश खन्ना)/ यह कैसा इंसाफ (विनोद मेहरा-शबाना)/ सुहागन (श्रीदेवी, जितेन्द्र, राज बब्बर)/ प्यार झुकता नहीं (पद्मिनी-मिथुन) प्यार के काबिल (ऋषि कपूर-पद्मिनी) और प्यार के दो पल आदि फिल्मों में इसी एकतरफा रवैए का आभास मिलता है। आप पाएँगे कि इनके शीर्षक में अक्सर 'प्यार' शब्द ठूँस दिया जाता है। जबकि हकीकतन यह फिल्में प्रेम के दिव्य स्वरूप का उपहास करती जान पड़ती हैं।

प्यार के अफसानों में हमें पारिवारिक मेलोड्रामा के सातवें प्रकार के दर्शन होते हैं। और वह है, पति-पत्नी के आदर्श दांपत्य का नकली व हास्यास्पद निरुपण। जिन दृश्यों पर निर्देशक आम दर्शकों को रुलाना चाहता है, उन पर हँसी आती है। रेखा और जीतेन्द्र की फिल्म 'सदा सुहागन' का जिक्र मैं इस संदर्भ में बेहिचक कर सकती हूँ। पूरी फिल्म में अधेड़ वय के जीतेन्द्र और रेखा अपने युवा शादीशुदा बेटों के सम्मुख प्रेम प्रदर्शन करते रहते हैं, जब तक कि एक-दूसरे की बाँहों में उनका दम नहीं निकल जाता। पत्नी फिल्म का शीर्षक सार्थक करने के लिए पति से कुछ क्षण पूर्व परलोक सिधारती है। 'अवतार' में शबाना और राजेश के बीच वृद्धावस्था का स्नेह दर्शाया गया था। पीढ़ियों के संघर्ष की प्रभावोत्पादक प्रस्तुति इस फिल्म की विशेषता थी। वृद्ध दंपति के बच्चों पर आर्थिक निर्भरता के कारण वियोग का मार्मिक रेखांकन ऋषिकेश मुखर्जी की फिल्म 'जिंदगी' में हुआ है। संजीव कुमार और माला सिन्हा वृद्ध पति-पत्नी की भूमिका में थे। राजेश खन्ना एवं स्मिता पाटिल की फिल्म 'अमृत' इस मामले में कुछ भिन्न थी, कि इसमें बूढ़े पति-पत्नी के संवेदनशील प्रेम को परिवार में मानवीय अनुभूतियों के संचार का धरातल बनाया गया था।

परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच मूल्यों और मान्यता को लेकर उपजे अंतर्विरोध की सिनेमा में इस कदर

पुनरावृत्ति होती है, कि दर्शक परिवार में सामंजस्य की संभावना को अलभ्य मान लेता है। भले और बुरे भाई के तनाव की कहानी का फिल्मों में कचूमर निकल चुका है। इस साँचे की एकमात्र सशक्त प्रस्तुति यश चोपड़ा की फिल्म **'दीवार'** थी। पिता-पुत्र की भिड़ंत वाली फिल्म 'अदालत' में अमिताभ ने डबल रोल निभाया था। इसी कड़ी में अन्य फिल्में थीं, विश्वासघात (संजीवकुमार-अमिताभ)/ त्रिशूल (संजीव, अमिताभ, शशि)/ दुनिया (ऋषि-दिलीप कुमार) और शक्ति (दिलीपकुमार- अमिताभ)। इनमें जी.पी. सिप्पी की शक्ति में मेलोड्रामा का कम से कम इस्तेमाल हुआ है। हिंदी सिनेमा में पारिवारिक रिश्तों पर आधारित कृतियों में यह सबसे यथार्थवादी फिल्म थी। इसके कुछ दृश्य नाट्कीयता के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। मसलन राखी की मृत्यु, पिता-पुत्र के मध्य तीखे संवाद और संयोगों के दोहराव वाले दृश्य कृत्रिम जान पड़ते हैं।

परिवार पर केंद्रित फिल्मों में मेलोड्रामा की सीमा तक कथा विस्तार का एक अच्छा पहलू भी है। और वह यह कि परिवार को महज खून के रिश्तों तक सीमित नहीं रखा जाता। बाहरी लोग भी इसके अंतरंग सदस्य बन सकते हैं। 'अवतार' में सचिन की भूमिका दर्शाती है, कि किस तरह एक अनाथ नौकर अपने मालिक का बुरे दिनों में सहारा बनता है। जबकि मालिक के सगे बेटे उसका साथ छोड़ जाते हैं। राजश्री की 'दुल्हन वही जो-पिया मन भाए' भी इस संदर्भ में एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ एक फूल बेचने वाली लड़की एक अपरिचित वृद्ध व्यक्ति के साथ आत्मीय संबंध बना लेती है। किसी परिभाषा के दायरे में न रखे जा सकने के बावजूद ऐसे रिश्तों का अस्तित्व नकारा नहीं जा सकता। फिल्म में वृद्ध पात्र के स्वभाव की उग्रता अतिशय होने के बाद भी आकर्षक थी।

परिवार केंद्रित फिल्मों में असत् से परहेज के उपदेश का तरीका इतना पिलपिला है, कि कई मौकों पर वह नाजायज को जायज करार देता जान पड़ता है। मैं तुलसी तेरे आँगन की (नूतन, आशा पारेख)/ 'नाम' में नूतन की भूमिका, जो पति की अवैध संतान को अपनी सगी औलाद से ज्यादा प्यार देती है प्रसाद फिल्म्स की 'शारदा', जिसके लिए मीना कुमारी को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का अवॉर्ड मिला था, आदि फिल्में त्याग और समर्पण को अतिरंजना की हद तक पेश करती हैं। शारदा में मीना कुमारी ने एक ऐसी महिला का चरित्र निभाया था, जो परिस्थितिवश अपने पूर्व प्रेमी (राज कपूर) की सौतेली माँ बनने के लिए राजी हो जाती है। और यह उम्मीद भी करती है, कि उसका प्रेमी भविष्य में उसके साथ बेटे सा रिश्ता रखे। ऋषिकेश मुखर्जी की दो सुंदर फिल्में **'आनंद'** (अमिताभ-राजेश) और **'नमकहराम'** (अमिताभ)! रिश्तों को सायास ट्रेजिक आयाम देने वाली कृतियाँ थी। दर्शक उन्हें देखकर आँसू बहाने पर मजबूर होते हैं। बिछुड़े भाइयों के पुनः मिलन का अति नाटकीय फार्मूला बेवकूफी की तमाम सीमाएँ लाँघने वाला है। मगर अपने सुनिश्चित, पूर्व निर्धारित घटनाक्रम के बावजूद यह मानना होगा, कि हिंदी फिल्मों में पारिवारिक मेलोड्रामा का दायरा काफी वैविध्यपूर्ण और व्यापक है।

हिंदी सिनेमा में मेलोड्रामा के समावेश की एक वजह यह भी रही कि फिल्मों की कथावस्तु के लिए चुना जाने वाला साहित्य बुरी तरह इसकी गिरफ्त का शिकार था। मिसाल के तौर पर **'देवदास'** को लीजिए। पी.सी. बरुआ, बिमल राय, बासु चटर्जी द्वारा फिल्मांकित शरतचंद्र की किसी भी साहित्यिक कृति का उदाहरण लें। 'परिणिता' और 'बिराज बहू' जैसी कृतियों में निःसंदेह मेलोड्रामा का तत्व विद्यमान है। 'कटी पतंग' के कहानीकार गुलशन नंदा और कई हिट फिल्मों के संवाद लेखक सलीम-जावेद परिवार के इर्द-गिर्द मेलोड्रामा की स्थितियों को बुनने और फेंटने में सिद्धहस्त रहे हैं। लोकप्रिय हिंदी सिनेमा में बमुश्किल कोई ऐसा उदाहरण मिलेगा, जो पारिवारिक विषयवस्तु से प्रभावित नहीं हो।'

शोमा ए. चटर्जी, फिल्म पत्रकारिता के साथ अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका हैं। फिल्म लेखन पर राष्ट्रपति के स्वर्ण पदक से सम्मानित।

भारतीय सिनेमा में सेक्स-अपील

● बी.डी. गर्ग

सेक्स का आविष्कार न तो सिनेमा ने किया और न ही सिगमंड फ्रायड को इस कृत्य के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता। फ्रायड ने तो यही बताया कि भद्र समाज में रहने के लिए काम भावनाओं को दमित करना जरूरी है। सिनेमा ने तो इस दमित भावना के गहराते तनाव से मुक्ति दिलाने का सहज मार्ग प्रशस्त किया। 'क्लोज अप' तथा ऐसी ही अन्य विशिष्टताओं के कारण सिनेमा दमित काम भावनाओं से मुक्ति प्रदान करवाने का प्रबल माध्यम सिद्ध हुआ। सिनेमा ने विश्व में कई सुन्दरियों को सेक्स प्रतीक के रूप में स्थापित किया। इनमें ग्लोरिया स्वानसन से ग्रेटा गार्बो, मर्लिन डीट्रिच से मर्लिन मनरो, जीन रसल से जीना लोला ब्रिजिडा, सोफिया लारेन से रेक्वेल वेल्च का मादक बदन देखकर दर्शकों को अँधेरे थिएटर में बैठे हुए प्रणय, सौंदर्य तथा काम की मादक अनुभूतियों का सुख मिलता था।

हमारे देश में 'काम भावना' को केंद्र बनाकर कालजयी साहित्यिक एवं कलात्मक कृतियों का सृजन हुआ है। सिनेमा के मामले में हमने हॉलीवुड से ही प्रेरणा ली है। मदन थिएटर के संस्थापक जे.एफ. मदन ने सबसे पहले भारतीय सिनेमा में 'सेक्स अपील' की

संभावनाओं का दोहन किया था। तीसरे दशक में ही इस संस्थान द्वारा निर्मित फिल्मों में मादक नृत्यों का समावेश किया जाना प्रारंभ हो गया। धार्मिक एवं फेण्टेसी फिल्मों में भड़कीले वस्त्र पहने सुंदरियाँ नृत्य करती हुई काम भावनाओं को आलोड़ित करने लगीं। ध्रुव चरित्र/ मोहिनी/ शिवरात्रि/ तुर्की हूर/ काश्मीरी सुंदरी/ फिल्मों के नृत्य काफी चर्चित हुए। मदन थिएटर में 'सेक्स अपील' की संभावनाओं का पूर्ण उपयोग करने के लिए यहूदी तथा एंग्लोइंडियन नर्तकियों को नियुक्त किया गया था। विदेशी तकनीशियनों तथा निर्देशकों की सेवाएँ भी ली गई थीं।

सेंसर की दृष्टि से तीसरा दशक काफी उदारवादी था। चुम्बन पर कोई प्रतिबंध नहीं था। सुलोचना, दिनशा बिलमोरिया के प्रगाढ़ आलिंगन तथा चुंबन वाले दृश्यों ने 'अनारकली' एवं 'हीर रांझा' जैसी फिल्मों को चर्चित कर दिया। 'सुलोचना' को उस युग की या भारतीय रजतपट की पहली 'सेक्स प्रतीक' कहा जा सकता है। जब बोलती फिल्मों का प्रचलन शुरू हुआ तब जुबैदा (आलमआरा) ने यह जगह ले ली। एजरामीर की फिल्म 'जरीना' में जुबैदा के कामुक अभिनय तथा आवेगपूर्ण चुंबनों ने हलचल मचा दी। सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं की तीव्र प्रतिक्रियाओं को देखते हुए निर्माताओं ने इस फिल्म के बाद चुंबन दृश्यों से परहेज करना शुरू कर दिया।

नायिकाओं को अक्षत और शीलवान दिखाया जाने लगा। सेक्स अपील का दोहन कार्य नर्तकियों एवं खलनायिकाओं को दिया गया। कभी-कभी नर्तकी तथा खलनायिका का काम एक ही चरित्र के जिम्मे कर दिया गया था। खलनायिका और खलनायक की जोड़ी फिल्मों में अनिवार्य तो बनी मगर मुख्य कथा से सदा अलग रही। तात्पर्य यह कि 'सेक्स' का उपयोग मुख्य कहानी से हटकर किया जाने लगा। इस नियम का पहला अपवाद केदार शर्मा की फिल्म **'चित्रलेखा'** में देखा गया जिसमें 'मेहताब' के अभिनय ने इस फिल्म को 'उत्तेजक' बनाने में अहम् भूमिका अदा की। नर्तकियों में हेलन ने २५ वर्षों तक भारतीय रजतपट को अपनी मादक अदाओं से उत्तेजना की गुदगुदी दी। कूल्हे और ओठों के संचालन से हेलन द्वारा मादक स्वप्निल संसार की अनोखी सृष्टि की जाती रही।

रोमांस अब जिस्मानी हो गया

सामाजिक मूल्यों में हो रहे बदलाव के कारण सेक्स के प्रति सामान्य दृष्टिकोण भी बदला। खलनायिका और सुशीला एक-दूसरे में समाहित हो गईं। मधुबाला/ मुमताज/ जीनत अमान/ परवीन बॉबी तथा रेखा सेक्स प्रतीक के रूप में अपनी पहचान बनाने लगीं। मधुबाला को अक्सर मार्लिन मुनरो के समकक्ष ठहराया जाता है। सुंदर नाक-नक्शे और मादक मुस्कान वाली इस नायिका ने 'मुगल-ए-आजम' में अनारकली के चरित्र को परदे पर जीवंत कर दिया था। मुमताज की 'उम्फ' अदा ने उसे पिन-अप सुंदरियों की कतार में ला खड़ा किया। 'मिस एशिया' की उपाधि प्राप्त करने के बाद देवानंद की फिल्म 'हरे राम हरे कृष्ण' के माध्यम से रजतपट

पर अवतरित हुई। जीनत अमान ने फिल्मों में कई नई परंपराएँ शुरू कीं। अपने छरहरे बदन और मोहक अदाओं के कारण जीनत अमान 'सेक्स प्रतीक' के रूप में लंबे समय तक छाई रही। इस सुंदरी का सर्वोत्कृष्ट मादक रूप 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' में दिखाई पड़ा।

राज कपूर के बारे में कहा जाता है कि भारतीय रजतपट पर युवा प्रेम को आकार देने का काम उन्हीं का है। 'आग' 'बरसात' और 'बॉबी' ने तत्कालीन युवाओं के हृदय में हलचल मचा दी थी। राजकपूर की फिल्मों में आध्यात्मिक आयाम तथा सेक्स का जादुई मिश्रण रहता था। उनकी इसी प्रतिभा ने 'जिस देश में गंगा बहती है' के जरिए
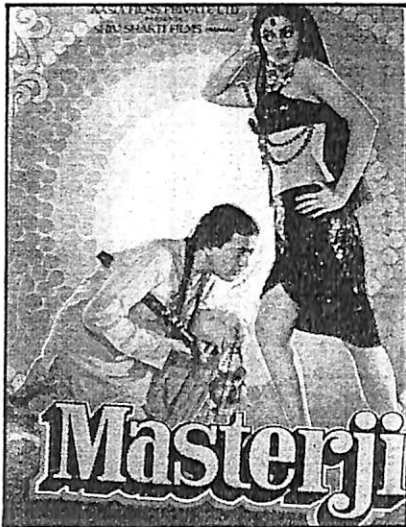
पद्मिनी को राष्ट्रीय सेक्स प्रतीक के रूप में स्थापित कर दिया था। अपनी आखिरी फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' में राज कपूर ने मंदाकिनी को सेक्स की देवी के रूप में पेश किया था।

वहीदा रहमान ने वेश्या की भूमिका करते हुए 'प्यासा', 'मुझे जीने दो'; तथा 'गाइड' में सेक्स को नए अंदाज में पेश किया। रेखा ने यही काम उमराव जान तथा 'उत्सव' में किया। इन दोनों साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन के दौरान एक में तो वह लखनवी गरारा सूट में रही मगर दूसरी में उसने नाम मात्र के ही कपड़े पहने। यद्यपि इस फिल्म में वह 'सिद्धार्थ' की सिम्मी का मुकाबला नहीं कर पाई।

भारतीय फिल्मोद्योग में कई ऐसी नायिकाएँ भी हुईं, जो 'सेक्स प्रतीक' न होने के बावजूद कामोत्तेजना उद्दीप्त करने में सक्षम रहीं। इनमें स्मिता पाटिल प्रमुख है। चक्र/ भूमिका/ और मंडी में स्मिता ने पात्रों को सजीव बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

अश्लीलता और नग्नता तथा मादक शरीर दिखाकर ही दर्शकों को उत्तेजित किया जा सकता है ऐसी बात नहीं है। 'कतिपय दर्शकों को सेक्स से जुड़ी हिंसा भी लुभाती है।' मनोविश्लेषक सुधीर कक्कड़ के इस विचार को बी.आर. चोपड़ा की फिल्म **'इंसाफ का तराजू'** ने सही सिद्ध कर दिया। उच्च नैतिक मान्यताओं वाली इस फिल्म का मुख्य चर्चित दृश्य जीनत अमान का बलात्कारी से जूझने वाला रहा।

सन् अस्सी और नब्बे के दरम्यानी वर्षों में सेक्स प्रतीकों और मांसलता को प्रदर्शित करने के मामले में दक्षिण भारत आगे रहा। दक्षिण की अभिनेत्री सिल्क स्मिता अपने मादक शरीर और खुले दृश्यों के लिए काफी चर्चित रही। स्मिता को मीलों पीछे छोड़ दिया केरल के एक निर्माता आइ.वी. ससि ने। 'हर नाइट्स' नामक उनकी फिल्म की नायिका परदे पर सिर्फ एक कमीज पहने ही

जब फिल्मों में प्रेम का चित्रण किया जाता है, तो उसके पीछे-पीछे 'सेक्स' भी चला आता है। दर्शकों को टिकट खिड़की तक खींचने का फिल्मकारों का स्थाई 'फारमूला' है- सेक्स अपील!

नजर आती है। इस फिल्म की सफलता के बाद केरल में ऐसी लगभग ब्लू फिल्मों के स्तर वाली फिल्मों की बाढ़ आ गई। वर्तमान हिंदी फिल्मों की सुपर स्टार श्रीदेवी तक ने ऐसी एक फिल्म में नायिका की भूमिका अदा की है।

नंगी और अश्लील फिल्मों को 'सेक्स शिक्षा' के आवरण में लपेटकर पेश करने का प्रयास निर्माता बी.के. आदर्श ने भी किया। उनकी 'गुप्तज्ञान' तथा 'प्राइवेट लाइफ' फिल्मों ने अच्छा कारोबार किया। आदर्श के इस उदाहरण ने वितरकों को 'प्रेगनेन्सी' 'चाइल्ड बर्थ' 'द बॉडी' जैसी फिल्में आयात करने के लिए प्रेरित किया।

इसके बाद के जमाने में किमी/ सोनम/ सोनिका/ करिश्मा/ ममता कुलकर्णी जैसी तारिकाओं ने जो खेल खेला उसने सभी पुरानी नायिकाओं/ नर्तकियों तथा खलनायिकाओं को पीछे छोड़ दिया है।

● *बी.डी. गर्ग, प्रसिद्ध फिल्म इतिहासकार तथा समीक्षक हैं।*
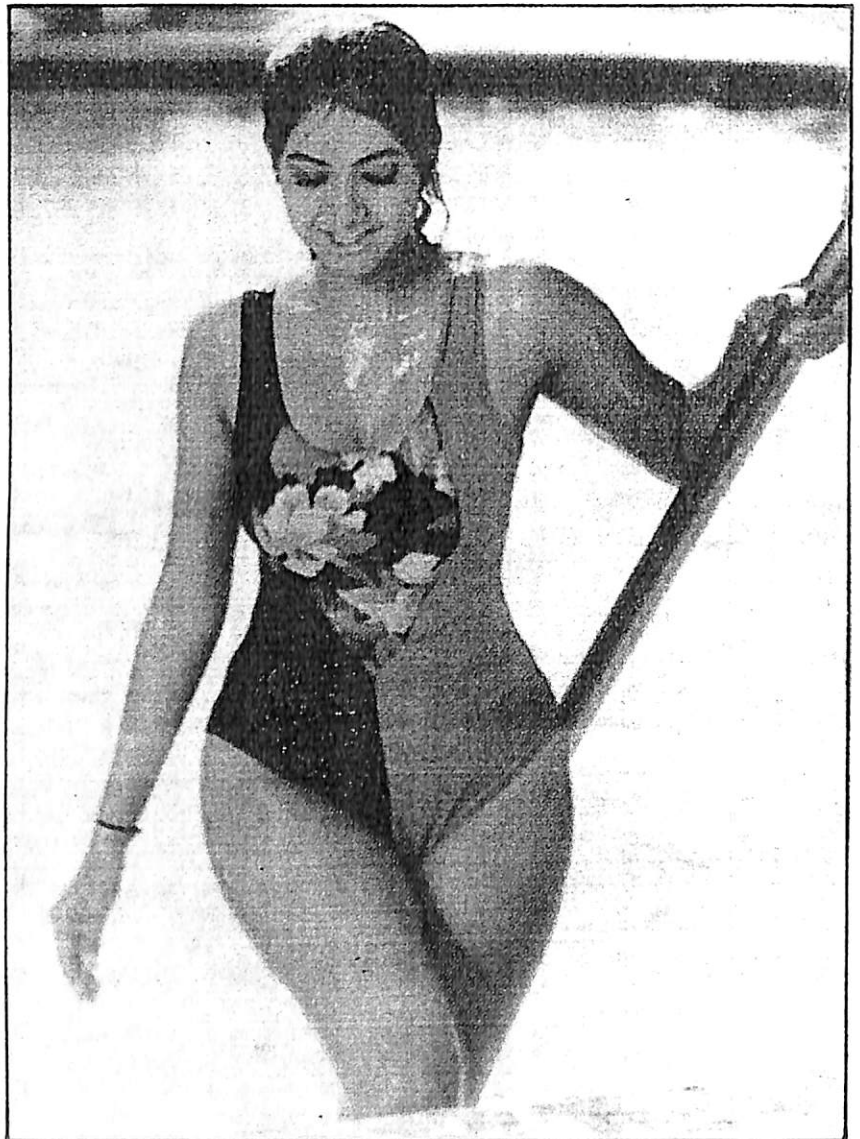
फ़िल्म में गीत और नृत्य कसरती हो गए हैं अक्षय कुमार-मधु

ऐसी भारतीय फिल्मों की कल्पना तक नहीं की जा सकती, जिनमें गीत-संगीत नहीं हो। लेकिन गीत-संगीत का उपयोग कथा-सूत्र को बिखेरने के बजाए, जोड़ने वाला होना चाहिए। फिल्मों को सेक्स तथा हिंसा से बचाने का एकमात्र सफल मार्ग है गीत-संगीत तथा नृत्य को महत्व देना।

फिल्मों में गीत-संगीत

वी.ए.के. रंगाराव

भारतीय फिल्मों में शुरू से ही गीत एवं संगीत अनिवार्य एवं आवश्यक तत्व रहे हैं। सन् १९७० के पूर्व बनी फिल्मों में तीन से लेकर बीस तक गाने होना सामान्य बात थी। औसतन एक दर्जन गाने फिल्म में रखे जाते थे। इसीलिए निर्माता बढ़िया से बढ़िया संगीत निर्देशकों एवं गायकों की सेवाएँ लेना चाहते थे। सैकड़ों शास्त्रीय संगीतकारों की सेवाएँ फिल्मों में ली गई। इस काम के लिए उन्हें मुँहमागी कीमत दी गई। गीत-संगीत तथा पृष्ठभूमि संगीत सदैव फिल्मों की जरूरत बना रहा। प्रारंभिक दौर में फिल्म संगीत, रंगमंच संगीत से प्रभावित रहा। सन् १९३४ से १९३९ के मध्य फिल्म संगीत ने अपना पृथक चेहरा खोजने में कामयाबी हासिल की।

भारतीय प्रदर्शक कलाओं में संगीत और गीत, नृत्य सदैव ही परंपरागत स्थान पाते रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रदेश में प्रचलित मनोरंजन माध्यमों में नृत्य, गीत-संगीत की अपनी-अपनी शैलियाँ विकसित की गई थीं। शास्त्रीय शैली एवं लोक संस्कृति के प्रभाव से युक्त इन मनोरंजन माध्यमों को नाटकों, ग्रामोफोन रिकॉर्डों एवं फिल्मों द्वारा देश-व्यापी बनाया गया। इस सिलसिले में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका हिन्दी फिल्मों की रही।

सवाक फिल्मों के प्रारंभिक दौर में जो फिल्में बनीं उन्हें 'नौटंकी' का छायाकृत संस्करण कहना ही उचित होगा। नाच-गानों से भरपूर इन फिल्मों में संवाद सिर्फ क्रम जोड़ने का काम करते थे। दरअसल इन फिल्मों की तुलना पश्चिम के आपेरा से की जा सकती है। जिनमें संगीत माध्यम का हिस्सा नहीं वरन् सौ फीसदी माध्यम होता है।

इस कथन की सत्यता का प्रमाण पी.सी. बरुआ की फिल्म **'देवदास'** (हिन्दी/ बंगाली १९३५, तथा तमिल १९३६) एवं मधु बोस की **'अलीबाबा'** (बंगाली १९३७) हैं। दोनों फिल्मों में संपूर्ण कथानक गीत-संगीत के माध्यम से ही प्रदर्शित किया गया था। लगभग सारा प्रदर्शन संस्कृत के प्राचीन नाटकों तथा १९वीं एवं २०वीं सदी के पारम्परिक नाटकों की तर्ज पर था। इतना अवश्य था कि गानों में स्वाभाविकता लाने के लिए प्रतीकों का बहुलता से उपयोग किया गया था। इसी प्रकार 'अलीबाबा' (बंगाली) भी भव्य रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाने वाला नाटक ही प्रतीत होता था।

हिन्दी फिल्मों में हॉलीवुड का काफी प्रभाव रहा है। पी.एल. संतोषी से प्रभावित गुरुदत्त, विजय आनंद आदि निर्देशकों की फिल्मों में तत्कालीन हॉलीवुड फिल्मों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शहनाई (१९४७) की कहानी एक घुमंतू थिएटर पर केंद्रित थी। इस फिल्म के गीतों पर हॉलीवुड का संगीत प्रभाव स्पष्ट है। 'मार कटारी मर जाना', 'बाजे शहनाई' आदि गीतों के संगीत पर 'बेब्बन जान' के संगीत का असर है। खिड़की (१९४८) के गीतों एवं उनकी प्रस्तुतियों में भी पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट है- 'नैना है तुमरे' को स्कूली छात्र-छात्राओं पर फिल्माया गया था। इस फिल्म में कई राष्ट्रीय गीतों का समावेश भी किया गया था। यथा 'जय बोलो महात्मा गाँधी की' तथा 'हम हैं हिन्द की नारियाँ'। विविधता इस फिल्म के गीत-संगीत की विशिष्टता थी। 'जलने वाले जला करें' पश्चिमी वैचारिक अभिव्यक्ति से प्रभावित था। ऐसा ही प्रभाव 'फिफ्टी-फिफ्टी' में था। भारतीय प्रणय व्यथा को व्यक्त करने वाले गीतों में 'हमें भी कोई याद करता' प्रमुख था।

सरगम (१९५०) की कहानी में नृत्य, गीत-संगीत के समावेश हेतु पर्याप्त अवसर थे। इस फिल्म में भी भारतीय एवं पाश्चात्य धुनों का भरपूर प्रयोग किया गया था। 'छेड़ सखी सरगम' तथा 'तनक तिन तानी' में शास्त्रीय गायिका सरस्वती गने का स्वर था। 'खलासी भीम पलासी' रॉक-एन रोल पर आधारित था। 'यार वई-वई' अफ्रीकन लोकधुन पर सजाया गया था। 'मैं हूँ अल्लादीन' में अरबी संगीत था। इन सभी गीतों के लिए भव्य

दादा फालके सम्मान

फिल्म क्षेत्र में अपने जीवनकाल में सर्वाधिक योगदान के लिए यह सर्वोच्च सम्मान है। भारतीय फिल्मों के पितामह **गोविंद धुण्डीराज फालके** की स्मृति में यह प्रतिवर्ष दिया जाता है। १९८४ तक ५० हजार रुपए नकद तथा प्रशस्ति पत्र दिया जाता था। १९८५ से नकद राशि एक लाख रुपए कर दी गई है।

- १९७० : श्रीमती देविका रानी
- १९७१ : बी.एंन. सरकार
- १९७२ : पृथ्वीराज कपूर (मरणोपरांत)
- १९७३ : पंकज मलिक
- १९७४ : सुलोचना (रुबी मायर्स)
- १९७५ : बी.एन. रेड्डी
- १९७६ : धीरेन गांगुली
- १९७७ : कानन देवी
- १९७८ : नितिन बोस
- १९७९ : रायचंद बोराल
- १९८० : सोहराब मोदी
- १९८१ : पी. जयराज
- १९८२ : नौशाद अली
- १९८३ : एल.वी. प्रसाद
- १९८४ : दुर्गा खोटे
- १९८५ : सत्यजीत राय
- १९८६ : वी. शांताराम
- १९८७ : बी. नागी रेड्डी
- १९८८ : राजकपूर
- १९८९ : अशोक कुमार
- १९९० : लता मंगेशकर
- १९९१ : ए. नागेश्वर राव
- १९९२ : भालजी पेंढारकर
- १९९३ : भूपेन हजारिका

- मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित
- एक लाख रुपए नकद
- प्रशस्ति पत्र

- १९८४ : नौशाद अली (संगीतकार)
- १९८५ : किशोर कुमार (गायक)
- १९८६ : जयदेव (संगीतकार)
- १९८७ : मन्ना डे (गायक)
- १९८८ : खय्याम (संगीतकार)
- १९८९ : आशा भोसले (गायिका)
- १९९० : लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल (संगीतकार)
- १९९१ : येसूदास (गायक)
- १९९२ : राहुल देव बर्मन (संगीतकार)
- १९९३ : संध्या मुखर्जी (गायिका)

फिल्म कल्चर

सेटों की व्यवस्था की गई थी, 'कोई किसी का दीवाना न बने' तथा 'वो हमसे चुप है, हम उनसे चुप है' सहज एवं स्वाभाविक पृष्ठभूमि में फिल्माए गए थे।

इन तीनों फिल्मों में निर्देशन एवं गीत लेखन का कार्य पी.एल. संतोषी ने किया था। नायिका रेहाना तथा संगीतकार सी. रामचंद्र थे। सी. रामचंद्र ने ऑर्केस्ट्रा, धुन, लय एवं ताल को कुशलतापूर्वक संतुलित रूप में आबद्ध किया था। संगीतकार की इसी पटुता के कारण इन फिल्मों को संगीत प्रधान फिल्मों का प्रादर्श माना गया।

अलबेला (१९५१) ने संतोषी को पीछे छोड दिया। कॉमेडियन, स्टंटमेन, नर्तक भगवान आगे आए। सी. रामचंद्र ने इस फिल्म में कालजयी संगीत देकर अनोखा कीर्तिमान बनाया। यदि सिर्फ संगीत को ही प्रमुख माना जाए तथा अन्य पक्षों की उपेक्षा की जाए तब सिवाय फ्लॉप के कुछ और नतीजा नहीं हो सकता। इस तथ्य को प्रमाणित किया शिन शिनाकी बूबला बू (१९५२) ने। उसके बाद से संगीत की विविधताओं में कोई प्रगति नहीं हुई। वैसे संगीत केंद्रित कई फिल्में बनी। इनमें से ज्यादातर संगीतकारों के जीवन एवं कृतित्व पर थीं। मराठी भाषा में 'तमाशा' विधा पर आधारित कई संगीत प्रधान फिल्मों का निर्माण हुआ।

फिल्म अलबेला
भगवान दादा- गीताबाली

गुरुदत्त ने संगीत के वस्तुगत प्रभावों से हटकर इस विधा का उपयोग आंतरिक निरीक्षण के लिए किया। भावनात्मक निरीक्षण से ओतप्रोत संगीत की प्रस्तुति 'आर-पार' (१९५४) तथा 'मिस्टर एंड मिसेज १९५५' में स्पष्ट है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर समीक्षात्मक दृष्टि डालने वाला संगीत 'प्यासा' (१९५७) तथा 'कागज के फूल' (१९५९) की विशिष्टता है। इन फिल्मों के हास्य गंभीर और दुख भरे गीतों में संगीत का संतुलित रंग भरने का श्रेय ओ.पी. नय्यर तथा एस.डी. बर्मन जैसे संगीत निर्देशकों को है। गीतों का फिल्मांकन करते समय वी.के. मूर्ति ने कैमरे का उपयोग कुशलतापूर्वक किया है।

गीतों के फिल्मांकन की जिस भारतीय शैली को पी.एल. संतोषी ने अपनाया था उसी शैली को विजय आनंद ने भी अंगीकार किया। राजकपूर ने इसमें रोमांस का पुट दिया। इन प्रयासों ने कई अमर गीत दृश्यों का सृजन किया। एस.डी. बर्मन तथा शंकर-जयकिशन ने भी अपना भरपूर योग दिया।

अन्य निर्माताओं ने गीतों का उपयोग तो किया मगर उसके सही फिल्मांकन में असमर्थ रहे। नई लहर वाले निर्माता पटकथा में सही ढंग से गीत-संगीत गूँथ पाने में असफल रहे हैं। क्षेत्रीय सिनेमा में लोकगीतों तथा लोकसंगीत का उपयोग किया गया। किन्तु यहाँ वे सिनेमा तथा लोकगीत को संतुलित ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाए। लगभग ऐसी ही स्थिति हिन्दी फिल्मों में भी हुई।

वी. शांताराम ने गीत को नाटकीय उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया। एक दशक तक अन्य फिल्म निर्माता इससे प्रेरणा पाते रहे। के. विश्वनाथ ने फिल्मों में गीत-संगीत गूँथने की अपनी स्वय की विधि विकसित की। उदाहरण के लिए गीत गान गुरु द्वारा प्रारंभ होता है तथा शिष्य सीखते-दुहराते हैं। बाद में यही गीत शिष्य द्वारा पूरा किया जाता है। कहानी की गति गीत के कारण कहीं नहीं रुकती। तेलुगु में उनकी लगभग एक दर्जन फिल्में इस प्रतिभा को प्रमाणित करती हैं। उन्होंने यह प्रयोग हिन्दी फिल्मों में भी किया मगर उन्हें के. महादेवन, इलियाराजा तथा रमेश नायडू जैसे संगीत निर्देशक नहीं मिल पाए।

यद्यपि यह विधि काफी उपयुक्त है किन्तु सभी प्रकार की कहानियों में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। संगीत प्रधान फिल्मों के लिए शैली और विधा खोजने के प्रयास नए सिरे से करना जरूरी हैं। यदि कोई यह महसूस करे गीत नृत्य और लय दर्शकों को सेक्स, हिंसा और आतंक से ज्यादा लुभाएँगे तब भारतीय फिल्मों को नई दिशा मिल सकेगी।

श्रेष्ठ गीत-संगीत प्रधान फिल्में

□ बैजू बावरा (१९५२), □ शबाब (१९५४), □ झनक-झनक पायल बाजे (१९५५), □ नवरंग, □ बसंत बहार (१९५६), □ गूँज उठी शहनाई (१९५९), □ संगीत सम्राट तानसेन (१९६२), □ गीत गाया पत्थरों ने, □ जल बिन मछली, नृत्य बिन बिजली, □ आलाप (१९७७), □ सरगम (१९७९)।

(१९५१ से १९७०)

फिल्म कल्चर

कीर्तिमान

● १९५१ :
फिल्म सेंसर बोर्ड का गठन। फिल्म फेडरेशन ऑव इंडिया की स्थापना। रंगीन फिल्म 'आन' का १६ एम.एम. में निर्माण और ३५ एम.एम. में ब्लोअप। भुसावल में सेंट्रल सिने सरकिट एसोसिएशन का गठन।

● १९५२ :
१९१८ के फिल्म एक्ट के स्थान पर सिनेमाटोग्राफ एक्ट १९५२ लागू। भारत में पहली बार अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह का बंबई में आयोजन। भारत की पहली टेक्नीकलर फिल्म 'झाँसी की रानी' प्रदर्शित।

● १९५३ :
दो बीघा जमीन (बिमल राय) कान फिल्म समारोह में पुरस्कृत। महान तमिल कवि अवव्यार के जीवन पर आधारित फिल्म बनाने के लिए एस.एस. वासन का नागरिक सम्मान।

● १९५४ :
राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्रारंभ। मराठी फिल्म 'श्यामची आई' (पी.के. अत्रे) सर्वश्रेष्ठ फिल्म।

● १९५५ :
सत्यजीत रॉय की प्रथम फिल्म 'पाथेर पांचाली' का प्रदर्शन। झनक-झनक पायल बाजे के लिए वी. शांताराम का नागरिक सम्मान। बाल चलचित्र समिति की स्थापना।

● १९५६ :
राज कपूर की फिल्म जागते रहो कार्लोवी वारी समारोह में ग्राँ-प्रि से पुरस्कृत। सवाक फिल्मों की रजत जयंती। पाथेर पांचाली को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक। यही फिल्म कान समारोह में भी पुरस्कृत।

● १९५७ :
सोवियत संघ के सहयोग से के. अब्बास ने 'परदेसी' फिल्म का निर्माण किया। काबुलीवाला (तपन सिन्हा) बर्लिन फिल्मोत्सव में पुरस्कृत।

● १९५८ :
नरगिस को 'मदर इंडिया' में अभिनय हेतु कार्लोवी वारी में सर्वोत्तम अभिनेत्री का सम्मान।

● १९५९ :
अपूर संसार को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक। सत्यजीत राय तथा अशोक कुमार को संगीत-नाटक अकादमी पुरस्कार।

● १९६० :
एक करोड़ की पूँजी से फिल्म वित्त निगम का गठन। पुणे के प्रभात स्टुडियो में फिल्म एंड टीवी इंस्टीट्यूट की स्थापना। दिलीप कुमार को फिल्म 'गंगा-जमुना' में भूमिका के लिए चेक अकादमी ऑव आर्ट द्वारा विशेष सम्मान।

● १९६१ :
अनुराधा फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक।

● १९६२ :
भारत का दूसरा अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह नई दिल्ली में आयोजित।

● १९६३ :
इंडियन मोशन पिक्चर्स एक्सपोर्ट निगम गठित। इम्पा की रजत जयंती। सात पाके बाँधा (बंगला) के लिए मास्को समारोह में सुचित्रा सेन पुरस्कृत।

● १९६४ :
पुणे में राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय की स्थापना।

● १९६५ :
नई दिल्ली में तीसरा अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह। शिकागो फिल्मोत्सव में फिल्म 'गाइड' के लिए वहीदा रहमान पुरस्कृत।

● १९६६ :
'आसमान महल' फिल्म के लिए चेक अकादमी द्वारा पृथ्वीराज कपूर सम्मानित।

● १९६७ :
फिल्म 'यादें' (सुनील दत्त) को एशियन फिल्मोत्सव में ग्राँ-प्रि।

● १९६८ :
पेरिस में इंडियन फिल्म पेनोरमा का आयोजन। मेरा नाम जोकर के लिए राज कपूर ने सोवियत सर्कस और कलाकार आमंत्रित किए।

● १९६९ :
नई दिल्ली में चौथा अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह। फिल्म सेंसरशिप के बारे में जस्टिस खोसला की रिपोर्ट।

● १९७० :
दादा फालके की जन्मशती। देश का सर्वोच्च दादा फालके अवार्ड आरंभ। देविकारानी फालके अवार्ड से सम्मानित।

सस्पेंस फिल्म आएगा, आने वाला

भारत में सस्पेंस फिल्मों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। सस्पेंस साहित्य का अभाव इसका सबसे बड़ा कारण है। जितनी भी सस्पेंस फिल्में मौजूद हैं, वे विदेशी कथानकों से उधार लिए 'आइडिए' पर आधारित हैं। भारत में किसी हिचकॉक/ शेब्रोल अथवा त्रू फाँ की कल्पना तक नहीं की जा सकती/ आखिर क्यों?

● **कॉलिन पाल**

भारत में पहली सस्पेंस फिल्म कब और कहाँ बनी यह सवाल काफी टेढ़ा है। मूक युग में धार्मिक विषयों, एक्शन प्रधान कहानियों तथा हास्य कथाओं पर काफी फिल्में बनती रही हैं। सस्पेंस फिल्म बनाने का विचार शायद ही किसी निर्माता के मन में आया हो। मेरे विचार से पहली सस्पेंस फिल्म कलकत्ता में बंगला भाषा की **'निशीर डाक'** थी। इस फिल्म को बनाया था पी.सी. बरूआ और देवकी कुमार बोस की जोड़ी ने। सन् १९३२ में यह मूक फिल्म प्रदर्शित हुई। तब तक बोलती फिल्मों का युग प्रारंभ हो चुका था। यह फ्लॉप हो गई।

फिल्म उद्योग में प्रवेश करते ही बरूआ ने सस्पेंस फिल्म बनाने की बात क्यों सोची। संभवतः उन्होंने फ्रांसीसी फिल्मकार शेब्रोल तथा त्रू फाँ की तरह सोचा हो कि सस्पेंस फिल्मों से ही फिल्म माध्यम की आधारभूत शिक्षा प्राप्त होती है। बरूआ और सरकार ने बंगला फिल्म उद्योग को दो दशकों तक अपने प्रभाव में रखा। बाद में कोई भी सस्पेंस फिल्म नहीं बनाई। बोलती फिल्मों के प्रारंभिक युग में भी वी. शांताराम,. हिमांशु राय तथा बी.

एन. सरकार ने भी इस क्षेत्र को अछूता ही छोड़ दिया। हिमांशु राय की 'जवानी की हवा' की मूल कथा रहस्य पर आधारित थी। मूल कहानी हत्या की उस घटना पर केंद्रित थी, जो चलती ट्रेन में होती है। बाद में फेरबदल कर इसे रोमांटिक प्रणय कथा का स्वरूप दिया गया। हिमांशु राय के निधन के कई वर्षो बाद 'बॉम्बे टॉकीज' ने सस्पेंस फिल्म बनाई। अशोक कुमार और मधुबाला की इस फिल्म **'महल'** के लेखक और निर्माता थे कमाल अमरोही। पुनर्जन्म पर आधारित इस कहानी की प्रेरणा लेखक को रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कृति 'क्षुधित पाषाण' पढ़कर मिली थी। इस महान सस्पेंस फिल्म के बाद जो रहस्य आधारित फिल्में बनी उन्हें तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले में भूतप्रेत विषयक। दूसरा पुनर्जन्म तथा तीसरा किसने किया?

सन् १९४० से १९५० के मध्य तक सस्पेंस

फिल्मों का अस्तित्व बनाए रखने का श्रेय भगवान को है। उनकी फिल्मों में संगीत निर्देशक सी. रामचंद्र छद्म नाम से सहयोग दिया करते थे। भगवान की फिल्मों में **'अलबेला'** का स्थान महत्वपूर्ण है। इस फिल्म में गीता बाली ने अविस्मरणीय भूमिका की थी। सन् १९५० से १९६० तक विमल रॉय ने भी कुछ सस्पेंस फिल्मों का निर्माण किया। उनके सहायक असित सेन इस क्षेत्र में उतरे। असित सेन द्वारा निर्देशित **'अपराधी कौन'** (माला सिन्हा, अभिभट्टाचार्य) काफी सफल रही।

बी.आर. चोपड़ा १९६० में एक क्रांतिकारी अवधारणा लेकर आए। **'कानून'** नामक हिंदी सस्पेंस फिल्म बिना गानों के बनाई। अशोककुमार की दोहरी भूमिका वाली यह फिल्म सामान्य तौर पर सफल रही। इसके बाद बी.आर. चोपड़ा ने 'इत्तेफाक' (राजेश खन्ना-नंदा) तथा धुंध नामक फिल्मों का निर्माण किया।

हेमंत कुमार की फिल्म **'बीस साल बाद'** (१९६२) को कीर्तिमानी सफलता मिली। बीरेन नाग द्वारा निर्देशित इस फिल्म की नायिका वहीदा रहमान थी। नायक के रूप में यह विश्वजीत की पहली फिल्म थी। यह फिल्म बंगला फिल्म का हिंदी संस्करण थी। वैसे मूल कथा सर आर्थर कानन डायल की कहानी 'द हाउंड ऑफ द बास्कर विले' से ली गई थी। इस फिल्म की सफलता के बाद हेमंत कुमार ने बीरेन नाग के निर्देशन में **'कोहरा'** नामक सस्पेंस फिल्म का निर्माण शुरू किया। 'कोहरा' हिचकाक की फिल्म रेबेका पर आधारित थी। यह तथ्य रहस्यात्मक रूप से स्विटजरलैंड तक पहुँच गया तथा डेविड ओ सेल्जनिक ने गीतांजलि पिक्चर्स के नाम का नोटिस स्विटजरलैंड स्थित भारतीय दूतावास में पेश कर दिया। बंबई हाईकोर्ट में भी मामला गया मगर कोर्ट के बाहर ही समझौता हो गया। इन सारे विवादों का नतीजा यह हुआ कि 'कोहरा' की पटकथा प्रभावहीन होकर फिल्म असफल रही।

सस्पेंस फिल्मों के निर्माण से जुड़े एक अन्य निर्माता एन.एन. सिप्पी ने १९६४ में 'वह कौन थी' का निर्माण किया। मनोज कुमार-साधना की जोड़ी वाली इस फिल्म के निर्देशक राज खोसला थे। कहा जाता है कि यह फिल्म अमेरिकन फिल्म 'वूमन इन व्हाइट' पर आधारित थी। एक वर्ष बाद सिप्पी ने अगाथा क्रिस्टी के उपन्यास 'टेन लिटिल निगर्स' पर फिल्म बनाने का फैसला किया। राजा नवाथे द्वारा निर्देशित यह फिल्म **'गुमनाम'** के नाम से प्रदर्शित हुई। इसके प्रमुख कलाकारों में नंदा-मनोज कुमार एवं महमूद थे। उधर राज खोसला ने प्रेमजी की कहानी पर आधारित फिल्म **'मेरा साया'** का निर्देशन किया। 'गुमनाम' के बाद प्रदर्शित हुई इस सस्पेंस फिल्म के प्रमुख कलाकार सुनील दत्त

एवं साधना थे।

महमूद ने भूत-प्रेत विषय को लेकर १९६४ में 'भूत बंगला' का निर्माण एवं निर्देशन किया। तनूजा एवं महमूद द्वारा अभिनीत यह फिल्म संगीतकार आर.डी. बर्मन की पहली फिल्म थी। निर्देशक ब्रज ने भी 'यह रात फिर न आएगी' के माध्यम से सस्पेंस फिल्मों के क्षेत्र में प्रवेश किया। इसके बाद उनकी फिल्म 'उस्तादों के उस्ताद' आई। यह अपने आप में एक रहस्य है कि राज खोसला, महमूद एवं ब्रज जैसे निर्देशकों ने सफल सस्पेंस फिल्में बनाने के बाद इस क्षेत्र से हटने का फैसला क्यों किया।

बीरेन नाग की असामयिक मृत्यु के बाद हेमंत कुमार पिनाकी मुखर्जी को अपनी तीसरी सस्पेंस फिल्म के निर्देशन हेतु कलकत्ते से लाए। उनकी इस आखिरी सस्पेंस फिल्म 'फरार' में बलराज साहनी तथा अनिल चटर्जी की प्रमुख भूमिका थी। यह फिल्म सफल नहीं रही।

नानावटी हत्याकांड पर आधारित फिल्म 'ये रास्ते हैं प्यार के' तथा मोहन सहगल की 'वो मैं नहीं' सामान्य रहीं। हेमंत कुमार के खेमे से प्रशिक्षण प्राप्त मोहिन्दर सबरवाल तथा देवकिशन सबरवाल ने अपने हिसाब से रहस्य रचना का प्रयास करते हुए अनिल चटर्जी और तनूजा को लेकर **'सन्नाटा'** बनाई। देवकिशन ने 'बिन बादल बरसात' की पटकथा लिखी। इस फिल्म के निर्माता एन.सी. सिप्पी तथा निर्देशक ज्योति स्वरूप थे। कलाकारों में आशा पारेख एवं विश्वजीत प्रमुख थे। दोनों ही फिल्में फ्लॉप हो गईं। ज्योति स्वरूप की अगली फिल्म 'परवाना' रही। इस फिल्म में अमिताभ बच्चन पहली और आखिरी बार खलनायक की भूमिका में परदे पर आए।

अपनी महत्वाकांक्षी फिल्म 'गाइड' को अपेक्षित सफलता न मिल पाने से निराश होकर देवानंद तथा विजय आनंद ने सस्पेंस फिल्म 'ज्वेल थीफ' बनाई। नवकेतन की यह फिल्म हिट रही। इस फिल्म की कहानी किसी रहस्यमय हत्या से नहीं जुड़ी थी बल्कि एक लापता व्यक्ति को केंद्र बनाकर फिल्माई गई थी। सन् १९७० के आसपास उत्तमकुमार द्वारा अभिनीत बंगला फिल्म 'लाल पत्थर' काफी सफल रही थी। इसे हिंदी में बनाने का अधिकार एफ.सी. मेहरा ने प्राप्त किया। राजकुमार को प्रमुख भूमिका में लेकर इसी नाम से हिंदी संस्करण बनाया। बंगला एवं हिंदी दोनों ही भाषा में बनी फिल्म के निर्देशक सुशील मजुमदार थे। दक्षिण भारत में सस्पेंस फिल्में काफी कम बनी। एकमात्र फिल्म 'रेड रोज' थी, जो बाद में इसी नाम से हिंदी में बनी। प्रमुख भूमिका में राजेश खन्ना को लिया गया।

हिंदी की सर्वाधिक सफल सस्पेंस फिल्मों में महल/ बीस साल बाद/ वह कौन थी/ गुमनाम तथा मेरा साया प्रमुख हैं। इन सभी सफल फिल्मों में एक समानता है। वह है हिट गीत-संगीत की मौजूदगी। 'आएगा आने वाला/ कहीं दीप जले कहीं दिल/ नैना बरसे रिमझिम रिमझिम/ गुमनाम है कोई/ मेरा साया/ इस तथ्य से पता चलता है कि दिल को झकझोरने वाला गीत सस्पेंस फिल्मों की सफलता का मुख्य कारण होता है।

सस्पेंस फिल्मों के निर्माण के प्रति उद्योग उदासीन है। रामसे ब्रदर्स की 'हॉरर' फिल्में या जेम्स बांड टाइप एक्शन फिल्मों की बढ़ती लोकप्रियता ही संभवतः सस्पेंस फिल्मों के प्रति निर्माताओं की उदासीनता का कारण है। रोमांचक तथा एक्शन फिल्मों ने मनोरंजन की सारी धारणा को ही बदल दिया। 'फर्ज' की सफलता के बाद सस्पेंस की जगह रोमांच और एक्शन में दर्शक मनोरंजन तलाशने लगे।

भारतीय साहित्य में सस्पेंस अथवा जासूसी साहित्य रचना की कोई परंपरा नहीं है। जितनी भी सस्पेंस फिल्में बनी उनकी कहानी पश्चिमी फिल्मों से ली गई थीं। केवल सत्यजीत राय ने स्वयं तीन सस्पेंस फिल्मों का निर्माण किया है- चिड़िया खाना/ सोनार किला तथा जय बाबा फेलूनाथ। सत्यजीत राय के अतिरिक्त किसी 'बेहतर सिनेमा' आंदोलन के निर्देशक ने सस्पेंस फिल्मों का निर्माण नहीं किया। ■

कॉलिन पॉल प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक हैं।

● सई परांजपे

भारतीय समाज में नारी की स्थिति विडंबनायुक्त रही है। एक ओर तो उसे पूजनीय माना गया तथा दूसरी ओर उसे अपमान, पीड़ा और तिरस्कार की पात्र समझा गया। कुल मिलाकर विश्व के अन्य देशों की तरह भारत में भी नारी को द्वितीय श्रेणी की नागरिक माना गया। कन्या जन्म से भार एवं 'पराया धन' समझी जाती रही। आजादी के बाद स्थितियां बदलीं तथा नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। शहरी क्षेत्रों में बदलाव तेजी से आया मगर ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की दशा में खास परिवर्तन नहीं हुआ।

सिनेमा तथा मनोरंजन के अन्य साधनों में सामाजिक वातावरण का प्रतिबिम्ब पड़ना स्वाभाविक है। क्या नारी की छवि प्रस्तुत
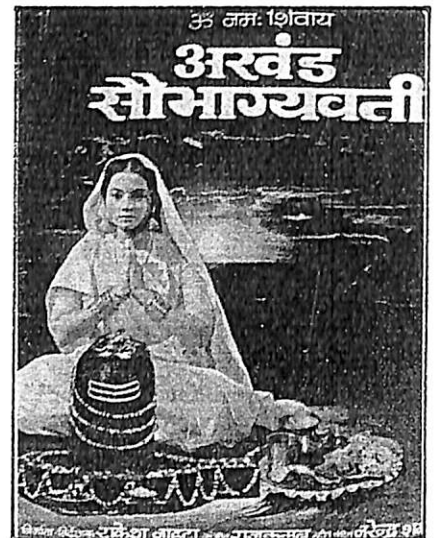
करने में सिनेमा की भूमिका न्यायपूर्ण रही? क्या सिनेमा में स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं का सही विश्लेषण किया गया? क्या सिनेमा ने नारी के अधिकारों के लिए आवाज बुलंद

गूंगी फिल्में

(१९१२ से १९८८)

□ १९१२ : २	□ १९१९ : ८	□ १९२९ : १३३
□ १९१३ : २	□ १९२० : १८	□ १९३० : १७२
□ १९१४ : १	□ १९२१ : ३९	□ १९३१ : २०७
□ १९१५ : १	□ १९२२ : ५८	□ १९३२ : ८८
□ १९१७ : ४	□ १९२३ : ४३	□ १९३३ : ३९
□ १९१८ : ७	□ १९२४ : ७२	□ १९३४ : ०७
	□ १९२५ : ८०	□ १९८८ : ०१ (पुष्पक)
	□ १९२६ : ८८	* अन्य १०
	□ १९२७ : ८९	कुल : १२८०
	□ १९२८ : ११४	

सिनेमा में नारी

समांतर सिनेमा और लोकप्रिय सिनेमा की कुछ अपवादस्वरूप फिल्मों को छोड़ दिया जाए, तो नारी की छवि 'शो पीस' से अधिक नहीं है। पुरुष प्रधान समाज में उसे सदैव चरणों की दासी दिखाया जाता रहा है। समय की माँग यह है कि अच्छाइयों तथा बुराइयों के मिले-जुले मानवीय स्वरूप में नारी को उसकी संपूर्ण वास्तविकताओं के साथ चित्रित किया जाए। देवी या सती ये दोनों स्वरूप खतरनाक हैं।

की? क्या उसने महिलाओं की कठिनाइयों का कोई हल सुझाया? दुर्भाग्य से इन सारे सवालों के उत्तर नकारात्मक मिलते हैं।

कुल मिलाकर रजतपट पर भारतीय नारी को सजावट की वस्तु के रूप में पेश किया गया। वह बहन, माँ, प्रेमिका और खलनायिका बनकर आई। उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व परदे पर यदाकदा ही प्रदर्शित हो सका।

भारत में लोकप्रिय सिनेमा का प्रारंभ दादा साहब फालके की फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' (१९१३) से माना जाता है। इसके बाद नारी विषयक पहली फिल्म **अहिल्या उद्धार** (१९१९) बनी। पतिव्रता पवित्र नारी का देवताओं की वासना का शिकार बन पाषाण हो जाना इस फिल्म का केंद्रीय कथानक था। मूक युग में कई सतियों को केंद्र बनाकर फिल्मों का निर्माण हुआ। इन सारी फिल्मों का एकमात्र उद्देश्य भारतीय पत्नी की पतिव्रत धर्म वाली छवि को गौरवान्वित करना था। सती पार्वती/ सती मदालसा/ सती सावित्री/ सती अनुसूइया/ सती सुलोचना/ जैसी फिल्में १९२५ से १९३५ के बीच बनीं। इसके बाद भी सती नागकन्या/ सती अन्नपूर्णा/ सती बेहुला फिल्में १९६० तक बनती रहीं।

इसके बाद सीधे पौराणिक प्रसंगों पर सती आधारित फिल्मों का निर्माण कम होने लगा। पतिव्रता स्त्रियों की कहानी आधुनिक संदर्भों में बखान की जाने लगी। सती परीक्षा/ दुल्हन/ पति परमेश्वर/ चरणों की दासी/ 'सुहाग सिंदूर'/ फिल्मों के माध्यम से नारी को पति की प्रतिछाया सिद्ध किया जाने लगा।

यह एक विचित्र विडंबना रही कि एक ओर तो भारतीय स्त्रियों का सती रूप दर्शा कर उन्हें अबला के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर 'नाडिया' की फिल्मों के माध्यम से अकेली नारी को सुपर वुमेन के तौर पर भी पेश किया जा रहा था। स्टण्ट क्वीन नाडिया एक्शन में विश्वास रखती थी। अपने नायक जॉन कावस के साथ मिलकर उसने टॉर्जन, बॉण्ड तथा रेम्बो को पीछे छोड़ दिया था। सन् १९३४ में होमी वाडिया ने उसे 'हण्टरवाली' के रूप में पेश किया था। मिस फ्रंटियर मेल/ हरिकेन हंसा/ लुटेरी ललना/ डायमण्ड क्वीन/ बंबई वाली फिल्मों में उसने दर्शकों का दिल लुभाया। पचास के दशक के बाद नारी का नाडिया रूप परदे से गायब हो गया। सन् १९७२ में सीता और गीता में हेमा मालिनी ने इस रूप को दुहराने की कोशिश की। सती फिल्मों के साथ नाडिया का शक्ति स्वरूप भारतीय पृष्ठभूमि में अस्वाभाविक भी नहीं था। यहाँ दुर्गा/ काली/ चंडिका के साथ गौरी और संतोषी माँ की भी पूजा होती है।

फिल्म मंडी में शबाना आजमी

जब सतियों की गाथाएँ परदे पर प्रस्तुत की जा रही थीं तब (तीसरे दशक में) तमिल एवं तेलुगु में बाल योगिनी नामक फिल्म बनी। इस फिल्म में बाल विधवाओं के साथ होने वाले अत्याचारों को प्रदर्शित किया गया था।

इस फिल्म के निर्माता ब्राह्मण थे तथा इसी जाति की बाल विधवा ने फिल्म में भूमिका की थी। फिल्म की काफी आलोचना हुई तथा सुब्रमनियम को जाति से निष्कासित कर दिया गया।

इसी निर्माता ने १९५९ में 'त्याग भूमि' नामक फिल्म बनाई। कहानी एक अमीर व्यक्ति द्वारा अपनी पत्नी को त्यागने की है। यह पत्नी विवशता नहीं ओढ़ती बल्कि पौरुष का प्रदर्शन करते हुए समाज में प्रतिष्ठा एवं संपत्ति अर्जित करती है। पति की आर्थिक दशा बिगड़ती है तथा वह पश्चाताप के आंसू बहाता हुआ पत्नी के पास आता है। स्वाभिमानी पत्नी उसे ठुकरा देती है तथा गुजारा भत्ता देने का प्रस्ताव रखती है।

फिल्म रिहाई : हेमा मालिनी- विनोद खन्ना

विधवाओं की समस्या को लेकर बी.एन. रेड्डी ने 'सुमंगली' का निर्माण किया। कुल मिलाकर स्त्रियों की समस्याओं को लेकर कम ही फिल्में बनीं। सामाजिक परिवर्तनों का ज्यादा असर फिल्म निर्माताओं पर नहीं पड़ा। महर्षि कर्वे तथा जी.के. आगरकर का सुधारवादी आंदोलन फिल्मों की धारा को प्रभावित नहीं कर पाया।

इसी समस्या को लेकर अस्सी के दशक में दो फिल्में बनी प्रेमा कारंथ की फणियम्मा में एक युवा विधवा अपना सिर घुटवाने से इंकार कर देती है। एक महिला द्वारा अपने अधिकार तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के प्रयास को इस फिल्म में साहसपूर्वक दर्शाया गया था। विजया मेहता की फिल्म **राव साहब** में भी इसी समस्या को अधिक सूक्ष्म विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया गया था।

वी. शांताराम की फिल्म 'दुनिया न माने' (१९३७) बेमेल विवाह पर आधारित अत्यंत बोल्ड फिल्म थी। एक कम उम्र लड़की का बूढ़े विधुर के साथ विवाह हो जाता है। यह युवती इस विवाह को अस्वीकार कर देती है। पति के साथ शयन नहीं करती। सुहाग के निशान धारण नहीं करती। यह फिल्म काफी साहसी और ऐतिहासिक सिद्ध हुई। सन् १९४१ में अच्युत रानाडे ने इब्सन के 'डॉल हाउस' से प्रभावित होकर 'गुड़िया' नामक फिल्म बनाई। इसमें एक नन्हीं बालिका के व्यक्तित्व के विकास की गाथा है। यह लड़की अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए पतिगृह को ठुकरा देती है। सन् १९४८ में बनी 'स्वयंसिद्धा' भी एक ऐसी बहादुर बहू की कहानी है, जो मंदबुद्धि पति से ब्याही जाती है। ससुर की वासना का शिकार होने से खुद को वीरतापूर्वक बचाती है।

अपने शरीर को बेचकर जीविका कमाने के लिए बाध्य नारियों के जीवन पर मूक फिल्मों के युग में देवदासी (१९२५), कन्या विक्रय (१९२४), आदि फिल्मों का निर्माण हुआ। शूद्रक के संस्कृत नाटक पर आधारित फिल्म वसंत सेना १९२९/ १९३४/ १९४१/ तथा १९८३ में बनाई गई। सन १९८३ में बनी **उत्सव** का विषय यही था। 'मुगले आजम' भी एक नर्तकी की प्रणयगाथा पर केंद्रित फिल्म थी। 'पाकीजा' तथा 'उमराव जान अदा' का भी यही विषय था। 'प्यासा', 'देवदास', 'चेतना', 'बाजार', 'मण्डी' आदि फिल्मों का यही विषय था।

कामकाजी लड़कियों को लेकर भी कई फिल्में बनीं। सन् १९२६-२७ में 'टाइपिस्ट गर्ल/ टेलीफोन गर्ल/एजुकेटेड वाइफ फिल्में बनीं। इसी क्रम में कॉलेज गर्ल तथा इंदिरा एम.ए. (१९३४), नर्स (१९४३), लेडी डॉक्टर (१९४४) का निर्माण हुआ। इन फिल्मों में अपेक्षित गंभीरता का अभाव था। के.ए. अब्बास ने १९६२ में 'ग्यारह हजार लड़कियाँ' बनाई। सत्यजीत राय ने 'महानगर' के माध्यम से कामकाजी शहरी लड़कियों के सहकर्मी पुरुषों से रिश्ते, पति की प्रतिक्रिया तथा इन सबसे उपजी पारिवारिक दरारों को दर्शाया। मृणाल सेन की फिल्म 'एक दिन प्रतिदिन' में मध्यमवर्गीय परिवार की कामकाजी युवतियों की दशा तथा उनके प्रति परिवार के दृष्टिकोण को चित्रित किया गया था।

स्त्रियों की समस्याओं का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। समाज की अन्य समस्याओं से भी महिलाओं का परोक्ष रूप से रिश्ता जुड़ जाता है। छुआछूत की समस्या पर आधारित फिल्मों में अछूत कन्या/ दलित कुसुम तथा आम्रपाली प्रमुख हैं। ऐतिहासिक नारियों के जीवन वृत्त पर निर्मित फिल्मों में झाँसी की रानी (सोहराब मोदी १९५३), मीरा (१९४७) तथा रजिया सुलतान (१९८३) प्रमुख हैं।

नारी के आंतरिक हृदय की संवेदनाओं का विश्लेषण करने वाली फिल्मों में सत्यजीत राय की **चारुलता** तथा ऋषिकेश मुकर्जी की अनुराधा प्रमुख हैं। महिला निर्देशिका अपर्णा सेन की ३६ चौरंगी लेन भी ऐसी ही सूक्ष्म संवेदनाओं पर आधारित है। लंदन में फिल्माई गई 'एक बार फिर' तथा गुलजार की 'आँधी' में विषयों का साहसिक चयन किया गया था। 'अर्थ' में एक परित्यक्ता नारी की व्यथाओं एवं सम्मान की रक्षा के लिए उसके प्रयासों का चित्रण किया गया था।

महान निर्देशक विमल राय ने भारतीय रजतपट पर नारी के उत्कृष्ट चरित्र को सूक्ष्मता से चित्रित किया है। परिणिता/

विराजबहू/ मधुमती/ बंदिनी/ सुजाता उनकी अमर कृतियाँ है। अमिय चक्रवर्ती की 'सीमा' भी नारी विषयक अविस्मरणीय फिल्म थी। पात्रों के भावनात्मक आवेगों की सजीवता फिल्मों को अविस्मरणीय बनाती हैं। जिन महान अभिनेत्रियों ने रजतपट पर पात्रों को जीवंत बनाया उनमें मदर इंडिया की नर्गिस, साहब बीबी और गुलाम की मीनाकुमारी, भूमिका की स्मिता पाटिल, अर्थ की शबाना आजमी प्रमुख हैं।

जिन फिल्मों का जिक्र ऊपर हुआ है उन्हें यदि अपवाद कहा जाए तब अनुचित नहीं होगा। व्यावसायिक सिनेमा में तो नारी के मांसल स्वरूप को ही प्रमुखता से चित्रित किया गया है। समय की आवश्यकता यह है कि नारी के वास्तविक एवं संघर्षरत स्वरूप को चित्रित किया जाए। 'हमें विशुद्ध श्वेत वस्त्रावृता या काली अंधेरी रात की तरह चित्रित मत कीजिए बल्कि अच्छाइयों और बुराइयों के मिले-जुले मानवीय स्वरूप में हमारी वास्तविकता दिखलाइए' यही आज की नारी की माँग है।

एक महिला निर्देशिका होने के नाते मुझसे यह अक्सर पूछा जाता है कि इस पुरुष प्रधान माध्यम में काम करने में क्या मुझे कठिनाई होती है। सत्य उत्तर है कि हाँ। क्या यहाँ भेदभाव है! सत्य उत्तर है हाँ। मगर उनके पक्ष

में मुझे हमेशा पुरुषों का सहयोग और प्रोत्साहन मिला। महिला होने के कारण कभी हीन भावना मन में नहीं आई। हमारी संख्या निरंतर बढ़ रही है। नई-नई महिला निर्देशिकाएँ आ रही हैं। एक दिन ऐसा भी आएगा कि लोग हमें महिला निर्देशक के रूप में नहीं, सिर्फ निर्देशक के रूप में पहचानेंगे।

● *सई परांजपे, प्रसिद्ध फिल्म निर्देशिका हैं।*

● नारी समस्या पर केंद्रित प्रमुख फिल्म : □ दुनिया न माने (१९३७) □ स्वयं सिद्धा (१९४९) □ मंगला (१९५०) □ एक बार फिर (१९७९) □ गृह प्रवेश (१९७९) □ सुबह □ परमा □ पंचवटी □ इजाजत □ अर्थ □ रिहाई □ सती □ लिबास □ दृष्टि।

साहित्य का सैल्योलाइड पर रूपांतर

साहित्य और सिनेमा के रिश्ते सदैव तनावपूर्ण रहे हैं। दरअसल यह दो माध्यमों के रचनाकारों का आपसी टकराव है। इसके बावजूद साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने का सिलसिला जारी है। जब तक लिखा नहीं जाएगा, कोई भी फिल्म भला आकार कैसे ले पाएगी। इसलिए फिल्म की फ्रेम में साहित्य के बिम्ब संतुलित होना जरूरी है।

● सूर्यकान्त नागर

सौ टके का एक सवाल है। साहित्यिक कृतियों पर क्या ऐसी फिल्मों का निर्माण संभव है, जो इन कसौटियों पर पूरी तरह खरी उतर सकें- **(एक)** टिकट खिड़की पर सफल हों **(दो)** सभी वर्ग के दर्शकों को समान रूप से पसंद आए **(तीन)** लेखक फिल्म से पूर्णतः संतुष्ट हो तथा **(चार)** निर्देशक को भी उससे पूरा संतोष मिले। साहित्यिक रचनाओं पर बनी देशी-विदेशी फिल्मों की लम्बी फेहरिस्त पर नजर डालें, तो इन कसौटियों पर एक साथ खरी उतरने
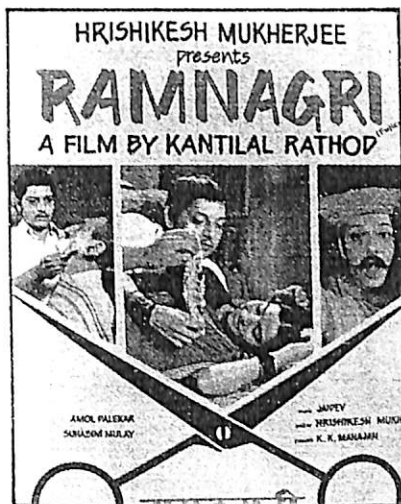
वाली फिल्मों की संख्या कम है। साहित्य पर आधारित कुछ हिन्दी फिल्में ऐसी भी थीं जो बॉक्स ऑफिस पर उतनी सफल नहीं रहीं। लेकिन दर्शकों ने उन्हें पसंद किया। समीक्षकों से भी उन्हें प्रशंसा मिली। जैसे भुवन शोम, रजनीगंधा, तीसरी कसम, सारा आकाश, देवदास, बंदिनी। दर्शकों ने इनमें एक ताजगी और लय का अनुभव किया था। कुछ ऐसी फिल्में भी रहीं जो व्यावसायिक तौर पर भी सफल रहीं, जैसे विमल मित्र के उपन्यास पर आधारित 'साहब, बीबी और गुलाम' और आर.के. नारायण के उपन्यास पर आधारित 'गाइड' लेकिन इन दोनों फिल्मों के निर्माण में बुनियादी अंतर था और यहीं से दो विचार बिंदु सामने आते हैं। साहब बीबी और गुलाम के पीछे गुरुदत्त जैसे निर्माता का मस्तिष्क था।

उन्होंने उपन्यास की आत्मा को आत्मसात किया था। बिना कोई खास तोड़-मरोड़ के उन्होंने हर दृष्टि से एक सफल फिल्म बनाई। जबकि 'गाइड' के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। निर्देशक विजय आनंद ने मूल कथा में अनेक परिवर्तन किए थे जिन्हें लेकर आर.के. नारायण काफी रुष्ठ हुए थे।

साहित्य और सिनेमा के रिश्ते प्रायः आत्मीय नहीं रहे। एक तनाव बना रहा। निर्देशक- निर्माता का तर्क है कि शब्द तथा दृश्य-श्रव्य अभिव्यक्ति के दो अलग-अलग माध्यम हैं। इसलिए किसी भी साहित्यिक कृति को सैल्योलाइड पर उतारने के लिए उसमें कुछ परिवर्तन आवश्यक होते हैं।

यदि निर्देशक में साहित्य और फिल्म माध्यम की सही समझ है, तो वह कृति के साथ काफी हद तक न्याय कर सकता है और लेखक को विश्वास दिला सकता है कि जो परिवर्तन किए गए हैं, वे अनिवार्य थे। अन्यथा तीखे विवाद होते रहेंगे। जैसे, मन्नू भंडारी के उपन्यास **'आपका बंटी'** पर शिशिर मिश्र द्वारा निर्मित फिल्म समय की धारा के समय हुआ था।

कुछ साहित्यिक कृतियों पर दो-दो बार फिल्में बनीं। ऐसा पहली फिल्म की सफलता या लोकप्रियता के कारण हुआ। लेकिन दोबारा बनी फिल्में अक्सर असफल ही रहीं। एक अपवाद है तो देवदास जिसे दोनों बार पसंद किया गया। कारण स्पष्ट है। दोनों के निर्देशक एवं कलाकार सुलझे हुए थे। पी.सी. बरुआ निर्देशित पहली 'देवदास' में के.एल. सहगल और जमुना की यादगार भूमिकाएँ थीं। दूसरी, विमल राय द्वारा निर्देशित थी जिसमें वैजयंतीमाला (चन्द्रमुखी), सुचित्रा सेन (पारो) तथा दिलीप कुमार (देवदास) ने भूमिकाएँ निभाई थीं। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर दोबारा बनी फिल्म (केदार शर्मा) तमाम व्यावसायिक लटकों-झटकों और बड़े-बड़े कलाकारों के

बावजूद बॉक्स ऑफिस पर बुरी तरह पिट गई।

हिंदी की कृतियों पर फिल्में नहीं बनीं, कई दिग्गज साहित्यकार स्वयं बंबई पहुँचकर फिल्मी दुनिया से जुड़े। वहाँ उन्होंने कहानियाँ पट-कथाएँ और संवाद लिखे। प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, कमलेश्वर, शरद जोशी तथा मनोहरश्याम जोशी। इनमें से कुछ तो फिल्मी दुनिया के तौर-तरीकों और आत्मा को बेचकर किए जाने वाले सौदों-समझौतों से इतने दुःखी थे कि अंततः रस्सी तुड़ाकर भाग खड़े हुए। प्रेमचंद और अमृतलाल नागर तो वित्तीय विवशताओं के कारण फिल्मी दुनिया में गए थे, पर उनका मन वहाँ नहीं रमा। नागरजी ने बंबई पहुँचने के दो वर्ष बाद ही इस संबंध में जो लिखा, वह केवल उनकी ही व्यथा नहीं थी, वह हर ईमानदार रचनाकार की व्यथा थी। उन्होंने लिखा- 'मैं बराबर अनुभव कर रहा हूँ कि सिनेमा में मुझे चाहे जितनी सफलता और पैसा क्यों न मिले, वह मेरा क्षेत्र नहीं है। प्रोफेशनल मूड में किराए के टट्टू बनकर अपनी कलम से वेश्यावृत्ति कराने में आत्मा को बड़ा कष्ट होता है।' प्रेमचंद ने भी ऐसे ही उद्‌गार व्यक्त किए थे। यह शायद बहुत कम लोगों को पता है कि नागरजी ने कुछेक फिल्मों में भूमिकाएँ भी की थीं, जैसे 'वीर कुणाल' में कापालिक, राजा में पुस्तकों के दुकानदार तथा किशोर साहू के 'आगे कदम' में देहाती मास्टर की।
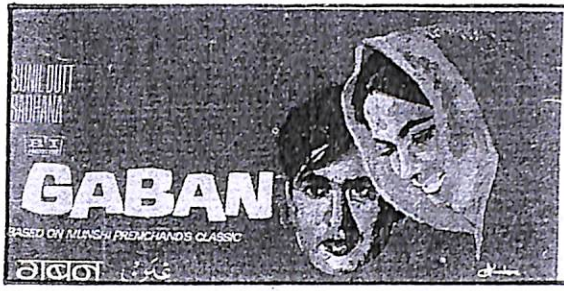
प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास **'गोदान'** पर त्रिलोक जेटली ने फिल्म बनाई थी, पर राजकुमार और कामिनी कौशल जैसे समर्थ कलाकार भी कमजोर निर्देशन के कारण होरी और धनिया के चरित्र को 'जी' न सके। उनके दूसरे उपन्यास पर 'गबन' फिल्म भी असफल रही। 'शतरंज के खिलाड़ी' पर सत्यजीत राय ने अपने हिसाब से कई परिवर्तन कर, फिल्म बनाई, पर दर्शक और समीक्षक दोनों ही संतुष्ट दिखाई नहीं दिए। प्रेमचंद की आधा दर्जन से अधिक कहानियों या उपन्यासों पर फिल्में बनी, किंतु दर्शकों के मन पर वे कोई अमिट छाप नहीं छोड़ पाईं। मृणाल सेन ने भी प्रेमचंद की कहानी 'कफन' का काफी हिस्सा बदलकर उस पर फिल्म बनाई थी।

शरतचंद्र की रचनाएँ भी फिल्म निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण स्रोत रही हैं। उनकी रचनाओं पर आधारित देवदास, परिणिता, मझली दीदी, सौतेला भाई उल्लेखनीय हैं। विमल राय ने रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'काबुलीवाला' पर एक अच्छी फिल्म बनाई थी। उसके निर्देशक हेमंत गुप्ता थे।

जब सार्थक सिनेमा का दौर शुरू हुआ, तब भी साहित्य पीछे नहीं रहा। सारा आकाश (राजेन्द्र यादव/बासु चटर्जी), भुवन शोम (बनफूल/मृणाल सेन), रजनीगंधा (मन्नू भंडारी /बासु चटर्जी), उसकी रोटी (मोहन राकेश / मणि कौल), माया दर्पण (निर्मल वर्मा/ कुमार शाहनी), दुविधा (विजयदान देथा/ मणि कौल) जैसी कई फिल्मों का निर्माण हुआ। इनमें से कुछ जटिल थीं, कुछ अत्यंत धीमी, कुछ अतिकलावादी। कुछ सहज लयबद्ध तथा ताजगीभरी थीं। अंतिम किस्म की फिल्मों को सफलता और

मुंशी प्रेमचंद का यह रेखाचित्र ८ मार्च १९२६ को जापानी चित्रकार ओकामा ने बनाया था

सराहना दोनों मिली। मणि कौल द्वारा श्री मोहन राकेश के बहुचर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' पर फिल्म बनाई गई थी, जो बोरियत भरी थी। मोहन राकेश का यह नाटक मंचन की दृष्टि से अत्यंत सफल रहा है। मोहन राकेश के ही एक और प्रसिद्ध नाटक 'आधे अधूरे' पर ओम शिवपुरी ने फिल्म निर्माण शुरू किया था, किंतु निर्देशक बासु भट्टाचार्य और शिवपुरी के बीच बढ़ते विवाद के कारण फिल्म आधी-अधूरी रह गई। फणीश्वरनाथ रेणु की रचना 'मारे गए गुलफाम' पर बासु भट्टाचार्य ने 'तीसरी कसम' नाम से एक अच्छी फिल्म (निर्माता शैलेन्द्र) दी थी। वहीदा-राज की भूमिकाओं ने फिल्म में प्राण फूँक दिए थे। फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सफल नहीं हुई और शैलेन्द्र जैसे समर्थ गीतकार को ले बैठी।

बासु चटर्जी की तरह साहित्यिक कृतियों पर अच्छी फिल्में बनाने की संभावनाओं को तलाशने में निर्देशक कांतिलाल राठौड़ का नाम भी अग्रणी रहा है। उन्होंने गुजराती के ख्यात कथाकार पन्नालाल पटेल की कहानी 'कुंकु' और रामनगरकर की मराठी
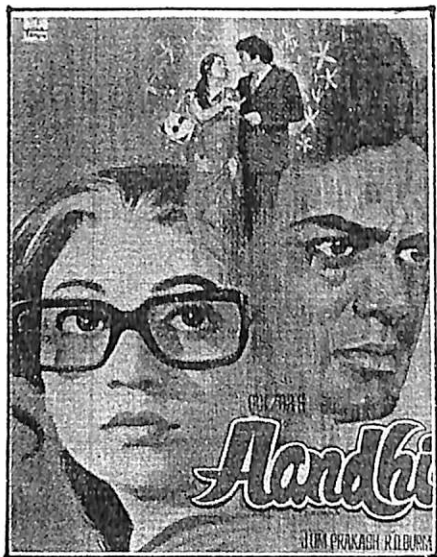
आत्मकथा पर 'रामनगरी' जैसी अर्थपूर्ण फिल्में दीं। रमेश बक्षी की 'सत्ताईस डाउन' का हल्ला तो खूब मचाया गया, लेकिन दर्शकों की पसंद पर वह भी खरी नहीं उतरी।

सत्यजीत राय द्वारा निर्मित/ निर्देशित फिल्मों में से अधिकांश पूर्व प्रकाशित कहानियों या उपन्यासों पर आधारित थीं। विभूति भूषण बंधोपाध्याय के उपन्यास पर आधारित **'पाथेर पांचाली'** राय की पहली फिल्म थी जिसे विश्व-ख्याति प्राप्त हुई। उनकी चिड़िया खाना, गोपीगायन बाधाबायन का पुरुष महापुरुष (प्रेमेंद्र मित्र), महानगर (नरेन्द्र मित्र), पारस पत्थर (परसुराम), शनि संकेत, शतरंज के खिलाड़ी, घर बाहरे आदि फिल्में साहित्यिक कृतियों पर आधारित हैं। राय मूल कहानी में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के पक्षधर थे। कथाकार राजेन्द्रसिंह बेदी ने अपनी कहानियों पर 'दस्तक', 'एक चादर मैली-सी' और 'फागुन' फिल्में बनाईं। तीनों ही फिल्में विचारोत्तेजक थीं और संवेदना के स्तर पर दर्शकों को झकझोरती थीं। 'फागुन' में सास, बेटी-दामाद के वैवाहिक जीवन में स्वयं का अतीत तलाशने की कोशिश करती है और एक अजीब से अंतर्द्वंद्व से गुजरती है।

इधर डॉ. धर्मवीर भारती के प्रसिद्ध उपन्यास **'सूरज का सातवाँ घोड़ा'** की काफी चर्चा रही। यह फिल्म साहित्य और सिनेमा के संगम और सामंजस्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। पुस्तक के शब्द और कैमेरा एक ही वेव लेंग्थ पर चलते हैं। कृति में विभिन्न दृष्टिकोणों से यथार्थबोध पर जोर दिया गया है। मुख्य चरित्र माणिक मुल्ला का यह वाक्य रेखांकित करने योग्य है—'शैली और तकनीक का महत्व तभी है जब आपके पास कहने के लिए कुछ नहीं है।' पहली बार ऐसा हुआ कि साहित्यकार अपनी कृति पर बनी फिल्म से पूरी तरह संतुष्ट नजर आया। श्याम बेनेगल जैसा प्रतिभा संपन्न और साहित्यिक समझ वाला निर्देशक ही ऐसा कर सकता है। यह बात अलग है कि लेखक और निर्देशक के बीच दर्शक गायब है। श्याम बेनेगल की तरह ही गोविंद निहलानी भी ऐसे समर्थ निर्देशक हैं जिन्होंने साहित्यिक कृतियों के साथ न केवल न्याय किया, बल्कि उन पर चर्चित और सफल फिल्में भी बनाईं। विजय तेंदुलकर लिखित 'अर्द्धसत्य' इसकी श्रेष्ठ मिसाल है। कमला, आघात व भीष्म साहनी की तमस में भी निहलानी के योगदान को किसी भी तरह कमतर नहीं आँका जा सकता।

लेखक-चिंतक जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास 'त्याग-पत्र' पर महेन्द्र विनायके ने एक फिल्म बनाई थी। उपन्यास, नायिका के विद्रोही मन पर केंद्रित है। प्रताप शर्मा और विद्या सिंहा ने अपनी ओर से चरित्रों को उभारने की भरपूर कोशिश की, लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से फिल्म बुरी तरह असफल रही।

अभी-अभी अनिता देसाई के अँगरेजी उपन्यास 'इन कस्टडी' पर आधारित फिल्म 'मुहाफिज' (अभिभावक), निर्माता-निर्देशक- इस्माईल मर्चेन्ट प्रदर्शित हुई है। इसमें शशिकपूर और शबाना आजमी की मुख्य भूमिकाएँ हैं। इसमें एक शायर की मनःस्थिति और धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही तहजीब को लेकर चिंता है।

गुलशन नंदा ने ढेरों उपन्यास लिखे और वे पढ़े भी गए। उन्हें साहित्यकार का दर्जा नहीं मिला। उनकें उपन्यासों पर आधारित फिल्म काजल/ कटी पतंग/ शर्मीली/ बॉक्स ऑफिस पर सफल रहीं। एक दूसरे चर्चित उपन्यासकार ओमप्रकाश शर्मा के उपन्यास 'एक रात के मेहमान' पर ऋत्विक घटक जैसे ख्यात निर्देशक ने फिल्म बनाने का निर्णय लिया था। उनका मानना था कि इस उपन्यास में एक अच्छी फिल्म के सभी आवश्यक तत्व मौजूद हैं।
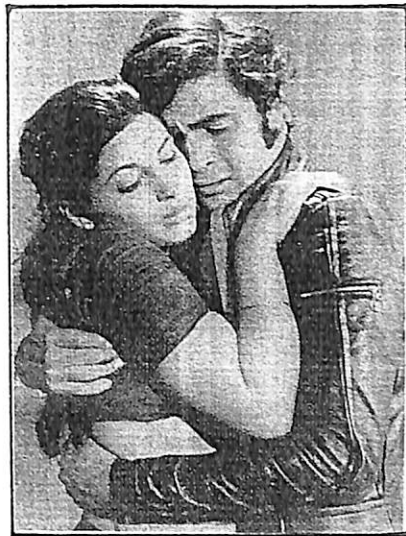
फिल्मों में प्यार का फलसफा

● सुनील मिश्र

हिंदी फिल्मों के शास्त्र में उसके जन्म से आज तक **प्रेम** ही ऐसा एक विषय है जिसकी अनिवार्यता हमेशा बनी रही है। ऐसी फिल्में कम हैं, जिनमें 'अरेंज मैरिज' का प्रावधान हो। सर्वाधिक फिल्में प्रेम के मनोविज्ञान के इर्दगिर्द ही ठहरी हैं।

यह जरूर है कि प्रेम/ लव/ प्यार के बिना फिल्मों की कल्पना अधूरी रहती मगर इस प्रेम-प्यार ने फिल्मों में क्या-क्या रंग बदले इसका दिलचस्प किस्सा है। पुरानी फिल्में, खासतौर पर जब जमाना श्वेत-श्याम फिल्मों का था, प्रेम का बड़ा शाश्वत रूप हुआ करता था। हीरो को उसकी प्रेयसी या तो कहीं मन्दिर आते-जाते में मिल जाया करती थी या कई बार उसकी बहन की सहेली हो जाया करती थी। तब की फिल्मों में प्रेम का 'एक्सीडेंट' नहीं होता था। नायक को नायिका भली लगती थी और नायिका को नायक भला लगता था। बस एक-दो बार की मुलाकातों में ही उनका प्यार हो जाता था। बाग-बगीचे में मिले और गाना गा दिया।

इसी परिपाटी को शास्त्र सम्मत आधार मानते हुए कई फिल्में बनीं। अपने प्यार का इजहार गाकर किया जाता था। अलबेला, मेरी बहन, नजराना आदि फिल्में इसी तरह के प्यार का उदाहरण हैं। जिस समय इस प्रकार की फिल्में बना करती थीं तब समाज भी इतना आधुनिक नहीं था। चारदीवारी और परदे का अलग विधान था। इस वक्त

प्यार के गर्मजोश लम्हे : श्रीदेवी-अनिल कपूर

की फिल्मों में प्यार को लेकर भी भावनाओं और अभिव्यक्तियों में अलग ही तरह की, भली लगने वाली तरलता मौजूद रहती थी। इस काल की फिल्मों में प्रेम और उसके प्रसंग को मन को भला लगने वाला कहा जा सकता है। तब की फिल्मों में प्रेम होता था मगर उसका स्वरूप बड़ा मर्यादित रहता था। कहानी के अनुरूप यदि प्रेमियों का मिलना हुआ, तो फिल्म के अंत में विवाह हो जाता था और यदि किसी कारणवश चाहे वह सामाजिक/आर्थिक या परिवेशिक कारण हो, नहीं मिल पाया तो आँसू पीकर दिल पर पत्थर रख लेने वाली भावना प्रस्तुत की जाती थी। यह प्रस्तुतिकरण इतना मार्मिक हुआ करता था कि दर्शकों का कलेजा भी दहल जाता था और आँखें भीग आती थीं। 'देवदास'/ 'यहूदी' फिल्में इसी तरह की परिस्थितियों की अभिव्यक्ति करती हैं। तब प्रेम करना, समाज से लड़ना दो अलग-अलग पहलू होते थे। समाज हारता कम था और प्रेम को बलिदान होना पड़ता था।

जैसे-जैसे सिनेमा विकसित हुआ प्रेम की अभिव्यक्ति और अभिनेता तथा अभिनेत्रियों के बीच बुने जाने वाले ताने-बाने के बीच बदलाव आया। फिल्मों में अभिनय करने वाले और गाने वाले अलग-अलग हुए। अधिक सुंदर चेहरे फिल्मों में आए और फिल्मों में प्यार का रूमान परवान चढ़ा। फिल्मों में दिलीप कुमार, देवआनंद, राजकपूर, संजीव कुमार, शम्मी कपूर, सुनील दत्त, धर्मेन्द्र जैसे हीरो और मधुबाला, नरगिस, सुरैया, वैजयंतीमाला, मीना कुमारी जैसे अभिनेत्रियों के आ जाने से प्रेम का मनोविज्ञान बदल गया। जहाँ पहले प्रेम का प्रदर्शन एक संकोचमयी अभिव्यक्ति होती थी वहीं उसमें अभिसार का खुलापन आ गया।

यहूदी, इंसानियत, हम दोनों, प्यासा, गाइड, आग, आह, श्री चार सौ बीस, गंगा की लहरें, फूल और पत्थर, छोटी बहू, मिलन, तकदीर, दिल दिया दर्द लिया जैसी फिल्में इस परिवर्तन के काल का उदाहरण हैं।

इस दरम्यान की फिल्मों में प्रेम का एक सीधा रास्ता, त्रिकोण में बदलता गया। एक प्रेमी हुआ, तो दो प्रेमिकाएँ हुईं। कई बार दो प्रेमी हुए तो एक प्रेमिका हुई। दिल ने फिर याद किया, दर्द की रुसवाई है, और तेरे मन की गंगा और मेरे मन की गंगा का बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं, जैसे गीतों वाली फिल्मों में यही त्रिकोण दिखाया जाता था, जो दर्शकों को आहत भी कर जाता था और पसंद भी आता था। यह फिलॉसफी काफी समय तक चली। 'मेरे हुजूर' जैसी फिल्म भी इसी थीम का एक अनुपम प्रमाण है जिसे तब बहुत पसंद किया गया था और राजकुमार की
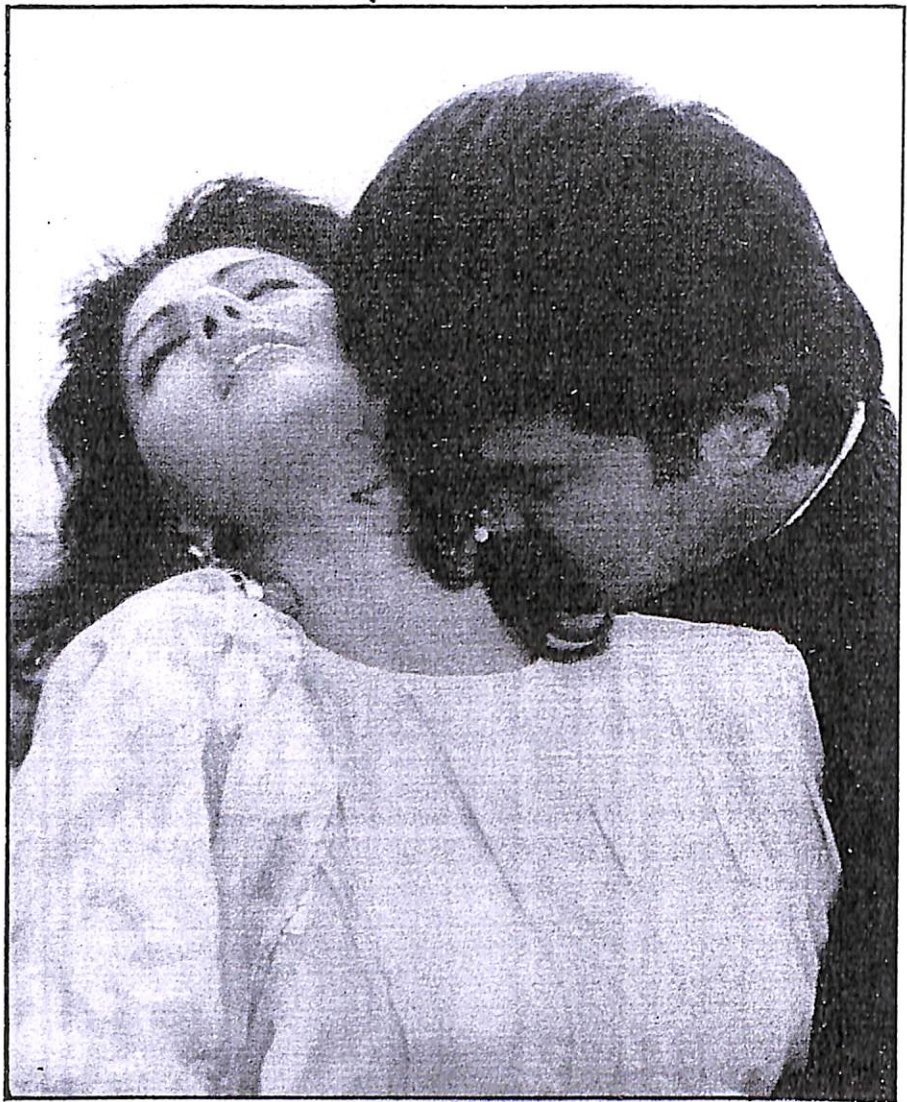
हिंदी फिल्मों में प्रेम का स्वरूप त्याग/ समर्पण और बलिदान का हुआ करता था। आज त्याग के स्थान पर क्रूरता और समर्पण के स्थान पर झपटने की प्रवृत्ति हावी हो गई है। यह कितनी गंदी और अमानवीय इच्छा है कि जिसे हम प्यार करते हैं, उसकी हत्या कर देना चाहते हैं। प्रेम के इस नजरिए को कभी शाबासी नहीं मिलना चाहिए।

बेमिसाल अदाकारी ने तूफान मचा दिया था।

दिल में डूबकर गानों का लिखा जाना और आँसुओं से तप्त भावनाओं के साथ इन गीतों का गुनगुनाया जाना गहरी मार करता था। फिर तो बाद में प्रयोग के तौर पर कुछ फिल्में ऐसी बनकर आने ही लगीं जिसमें प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी नहीं बन पाते थे। प्रेम की फिलॉसफी को लेकर इस तरह के प्रयोग जमकर हुए। 'संगम' की नायिका का ब्याह उससे हो जाता है जिसको वह चाहती नहीं। 'फरार' का नायक अपराधी है, वह ऐसे घर में पनाह लेता है जिसमें उसकी प्रेमिका रहती है जो कि अब विवाहित है। यश चोपड़ा ने 'कभी-कभी' फिल्म का तानाबाना ही इस तरह बुना कि नायक और नायिका अच्छे प्रेमी-प्रेमिका होते हुए भी पति-पत्नी नहीं बन पाते। प्रेमिका की शादी अन्यत्र हो जाती है और प्रेमी की शादी अलग। दोनों के ही मन में अपने प्रेम को लेकर एक तनाव और खालीपन की एक जगह बनी होती है। इस प्रयोग को काफी सफल माना गया था और यह फिल्म बहुत चली भी थी। अमिताभ बच्चन और राखी इस फिल्म के प्रेमी और प्रेमिका थे। बाद में इन्हीं के बच्चे आपस में प्रेम करते हैं और प्रेम में सफल भी होते हैं।

यश चोपड़ा ने 'कभी-कभी' बनाने के बाद

कबूतर की गुटर-गूँ

इसी रेलमपेल में जब अब्बास मस्तान की बनाई और शाहरुख खान अभिनीत फिल्म 'बाजीगर' आई और एकाएक सुपरहिट साबित हो गई तब लोगों का ध्यान इस पर गया। इसका नायक फिल्म की नायिका को अपने प्रेम जाल में फँसाता है और बाद में उसे एक बहुमंजिला इमारत से नीचे धक्का देकर मार डालता है। प्रेम में हत्या करने वाले इस नायक को दर्शकों ने बड़ा पसंद किया और हमारी फिल्मों में नायक की छबि इस तरह बदलना शुरू हो गई। इसी फिल्म के नायक को यश चोपड़ा अपनी फिल्म 'डर' में और भी क्रूरतम रूप में लाए। यह नायक जिससे प्यार करता है और जो उसको प्यार नहीं करती, उसे पाने के लिए वह इतना हिंसक हो उठता है कि उसके पति को मार डालना चाहता है। अंत में वह मर जाता है। यह रुख तो बड़ा हैरतअंगेज था। फिल्मों में नायक प्रेम में एक समय बलिदान किया करता था। मगर वह अब हत्या करने लगा। सिनेमा के लिए यह संकेत अच्छे नहीं है। यदि हीरो का यह कृत्य भी तालियाँ ले जाने लगा तब तो फिर हिंदी फिल्म और समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का भगवान ही मालिक है। 'अंजाम' फिल्म में यह पागलपन तो क्रूरता की सारी सीमाएँ लाँघ गया है।

एक नजर में देखें तो प्रेम की फिलॉसफी का ग्राफ लगातार निराशाजनक हुआ है। प्रेम का स्वरूप त्याग, समर्पण और बलिदान देने का हुआ करता था मगर अब फिल्मों में त्याग की जगह क्रूरता, समर्पण की जगह छीनने का

प्रेम को फलसफे के तौर पर लिया और अपनी लगातार फिल्मों में प्रेम के प्रयोगधर्मी रूप पेश किए। यश की फिल्म 'सिलसिला' भी एक अनोखी प्रेम जटिलता का प्रमाण है। इसमें तो नायक को, जो पहले ही बेइंतेहा प्यार में डूबा है, आकस्मिक परिस्थितियोंवश अपने दिवंगत मित्र की गर्भवती प्रेमिका से ब्याह करना पड़ता है। इस असंगत जीवन पहलू से वह धीरे-धीरे दो-चार होकर सामान्य हो रहा होता है कि उसके जीवन में उसकी प्रेमिका दोबारा आ जाती है जिससे एक पूरा का पूरा समय सनसनी के रूप में बदल जाता है। यद्यपि उसकी प्रेमिका भी शादीशुदा है लेकिन जज्बात और दबी-छिपी रूमानी भावनाओं के बीच उनका प्यार फिर पनप उठता है। इसे सहना पड़ता है प्रेमिका के पति को और प्रेमी की पत्नी को। यह फिल्म बहुआयामी रंगों के वातावरण वाले फूलों के बीच कलियों से लिखी प्रेम कथा थी, जो अपने समय में काफी चर्चित हुई थी।

यश चोपड़ा इस दरम्यान 'त्रिशूल' और 'काला पत्थर' जैसी फिल्में भी बनाते रहे मगर इसी दरम्यान उन्होंने 'चाँदनी' बनाकर जैसे फिर प्यार के ज्वार-भाटे से लबरेज सागर का दर्शन दर्शकों को करा दिया। यहाँ भी त्रिकोण था। नायक का अपाहिज होना कहानी का मोड़ था। नायिका एक दूसरे नायक के जीवन के सूनेपन को भरने के असमंजस को जी रही है कि अंत में फिर नायिका की वरमाला अपने प्रेमी और नायक के गले में होती है। यश चोपड़ा की 'लम्हे' ने तो प्रेम एकाग्र फिल्मों में अनूठा कीर्तिमान ही रचा। यहाँ नायक का प्रेम अंत में उससे है जो दरअसल उसकी उस प्रेमिका की बेटी है जिसकी उससे शादी नहीं हो पाई थी और जिसकी याद में वह कुँवारा रह गया था। यहाँ प्रेमी अधेड़ उम्र का है और प्रेमिका उससे तकरीबन बीस वर्ष छोटी। यह फिल्म काफी चर्चित हुई थी और बहस का माध्यम बनी थी। लोगों ने इसे पिता-पुत्री प्रेम का रंग देकर काफी उछाला था।

इस पूरी यात्रा में यश चोपड़ा अपनी लीक पर आगे बढ़ रहे थे और उन्हीं के समानांतर एन. चंद्रा की 'तेजाब' और सूरज बड़जात्या की 'मैंने प्यार किया' ने दूसरा वातावरण तैयार किया था। एन. चंद्रा की 'तेजाब' में एक दशक पहले सुभाष घई की फिल्म 'हीरो' का 'टच' था तो 'मैंने प्यार किया' ने हिंसा से लबरेज रक्त रंजित परदे पर प्यार के कबूतर उड़ा दिए थे। नए-नए प्रयोगों के दौर में 'मैंने प्यार किया' ने प्यार की फिल्मों का एक अच्छा वातावरण दिया लेकिन बाद में फिर हिंसा आ जुड़ी। दर्शकों के पास सोचने-विचारने का समय नहीं था। सिनेमाघर में जो आता था देखते थे। पसंद और नापसंदगी तो सिनेमाहॉल के बाहर जाकर ही होती थी। मगर इसका प्रभाव अलग पड़ा।

संगम : प्रेम त्रिकोण का अतिरेक

भाव और बलिदान देने की जगह हत्या कर देने के कथानक ज्यादा लिखे और चर्चित हो रहे हैं। सिनेमा के लिए यह कैसा संकेत है यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा मगर इतना जरूर है कि प्रेम के इस स्वरूप और प्रेमी के इस नजरिए को शाबासी नहीं मिलनी चाहिए। ■

फिल्म कल्चर

भारतीय फिल्में अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार
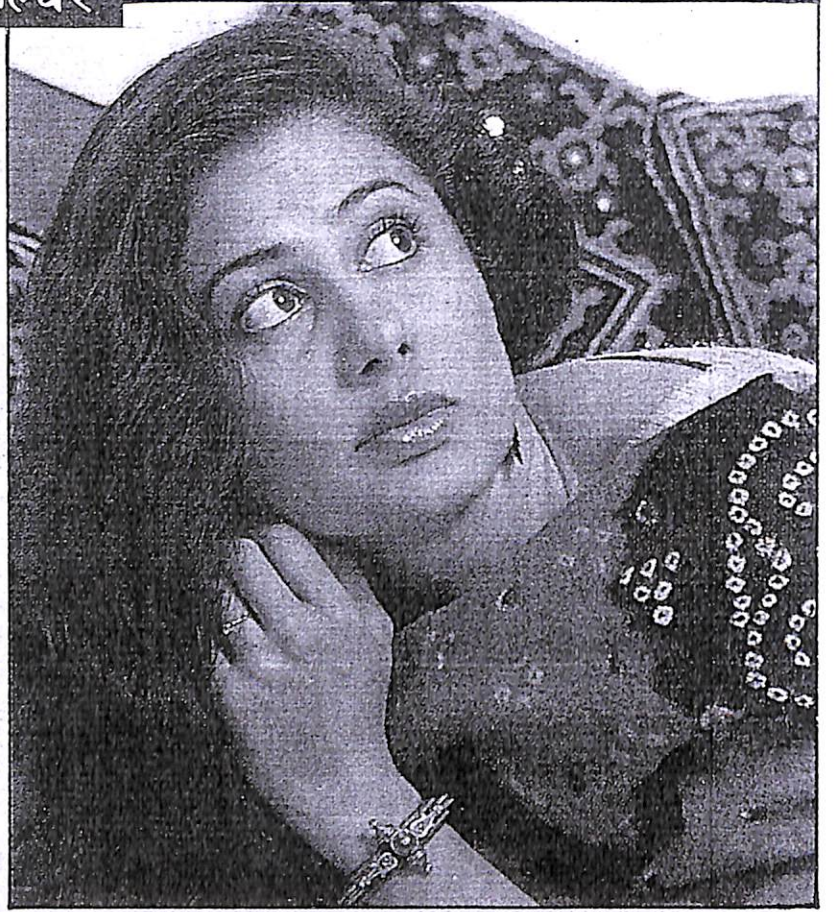
● विगत दस वर्षों की सफलता

☐ **चोख** *(बंगला) : उत्पलेंदु चक्रवर्ती*
— बर्लिन फिल्म समारोह १९८३
☐ **खारिज** *(बंगला) : मृणाल सेन*
— कान फिल्म समारोह फ्रांस १९८३
— शिकागो अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह १९८३
☐ **फणियम्मा** *(कन्नड़) : प्रेमा कारंथ*
— ३२वाँ फिल्म समारोह मेनहीम १९८३
☐ **अर्द्धसत्य** *(हिंदी) : गोविंद निहलानी*
— कार्लोवी वारी १९८४ :
ओमपुरी सर्वोत्तम अभिनेता
☐ **खंडहर** *(हिंदी) : मृणाल सेन*
— मांट्रियल फिल्म समारोह १९८४
☐ **पार** *(हिंदी) : गौतम घोष*
— वेनिस फिल्म समारोह १९८४ :
नसीरुद्दीन शाह सर्वोत्तम अभिनेता
☐ **गोदाम** *(मराठी) : दिलीप चित्रे*
— फेस्टिवल ऑफ थ्री कांटिनेंट्स १९८५
☐ **मायामृग** *(उड़िया) : नीरद महापात्र*
— मेनहीम १९८५ : थर्ड वर्ल्ड कॉम्पीटिशन
— हवाई फिल्म समारोह १९८६
☐ **उम्बरठा** *(मराठी) : जब्बार पटेल*
— वेनिस १९८६
☐ **पार्टी** *(हिंदी) : गोविंद निहलानी*
— एशिया-पेसिफिक महोत्सव टोकियो १९८६
☐ **घरे-बाइरे** *(बंगला) : सत्यजीत राय*
— दमिश्क १९८६ : गोल्डन अवार्ड
☐ **सारांश** *(हिंदी) : महेश भट्ट*
— मास्को फिल्म समारोह १९८६
☐ **अमृत कुम्भेर संधाने** *(बंगला) : दिलीप रॉय*
— सनरेमो समारोह १९८७
☐ **न्यू दिल्ली टाइम्स** *(हिंदी) : रमेश शर्मा*
— कार्लोवी वारी १९८७
☐ **जनम** *(हिंदी) : महेश भट्ट*
— लोकार्नो १९८७
☐ **मयूरी** *(तेलुगु) : संगीतम श्रीनिवासराव*
— एशिया-पेसिफिक, सिओल १९८७
☐ **राव साहेब** *(हिंदी) : विजया मेहता*
— मेनहीम १९८७ : तीसरी दुनिया का सर्वोत्तम अभिनेता
☐ **आदमी और औरत** *(हिंदी) : तपन सिन्हा*
— ताशकंद फिल्मोत्सव १९८८
☐ **मिर्च-मसाला** *(हिंदी) : केतन मेहता*
— हवाई फिल्म समारोह १९८८
☐ **सलाम बॉम्बे** *(हिंदी) : मीरा नायर*
— कान फिल्म समारोह १९८९
☐ **अंतर्जली यात्रा** *(बंगला) : गौतम घोष*
— ताशकंद फिल्मोत्सव १९८९
☐ **अनंतरम्** *(मलयालम) : अडूर गोपालकृष्णन्*
— कार्लोवी वारी १९८९
☐ **हलोधिया चौराए बाओधान खाई** *(असमिया) : जाहनु बरुआ*
— लोकार्नो फिल्म फेस्टिवल १९८९
☐ **पिरावी** *(मलयालम) : शाजी एन. करुण*
— कान फिल्म समारोह १९९१
☐ **पद्मा नदीर माझी** *(बंगला) : गौतम घोष*
— कान फिल्म समारोह १९९२
☐ **रुदाली** *(हिंदी) : कल्पना लाजमी*
— दमिश्क फिल्म फेस्टिवल १९९३ :
डिम्पल सर्वोत्तम अभिनेत्री

● **प्रस्तुति : आदर्श गर्ग**

गुलजार एक संवेदनशील फिल्मकार हैं। **उनके जैसी प्रतिभा बहुत कम लोगों में मिलती है। वह बिमल रॉय के निमंत्रण पर फिल्म में गीत लिखने आए थे। फिर संवाद लिखे। पटकथा लिखी। फिल्म निर्देशक का माध्यम होती है, इसलिए निर्देशक बन गए। उनकी फिल्मों के चरित्र हमारे अपने और आसपास के होते हैं। गुलजार की फिल्मों में माहौल अपनी संपूर्णता के साथ उपस्थित होता है। इस बातचीत में उन्होंने फिल्म के विविध पहलुओं पर अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए हैं:-**

अपनी परछाई से आप दूर नहीं जा सकते

● **निर्मला भुराड़िया**

लेखक संवेदनशील होते हैं, ये संवेदनशीलता यदि उन्हें रचनात्मकता देती है तो भावनात्मक कमजोरियाँ भी। क्या लेखक को किसी प्रेरणा की जरूरत होती है?

लेखक तो संवेदनशील होते ही हैं और उनकी 'क्रिएटिविटी' के लिए यह जरूरी भी है। लेकिन इसमें व्यक्ति नही आता, एक शख्स की शक्ल नही है। और जहाँ तक इंस्पिरेशन या प्रेरणा का सवाल है यह बडी पारंपरिक धारणा चली आ रही है कि लेखक जो है, वह फूलों में बैठकर लिखते हैं और बागों में बैठकर लिखते हैं। मुझे नही लगता कि यह एकदम सच है। चारों तरफ फूल हों तो उनकी कल्पना काम करती है इससे मैं सहमत नही हूँ। एस्थेटिक तो वे अपनी कविताओं से पैदा कर लेते हैं। वो जो पहलू में साथ-साथ चलता है वो एक एहसास है, दिल का, जो जिंदगी मे बार-बार 'रब' करता है। और उसमें व्यक्ति भी आते हैं। एक शख्स भी हो सकता है। बहुत से शख्स भी हो सकते हैं। बहुत-सी घटनाएँ भी हो सकती हैं। बहुत से माहौल भी हो सकते हैं। रचनात्मकता इन सबसे मिलकर जन्म लेती है। यह बड़ा ट्रेडिशनल है कि एक मेहबूबा है उसमे प्रेरणा लेकर कविता लिखी है। ऐसा भी नही कि मेहबूबा पर कविता नही लिखी गई। यह भी नही है, वो भी किया गया है। वह शायर है इसलिए उसने अपनी मेहबूबा पर नज्म लिखी। प्रेरणा की वजह मेहबूबा के साथ भी एहसास है। वो भी जिंदगी के उन अलग-अलग लम्हो को महसूस करने और अलग-अलग भावनाओ को महसूस करने की वजह से है। मेरा ख्याल है सारा कुछ मिलमिलाकर रचनात्मकता की शक्ल आती है। इसे कम्पार्टमेंटलाइज करना या खाने में डालना जरा मुश्किल काम है।

पहला सवाल तो खुशी या प्रेरणा अथवा इंस्पिरेशन से संबंधित था लेकिन दुःख भी क्रिएटिविटी पर असर डाल सकता है। इससे या तो इंसान टूट जाता है या दुनिया भुलाकर और आगे निकल जाता है। इस बारे में आपका अनुभव क्या है?
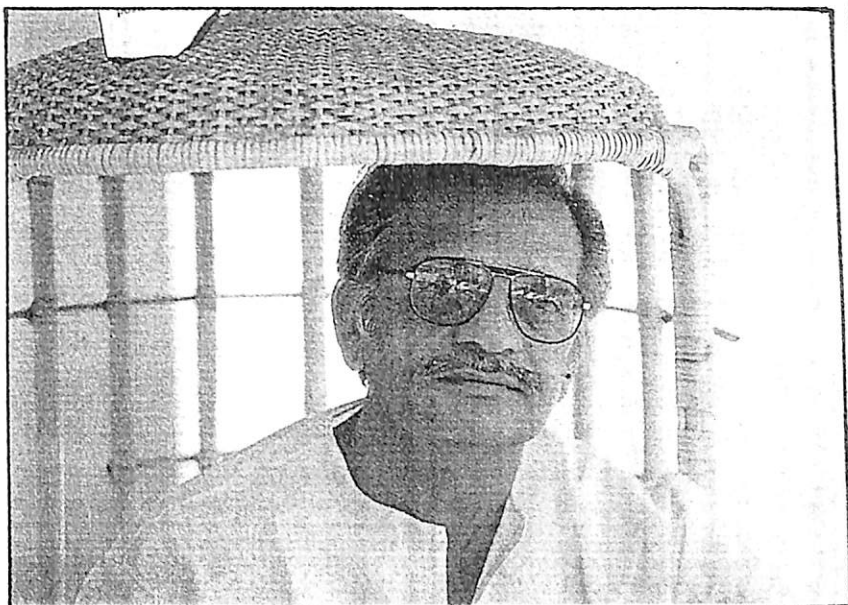
दर्द देर तक ठहरता है और खुशी की मियाद कम होती है यह बॉयोलॉजी है इंसान की। खुशी जल्दी उतर जाती है दर्द देर तक

साक्षात्कार □ गुलजार

रहता है। अज्ञेयजी की एक पंक्ति है 'शेखर एक जीवनी' में 'वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है, यातना है वो दृष्टा हो सकता है।' अतः दर्द मांजता जरूर है। इसलिए कि यह अधिक गहरा असर डालता है। खुशी की हालत ऐसी बहुत कम होती है, जिसे एक्सटेसी (आनंदातिरेग) कहें वही दर्द की हद तक पहुँचती है। यानी छोटी-मोटी खुशी, प्लेजर या हेप्पीनेस नही केवल एक्सटेसी वही उस जगह तक पहुँचती है और एक्सटेसी में लोग वैसे ही होते हैं जैसे दर्द में होते हैं।

कभी जीवन में जुड़े निजी लम्हे परदे पर आए?

कोई भी क्रिएटिव आर्ट हो, कहानी हो, कविता हो, पेंटिंग हो, संगीत हो उसमें आपकी शख्सियत जरूर झलकती है। जैसे कि पं. रविशंकर और विलायत खाँ साहब हैं, बावजूद इसके कि वे दोनों ही बहुत बड़े कलाकार हैं फिर भी उनकी अपनी कला में अपनी शख्सियत जरूर झलकती है। राग वही है वही, नोड्स है लेकिन शख्सियत अलग से जरूर झलकती है। एक ही विषय पर बहुत से लेखक जब लिखते हैं तो उसमें भी उनकी पर्सनल शख्सियत जरूर झलकती है। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि सब कुछ आप ही पर बीता हो। यह लेखक की या किसी भी रचनात्मक काम करने वाले की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है कि वह

संवेदनशील फिल्मकार : गुलजार

बाहर से कितना कुछ अपना सकता है, वह कितनी संवेदनशीलता के साथ उस पर रिएक्ट करता है। यदि अपनी ही चोट लगे तो वह तिलमिलाए और दूसरे के दर्द पर करवट भी ना ले यह हर रचनात्मक व्यक्ति की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है।

सबसे पहले किस उम्र में लिखा? क्या वह कोई कविता थी?

जी हाँ, शुरू तो मैंने शायरी से ही किया था। और शौक लगा था बेतबाजी में जिसे आप आजकल अताक्षरी कहते हैं। आज की अंताक्षरी फिल्मी गानों से जुड़ गई है, मगर बेतबाजी में अच्छे शेर कहना और शेर के आखिर के उससे शुरू करना यह होता था। तो अच्छे शेर याद हो जाते थे। तो जब हारने लगते तो बनाने लगते थे। शुरू कहीं इस तरह से होता है। मेरे साथ कम से कम इस तरह

गहरे घने जंगलों के बीच

चमकती आँखों में ठिठका
एक क्षण अपने साथ ले जाएँ

म.प्र. माध्यम/ब.ह.म./93

फिल्म कल्चर

क्या थे, क्या हो गए...

जब किस्मत बदलती है, तो मिट्टी भी सोना हो जाती है। ईश्वर की यह अनोखी अदा है कि वह हर आदमी को एक न एक दिन छप्पर फाड़कर देता है। फिल्मी सितारे, जो आसमान में टँके हैं, कल क्या थे-

- ☐ अमिताभ बच्चन : *निजी कंपनी में मैनेजर*
- ☐ दिलीप कुमार : *फल विक्रेता*
- ☐ देव आनंद : *पोस्ट ऑफिस में कारकून*
- ☐ सत्यजीत राय : *प्रकाशन व्यवसाय में कला निदेशक*
- ☐ रजनीकांत : *बस कंडक्टर*
- ☐ राजकुमार : *पुलिस इंस्पेक्टर*
- ☐ सुनील दत्त : *रेडियो सीलोन पर उद्घोषक*
- ☐ स्मिता पाटिल : *बंबई दूरदर्शन पर समाचार वाचिका*
- ☐ अमोल पालेकर : *बैंक में बाबू*
- ☐ दीप्ति नवल : *उद्घोषिका आकाशवाणी*
- ☐ जीतेन्द्र : *डिलीवरी बॉय*
- ☐ सोहराब मोदी : *मोटर मैकेनिक*
- ☐ दारासिंह : *पहलवान*
- ☐ गुरुदत्त : *नर्तक*
- ☐ ऋषिकेश मुखर्जी : *अध्यापक*
- ☐ बी.आर. चोपड़ा : *पत्रकार*
- ☐ धर्मेन्द्र : *ट्यूबवेल कंपनी में कुआ खोदने वाले*
- ☐ कुंदनलाल सहगल : *टाइपरायटर कंपनी के सेल्समैन*
- ☐ अशोक कुमार : *प्रयोगशाला सहायक*
- ☐ जॉनी वॉकर : *इंदौर में बस कंडक्टर*
- ☐ आनंद बक्षी : *सेना में सिपाही*

जॉनी वॉकर

रजनीकांत

ये जिंदगी के मेले

आजादी के तत्काल बाद बनी फिल्मों में भी वही असफल प्रेम, विरह और विछोह में डूबी हुई कहानियाँ चलती रहीं। लेकिन उनका संगीत पक्ष प्रबल रहा। १९४८ में फिल्म मेला ने "रतन" जैसी धूम तो नहीं मचाई लेकिन उसके संगीत ने लोगों को दीवाना कर दिया। इस फिल्म के निर्देशक थे एस.यू. सन्नी। इसमें नरगिस और दिलीप कुमार की अपने जमाने की चर्चित जोड़ी थी। साथ ही इसमें जीवन और अमर का भी अच्छा योगदान था। "मेला" जब बंबई के थिएटरों में लगी, जहाँ केवल अँगरेजी फिल्में ही लगा करती थीं, तो सभी वर्गों की भीड़ उन थिएटरों पर उमड़ पड़ी। फिल्म के गीत देशभर में जादू की तरह फैल गए।

ये जिंदगी के मेले
दुनिया में कम न होंगे
अफसोस हम न होंगे।

शकील बदायूँनी का यह गीत रफी ने गाया और जन-जन का कंठ बन गया। विरह-वेदना से ओतप्रोत इस गीत से न जाने कितने लोगों की आँखें छलछला आईं। नौशाद तब जवान थे। उनकी नसों में उत्तरप्रदेश की सदाबहार लोक धुनें समाई हुई थीं जिनका भरपूर उपयोग उन्होंने रतन/ मेला और अनमोल घड़ी में किया।

'मेला' का एक और गीत इतना दर्द भरा साबित हुआ कि उसके बोल आज भी उस जमाने के शौकीन लोगों के लबों पर टिके हुए हैं। यह गीत है-

दिल का फसाना किसे सुनाएँ,
टूटा हुआ दिल किसे दिखाएँ।

इसमें आवाज का जादू शमशाद बेगम ने भरा है। शमशाद ने जो गला पाया, शायद वह नूरजहाँ और सुरैया के पास था लेकिन दोयम दर्जे पर। इस तरह "मेला" का शुमार अपने जमाने की श्रेष्ठ संगीत प्रधान फिल्मों में किया गया है।

◎ जयसिंह

शुरू हुआ।

उर्दू शायरी के बारे में कहा जाता है कि उसे सिखाने वाला कोई होना चाहिए। हालाँकि कविता या शायरी के लिए खुद का एहसास और प्रकृति जरूरी है यह खुद-ब-खुद होने वाली प्रक्रिया है जिसे गढ़ा नहीं जा सकता। फिर भी सुना है कि उर्दू शायरी मुक्त छंदों की तरह नहीं की जाती, किसी उस्ताद के बगैर शेर का ऊला-सानी गढ़ना नहीं आता यह बात कहाँ तक सही है?

अब छंदहीन कविता उर्दू में भी आ गई है वैसी ही जैसी हिंदी में है। लेकिन जहाँ छंद थे वहाँ हिंदी में भी गुरु का होना जरूरी था। हिंदी में गुरु-लघु के हिसाब से मिसरे तौल लिए जाते थे। उर्दू मुश्किल है और उस्ताद का होना जरूरी है उसके लिए। उर्दू में, अरबी, फारसी, हिंदी और सारी जुबानों की मिलावट है। वह यहीं की पैदाइश है।हिंदुस्तान की पैदाइश है या यहाँ के जो हिस्से कट गए वहाँ की भाषा है। इसमें अरबी और फारसी का जो हिस्सा है वो मुश्किल है वो 'ग्रामर' भी जरा मुश्किल है। उस ग्रामर की प्रेक्टिस के लिए उसका रियाज करने के लिए जरूरी था कि किसी उस्ताद को रख लिया जाए। यह नहीं कि मुमकिन नहीं है मगर किताबों से पढ़कर वह पूरा समझ में नहीं आता। मैं अपनी बात कहूँ मुझे आज तक वह प्रॉब्लम आती है। इसके बावजूद कि मैं उर्दू गढ़ा हूँ। तो आज भी गलतियाँ होती हैं जब भी नपे-तुले छंदों में लिखूँ। छंदहीन में तो यह है कि आजाद नज्में हैं उसमें आपकी अपनी विशेषता है कि आपने जो महसूस किया उसे कितनी खूबसूरती से कागज पर उतार सकते हैं। गुफ्तगू कितनी खूबसूरती से करते हैं, उसी में कविता हो जाती है। लेकिन बंधे हुए शेर में मैं आज भी कमजोरी महसूस करता हूँ। मैं अपनी नज्में कासमी साहब को भेज दिया करता हूँ। ताकि वो देख लें। (वे पाकिस्तान के बहुत बड़े शायर हैं)। उर्दू के जो प्रकाशक हैं वे ग्रामर को लेकर 'फसी' हैं। छंद में आप लिख रहे हैं तो वो ग्रामर की गलती बर्दाश्त नहीं करते। मैंने कहना था अगर आपने कह दिया तो वे कहेंगे ये कहाँ की जुबान है. आप मुझे कहना था कहिए जो शायद हिंदी वाला बर्दाश्त कर जाए।

अच्छा कवि और साहित्यकार यदि फिल्म मीडियम से जुड़ जाए, तो लोग उसे इतनी गंभीरता से नहीं लेते, एक ठप्पा-सा लगा देते हैं कि अरे ये तो फिल्म वाले हैं। उसके उम्दा लेखन को भी नजरअंदाज कर देते हैं। शुरू में पहले कभी आपके साथ ऐसी कोई स्थिति आई?

शुरू में क्या आज भी इस बात की मुझसे अच्छी मिसाल आपको और कहाँ मिलेगी? मेरी शायरी को गंभीरता से सिर्फ इसलिए नहीं लिया गया कि फिल्मी गीत-वीत लिखते हैं। फिल्मों में मीटरम बेरिएट करते हैं। तो उस्तादों को यह महसूस होता है कि यह क्या है? कुछ इस तरह का बर्ताव अवाम में भी है कि यह तो फिल्मों के लिए लिखते हैं। आलोचकों में, उस्तादों में अवाम में सभी में यह धारणा है कि वे फिल्मों से जुड़े होने के कारण आपके लेखन का वजन कम कर देते हैं। इसकी मिसाल दूँ आपको। साहिर साहब बहुत बड़े शायर थे। उनकी पहचान जब लोगों से पूछो तो वो उनके गाने कोट करते हैं, तो बड़ी तकलीफ होती है कि शायरी भी पढ़ ली होती। जबकि वे अपने दौर के बहुत बड़े शायर थे। शैलेंद्र को लें सिवाय फिल्मों के लोगों ने उनकी शायरी पढ़ी ही नहीं, उनकी किताबें भी हैं। फिल्मों की वजह से लोग उन्हें उसी दायरे में देखते हैं उससे बाहर नहीं। शैलेंद्र अच्छे कवि थे उनकी कविताएँ भी पढ़ी जाना चाहिए थीं। नीरजजी भी फिल्मों में आकर चले गए। और वो अच्छी कविता लेकर आए थे साथ में। फिल्मों में उनके जरिए कम से कम अच्छी तरह की कविता आई। मगर वो शायद इसी तरह के बर्ताव से परेशान हो गए। उन्हें लगा होगा कि अपना वजन यहाँ आकर क्यों कम करें, क्या जरूरत है?

आप कवि से निर्देशक किस तरह बन गए?

बस बन गया। फिल्मों में आने की बिल्कुल नीयत नहीं थी। एक गाने के लिए बुलाया विमल दा ने. वे बड़े पढ़े-लिखे और साहित्य से जुड़े व्यक्ति थे। पहला गाना लिखने के बाद ये महसूस हुआ कि फिल्मों में गाने नहीं लिखना। सिचुएशन कोई और है. कहानी कोई और लिख रहा है, धुन कोई और बना रहा है. डायरेक्ट कोई और कर रहा है मैं क्या करूँ? इस तरह की एक फीलिंग हुई। लेकिन यह जरूर महसूस हुआ कि फिल्म में अगर काम करना है, तो फिल्म का जो मीडियम है वह डायरेक्टर का मीडियम है। हालाँकि बाद में यही बात विमल दा ने भी समझाई मगर खयाल वहीं से आ गया था कि काम करना है तो निर्देशन में ही करना चाहिए।

आपकी फिल्मों में धड़ाकेदार डॉयलॉग्स नहीं होते। ऐसा लगता है कि मौन संवाद से ज्यादा सशक्त बन जाता है। कुल मिलाकर ये फिल्में पर्दे पर लिखी कविता की तरह महसूस होती हैं। यह आपने किस तरह किया? क्या बुनियादी तौर पर शायर होने से इसमें कोई सहायता मिली? या इसमें किसी अन्य निर्देशक के प्रभाव भी शामिल हैं?

डॉयलॉग्स के बारे में मेरी यह धारणा रही है कि जिस तरह हम आम जिंदगी में बात करते हैं उसी तरह के डॉयलॉग्स होना चाहिए। अच्छा डॉयलॉग वही है कि जब चरित्र आपस में बात कर रहे हों, तो वह सहज लगना चाहिए। आपको लगना चाहिए कि वे इस माहौल के किरदार हैं। इसे खामखा नाटकीय बनाना मुझे कृत्रिम लगता है। नाटकीयता लगती है। जहाँ संवादों को नाटकीय बनाना होता है वो पल हमारी जिंदगी में भी नाटकीय होते हैं। उतना-सा ड्रामा जरूरी है।

अधिकांश फिल्मों में अच्छे और बुरे किरदार अपने एक्स्ट्रीम पर होते हैं, मगर आपकी फिल्मों में अक्सर भले लोग ही होते हैं बस वो ऐसी स्वाभाविक मगर उलझनपूर्ण स्थितियों में घिर जाते हैं कि उनकी जिंदगी एक कहानी बन जाती है। 'इजाजत' जैसे प्रेम त्रिकोण में भी ईर्ष्या और नफरत की कड़वाहट नहीं है। यह फार्मूले से हटकर है तो क्या इस तरह ट्रेंड से हटकर जाने में आपको

फिल्म कल्चर

क्या थे, क्या हो गए...

जब किस्मत बदलती है, तो मिट्टी भी सोना हो जाती है। ईश्वर की यह अनोखी अदा है कि वह हर आदमी को एक न एक दिन छप्पर फाड़कर देता है। फिल्मी सितारे, जो आसमान में टँके हैं, कल क्या थे-

- ☐ अमिताभ बच्चन : *निजी कंपनी में मैनेजर*
- ☐ दिलीप कुमार : *फल विक्रेता*
- ☐ देव आनंद : *पोस्ट ऑफिस में कारकून*
- ☐ सत्यजीत राय : *प्रकाशन व्यवसाय में कला निदेशक*
- ☐ रजनीकांत : *बस कंडक्टर*
- ☐ राजकुमार : *पुलिस इंस्पेक्टर*
- ☐ सुनील दत्त : *रेडियो सीलोन पर उद्घोषक*
- ☐ स्मिता पाटिल : *बंबई दूरदर्शन पर समाचार वाचिका*
- ☐ अमोल पालेकर : *बैंक में बाबू*
- ☐ दीप्ति नवल : *उद्घोषिका आकाशवाणी*
- ☐ जीतेन्द्र : *डिलीवरी बॉय*
- ☐ सोहराब मोदी : *मोटर मैकेनिक*
- ☐ दारासिंह : *पहलवान*
- ☐ गुरुदत्त : *नर्तक*
- ☐ ऋषिकेश मुखर्जी : *अध्यापक*
- ☐ बी.आर. चोपड़ा : *पत्रकार*
- ☐ धर्मेन्द्र : *ट्यूबवेल कंपनी में कुआ खोदने वाले*
- ☐ कुंदनलाल सहगल : *टाइपरायटर कंपनी के सेल्समैन*
- ☐ अशोक कुमार : *प्रयोगशाला सहायक*
- ☐ जॉनी वॉकर : *इंदौर में बस कंडक्टर*
- ☐ आनंद बक्षी : *सेना में सिपाही*

जॉनी वॉकर

रजनीकांत

ये जिंदगी के मेले

आजादी के तत्काल बाद बनी फिल्मों में भी वही असफल प्रेम, विरह और विछोह में डूबी हुई कहानियाँ चलती रहीं। लेकिन उनका संगीत पक्ष प्रबल रहा। १९४८ में फिल्म मेला ने "रतन" जैसी धूम तो नहीं मचाई लेकिन उसके संगीत ने लोगों को दीवाना कर दिया। इस फिल्म के निर्देशक थे एस.यू. सन्नी। इसमें नरगिस और दिलीप कुमार की अपने जमाने की चर्चित जोड़ी थी। साथ ही इसमें जीवन और अमर का भी अच्छा योगदान था। "मेला" जब बंबई के थिएटरों में लगी, जहाँ केवल अँगरेजी फिल्में ही लगा करती थी, तो सभी वर्गों की भीड़ उन थिएटरों पर उमड़ पड़ी। फिल्म के गीत देशभर में जादू की तरह फैल गए।

ये जिंदगी के मेले
दुनिया में कम न होंगे
अफसोस हम न होंगे।

शकील बदायूँनी का यह गीत रफी ने गाया और जन-जन का कंठ बन गया। विरह-वेदना से ओतप्रोत इस गीत से न जाने कितने लोगों की आँखें छलछला आई। नौशाद तब जवान थे। उनकी नसों में उत्तरप्रदेश की सदाबहार लोक धुनें समाई हुई थीं जिनका भरपूर उपयोग उन्होंने रतन/ मेला और अनमोल घड़ी में किया।

'मेला' का एक और गीत इतना दर्द भरा साबित हुआ कि उसके बोल आज भी उस जमाने के शौकीन लोगों के लबों पर टिके हुए हैं। यह गीत है-

दिल का फसाना किसे सुनाएँ,
टूटा हुआ दिल किसे दिखाएँ।

इसमें आवाज का जादू शमशाद बेगम ने भरा है। शमशाद ने जो गला पाया, शायद वह नूरजहाँ और सुरैया के पास था लेकिन दोयम दर्जे पर। इस तरह "मेला" का शुमार अपने जमाने की श्रेष्ठ संगीत प्रधान फिल्मों में किया गया है।

© जयसिंह

शुरू हुआ।

उर्दू शायरी के बारे में कहा जाता है कि उसे सिखाने वाला कोई होना चाहिए। हालांकि कविता या शायरी के लिए खुद का एहसास और प्रकृति जरूरी है यह खुद-ब-खुद होने वाली प्रक्रिया है जिसे गढ़ा नहीं जा सकता। फिर भी सुना है कि उर्दू शायरी मुक्त छंदों की तरह नहीं की जाती, किसी उस्ताद के बगैर शेर का ऊला-सानी गढ़ना नहीं आता यह बात कहां तक सही है?

अब छंदहीन कविता उर्दू में भी आ गई है वैसी ही जैसी हिंदी में है। लेकिन जहाँ छंद थे वहाँ हिंदी में भी गुरु का होना जरूरी था। हिंदी में गुरु-लघु के हिसाब से मिसरे तौल लिए जाते थे। उर्दू मुश्किल है और उस्ताद का होना जरूरी है उसके लिए। उर्दू में, अरबी, फारसी, हिंदी और सारी जुबानों की मिलावट है। वह यहीं की पैदाइश है। हिंदुस्तान की पैदाइश है या यहाँ के जो हिस्से कट गए वहाँ की भाषा है। इसमें अरबी और फारसी का जो हिस्सा है वो मुश्किल है वो 'ग्रामर' भी जरा मुश्किल है। उस ग्रामर की प्रेक्टिस के लिए उसका रियाज करने के लिए जरूरी था कि किसी उस्ताद को रख लिया जाए। यह नहीं कि मुमकिन नहीं है मगर किताबों से पढ़कर वह पूरा समझ में नहीं आता। मैं अपनी बात कहूँ मुझे आज तक वह प्रॉब्लम आती है। इसके बावजूद कि मैं उर्दू गढ़ा हूँ। तो आज भी गलतियाँ होती हैं जब भी नपे-तुले छंदों में लिखूँ। छंदहीन में तो यह है कि आजाद नज्में हैं उसमें आपकी अपनी विशेषता है कि आपने जो महसूस किया उसे कितनी खूबसूरती से कागज पर उतार सकते हैं। गुफ्तगू कितनी खूबसूरती से करते हैं, उसी में कविता हो जाती है। लेकिन बंधे हुए शेर में मैं आज भी कमजोरी महसूस करता हूँ। मैं अपनी नज्में कासमी साहब को भेज दिया करता हूँ। ताकि वो देख लें। (वे पाकिस्तान के बहुत बड़े शायर हैं)। उर्दू के जो प्रकाशक हैं वे ग्रामर को लेकर 'फसी' है। छंद में आप लिख रहे हैं तो वो ग्रामर की गलती बर्दाश्त नहीं करते। मैंने कहना था अगर आपने कह दिया तो वे कहेंगे ये कहाँ की जुबान है. आप मुझे कहना था कहिए जो शायद हिंदी वाला बर्दाश्त कर जाए।

अच्छा कवि और साहित्यकार यदि फिल्म मीडियम से जुड़ जाए, तो लोग उसे इतनी गंभीरता से नहीं लेते, एक ठप्पा-सा लगा देते हैं कि अरे ये तो फिल्म वाले हैं। उसके उम्दा लेखन को भी नजरअंदाज कर देते हैं। शुरू में पहले कभी आपके साथ ऐसी कोई स्थिति आई?

शुरू में क्या आज भी इस बात की मुझसे अच्छी मिसाल आपको और कहाँ मिलेगी? मेरी शायरी को गंभीरता से सिर्फ इसलिए नहीं लिया गया कि फिल्मी गीत-वीत लिखते हैं। फिल्मों में मीटर्स बेरिएट करते हैं। तो उस्तादों को यह महसूस होता है कि यह क्या है? कुछ इस तरह का बर्ताव अवाम में भी है कि यह तो फिल्मों के लिए लिखते हैं। आलोचकों में, उस्तादो में अवाम में सभी में यह धारणा है कि वे फिल्मों से जुड़े होने के कारण आपके लेखन का वजन कम कर देते हैं। इसकी मिसाल दूँ आपको। साहिर साहब बहुत बड़े शायर थे। उनकी पहचान जब लोगों से पूछो तो वो उनके गाने कोट करते हैं, तो बड़ी तकलीफ होती है कि शायरी भी पढ़ ली होती। जबकि वे अपने दौर के बहुत बड़े शायर थे। शैलेंद्र को लें सिवाय फिल्मों के लोगों ने उनकी शायरी पढ़ी ही नहीं, उनकी किताबें भी हैं। फिल्मों की वजह से लोग उन्हें उसी दायरे में देखते हैं उससे बाहर नहीं। शैलेंद्र अच्छे कवि थे उनकी कविताएँ भी पढ़ी जाना चाहिए थीं। नीरजजी भी फिल्मों में आकर चले गए। और वो अच्छी कविता लेकर आए थे साथ में। फिल्मों में उनके जरिए कम से कम अच्छी तरह की कविता आई। मगर वो शायद इसी तरह के बर्ताव से परेशान हो गए। उन्हें लगा होगा कि अपना वजन यहाँ आकर क्यों कम करें, क्या जरूरत है?

आप कवि से निर्देशक किस तरह बन गए?

बस बन गया। फिल्मों में आने की बिल्कुल नीयत नहीं थी। एक गाने के लिए बुलाया विमल दा ने, वे बड़े पढ़े-लिखे और साहित्य से जुड़े व्यक्ति थे। पहला गाना लिखने के बाद ये महसूस हुआ कि फिल्मों में गाने नहीं लिखना। सिचुएशन कोई और है, कहानी कोई और लिख रहा है, धुन कोई और बना रहा है, डायरेक्ट कोई और कर रहा है मैं क्या करूँ? इस तरह की एक फीलिंग हुई। लेकिन यह जरूर महसूस हुआ कि फिल्म में अगर काम करना है, तो फिल्म का जो मीडियम है वह डायरेक्टर का मीडियम है। हालांकि बाद में यही बात विमल दा ने भी समझाई मगर खयाल वहीं से आ गया था कि काम करना है तो निर्देशन में ही करना चाहिए।

आपकी फिल्मों में धड़ाकेदार डॉयलॉग्स नहीं होते। ऐसा लगता है कि मौन संवाद से ज्यादा सशक्त बन जाता है। कुल मिलाकर ये फिल्में पर्दे पर लिखी कविता की तरह महसूस होती हैं। यह आपने किस तरह किया? क्या बुनियादी तौर पर शायर होने से इसमें कोई सहायता मिली? या इसमें किसी अन्य निर्देशक के प्रभाव भी शामिल हैं?

डॉयलॉग्स के बारे में मेरी यह धारणा रही है कि जिस तरह हम आम जिंदगी में बात करते हैं उसी तरह के डॉयलॉग्स होना चाहिए। अच्छा डॉयलॉग वही है कि जब चरित्र आपस में बात कर रहे हों, तो वह सहज लगना चाहिए। आपको लगना चाहिए कि वे इस माहौल के किरदार हैं। इसे खामखा नाटकीय बनाना मुझे कृत्रिम लगता है। नाटकीयता लगती है। जहाँ संवादों को नाटकीय बनाना होता है वो पल हमारी जिंदगी में भी नाटकीय होते हैं। उतना-सा ड्रामा जरूरी है।

अधिकांश फिल्मों में अच्छे और बुरे किरदार अपने एक्स्ट्रीम पर होते हैं, मगर आपकी फिल्मों में अक्सर भले लोग ही होते हैं बस वो ऐसी स्वाभाविक मगर उलझनपूर्ण स्थितियों में घिर जाते हैं कि उनकी जिंदगी एक कहानी बन जाती है। 'इजाजत' जैसे प्रेम त्रिकोण में भी ईर्ष्या और नफरत की कड़वाहट नहीं है। यह फार्मूले से हटकर है तो क्या इस तरह ट्रेंड से हटकर जाने में आपको

□ **भारत** की पहली कथा फिल्म है 'राजा हरिश्चंद्र' (१९१३)। इसमें तारामती की भूमिका एक होटल के नौकर ए. सालुंके ने निभाई थी। आगे चलकर सालुंके ने फिल्म **लंकादहन** में राम और सीता दोनों की भूमिकाएँ कर डबल-रोल की परंपरा की नींव रखी।

□ **लड़कियों** के भाल पर कंघी के समान बालों की स्टाइल का शुभारंभ फिल्म 'लव-इन-शिमला' से हुआ। आगे चलकर यह **साधना-कट बाल** कहलाए।

□ **राजेश खन्ना** को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने **गुरु-कुर्ता** लोकप्रिय बनाया। कटी पतंग/ आराधना/ अमरप्रेम/ सच्चा-झूठा फिल्म में गुरुकुर्ता गजब ढा गया। राजेश का नाम लड़कियों ने अपनी कलाई पर गुदवा लिया था।

अजब ग़ज़ब

□ **नलिनी जयवंत** को पहली बार बिकनी पहनाई गई फिल्म 'संग्राम' में। तैराकी पोशाक के उनके शॉट्स काफी चर्चित हुए। ऐसे ही दृश्यों को आगे चलकर **शर्मिला ठाकुर** ने ग्लेमरस बनाया फिल्म 'काश्मीर की कली' में।

□ **अमिताभ बच्चन** लोकसभा का चुनाव लड़ने जब इलाहाबाद गए, तो उनकी अगवानी पर लड़कियों के सड़कों पर अपने दुपट्टे बिछा दिए थे।

□ **बंबई** में १९१८ में फ्लू की बीमारी फैली, तो सिनेमाघरों पर दर्शक-संख्या घट गई। रॉयल आपेरावालों ने दर्शकों को घर से लाने और छोड़ने के लिए विक्टोरिया (घोड़ा गाड़ी) की व्यवस्था की। साथ ही टिकट खरीदने वाले दर्शक को सिनेमा हॉल में प्रवेश के समय गेट पर फ्लू का मिक्चर पिला दिया जाता था।

राजेंद्र कुमार और बर्ट्रेण्ड रसेल

फिल्म कल्चर

सालुंके
टू इन वन

□ **फिल्मों** में कव्वाली की शुरूआत फिल्म **जीनत** (१९४५) से हुई। पहली कव्वाली थी- आहें न भरी शिकवे न किए।

□ **शांति निकेतन** की सहायतार्थ न्यू थिएटर्स ने **नटी-पूजा** नामक फिल्म बनाई थी। इस फिल्म की शूटिंग के समय **गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर** स्वयं उपस्थित रहते थे।

□ **पंडित जवाहरलाल नेहरू** को सिनेमा से गहरा लगाव था। सोवियत संघ में सिनेमा का समाज रचना में उपयोग वे देख चुके थे। बॉम्बे टॉकीज की **अछूत कन्या** (१९३६) देखकर उन्होंने देविका रानी को प्रशंसा पत्र लिखा। एम.एस. सुब्बा लक्ष्मी की फिल्म **मीरा** के प्रीमियर शो में पंडितजी उपस्थित थे। सोहराब मोदी की फिल्म 'झाँसी की रानी' का प्रथम प्रदर्शन नेहरूजी ने ही उद्घाटित किया था। अब्बास की फिल्म **मुन्ना** देखकर नेहरूजी इतने प्रभावित हुए कि दूसरे दिन नाश्ते पर फिल्म के कलाकारों को आमंत्रित किया।

□ **दार्शनिक और लेखक बर्ट्रेण्ड रसैल** भी एक हिन्दी फिल्म में उपस्थित हुए हैं। मोहन कुमार की फिल्म **अमन** में रसैल और राजेन्द्र कुमार की बातचीत है। टिकट खिड़की पर यह फिल्म फ्लॉप रही।

□ **सआदत हसन मण्टो** बाम्बे टॉकीज में पब्लिक रिलेशन ऑफिसर थे। वहाँ की फिल्मों के संवाद/पटकथा भी लिखते थे। मृणाल सेन की ताजी फिल्म **अंतरीन** (१९९३) मण्टो की कथा पर आधारित है।

□ **अख्तरी फैजाबादी** याने बेगम अख्तर ने तीस और चालीस के दशक में कई फिल्मों में काम किया है। मेहबूब की **रोटी** उनकी प्रसिद्ध फिल्म है। सत्यजीत राय की फिल्म **जलसाघर** में भी संक्षिप्त रोल किया था।

● **श्रद्धा बोस**

कोई परेशानी हुई?

नहीं ट्रेंड से अलग नहीं... आप यूँ कहिए कि जिंदगी के करीब आने में। जिंदगी में वैसा ही होता है। कोई शख्स पूरा काला नहीं है, कोई शख्स पूरा सफेद नहीं है। संतों और ऋषि-मुनियों पर जाइए, तो बात और है। जो जीते- जागते इंसान हैं उनकी कमजोरियाँ भी हैं, रिस्पांस भी हैं। कोई भी पूरा बुरा नहीं होता। जो फिल्में इस तरह से चित्रण करती हैं यह सोचने की बात है कि वे फिल्में जिंदगी के कितने करीब हैं।

अपनी कौनसी फिल्म आपको दिल के सबसे करीब लगती है?

एक नहीं है। किसी नजरिए से कोई अच्छी लगती है। _ मूड मे मुझे 'इजाजत' बहुत अच्छी लगती है। माहौल से मुझे 'नमकीन' अच्छी लगती है। फिल्म 'किताब' बड़ी फेवरेट है।

गाने फिल्माना आपको कैसा लगता है?

बहुत अच्छा लगता है। लोग कतरा के गुजरते हैं और मैं उसमें शामिल होकर गुजरता हूँ कि यहाँ गाना क्यों न डाला जाए। लोगों को शायद गाना कृत्रिम लगता है लेकिन मुझे अच्छा लगता है। इसलिए गाने से बचने के बजाए मैं उसे शामिल करता हूँ, कोशिश करता हूँ कि कहीं से गाना और डाला जाए। संगीत हमारी संस्कृति का हिस्सा है। दूधवाला सुबह निकलता है, तो वह गाते हुए जाता है। कहाँ कृत्रिम है? गाडीवान जाता है, तो गाते हुए गुजरता है। एक बूढ़े आदमी की लाश लेकर जाते हैं तब भी मंडली भजन करते हुए जाती है। सुबह उठकर माँ दूध बिलो रही हो, तो उसके भजन की आवाज आने लगती है। लाठी लिए चरवाहा आता है तो वह गाता हुआ आता है। यही भारतीय चरित्र और पारंपरिकता है।

फिल्में भी लिटरेचर का पार्ट हैं, मगर आज फिल्में अपने इस रूप में खत्म हो रही हैं...

- आज समाज में कई चीजें इस तरह खत्म हो रही हैं। आपके चारों तरफ देखिए जो हो रहा है। पूरे समाज में गिरावट आ रही है। संगीत में भी वही हो रहा है। अभिनय में वही हो रहा है। साहित्य में वही हो रहा है। सभी में यह हो रहा। आज कोई राष्ट्रीय नायक भी नहीं है। हमने इस बात पर ध्यान भी नहीं दिया स्कूलों में कि अपने प्रिय नायक पर एक निबंध लिखिए और हम नेहरू या आजाद या किसी और पर लिखा करते थे। यह सब कब किताबों से और प्रश्नावलियों से निकल गया पता ही नहीं चला। इस बारे में कभी किसी ने मुड़कर भी नहीं देखा। किसी ने ध्यान भी नहीं दिया कि कब यह चीज हमारे मूल्यों से निकल गई।

नई पीढ़ी को संस्कार और नैतिक मूल्य देने का काम बाल साहित्य से शुरू किया जाए तो कैसा रहे?

इसके लिए सबसे पहली बात तो यह है कि लेखक किताबी जुबान न इस्तेमाल करें। नई पीढ़ी जो वेल्यू को छोड़ती जा रही है और नए किस्म के साहित्य को पढ़ना नहीं चाहती उसकी वजह यह जबान है जो उन तक नहीं पहुँचती। जो वे बोलते हैं वह और है जो पढ़ते हैं वह उन्हें टेक्स्ट-बुक लगती है। वह उन्हें थोपी हुई लगती है। अँग्रेजी पढ़ने वाले को शेक्सपीयर दे दीजिए, चार्ल्सलैम दे दीजिए वो एवॉयड करते हैं। क्योंकि जबान अपने आप में ग्रो होने वाली चीज है जो बदलती है। और वह पीछे की तरफ नहीं जाती उसे हमेशा आगे की तरफ जाना होता है। मेरा ख्याल है वो जबान उस पीढ़ी को दी जाए जो वह पढ़ सके। बच्चों को आप उनकी जबान में कविता दीजिए, उनकी जबान में कहानी दीजिए। बच्चे सुनेंगे भी, पढ़ेंगे भी। यह हम एक बहुत बड़ी गलती करते हैं जो बच्चों का साहित्य पैदा करते हैं। उन्हें जबान सिखाने की कोशिश करते हैं। जबान यूँ डिक्शनरी लेकर नहीं सिखाई जाती। ■

अँखियाँ मिला के चले नहीं जाना

दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के दौर में आशंकाओं और कुंठाओं से ग्रस्त जनता की सही नब्ज निर्माता- निर्देशकों ने पहचानी और हल्की-फुल्की असफल प्रेम कहानियों के साथ लाजवाब संगीत रचना के साथ फिल्में परोसी गई। इनमें से १९४४ में प्रदर्शित फिल्म **"रतन"** ने चमत्कार कर दिया। यह फिल्म जैमिनी दीवान ने बनाई थी। फिल्म के नायक थे करण दीवान और नायिका थी स्वर्णलता। फिल्म के संगीत निर्देशक थे नौशाद। उन्होंने उत्तरप्रदेश के लोक गीतों की धुनों पर कर्णप्रिय संगीत तैयार किया था। रतन की धुनों ने सारे हिंदुस्तान में धूम मचा दी थी।

** अँखियाँ मिला के*
जिया भरमा के चले नहीं जाना।
** सावन के बादलों*
उनसे ये जा कहो
** जब तुम ही चले परदेस।*

ये गीत काश्मीर से कन्याकुमारी तक दिलों की धड़कन बन गए। यह फिल्म देखने के बाद करीब २०० **लड़कियाँ** घरों से भागकर बंबई पहुँच गई, ताकि एक्ट्रेस बन सकें। कई लोग महीनों तक लगातार "रतन" को देखते रहे। इस फिल्म के निर्देशक थे एम. सादिक। यह फिल्म केवल ७५ हजार रु. में बन गई थी, लेकिन इसने टिकट खिड़की पर एक करोड़ और गीतों के रेकॉर्ड बेचकर एक करोड़ कमाए। संगीतकार नौशाद आज भी याद दिलाते हैं कि उन्हें "रतन" का कुल पारिश्रमिक ५ हजार मिला था, जो बढ़ाकर बाद में आठ हजार रुपए किया गया। जहाँ संगीत प्रधान फिल्मों की चर्चा होती है, वहाँ रतन का नाम अवश्य लिया जाता है। इस फिल्म के ज्यादातर गाने जौहराबाई अंबाला वाली ने गाए थे। भारत की सात सुपरहिट फिल्मों के बाद आठवाँ क्रम रतन का है।

● जयसिंह

फिल्म रतन : स्वर्णलता और करण दीवान

अनुभूतियों का
एक पूरा संसार
उंगलियों से गढ़ा जाता
रंगों से बुना जाता
आँखों से आत्मा तक
एक झंकार-सा बजता
मध्यप्रदेश का हस्तशिल्प
म.प्र. माध्यम/ज.स.स./93

हर फिल्म में चेहरा बदलने वाले। हर बार नए संवाद दोहराने वाले। हर बार नए किरदार में प्रवेश करने वाले फिल्मी सितारे अक्सर तनाव में रहते हैं। कभी-कभी तनाव से टूटकर वे बिखर जाते हैं या फिर ऐसा कुछ करने लगते हैं, जिससे तनावरहित हो सकें।

तनाव से चटख जाते हैं सितारे!

● भावना सोमैया

यदि आप रोज मरने के लिए तैयार हैं, तब स्टार बनिए- नसीरुद्दीन शाह। आपको रोज अपने पंजों को पैना करते रहना होगा- अमृता सिंह। 'फिल्मी दुनिया में जंगल का कानून चलता है'- डिम्पल कापड़िया। 'यदि शारीरिक रूप से चुस्त और मानसिक तौर पर चौकस नहीं हैं, तब दबावों और तनावों के इस माहौल में हस्ती बनाए रखना मुमकिन नहीं है- शबाना आजमी।

असुरक्षा किसी भी रचनात्मक व्यवसाय का व्यापक प्रभावशाली भावना पक्ष है। यह एक ऐसा उद्योग है जहाँ प्यार की कसौटी हैसियत होती है। सफलता ठोकरें खाने के बाद मिलती है। यह ऐसी बेदर्द दुनिया है जहाँ बॉक्स ऑफिस ही एकमात्र वफा है और अवसरवादिता ही शाश्वत सत्य। यहाँ गुण और इच्छाशक्ति की पूछ-परख नहीं है। हर मोड़ पर व्यक्ति समझौते को विवश है। यहाँ ताकतवर ही अस्तित्व बनाए रख सकता है। धूल चाटने वाले अचानक आसमान की ऊँचाइयों तक पहुँच जाते हैं और आकाश छूने वाले धूल चाटने लगते हैं। बाहरी चमक-दमक और दिखावे की दुनिया बनाने वालों के दिल दबावों से टूट जाते हैं। जब व्यक्ति टिकट खरीद कर थिएटर में बैठकर रोजमर्रा के तनावों से मुक्ति प्राप्त करता है तब उसे पता नहीं रहता कि परदे पर उसका मनोरंजन करने वाले खुद कितने तनावों को झेल रहे हैं।

दिव्याभारती ने मृत्यु में मुक्ति को तलाशा। शशिकला ने आध्यात्मिकता में। मीनाकुमारी ने मदिरा में। परवीन बॉबी ने गुमनामी में। सुरैया ने एकांत में। नादिरा ने विक्षिप्तता में। जया प्रदा ने डिप्रेशन में। डिम्पल कापड़िया ने वापसी में। आशा पारेख ने दान-धर्म में। रवीना टंडन ने कामकाज में।

किसी न किसी बिंदु पर लगभग सभी अभिनेत्रियाँ विवाह से परे रिश्तों में उलझी हैं। विवाहित पुरुषों से संबंध रखने वाली अभिनेत्रियों की मानसिक पीड़ा। प्रेमियों की पत्नियों के दबाव। टूटते-जुड़ते रिश्ते। अपराध बोध।

प्रीति गांगुली और रीना रॉय रजनीश की अनुयायी रहीं। परवीन ने यू.जी. कृष्णमूर्ति को गुरु बनाया। स्मिता विवाहित व्यक्ति की ओर झुकी। रीना रॉय ने गृहस्थी में आश्रय तलाशा।

सितारों का सदा तनाव में बने रहने का कारण यह है कि इनके निजी, भावुक, आत्मीय क्षण भी प्रचार का साधन बन जाते हैं। चाहे वे क्षण हर्ष के हों या विषाद के। उनको खबरों में बदलते देर नहीं लगती। शबाना आजमी ने शिकायत के लहजे में एक बार कहा था, जब सब कुछ ठीक-ठाक दुरुस्त और बढ़िया चल रहा हो, तब भी 'प्रेस' इसे बर्बाद करने का तरीका खोज ही लेता है। प्रतिशोध की मुद्रा बनाते हुए पत्रकार गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं। तनाव फिर शुरू हो जाता है। रेखा कहती है तनाव उस वफादार दोस्त की तरह है, जो जिंदगी के हर बिंदु पर साथ रहना चाहता है। तनाव झेलते-झेलते सितारे इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि बिना तनाव उन्हें खाली-खाली लगता है। डिम्पल कहती है- जब फिक्र करने की कोई वजह नहीं होती, तब मैं खुद से पूछने लगती हूँ कि ऐसा क्यों है?

डिम्पल दो बच्चों की माँ भी है। वह कहती है, 'पत्रिकाएँ मेरे बच्चों को स्केंडल में घसीटती है जबकि उनकी उम्र पढ़ाई करने की

जूही

- ☐ तनाव होने पर रेखा जॉगिंग करने लगती है।
- ☐ माधुरी दीक्षित अपने को बाथरूम में बंद कर लेती है।
- ☐ हेमा मालिनी अपने बच्चों की वीडियो फिल्म उतारने लगती है।
- ☐ श्रीदेवी दवाएँ खाने लगती है।
- ☐ पूजा भट्ट डिस्कोथेक चली जाती है।
- ☐ शबाना गाना गाने लगती है।
- ☐ मीनाक्षी शेषाद्रि टहलने लगती है।

है। मुझे केंद्र बनाकर स्कैंडलबाजी की जाए तब मुझे ऐतराज नहीं। जब शिकार मेरे बच्चों को बनाया जाता है, तब मैं होश खो बैठती हूँ।'

कुछ वर्ष पहले शर्मिला ठाकुर को चौबीस घंटे लगातार काम करना पड़ा था। उसके पास एक साथ पंद्रह फिल्में थीं। काम से लौटने के बाद शाम के वक्त वह थकावट के मारे चिड़चिड़ी हो जाती थी। हमेशा भद्र रहने वाली यह महिला इतनी रूखी और चिड़चिड़ी हो गई कि इस दौरान उसके कई लोगों से संबंध बिगड़ गए। उन दिनों की घटनाओं के लिए पश्चाताप व्यक्त करते हुए वह कहती है, 'मेरे पास काम का बोझ बहुत ज्यादा था। मैं लोगों से अपेक्षा करती थी कि वे मेरी दिक्कतों को समझें। मैंने अपने शरीर से मशीन की तरह काम लिया और यह भूल गई कि इसके बुरे नतीजे बाद में मुझे ही भुगतने पड़ेंगे।' काम के बोझ से दबी जूही चावला के साथ भी ऐसा ही दौर गुजरा है।

दुख की बात तो यह है कि ज्यादातर दबाव परिवार से आते हैं। कई मामलों में देखा गया है कि ज्यादातर नायिकाएँ परिवार की एकमात्र कमाऊ सदस्य होती हैं। उन पर ढेरों रिश्तेदार आश्रित रहते हैं। अपनी सारी जिंदगी कैमरे के सामने बिताने वाली अरुणा ईरानी खुद को अमीर नहीं कह सकती। वह

श्रीदेवी

डिम्पल
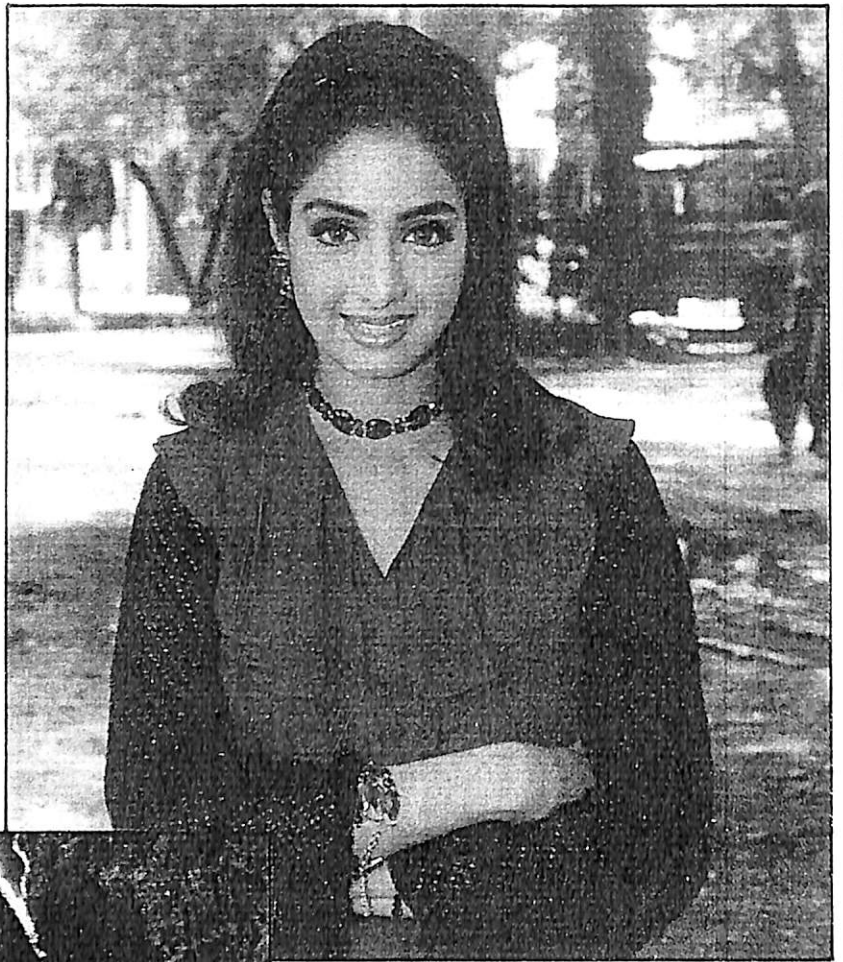
कहती है, 'जब मैं सी ग्रेड फिल्मों में काम कर रही थी तब भाई-बहन छोटे थे। परिवार पर कर्ज का बोझ था। जब मुझे अच्छा पैसा मिलने लगा तब हमारी जरूरतें और जिम्मेदारियाँ बढ़ गईं।' मधुबाला/ नंदा/ वहीदा रहमान/ बिंदु/ रेखा सभी त्याग के ऐसे ही उदाहरण हैं। बेचारी मीनाकुमारी को तो ग्यारह वर्ष की आयु में ही आर्थिक जरूरतों के कारण अभिनय के लिए विवश किया गया था। भावनात्मक रूप से हमेशा तरसने वाली इस महिला को अपनी मौत तक डिप्रेशन का शिकार रहना पड़ा। उसने कई रिश्ते जोड़े मगर उसे दर्द और असुरक्षा के सिवाय कुछ न मिला। नादिरा अगर फिल्मों में नहीं आती तो शायद बेहतर जिंदगी जी लेती।

सारिका जब पाँच साल की थी तब अभिनय के क्षेत्र में आई। उसे वे दिन याद हैं जब निर्माता द्वारा टैक्सी के लिए दिए गए पैसे माँ किराना खरीदने में खर्च करती थी और वह स्टेशन तक पैदल जाकर लोकल ट्रेन से सफर करती थी। आर्थिक दबावों का यह क्रम वर्षों तक चलता रहा।

जब वहीदा रहमान से पहली बार कहा गया कि वह माँ की भूमिका करे, तब उसका दिल टूट गया। उसने अपनी भावनाओं को छिपा कर रखा।

अभिनय एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें बदन की सुडौलता बहुत महत्व रखती है। यदि नाक-नक्शे और सुडौल बदन न हो तब हीनता पनपने लगती है। बहुत दुबली अभिनेत्री प्रभावहीन लगती है तथा औसत शक्ल-सूरत की अभिनेत्री खुद को बदसूरत समझने लगती है। जब पद्मिनी कोल्हापुरे किशोर वय में थी तब मुँहासों के कारण उसे निर्देशकों की लताड़ सुननी पड़ती थी। जया भादुड़ी को अपने छोटे कद के कारण शर्म झेलनी पड़ी। पूजा भट्ट को ज्यादा मांसल होने का दुख रहा। मीनाक्षी शेषाद्रि अपनी त्वचा की गुणवत्ता को लेकर चिंतित रही। एक-दूसरे से ईर्ष्या और स्पर्धा की प्रवृत्ति भी सामान्य है। रवीना, पूजा भट्ट से घबराती है। पूजा भट्ट को जूही चावला का डर है। जूही की स्पर्धा माधुरी दीक्षित से है। माधुरी दीक्षित, श्रीदेवी से स्पर्धा रखती है। यह सूची असमाप्त है। तथाकथित मर्दाने सितारे भी खुद को असुरक्षित महसूस करते हैं। उनकी जय-पराजय निजी नहीं होती। बाजार में दूसरी वस्तुओं की तरह उनकी भी कीमत है जो सफलता और असफलता के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। उनकी खुशियाँ बॉक्स ऑफिस की खिड़की पर टिकी रहती हैं।

शबाना की तरह जो लोग इस दुष्चक्र का विश्लेषण कर लेते हैं वे औरों की अपेक्षा जल्दी बाहर निकल आते हैं। शबाना कहती है, 'लोग हमेशा फिल्म के सफल या असफल

होने को लेकर आशंकित रहते हैं मगर जब सभी मेरी तरह असुरक्षित हैं तब मैं फिक्र क्यों करूँ।'

रेखा और पूजा भट्ट भी समझ गई कि विवादों से बचने का एकमात्र तरीका उनकी परवाह नहीं करना है। मगर सब लोग ऐसा नहीं कर सकते। भावना के आवेग को रोकना मुश्किल हो जाता है। कभी-कभी डिनर पार्टियों या शूटिंग के वक्त वे आवेश में आ जाते हैं। सितारों का व्यवसाय ही ऐसा है कि उन्हें अलग-अलग स्टुडियो में रहना पड़ता है तथा बार-बार नए-नए पात्रों को जीवंत करना होता है। नाम और पोशाकें भी बदलना होती हैं। कैमरे के सामने वे आवेश और भावनाओं को नए-नए तरीकों से दोहराते बोर हो जाते हैं। निजी जिंदगी में जब वास्तविक भावनाएँ प्रकट करते हैं तब लगता है कि कोई फिल्म का सीन कर रहे हों। कभी-कभी उनके वास्तविक जीवन की दमित भावनाएँ किसी फिल्म के भावुक दृश्य में जीवंत हो उठती हैं। ऐसा शायद मनोवैज्ञानिक कारणों से होता है।

संवाद याद न कर पाना अभिनेताओं के तनाव का खास कारण है। महेश भट्ट कहते हैं, 'दिक्कत यह है कि अभिनेता अपनी जिंदगी के आखरी दिन तक विद्यार्थी बना रहता है। उसे हर दिन दृश्य, संवाद और नृत्य की स्टेप्स याद करनी पड़ती है। अगर वे ऐसा नहीं कर पाते तो सारे यूनिट की मौजूदगी में शर्म महसूस करते हैं।' एक अन्य सामान्य तनाव डिप्रेशन से जुड़ा है जो शॉट के बिगड़ने से होता है।

श्रीदेवी और शबाना खराब शॉट देने पर फिल्म लेबोरेटरी में जाकर रील जला देती थीं। डिम्पल कापड़िया ऐसा होने पर अपनी चप्पल से कुर्सियों पर अपना प्रहार करना शुरू करती थी। डिप्रेशन की यह भावना हर उस सितारे में आ जाती है जो प्रसिद्ध हो जाता है और अपने व्यवसाय को निजी जिंदगी से अलग नहीं कर पाता।

हॉलीवुड में सितारों की ऐसी सैकड़ों कहानियाँ मौजूद हैं जो तनाव से टूट गए। ड्रग्स, बूज और सेक्स के चक्कर में पड़े और खुशियाँ खो बैठे। कुछ ऐसे बहादुर योद्धा भी हैं जो तनाव से लड़े। ऐसे बहादुर हमारे यहाँ भी हैं जिन्होंने तनाव की लगाम अपने हाथ में रखी। रेखा जो कुछ वर्ष पहले तक बार-बार उग्र और डिप्रेस हो जाती थी अब निराशा के क्षणों में रचनात्मक कार्य करने लगती है। तनाव के क्षणों में माधुरी दीक्षित, खुद को बाथरूम में बंद कर लेती है। हेमामालिनी अपने बच्चों की वीडियो फिल्म उतारने लगती है। श्रीदेवी दवाएँ खाने लगती है। पूजा भट्ट डिस्कोथेक जाती है। सारिका बंबई ट्रंक काल लगाती है। शबाना गाना शुरू कर देती है। पूनम डायरी लिखने में व्यस्त हो जाती है। मीनाक्षी शेषाद्रि टहलने चली जाती है। इस तरह तनाव से मुक्ति पा लेती है।

भावना सोमैया, अँगरेजी पत्रिका* **जी *की संपादिका है।*

● **यशवंत व्यास**

दादा साहब फालके और सालुंके, दोनों बैठे हैं। सिचुएशन यह है कि सालुंके, हिन्दी रजतपट की प्रथम नायिका, उदास है और दादा साहब सोच रहे हैं कि इस उदासी को छाँटने के लिए क्या किया जाए? दोनों फ्रेम-दर-फ्रेम उदास होते जाते हैं। इतने में धड़धड़ाते हुए ममता कुलकर्णी, करिश्मा कपूर और पूजा (बेदी. या भट्ट या दोनों का मिश्रण) प्रवेश करती हैं। सालुंके हतप्रभ हैं, दादा साहब सिचुएशन को हेन्डल करना चाहते हैं, लेकिन ममता बेयरे को बुलाकर चीखती है- यहाँ ये कौन लोग बैठे हैं? मालूम नहीं, यह हमारे लिए रिजर्व है। बेयरा, 'राजा हरिश्चंद्र' काल का था इसलिए दादा साहब और सालुंके का परिचय पेश करने लगा। करिश्मा ने आर.के. परंपरा का ख्याल करके बुजुर्गों को सम्मान देने की पेशकश की। पूजा ने इसे नए प्रयोग की तरह लिया। इस तरह तीनों नायिकाएँ व एक पितृ-पुरुष... और एक पुरुष- नायिका एक मेज पर आ गए। ममता सिगरेट निकालती है। पूजा उसे लाइटर दिखाती है। करिश्मा सवाल करती है- आपकी प्रॉब्लम क्या है?

सालुंके शरमा जाते हैं, "दादा साहब फिल्म बनाने की सोच रहे हैं। यह एक प्रयोगवादी किस्म की फिल्म होगी। फाइनेन्सर तो मिला है लेकिन उसका कहना है कि एक बाथरूम सीक्वेन्स डाली जाए, जो बेडरूम में जाकर खत्म होती हो।'

क ट!

आगे की कल्पना आप कर सकते हैं कि ममता के सुझाव, करिश्मा के आश्वासन या पूजा के प्रयोग दादा साहब और सालुंके के कितने काम आए होंगे। अलबत्ता दादा साहब ने सालुंके के साथ यह नवप्रयोग करने की गलती नहीं की होगी, यह सात्विक कल्पना करके आप फाइनेन्सर के चरण-स्पर्श जरूर कर सकते हैं।

मैं फिल्मी साहित्य को पढ़ने का पाप करीब दो दशकों से कर रहा हूँ और यह दावा करने की स्थिति में हूँ कि हिन्दी फिल्मों में सिचुएशन का जितना महत्व है, उतना किसी धंधे में किसी तत्व का नहीं रहा होगा। लगभग हर नई हीरोइन, सिचुएशन के मुताबिक टूथब्रश करती है, अगर चोटियाँ हों तो हिलाती है और न हों तो भी इठलाती है, नाचती है, गाती है, रोती है और जब सफल हो जाती है तो अपनी माँग में सिचुएशन भरती हुई निर्देशक और स्क्रिप्ट राइटर की छाती पर सवार हो जाती है। तब निर्देशक पूछता है, 'मैडम, वो डांस सीन दे दीजिए, जो आपने 'दिल टूटे' में किया था।' वह गुर्राती है, 'सिचुएशन की माँग क्या है, देखना पड़ेगी।' फिर प्रोड्यूसर पैसे गिनता है। सिचुएशन क्रिएट हो जाती है। एक और डांस शूट हो जाता है।

एक प्रख्यात साहित्यकार हिन्दी फिल्मों को सुधारने के लिए बंबई गए। वे कहते थे कि उनके जीवन के यथार्थ से जुड़ी कहानियों की संवेदनशीलता से निर्माता रो पड़ेंगे। दर्शक टूट पड़ेंगे और नायिकाएँ देवी की तरह पूजी जाने लगेंगी। उन्होंने दो फिल्में लिखीं, तीसरी तक आते-आते वे सिचुएशन की माँग के आगे सिन्दूर हो गए। अब भी वे प्रख्यात हैं। उन्हें फिल्में तो कभी-कभार मिल ही जाती हैं, लेकिन चूँकि सरकारें भी फिल्मी अंदाज में

फिल्म पत्रकारिता कीचड़ में कमल

● मनमोहन सरल

यह मात्र संयोग नहीं कि जितनी किस्म की हिंदी फिल्में हैं, उतने ही वर्ग फिल्मी पत्रकारिता के हैं। इसके पीछे सामाजिक और बहुत हद तक आर्थिक कारण हैं। फिल्में व्यावसायिक और गैर- व्यावसायिक होती हैं। कलात्मक और कई बार अ-कलात्मक (फूहड़) होती हैं। मनोरंजन प्रमुख और गंभीर होती हैं, उसी तरह फिल्म पत्रकारिता भी इन दो वर्गों में है।

ज्यादातर फिल्मी पत्रिकाएँ- हिंदी की ही नहीं, विशिष्ट वर्ग की भाषा अँगरेजी में भी- सस्ती और मनोरंजन प्रधान होती हैं। गंभीर पत्रिकाएँ तो इनी-गिनी हैं। और जाहिर है, उनके पाठक भी इने-गिने हैं। जबकि दूसरे किस्म की पत्रिकाएँ लाखों में बिकती हैं, न भी बिकें तो पढ़ने वाले तो इन पत्रिकाओं के लाखों में होते हैं। पान वाले और नाई की दुकानों में ये पत्रिकाएँ ही मिलेंगी। गंभीर फिल्म पत्रिका वहाँ कौन रखेगा, जिस पर मक्खी भी बैठने से इंकार कर दे।

हिंसा और सेक्स फिल्मों के जरूरी हिस्से हैं, वही इन पत्रिकाओं के भी। नंगी-अधनंगी तस्वीरें पाठक को उत्तेजित करने के लिए मिलेंगी। रंगीन ग्लॉसी पत्रिकाओं में तो अभिनेता और अभिनेत्रियों के सम्मिलित फोटो फीचर ऐसी मुद्राओं में भी होते हैं, जो रति क्रीड़ा से बस इंच भर कम ही कहे जाएँगे। अब भला, पाठक इन सबको देखेगा या गोदार, ब्रेसां या अपने हिंदुस्तान के गौतम घोष/बासु भट्टाचार्य/ मणि कौल की फिल्मों के दृश्य देखेगा। सच तो यह है कि इन नामों को जानने वाले भी कितने हैं। गोदार-ब्रेसां, फेलिनी, कुरोसावा वगैरह तो यों भी विदेशी हैं और हॉलीवुड के सस्ते सिनेमा के निर्देशक भी नहीं हैं। इसलिए उच्च भ्रू अँगरेजीदाँ भी इन नामों के बारे में ज्यादा नहीं जानते, फिर हिंदी के पाठक बेचारे क्या जानेंगे? वह तो भला हो पश्चिम का कि यहाँ अपने इंडिया के सत्यजीत राय और मृणाल सेन को लोग जानने लगे। न 'पथेर पांचाली' को अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिलता, न पश्चिम वाले हमारे सिनेमा को गंभीरता से लेते और न हम इन नामों को जानते।

अपने देश और अपने देश की प्रतिभा को हम बजरिए पश्चिम जानते आए हैं। पत्रकारिता का यह चेहरा भी वाया अमेरिका हमारे देश में आया है। हिंसा का ही एक रूप होता है मन को दुखाना और दूसरे की निंदा। उसके बारे में सच्ची-झूठी बातें छापना उसका दिल दुखाना ही तो है। यह हिंसावाली पत्रकारिता आई पश्चिम के 'पल्प लिटरेचर' से। 'ट्रू स्टोरिज' 'ट्रू एक्सपीरिएसेंज' वगैरह ऐसी पत्रिकाएँ खूब लोकप्रिय हुई थीं उन दिनों।

अपनी देशी कॉलमकार हैं इन दिनों जो 'पल्प' यानी लुगदी से भी आगे बढ़कर पोर्नो उपन्यास लिखकर चर्चित हुई हैं (जिनमें पहला फिल्म जगत पर ही था और बेचारी रेखा जैसा चरित्र उसमें पहचान लिया गया था।) इन्हीं शोभा (किलाचंद) डे ने फिल्मी पत्रकारिता को अफवाही चेहरा दिया। अफवाह सम्राज्ञी के रूप में आज भी शोभा को माना जाता है पर बाद की अँगरेजी की फिल्मी पत्रकारिता ने 'बिलो द बेल्ट' वार करना शुरू कर दिया (आखिर फिल्मों में भी चल रही हैं, इसलिए सरकारी कामकाज के लायक सिचुएशन पैदा करने में उनकी और ज्यादा माँग है। वे साहित्य के जज्बे से माँग पैदा करते हैं, फिर फिल्म के अनुभव से उसे सिचुएशन में फिट करते हैं और अंत में ऐसा सीन लिख डालते हैं जिसके बारम्बार प्रदर्शन से दूरदर्शन धन्य हो जाता है। इसे ही कहते हैं, फिल्म की माँग पर राजनीतिक सिचुएशन का सामाजिक क्रांति में बदल जाना।

इन्हें देखकर प्रेमचंद या अमृतलाल नागर की बहुत याद आती है। आने को तो कइयों की आती है, मगर याद आकर जो रुकती है- वह इन्हीं पर रुकती है। कहते हैं ये दोनों लोग अपनी कहानियों की 'सिचुएशन्स' ले गए थे, और माँग के आगे मारे गए। नीरज का ऐसा कहना है कि वे बंबई से वापस अलीगढ़ इसलिए चले आए कि जेब में प्रिय बीड़ी और दिखाने को ५५५ सिगरेट रखने की सिचुएशन काट खाने दौड़ती थी। ऐसे में कोई आदमी शोखियों में शराब-शबाब घोलकर 'होगा यूँ नशा जो तैयार' कब तक लिखता रह सकता था? चलो जो हुआ, अच्छा हुआ वर्ना इंदीवर का 'चंदन सा बदन' चारपाई में बदलकर जो सिचुएशन की माँग पूरी कर रहा है, उसके आगे अलीगढ़ी तालों का जंग खाना तय ही था। ज्यादा ही कुछ होता तो यह कि माया गोविन्द के लोक- सांस्कृतिक राशन केंद्र की दुकान से जो नया घासलेट बँट रहा है, उसे लेने के लिए उन्हें कूपन लेकर लाइन में लगना पड़ता ताकि माँग के हिसाब से तालों का जंग साफ कर सकें।

एक पटकथा लेखक का कहना है कि 'कहानी की माँग' उर्फ 'सिचुएशन की जरूरत' का जो आंदोलन इन दिनों चला है, उसके चलते सिचुएशन की भारी कमी पड़ गई है। समस्या यह है कि पूजाएँ और करिश्माएँ माँग लेकर खड़ी हैं और फिल्मकार सिचुएशन क्रिएट करते-करते हाँफ रहे हैं। पटकथा लेखक-गीतकार- संगीतकार तमाम लोग अपने- अपने मोर्चे पर भिड़े हैं लेकिन 'सिचुएशन' ऐसी है कि नई 'सिचुएशन' नहीं मिल रही है। ममता कुलकर्णी वगैरह ने ऐसे में यह रास्ता निकाला कि 'स्टारडस्ट' जैसी पत्रिकाओं के कवर पर जाकर आइडिया दे दिया ताकि बंजर होते जा रहे फिल्मकारों को नई सिचुएशन लिखने-फिल्माने की प्रेरणा मिल सके। कहते हैं ममता को भी यह दया, माधुरी के उस खल-गीत के बाद उपजी स्थिति से आई थी, जिसकी वजह से बेचारे फिल्मकारों के पास ले-देकर एक वस्त्र-विशेष ही सिचुएशन के नाम पर बच रह गया था।

माधुरी दीक्षित ने एक दफे कहा था, वह मधुबाला बनना चाहती है। कहने को तो ममता या करिश्मा या रवीना को भी यही कहना है कि मीना कुमारी ही उनकी आदर्श है लेकिन उन्हें दुख है कि आजकल कहानियाँ वैसी लिखी नहीं जा रहीं। अब जैसी कहानी है, वैसी सिचुएशन्स हैं और वैसी ही उनकी माँग है। बहरहाल, मधुबाला या मीना के जमाने में फिल्म पत्रकारों की प्रखरता वहाँ तक नहीं पहुँची थी, जहाँ इंटरव्यू में अंग प्रदर्शन पर कोई मौलिक सवाल खड़ा किया जा सकता। आज हेलन की हिचकी लेकर अँगरेजी में बुढ़ियाया फिल्म पत्रकार पूछता है, 'अंग प्रदर्शन को आप किस सीमा तक ठीक मानती हैं?' अपने संपूर्ण विश्वास को लॉन में, अलगनी पर कपड़ों की तरह फटकार कर सुखाती हुई, वह कहती है, 'सिचुएशन की माँग हो तो वैसा करना अभिनय का एक हिस्सा होगा। इसके अलावा बेवजह अंग प्रदर्शन की इजाजत मैं कतई नहीं दे सकती।' तेवर से ऐसा लगता है, जैसे सिचुएशन के बगैर उनसे कुछ कहा गया तो वे वस्त्रों के स्थान पर इन्डस्ट्री छोड़ना पसंद करेंगी।

लेकिन इंडस्ट्री जो है, वो वहीं रह जाती है, हीरोइन सिचुएशन की तलाश में आगे बढ़

पूजा भट्ट/ करिश्मा कपूर और ममता कुलकर्णी ने दादा साहेब फालके और सालुंके को घेर लिया है। ये बालाएँ उन्हें सिचुएशन की जरूरतें समझा रही हैं!

१९६२ में इंदौर से प्रकाशित फिल्म पत्रिका

तो हिंसा क्रूर से क्रूरतर होती जा रही है न)। मुकदमे चले और चलते रहते हैं। एक-दो मुकदमों में सितारों को राहत भी मिली जैसे शबाना आजमी और अनुपम खेर वाले मामले। पर इन पत्रिकाओं की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ा।

वे कहते हैं कि 'डिमांड' और 'सप्लाई' का मामला है यह। ठीक वही तर्क है जो व्यावसायिक फिल्मों वाले अपनी स्तरहीन फिल्मों की वकालत करते समय देते हैं।

हिंदी में भी यही ट्रेंड चल निकला। 'मायापुरी' आज भी ढाई लाख बिकती है। 'फिल्म सिटी' 'किंग स्टार' के मालिकों ने प्रापर्टी खड़ी कर ली है। इसी तरह की दूसरी भी दर्जन भर पत्रिकाएँ हैं जो चल रही हैं। इन्हें न तो फिक्र है स्तर की न मौलिकता की और न साफ सुथरी भाषा की। क्या जरूरत है संभ्रांत होने की जब तमाम तरह के सस्तेपन के बावजूद पत्रिकाएँ बिकती हैं और पैसा कमाती हैं। आखिर पैसा ही तो आपको संभ्रांत प्रतिष्ठा देता है। तो प्रकारांतर से मालिक संभ्रांत वर्ग में तो शामिल हो ही जाता है।

यहाँ एक बात गौरतलब है, फिल्मों की एक धारा है- 'मिडिल ऑफ द रोड' यानी ऐसी साफ-सुथरी फिल्में जो न तो न्यू वेव वाली कला फिल्में हैं और न हिंसा-बलात्कार वाली व्यावसायिक फिल्में। गुलजार/ ऋषिकेश मुखर्जी/ बासु चटर्जी की फिल्में इस श्रेणी में आती हैं। जब दर्शक घोर व्यावसायिक फिल्मों से ऊबता है तो उसे ये फिल्में ही राहत देती हैं। अपेक्षाकृत कम दर्शक वर्ग के भी ये फिल्में चल जाती हैं।

पर पत्रकारिता में ऐसा नहीं हो पाया। 'मिडिल आफ द रोड' पत्रिकाएँ यहाँ नहीं चल पाई। 'माधुरी' का हश्र क्या हुआ? पत्रिका को तो आम पाठक के स्तर तक उतरना ही पड़ेगा।

गंभीर फिल्मी पत्रकारिता को तो मिशन की तरह ही मानना पड़ेगा। एकमात्र हिन्दी पत्रिका इस श्रेणी में है 'पटकथा' जिसे मध्यप्रदेश फिल्म विकास निगम निकालता है और श्रीराम तिवारी उसकी मशाल उठाए हुए हैं। कहना न होगा, 'पटकथा' जैसी पत्रिका अब अँगरेज़ी में भी नहीं है. राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम की पत्रिका भी बंद हो गई। सिद्धार्थ काक की भी। वरिष्ठ पत्रकार रामचंद्रन भी एक गंभीर पत्रिका निकाला करते थे, वह भी अतीत हो गया। 'सिनेमाया' नाम से अरुणा वासुदेव अवश्य एक पत्रिका निकाल रही हैं पर उसकी भी सीमित प्रतियाँ छपती हैं। 'पटकथा' की तरह ही गंभीर सिनेमा पत्रकारिता की दृष्टि से कुछ फिल्मकारों पर पूरी पुस्तकें, भारतीय फिल्म वार्षिकी जैसे प्रकाशन भी निगम ने किए हैं।

'नईदुनिया' ने भी कुछ बेहद अच्छे वार्षिकांक प्रकाशित किए हैं। ये सारे प्रयास यद्यपि हैं तो अपेक्षाकृत कम, और इनकी पाठक संख्या भी कम ही है किन्तु गंदली होती हुई पंकिल फिल्मी पत्रकारिता के अँधेरे में ये आशा की किरण तो जगाए हुए हैं, इतना संतोष सुधी हिंदी पाठक के लिए क्या कम है? ■

जाती है। क्योंकि सिचुएशन एक पर्दा है जिसमें पर्दा नहीं है। माँग एक शब्द है, जिसमें छब्बीस भाषाओं के कामिल बुल्के की आहुति दी जा सकती है। हीरोइन की माँ हर सेट पर अपने हवन कुंड के साथ उपस्थित रहती है और बिटिया हर सिचुएशन की माँग पर हर बार नई आहुति के लिए घी उपलब्ध कराती जाती है। इस यज्ञ में पूरी यूनिट का पर्यावरण शुद्ध हो जाता है और तब सूखे को खत्म करने वाली ऐसी बारिश आती है, जिसमें 'नदीम श्रवणाई' हुई सावन की आग की सिचुएशन जीवंत हो जाती है।

एक बुजुर्ग फिलमकार स्यापा करते हुए मिले। कहने लगे, पहले इतनी तो शर्म थी कि हीरोइनें सिचुएशन की दुहाई देकर नहाती थीं। अब वे कहती हैं, लोकतंत्र में सबके अपने अधिकार हैं। यदि वे सुंदर हैं, तो उस सुंदरता को मनचाहे तरीके से प्रदर्शित करना भी उनका मौलिक अधिकार है।

मैं जानता था, वे स्यापा इसलिए नहीं कर रहे थे कि हीरोइनें ऐसी हो गई हैं, बल्कि इसलिए कर रहे थे कि उन्हें कोई साइन नहीं कर रहा वर्ना वे भी सिचुएशन की माँग इनके मौलिक अधिकारों से पूरी करने में जान लड़ा देते।

सिचुएशन जो है, ऐसी है कि वह सिचुएशन को छोड़कर सब कुछ है। सिचुएशन यह है कि लोकेशन से पैदा हो रही है और लोकेशन जो है घूम फिर कर चारपाई और

बारिश या नदी और पहाड़ या आँगन और द्वार से आगे जाने को इंकार करती है। किसी दिन गोविंदा-करिश्मा की चारपाई, अर्थी में बदल जाएगी और फिल्म वाले एक नई सिचुएशन की माँग पर हीरोइन को नचवाना चाहेंगे। तब कोई भली हीरोइन सोचेगी दादा साहब फालके और सालुंके के युग में इस सिचुएशन की जगह कैसे निकलती?

दादा साहब के पास भी निश्चित ही इस भली हीरोइन के सवाल का कोई जवाब नहीं होगा। फाइनेन्सर जानता है कि सिचुएशन कैसे क्रिएट की जाती है। दादा साहब और सालुंके को भी वह सुझाव दे सकता है कि आप 'राजा हरिश्चंद्र' का पुनर्निर्माण करें, जिसमें किसी बप्पी लहरी का विकट म्यूजिक हो। रोहिताश्व को साँप काटेगा, तारामती को बेचा जाएगा, हरिश्चंद्र श्मशान में डोम की नौकरी करेंगे और इस क्लासिक कास्ट्यूम ड्रामा में हरिश्चंद्र श्मशान में खड़े-खड़े अपने युवा-समय में खो जाएँगे। तब एक स्नान दृश्य की भरपूर गुंजाइश है। कोई भी भली हीरोइन इस सत्यवादी फिल्म में ऐसी सिचुएशन की माँग पूरी करने से इंकार नहीं कर सकेगी। गोविंदा-करिश्मा की 'राजा बाबू' फेम चारपाई जब अर्थी की शक्ल में बदलकर हरिश्चंद्र के सामने पहुँचेगी तब हरिश्चंद्र की तन्द्रा भंग होगी। लेकिन तब तक दर्शक चिल्लर फेंक चुका होगा।

सालुंके का ख्याल है, इस चिल्लर से तो खाली जेब भली! दादा साहब फाइनेन्सर से पीछा छुड़वाने के लिए गली ढूँढ़ रहे हैं और फाइनेन्सर है कि सालुंके को स्नान-दृश्य की ट्रेनिंग के लिए ममता कुलकर्णी या वर्षा उसगाँवकर के पास भेजने पर आमादा है। दादा कहते हैं, यह सिचुएशन फिल्म में है ही नहीं।

फाइनेन्सर कह रहा है, सिचुएशन की माँग यही है। एक क्लासिक पर कमाई का सवाल है। आखिर एक सिचुएशन के पीछे कोई फिल्मवाला दादा साहब फालके और सालुंके को यूँ ही कैसे हाथ से जाने देगा? ■

फिल्मों के नाम कभी अज़ब कभी गज़ब

फिल्म के नाम पंडितों तथा ज्योतिषियों से पूछकर रखे जाते हैं। अँगरेजी नाम में इतनी तोड़मरोड़ की जाती है कि लिखो कुछ और पढ़ो कुछ। अंधविश्वास के मारे फिल्म निर्माताओं की नाम महिमा अपरम्पार है।

● **सुरेश ताम्रकर**

कैसी अजीब बात है कि फिल्म वाले लोगों के अंधविश्वासों पर तो फिल्म बनाते हैं और उन्हें सीख देते हैं जबकि स्वयं गले-गले अंधविश्वासों में डूबे रहते हैं। अंधविश्वासों के कारण फिल्म के नाम के हिज्जों को तोड़ना-मरोड़ना या उसमें अतिरिक्त शब्द या मात्रा जोड़ना हिंदुस्तानी फिल्म उद्योग में खूब चलता है। किसी एक नाम की फिल्म चल पड़ती है, तो उसके मिलते-जुलते नामों का सैलाब उमड़ने लगता है। **'दीदी'** चलती है तो 'छोटी दीदी' और 'बड़ी दीदियाँ' भी आ जाती हैं। **'यहूदी'** के आते ही उसकी बेटी और बेटे भी जवान होकर टपक पड़ते हैं। जी हाँ 'यहूदी की बेटी' और 'यहूदी का बेटा' नाम से भी फिल्में बन चुकी हैं। चालीस के दशक में एक फिल्म बनी थी **'रतन'**। करण दीवान इसके हीरो थे। नौशाद के संगीत के कारण यह फिल्म खूब चली, तो कुछ माई के लालों ने 'जादुई रतन' और 'राज रतन' बना डाली। बड़े राज की बात बताता हूँ कि उनका यह जादू नहीं चला। जादू पर से याद आया एक फिल्म बनी थी 'जादू'। इसमें भी नौशाद के संगीत का जादू था। इसके बाद फिल्मी जादूगरों की बाढ़ आ गई। कोई दर्शकों के लिए जादुई अँगूठी तो कोई बँसरी लेकर आया। किसी ने 'जादुई शहनाई' बजाई तो किसी ने 'जादुई चित्र' बना डाला। एक माई के लाल ने तो 'जादुई सिंदूर' तक बना डाला। पता नहीं यह सिंदूर भरने के बाद माँग सदा हरी भरी रहती थी या उजड़ जाती थी। बहरहाल फिल्मों की नामावली अंत्याक्षरी की तरह चलती है। अंत्याक्षरी में कैसे अंतिम लफ्ज को पकड़ कर झट आगे वाला प्रतियोगी शुरू हो जाता है। कुछ-कुछ ऐसा ही फिल्मी नामों के साथ होता है। यह बात और है कि फिल्म वाले चाहे जहाँ से पकड़ लेते हैं। अब माँग को ही लीजिए माँग भरो सजना, तेरी माँग सितारों से भर दूँ या खून भरी माँग। फिल्म वाले जब जय जयकार करते हैं तो फिर मत पूछिए जय महाकाली/ जय महालक्ष्मी/ जय संतोषी माँ/ जय हनुमान/ जय महादेव/ जय गणेश/ जय अम्बे का एक अंतहीन सिलसिला चल पड़ता है। वैसे भी हिंदुस्तान में देवी-देवताओं की कोई कमी नहीं है। ९० करोड़ की आबादी के लिए ३३ करोड़ देवी-देवता कोई कम हैं क्या? लगाए जाओ जयकार। बनाए जाओ फिल्म। यह वह अखूट भंडार है, जो कभी न खूटे। मिस/ मदर/ मिस्टर और डॉक्टर शब्दों का भी फिल्म वालों ने अच्छा जाल बुना। किसी ने बनाई 'डॉक्टर' तो किसी ने बना डाली 'लेडी डॉक्टर'। अब डॉक्टर और लेडी डॉक्टर बन गए तो 'डॉक्टर कुमार' और 'डॉक्टर विद्या' तथा 'डॉक्टर जेड' आ गए। जब कुछ नहीं बचा तो एक निर्माता ने धोबी को ही डॉक्टर (धोबी डॉक्टर) बना दिया। दबा ली ना दाँतों तले अँगुली। देखना कहीं कट न जाए। हमारे फिल्म वाले किसी पीसी सरकार से कम नहीं। धोबी को डॉक्टर और डॉक्टर को धोबी बनाना उनकी चंद रीलों का खेल है। 'मिस मेरी' के नाम से आप अच्छी तरह वाकिफ होंगे। ओ रात के मुसाफिर चंदा जरा बता दे जैसे गीतों के कारण और मीना कुमारी के संजीदा अभिनय की वजह से यह फिल्म अच्छी खासी लोकप्रिय हुई थी। मिस बॉम्बे, मिस इंडिया, मिस तूफान मेल, मिस कोकाकोला और नहीं कुछ बन पड़ा तो मिस्टर एंड मिसेज ५५ की तर्ज पर मिस १९५८ आ गई। महबूब ने बनाई थी मदर इंडिया और सन ऑव इंडिया तो शेखर कपूर ने मिस्टर इंडिया बना डाली। फिल्म वाले चाहें तो **फादर इंडिया** का नाम जल्दी रजिस्टर करवा लें अभी किसी ने नहीं बनाई है।

कभी कोई 'नई राहें' बनाता है तो शीघ्र ही वह प्यार की राहों में बदल जाती है और इन पर चलकर लोग कभी 'रात के राही', कभी 'दूर के राही' या कभी सिर्फ 'राहगीर' रह जाते हैं। बंबई वालों ने अपनी नगरी को भी नहीं बख्शा। कोई 'बंबई का बाबू' गाँवों में जाता है तो कभी 'बंबई रात की बाहों' में समा जाती है और कभी 'बॉम्बे सेंट्रल' पर 'बॉम्बे की बिल्ली' म्याऊँ-म्याऊँ करने लगती है। 'जिम्बो' के बाद जिम्बो का शहर में आना
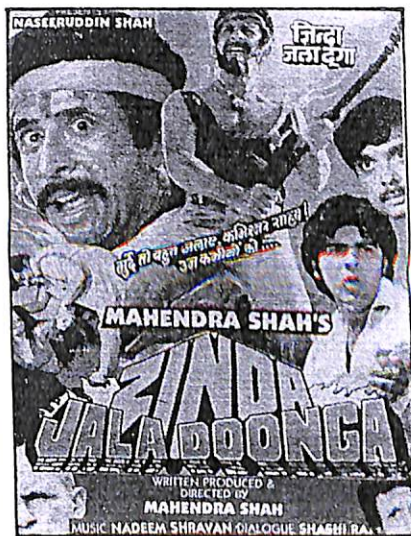
लम्बे नामधारी फिल्में

□ गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो □ डॉ. कोटनीस की अमर कहानी □ झनक झनक पायल बाजे □ दूर गगन की छाँव में □ ये जिंदगी कितनी हसीन है □ नींद हमारी ख्वाब तुम्हारे □ बंबई रात की बाहों में □ जब याद किसी की आती है □ जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली □ दुल्हन वही जो पिया मन भाए □ अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी □ मैं तुलसी तेरे आँगन की □ अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है □ गुरु सुलेमान चेला पहलवान □ औरत पैर की जूती नहीं □ कहाँ-कहाँ से गुजर गया □ सलीम लगड़े पे मत रो □ राजू बन गया जेंटलमेन □ उमर पचपन की दिल बचपन का।

● **प्रकाश शर्मा**

फिल्म कल्चर

कीर्तिमान

(१९७१ से १९९३)

● १९७१:
दादा फालके शताब्दी समापन पर डाक टिकट जारी। इस वर्ष ४९३ फिल्मों का निर्माण हुआ।

● १९७२:
नब्बे फीसदी फिल्में रंगीन बनने लगीं। बंगला फिल्म सीमाबद्ध को राष्ट्रपति का स्वर्ण-पदक।

● १९७३:
सत्यजीत राय की फिल्म अशनि संकेत को बर्लिन फिल्मोत्सव में गोल्डन-बीअर।

● १९७४:
नई दिल्ली में पाँचवाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित। बॉबी ने बॉक्स आफिस के रेकार्ड तोड़े।

● १९७५:
कलकत्ता में पहली बार अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव आयोजित।

● १९७६:
बंबई में दूसरा अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव आयोजित। चोमना डूडी (ब.व. कारंथ) को राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल।

● १९७७:
नई दिल्ली में छठा अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह। मृणाल सेन की फिल्म 'मृगया' को स्वर्ण-कमल।

● १९७८:
तीसरा अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव मद्रास में आयोजित।

● १९७९:
नई दिल्ली में सातवाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह। फिल्म 'शोध' को स्वर्ण-कमल।

● १९८०:
फिल्म फायनेंस कारपोरेशन का नया नामकरण राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम। चौथा फिल्मोत्सव बंगलौर में।

● १९८१:
भारतीय सवाक फिल्मों की स्वर्ण-जयंती। नई दिल्ली में आठवाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह।

● १९८२:
उमराव जान फिल्म के लिए रेखा सर्वोत्तम अभिनेत्री। कलकत्ता में पाँचवाँ फिल्मोत्सव।

● १९८३:
भारत की पहली संस्कृत फिल्म आदि शंकराचार्य पुरस्कृत। नई दिल्ली में नवम् अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह।

● १९८४:
ओमपुरी सर्वोत्तम अभिनेता। शबाना सर्वोत्तम अभिनेत्री। बंबई में छठा फिल्मोत्सव।

● १९८५:
सत्यजीत राय को दादा फालके सम्मान। नसीरुद्दीन शाह सर्वोत्तम अभिनेता। शबाना सर्वोत्तम अभिनेत्री। नई दिल्ली में दसवाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह।

● १९८६:
हैदराबाद में सातवाँ फिल्मोत्सव- शानदार आयोजन। वी. शांताराम को दादा फालके सम्मान। शशिकपूर सर्वोत्तम अभिनेता। सुहासिनी सर्वोत्तम अभिनेत्री।

● १९८७:
नई दिल्ली में ग्यारहवाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह। बी. नागी रेड्डी को दादा फालके सम्मान।

● १९८८:
भारतीय सिनेमा की हीरक जयंती। राजकपूर को दादा फालके सम्मान। त्रिवेन्द्रम में आठवाँ फिल्मोत्सव।

● १९८९:
चार्ली चेप्लिन की जन्म शती आयोजित। डाक टिकट जारी।

● १९९०:
कलकत्ता में अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह का आयोजन।

● १९९१:
मरुपक्कम (तमिल) को राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल। ए. नागेश्वरराव को दादा फालके सम्मान।

● १९९२:
मराठी फिल्मों की हीरक जयंती (१९३२-१९९२)। कलकत्ता में सत्यजीत राय फिल्म अभिलेखागार का शुभारंभ। लता मंगेशकर के पार्श्वगायन की स्वर्ण-जयंती।

● १९९३:
उदयपुर में आठवाँ बाल एवं युवा फिल्म समारोह आयोजित। दक्षिण भारत के संगीतकार इल्या राजा ने लंदन के रॉयल फिल्म हार्मोनिक आर्केस्ट्रा के आमंत्रण पर सिम्फनी रिकार्ड कराई। भगवद् गीता (संस्कृत) को राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल।

● १९९४: **(मई तक)**
कलकत्ता में पच्चीसवाँ अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह। सत्यजीत रॉय पर बाईस रुपए मूल्य के डाकटिकट जारी। त्रिवेन्द्रम की सूर्या फिल्म सोसायटी ने सिनेमा की शताब्दी के अवसर पर सौ श्रेष्ठ फिल्मों का प्रदर्शन किया।

ऊटपटांग नाम

फैशनेबल इंडिया (१९३५)
—मोहन सिन्हा

मिस्टर झटपट (१९४३)
—हरबंस

शिन शिनाकी बूबला बू
(१९५०) —संतोषी

हा-हा, ही-ही, हू-हू (१९५५)
—संतोषी

टिन-टिन-टिन (१९५९)
—बी.जे. पटेल

अपलम चपलम (१९६१)
—रूप के. शोरी

तेल मालिश बूट पॉलिश
(१९६१) —आर. डे

चा चा चा (१९६४)
—चंद्रशेखर

धोती, लोटा, चौपाटी
(१९७५) —मोहन चोटी

हूँ हुंशी हुंशीलाल (१९९३)

● प्रकाश शर्मा

और तहलका मचाना लाजमी है। कोई 'पैसा बनाता है। तो कोई 'खोटा पैसा' लेकर हाजिर हो जाता है और कोई पैसे के साथ प्यार परोस देता है। 'टेक्सी ड्रायवर', 'ट्रक ड्रायवर' और 'ट्राली ड्रायवर' तक हमारी फिल्म नगरी में मिल जाते हैं।

चोर, लुटेरे और यहाँ तक कि डाकुओं का नाम लेकर भी हमारे फिल्म वालों ने दर्शकों की जेबों पर खूब डाका डाला। डाकू नाम को लेकर अनेक फिल्में बनीं। लेकिन लोग जैसे डाकू को पसंद नहीं करते वैसे ही इन फिल्मों को भी उन्होंने ठुकरा दिया। आइए जरा फिल्मी डाकुओं के नामों का भी जायजा ले लें। किसी ने बनाया 'डाकू' तो कोई उससे एक कदम आगे निकला और उसने दो डाकू बना दिए। किसी ने हम दो डाकू बना दी। किसी का डाकू दिलेर है (दिलेर डाकू) किसी का बहादुर डाकू तो किसी का शेरा डाकू है। कोई जंटलमेन डाकू है तो किसी हिंदी प्रेमी का शरीफ डाकू भी है। प्रभु की हो चाहे न हो हमारे फिल्म वालों की महिमा अपरंपार है। जब इतने सारे डाकुओं से भी दर्शकों की जेबों पर डाका नहीं डला तो उन्होंने डाकू और जवान, डाकू और नर्तकी, डाकू और महात्मा यहाँ तक कि 'डाकू और भगवान' नाम से भी कोशिश कर ली, मगर अफसोस! बेचारे नाकामयाब रहे।

ग्रेट शो मेन राज कपूर इस चीज को अच्छी तरह समझते थे। इसलिए उन्होंने डाकू चरित पर डाकू नाम से फिल्म नहीं बनाई, बल्कि उसका नाम रखा- जिस देश में गंगा बहती है। गीत-संगीत और पद्मिनी के नृत्य
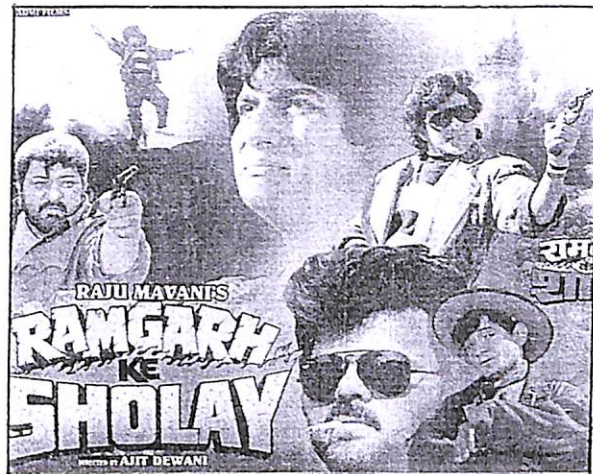
की चाशनी के साथ इस समस्या को ऐसा पेश किया कि फिल्म हिट हो गई। बिना डाकू का नाम लिए कुछ डाके और भी पड़े हैं जैसे गंगा-जमुना, मुझे जीने दो, प्राण जाए पर वचन न जाए, कच्चे धागे, मेला, मेरा गाँव मेरा देश। इन सब में सफलतम रही-शोले।

जैसे अ, आ, इ, ई, से बच्चा पढ़ना सीखता है हमारी फिल्मों की शुरुआत भी आलमआरा से हुई। अकार से प्रेम फिल्म वालों को इस कदर हुआ कि आलमआरा से अमर-अकबर-एंथोनी तक सैकड़ों फिल्में अ या आ अक्षर से शुरू होकर बनी तथा अधिकांश टिकट खिड़की पर सफल भी रहीं। फेहरिस्त लंबी है, लेकिन चंद नाम काबिले गौर हैं- आग/ आह/ आन/ अमर/ अमर दीप/ अमर प्रेम/ आराधना/ आनंद/ आँखें/ अनारकली/ आवारा/ अनाड़ी/ अनुपमा/ आजाद/ आँधी/ अदालत/ आप आए बहार आई/ आई मिलन की बेला वगैरह-वगैरह।

फिल्म वाले चाहे लाख कहें कि दर्शक सेक्स और हिंसा पसंद करते हैं इसलिए वे परोसते हैं। लेकिन ऐसी फिल्मों का इतिहास गवाह है कि परोसी हुई थाली को हमारे दर्शकों ने अक्सर लात मारी है। डाकू का उदाहरण अभी आप देख ही चुके, अब जरा खून या लहू शब्द को लीजिए। जहाँ भी नाम के साथ यह शब्द आया रंग नहीं लाया। मगर वह चिल्लाते रहे-यह खून रंग लाएगा, लहू पुकारेगा, खून की कीमत, लहू के दो रंग/ अपना खून/ खून की पुकार/ खूनी कौन/ खून का बदला खून। खून के नाम पर भले ही फिल्म वालों ने नया खून चढ़ाया चाहे खून-पसीना बहाया सब बेकार गया। हाँ 'चोर' शब्द 'चोरी-चोरी' चल जाता है। फिर चाहे दो चोर हो/ चितचोर हो/ चोर के घर चोर हो या चोर शोर मचाता हो। सट्टा और ताश का पत्ता भी हमें कबूल नहीं। महाभारत की चौपड़ का भय शायद अभी बरकरार है। सत्ते पे सत्ता/ चिड़ी का इक्का/ नहले पे दहला/ गुलाम बेगम बादशाह यहाँ तक कि एक खिड़की और बावन पत्ते भी बाजी हार जाते हैं।

फिल्मी नामों के अलावा गीतों के मुखड़ों में भी भेड़िया धसान स्पष्ट देखने को मिलती है- जैसे जिंदगी शब्द के इस्तेमाल वाले गीत जिंदगी आज मेरे नाम से शरमाती है, जिंदगी प्यार की दो-चार घड़ी होती है, जिंदगी क्या है गम का दरिया है, जिंदगी के सफर में अकेले थे हम, जिंदगी देने वाले सुन और जिंदगी एक सफर है सुहाना। तेरा, तेरी, कभी और छ से शुरू गीत भी छमाछम चले। तेरा जाना दिल के अरमानों का लुट जाना, तेरा पीर ओ बे पीर, तेरी याद में जल कर देख लिया, तेरी याद दिल से भुलाने चला हूँ, तेरी प्यारी-प्यारी सूरत को, तेरे बिन सूने नयन हमारे, तेरे प्यार का आसरा चाहता हूँ और तेरे मेरे मिलन की ये रैना उन्हें भुलाए नहीं भूलती। वे जब 'कभी' का दामन पकड़ते हैं तो बेचारे छोड़ नहीं पाते और तब एक सिलसिला चल पड़ता है कभी आर कभी पार लागा तीरे नजर/ कभी न कभी कहीं कोई न कोई तो आएगा। कभी तो मिलेगी बहारों की मंजिल। कभी रात दिन हम पास थे। कभी-कभी मेरे दिल में ख्याल आता है। सुनकर कभी खुद पे कभी (उनके) हालात पे आपको भी रोना आ जाता होगा। लेकिन मुँह मत छुपाइए सामने आइए क्योंकि वे पुकारते हैं- छुपने वाले सामने आ/ छुप गया कोई रे/ छलिया मेरा नाम/ छलके तेरी आँखों से/ छेड़ो ना मेरी जुल्फें/ छम छम छम बाजे पायल मोरी/ क्या-क्या गिनाऊँ अगर हम 'क्या' शब्द को लें तो इससे ही एक अंतहीन सिलसिला चल पड़ता है। हजार है, लाख है, हाय है, सुन है, जो है, ना है वो हैं।

अजीब दास्ताँ है ये कहाँ शुरू कहाँ खतम
ये नाम हिंदी फिल्मों के न वो समझ सके न हम/

क्या आप भी इनमें शरीक हैं ?

हमें प्रदेश के 15 लाख से भी अधिक परिवारों का विश्वास
प्राप्त है , जो हमारे सम्मानीय अमानतदार हैं।

(1) प्रदेश में सहकारी बैंकों की कुल अमानतें 16 अरब से भी अधिक हैं।

(2) अन्य बैंकों के समान प्रत्येक खाते रु. 30,000 तक की राशि जमा बीमा से सुरक्षित हैं।

(3) रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के निर्देशों के अंतर्गत अपेक्स बैंक तुलनात्मक रूप से 1/4 प्रतिशत, सहकारी बैंक तथा नागरिक सहकारी बैंक 1/2 प्रतिशत एवं समितियों द्वारा संचालित बचत बैंक 1 प्रतिशत अमानतों पर अधिक ब्याज देते हैं।

(4) साथ ही लॉकर्स की आधुनिकतम सुविधा, राशियों का संकलन एवं प्रेषण तथा समस्त बैंकिंग सेवायें

मात्र सहकारी बैंक ही अपनी शत-प्रतिशत अमानतों का विनियोजन प्रदेश के आर्थिक विकास में करते हैं।

हर पल, हर जगह आपके साथ आपके पास

सहकारी बैंक

प्रत्येक जिले में सहकारी बैंक एवं तालुका / विकास खंड स्तर पर शाखायें

— गाँव-गाँव तक बचत बैंक —

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी बैंक मर्यादित, भोपाल

संभागीय स्तर पर 9 शाखायें एवं अन्य 8 अमानत शाखायें

Fame Advertising

कागज के फूलों से खुशबू की चाह

● दिलीप गुप्ते

टीन-कनस्तर पीट-पीट कर
गला फाड़कर चिल्लाना,
यार मेरे मत बुरा मान,
ये गाना है न बजाना है।

यह फिल्म संगीत के दुर्दिन नहीं तो क्या है? हर कोई मुँह उठाए चला आ रहा है। जिसका गला गुनगुनाने लायक भी नहीं है वह गाने गा-गा कर अवार्ड पर अवार्ड बटोरे जा रहा है। भाषा- व्याकरण से मात्र हलो-हलो का परिचय रखने वाले लोग गीतकार बन गए हैं। संगीत की बजाए जोड़तोड़ में दिलचस्पी रखने वाले लोग संगीतकार कहलाने लगे हैं। फिल्म संगीत समीक्षक अगर लिखते हैं कि मेलोडी लौटी है, तो यह उनका भ्रम है। न तो मधुरता लौटी है और न ही फिल्म संगीत में गुणात्मक सुधार आया है। बत्तीस ट्रैक वाली रेकॉर्डिंग पद्धति की शेरनी आ गई है मगर उसके दूध का मेमनों को क्या उपयोग। आज का संगीत-फिल्म संगीत भी सुनने की बजाए देखने की चीज हो गया है। भड़कीली पोषाकें, जगमगाती रोशनियाँ,हजारों वाट के स्पीकर, चीखते हुए गाने वाले देख कर आँखें चौंधिया जाती हैं। यह कोई संगीत है। आज के संगीत में वह दम नहीं जो अकेले ही रंग जमा दे। ऐसे संगीत को अगर अच्छा कहें, तो कल से फुटपाथ पर लाल-पीली पन्नियों में बिकने वाली पुस्तकों को साहित्य की श्रेणी में गिना जाएगा। फिल्म संगीत में चारों तरफ नकल का साम्राज्य है।

नकल एक विवादास्पद शब्द है। फिल्म संगीत में तो और भी ज्यादा है। वैसे तो हर चीज, हर हावभाव नकल है। सितारा देवी भी कत्थक करती है, माधुरी दीक्षित भी। पं. भीमसेन जोशी भी राग दरबारी गाते हैं और महेन्द्र कपूर भी। फिर भी कितना अंतर है दोनों में। दिलीप कुमार के पहले भी फिल्मों में नायक प्रेम करते थे। गाते थे। रोते थे। मरते थे। मगर दिलीप कुमार ने इसे निराला ढंग दिया। इसीलिए वे मौलिक अभिनेता कहलाए। राजेन्द्र कुमार/ मनोज कुमार/ संजय खान और अमिताभ बच्चन ने दिलीप कुमार की नकल की। आज के संगीतकारों को कोसते हुए अगर हम यह कहें कि पुराने संगीतकार पाक दामन थे तो वही गलती करेंगे जो 'फिल्म संगीत में मधुरता की वापसी' शीर्षक देकर संगीत के समीक्षक करते हैं। पुराने संगीतकार अगर नकल किया करते थे, तो उसमें अपनी कल्पना भी जोड़ते थे। याद कीजिए अनिल विश्वास (नदीम श्रवण द्वारा दंशित रोगियों को यह नाम मालूम न होगा) की अमर रचना 'जीवन है मधुबन' (जासूस/ तलत) की याद आती है। अनिल दा ने खुद मंजूर किया कि इस गीत की धुन एक विदेशी गीत 'के सरा-सरा' के धुन की नकल है। जिन्होंने ये दोनों धुनें सुनी हैं वे मंजूर करते हैं कि अनिल दा की सूझबूझ कमाल की है। शंकर जयकिशन मिस्र की धुनों का भारतीयकरण करते थे इसलिए वे कभी बेगानी नहीं लगीं। सलिल चौधरी ने अपनी कई फिल्मों में विदेशी लोकधुनों का इस्तेमाल किया। एक ही जलस्रोत से प्यासे की प्यास बुझाई जा सकती है, सिंचाई की जा सकती है, सफाई की जा सकती है, छिड़काव भी किया जा सकता है। नए संगीतकारों ने जल का इस्तेमाल सिर्फ दूध में मिलाने के लिए किया है। यही कारण है कि चालीस साल के जवान शंकर जयकिशन आज भी फिल्म संगीत प्रेमियों के दिल में हैं और चार साल बूढ़े नदीम-श्रवण को ढूंढना पड़ता है। नौशाद को पुराना कह कर खारिज करने वाले बप्पी लाहिड़ी को आज घुड़दौड़ में बने रहने के लिए ए. रहमान की धुन 'रुक्मिणी रुक्मिणी' (रोजा) पर डाका डालना पड़ता है।

फिल्म संगीत के पतन के लिए अच्छे गीतकारों का टोटा भी जिम्मेदार है। साहिर-शकील, शैलेन्द्र-हसरत, भरत व्यास-प्रदीप जैसे निष्कपट गीतकार अब कहाँ हैं? मजरुह ने हर रंग के गाने लिखे। नीरज ने फिल्मों में रह कर भी अपना साहित्यिक स्तर बनाए रखा। वह तो आनंद बख्शी ने अंगना-कंगना, डोली कहार, चूड़ियाँ बिन्दिया, रब्बा, एक दूजे के लिए जैसे शब्दों की जुगाली की और गीतों का स्तर गिराया।थोकबंद गाने थूकने वाले समीर ने औरत के लिए 'क्या चीज हो तुम' और 'क्या माल है' जैसे अमर्यादापूर्ण शब्द लिखे। समीर के भाईबंद नायिका को बाजारू बनाकर "बाबा किस' मी" जैसे उत्तेजक आमंत्रण वाले गाने लिख रहे हैं। प्रेम में पड़ी नायिका की स्थिति का वर्णन कई गीतकारों ने किया है। मगर 'हीररांझा' के गीत जैसी विरोधाभासी पंक्तियाँ किसी ने नहीं लिखीं। पहली पंक्ति है, 'मिलो न तुम तो हम घबराएँ' दूसरी पंक्ति है, 'मिलो तो आँख चुराएँ' इसी तरह आगे की पंक्तियाँ देखिए– 'तुम्हीं को दिल का राज बताएँ।' यह पंक्ति कोई भी लिख सकता है। आनंद बख्शी, समीर, रानी मलिक, माया गोविंद। मगर दूसरी ही पंक्ति 'तुम्हीं से राज छुपाएँ' सिर्फ राजा मेहंदी अली खाँ ही लिख सकते थे। कागज पर तो कोई भी पैगाम लिख सकता है मगर 'हवाओं पे लिख दो हवाओं के नाम' लिखने का कमाल सिर्फ गुलजार ही कर सकते हैं। दिल को शीशे की उपमा देने वाले हजारों गीतकार हैं मगर 'चूड़ी नहीं ये मेरा दिल है' लिखा सिर्फ नीरज ने। अनजान और इन्दीवर ने तो पैसे के लिए अपनी कलम मय शर्म-ओ हया के बेच दी। समाज पर कटाक्ष करते हुए हमें शैलेन्द्र का 'दिल का हाल सुने दिलवाला' (श्री ४२०) गीत ही क्यो याद आता है।

रैप के आने के बाद तो भाषाई ईमानदारी भी खत्म हो गई। बच्चों के बड़बड़ गीत रैप गीत बन गए हैं। कुत्ते-बिल्ली की आवाजों को शब्दों में ढाला जा रहा है। अश्लीलता को भारतीय संस्कृति कहकर सीनाजोरी की जा रही है। ऐसे कामों में महिलाएँ ही आगे हैं। धीमे जहर का असर अब हुआ है जब महिला संगठन भी घूँघट काढ़े कबूतरों, तीतरों का चढ़ना देख रहे हैं। माना कि अश्लील गीत असभ्य और ग्रामीण समाज में विशेष अवसर पर गाए जाते हैं। लेकिन आज के ये गीतकार हर मौके पर अश्लील गीत लिख रहे हैं। ये लोग चाँदी का चम्मच लिए पैदा हुए हैं इसलिए इन्हें जनता के सुख-दुख से कोई सरोकार नहीं।

मुसीबत अकेली नहीं आती। आज के गाने वाले/ वालियाँ/ इन्हें तो गाने के अलावा कोई भी दूसरा काम करना चाहिए। कहने को तो ये शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थी रहे हैं मगर इनकी आवाज सुनकर ऐसा नहीं लगता। ये अपने गुरु उस्ताद का अपमान कर रहे हैं। आज ये रोने वाले लोकप्रिय इसलिए भी हैं कि हमारे सामने कोई विकल्प नहीं है। ठीक ही तो है, अकाल में घास ही भुखमरी से बचाती है। इन गाने वालों के उच्चारण इतने भयानक हैं कि अगर समझदार आदमी सुन ले तो अपना सर धुन ले। इन गाने वालों का न तो गला साफ है और न ही नाक। बिना तैयारी के गाते हैं। इनकी रेंज इतनी सीमित है कि सभी गाने एक जैसे मालूम होते हैं। गाने के बीच साँस टूटती है। फिर भी इन्हें गायक-गायिका कहा जाता है। आज का सबसे 'चालू' गायक तो गरारे करता है। इसे गायकी नहीं कहते। भारतीय फिल्म संगीत में कुमार शानू से बदतर गाने वाला अभी आना बाकी है।

नए शब्दकारों, गाने वालों, बजाने वालों को लानत भेजते हुए हम अपना पल्ला नहीं झाड़ सकते। हो सकता है ये लोग ही मँजते मंजते गीतकार, गायक, संगीतकार बन जाएँ। इन्हें अभी नकली चीजों से ही वास्ता पडा है। डिब्बाबंद दूध-भोजन पर पले ये लोग कमजोर तो रहेंगे ही। सिर्फ अंग्रेजर होना ही काफी नही होना। संगीतकार बनने के लिए संगीत की रियाज करना भी जरूरी है। शब्दों को सेट करना आसान है मगर उनमें से अर्थ निकालना गीतकार का काम है। गाने की आत्मा और पर्दे वाले के चरित्र के साथ न्याय करने वाला ही गायक कहलाता है। आज के लोगों में यही कमी है। ■

स्वाद,
स्वास्थ्य,
बचत
की
सौगात.

प्रेस्टीज

सुपर रिफाइन्ड कुकिंग ऑइल

अब
प्रेस्टीज वनस्पति
परख वनस्पति
भी उपलब्ध
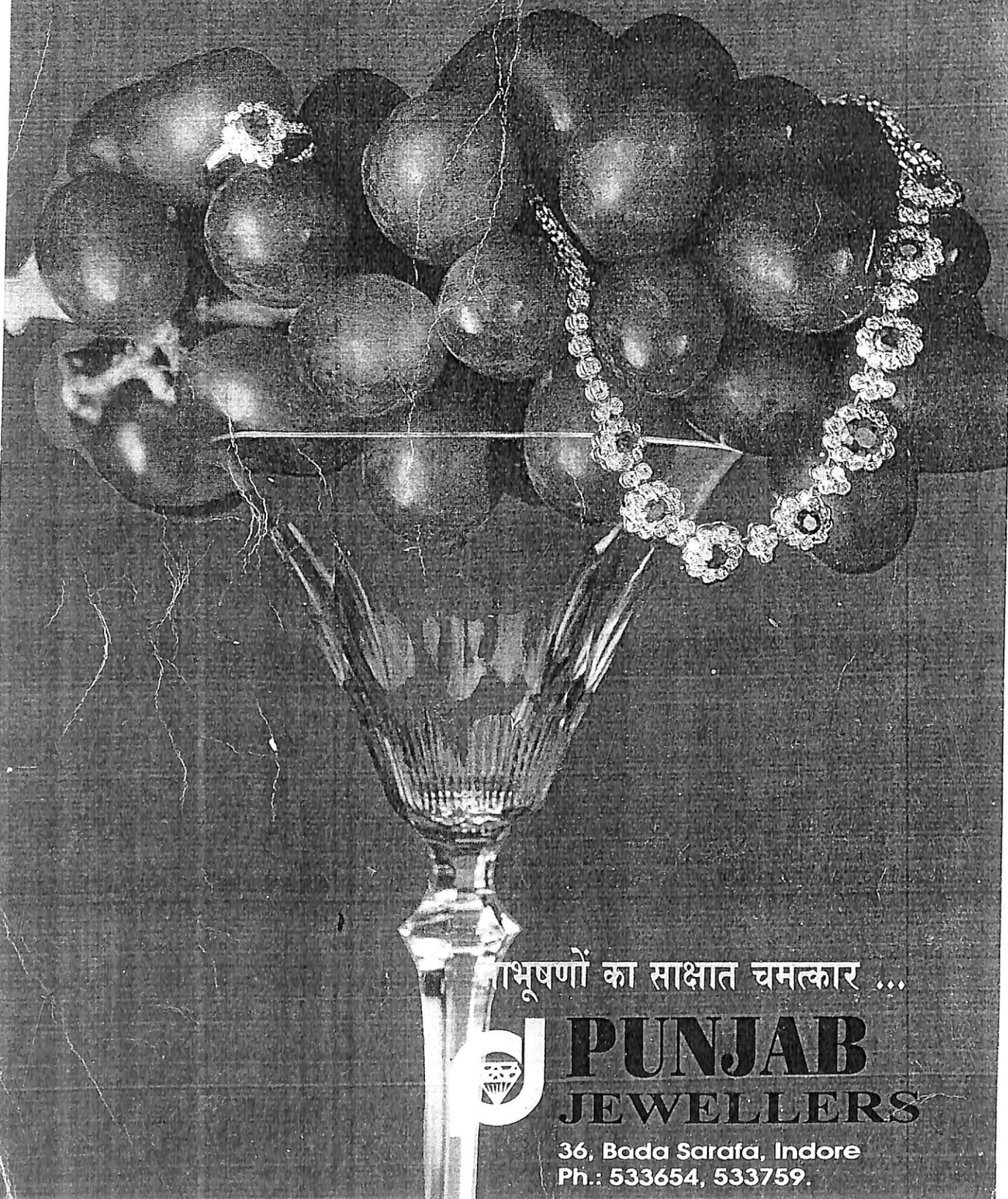
निर्माता :
प्रेस्टीज फूड्स लिमिटेड
30, जावरा कम्पाउण्ड, एम. वाय. एच. रोड,
इन्दौर - 452001
फोन : 464201-6, 467201-4

Swift/941

प्रबंध सम्पादक बसंतीलाल सेठिया द्वारा नईदुनिया के लिए
नईदुनिया प्रेस, बाबू लाभचंद छजलानी मार्ग, इंदौर ४५२००९ से मुद्रित एवं प्रकाशित ◆ सम्पादकीय सलाहकार : राहुल बारपुते